का रा वा स

फ्योदोर दोस्तोव्स्की

अनुवादक

श्रीमती विजय चौहान

शिवदानसिंह चौहान

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

प्रकाशक :
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
२६ ए, चन्द्रलोक, जवाहरनगर, दिल्ली
बिक्री केन्द्र : नई सड़क, दिल्ली

प्रथम संस्करण
सन् १९६३

मूल्य
सात रु० पचास न. पै.

मुद्रक :
पुरी प्रिंटर्स, करोलबाग,
नई दिल्ली-५

चाक़लेटी होता था। हमारे सिर के बाल भी अलग-अलग ढंग से काटे जाते थे; कइयों के आधे सिर पर उस्तरा फेरा जाता था, कुछ के उल्टा-तिरछा।

एक सरसरी निगाह डालने से ही एक समानता का पता चल जाता था। प्रमुख और मौलिक व्यक्तित्व वाले क़ैदी भी, जिनका सब पर रोब-दाब था, अपने आपको जेल के सामान्य लहजे के अनुकूल बनाने की कोशिश करते थे। साधारण तौर पर मैं यह कह सकता हूँ कि चंद ख़ुशमिज़ाज लोगों को छोड़कर, जिन्हें सब हिक़ारत की नज़रों से देखते थे, बाक़ी सब क़ैदी क्षुब्ध, ईर्षालु, अहंकारी, तुनक-मिज़ाज, शेख़ी बघारने वाले थे, जो वहाँ के तौर-तरीक़ों के पाबंद थे। किसी भी बात पर आश्चर्य न प्रकट करना बहुत बड़ी क़ाबलीयत समझी जाती थी। सब अपनी आन पर क़ायम रहने के पीछे दीवाने थे। अक्सर चालाकी और धोखाधड़ी के बाद कमीनेपन और कमज़ोरी के क्षण आते थे। कुछ का व्यक्तित्व सचमुच बड़ा प्रबल था! वे सीधे-सादे थे और बनावटीपन से मुक्त थे, लेकिन ताज्जुब है कि इनमें से कुछ ऐसे भी थे, जिनका अहंकार रुग्णता की सीमा तक जा पहुँचा था। वैसे तो वहाँ की प्रथानुसार सभी अहंकार और दिखावे का पालन करते थे। अधिकांश क़ैदी भ्रष्ट और पतित थे। निन्दा-चुग़ली का बाज़ार हमेशा गर्म रहता था। यहाँ का वातावरण नारकीय तथा अंधकारमय था, किन्तु जेल की प्रथाओं के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस किसी में नहीं था। सब क़ायदे-क़ानूनों का पालन करते थे। कुछ क़ैदियों को ऐसा करने में बड़ी दिक्क़त महसूस होती थी, लेकिन अन्त में उन्हें झुकना ही पड़ता था। कुछ ऐसे बिगड़े हुए लोग भी थे, जिन्होंने जुर्म करने में ऐसी लापरवाही दिखाई थी, जैसे वे नशे में या सरसाम की हालत में रहे हों। इसमें अक्सर उनका अहंकार सबसे बड़ा कारण होता था। जेल में आने से पहले जो क़ैदी अपने गाँव या शहर को आतंकित किये रहते थे, यहाँ आकर उनकी उच्छृंखलता दब जाती थी। नवागंतुक फ़ौरन भांप जाता था कि वह ग़लत

जगह आ पहुँचा है, यहाँ कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जिसे वह प्रभावित कर सकता है। धीरे-धीरे वह जेल के अनुशासन में बँध जाता था। इस अनुशासन की सूचक वह बाह्य शालीनता थी, जिसके प्रति हर क़ैदी सचेत था। लगता था, जैसे क़ैदी का दर्जा कोई आदर-पूर्ण दर्जा हो। किसी में भी पश्चात्ताप या आत्मग्लानि का कोई लक्षण नहीं नज़र आता था! फिर भी एक बाहरी, औपचारिक, दार्शनिक क़िस्म की उदासीनता ज़रूर थी। वे कहा करते थे, 'हम भटके हुए लोग हैं, चूँकि आज़ाद रहकर हमें ढंग से रहना नहीं आया, इसलिए अब हमें 'सब्ज़ गली'[1] की ख़ाक छाननी होगी। हमने अपने मां-बाप का कहना नहीं माना, इसलिए अब नगाड़े की चोट का कहना मानना होगा। हम सुनहरी तारों से क़सीदा नहीं काढ़ सके, इसीलिए अब सड़क पर पत्थर तोड़ते हैं।" इस तरह की नैतिक उक्तियाँ अक्सर व्यक्त की जाती थीं, लेकिन उनमें कभी संजीदगी नहीं होती थी। ये सिर्फ़ कोरे शब्द थे। एक भी क़ैदी ने अपने मन में कभी अपनी उच्छृंखलता क़बूल नहीं की होगी। क़ैदियों के सिवा अगर कोई दूसरा आदमी किसी क़ैदी को डांटने-फटकारने की कोशिश करके देखता (हालांकि रूस में अपराधी की भर्त्सना नहीं की जाती) तो क़ैदी के मुँह से गालियों की बौछार होने लगती। गाली देने में वे लोग कितने माहिर थे! वे विस्तार-पूर्वक और कलात्मक लहजे में गालियाँ बकते थे। गाली देना एक विज्ञान बन गया था। वे वाक्‌युद्ध में नहीं, बल्कि अपमानसूचक अर्थों, विचारों की सूक्ष्मता और दुर्भावना की अभिव्यक्ति में अपने प्रतिद्वन्द्वियों को नीचा दिखाना चाहते थे। लगातार होने वाले झगड़ों ने इस विज्ञान को और अधिक विकसित कर दिया था। इन लोगों से ज़बरदस्ती काम लिया जाता था, इसलिए वे काहिल और निकम्मे थे। अगर वे पहले से ही भ्रष्ट न होते, तो यहाँ आकर ज़रूर भ्रष्ट हो जाते।

---

१. जेल का नाम

उनमें से कोई भी स्वेच्छा से यहाँ नहीं आया था; सब एक दूसरे के लिए अजनबी थे।

"हमें यहाँ लाने से पहले ज़रूर शैतान के तीन जोड़ी जूते घिस गये होंगे", वे अक्सर कहा करते थे। निन्दा-चुग़ली, साज़िशें, झूठे इल्जाम, ईर्ष्या, लड़ाई-झगड़ा और घृणा इस नारकीय जीवन की मुख्य विशेषतायें थीं। कुछ हत्यारे तो बुढ़ियों को भी मात करते थे। मैं फिर कहूँगा कि सबल व्यक्तित्व वाले लोग भी वहाँ मौजूद थे, जो निर्भीक और मेहनती थे, जो हमेशा आगे बढ़ने और दूसरों पर रोब डालने के आदी थे। इन्हें हमेशा आदर की दृष्टि से देखा जाता था। इन्हें अपने आत्मसम्मान का बहुत ध्यान था, लेकिन वे दूसरों को दबाने, ज़रा-ज़रा सी बात पर झगड़ा मोल लेने के आदी नहीं थे। उनके व्यवहार में असाधारण शाली-नता और संगति थी, और वे हमेशा जेल के अधिकारियों की आज्ञा का पालन करते थे, किसी मजबूरी या कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि ऐसा लगता था जैसे दोनों पक्षों ने अपने फ़ायदे के लिए कोई समझौता किया हो। बदले में इन क़ैदियों के साथ भी अच्छा बर्ताव किया जाता था।

मुझे याद है, एक बार एक निर्भीक और दृढ़ संकल्प वाले क़ैदी को, जो अपनी पाशविक प्रवृत्तियों के लिए प्रसिद्ध था, सजा के लिए बुलाया गया। गर्मी के दिन थे, उस वक्त काम की छुट्टी थी। जेल का मेजर ख़ुद यह दृश्य देखने के लिए गारद के कमरे में मौजूद था। मेजर के सामने सारे क़ैदी भय से काँपने लगते थे। उसकी कठोरता पागलपन की सीमा तक पहुँच गई थी। क़ैदियों के शब्दों में "वह लोगों पर टूट पड़ता था।" सबसे ज़्यादा भयानक थी उसकी बनबिलाव जैसी आँखों की अन्तर्भेदी दृष्टि, जिसके सामने कोई बात छिपी नहीं रह सकती थी। वह बिना आँखें उठाये भी सब कुछ देख सकता था। जेल के अहाते में क़दम रखते ही उसे पता चल जाता था कि कहाँ क्या हो रहा है। क़ैदी उसे "आठ आँखों वाला" कहते थे। लेकिन उसके ये

तरीके गलत थे। अपनी क्रूरता और प्रतिहिंसा द्वारा वह विक्षिप्त लोगों को और भी ज़्यादा विक्षिप्त बना देता था। अगर वह गवर्नर के अधीन न होता, जो एक सहृदय और अक्लमन्द आदमी था, तो जेल में भयंकर उत्पात मचता। मुझे हैरानी इस बात की है कि मेजर पर कभी आँच तक नहीं आई, रिटायर होने के बाद, वह अभी भी जिन्दा है और अच्छी हालत में है, हालांकि उस पर उसके कुकर्मों की वजह से एक मुक़दमा चल चुका था।

जब क़ैदी को बुलावा आया तो उसका मुँह पीला पड़ गया। आमतौर पर वह चुपचाप कोड़े खाने के लिए लेट जाता था, और सज़ा भुगतने के बाद फिर ज़िंदादिली से उठ खड़ा होता था और एक दार्शनिक उदासीनता से अपने साथ हुई दुर्घटना पर ग़ौर किया करता था। उसके साथ सख़्ती करते वक्त हमेशा सावधानी बरती जाती थी, लेकिन इस बार न जाने क्यों उसे लगा कि वह बेक़सूर है, उसका चेहरा पीला पड़ गया और उसने संतरी की नजरें बचाकर अपनी आस्तीन में एक तेज़ अंग्रेजी चाकू रख लिया। जेल में चाकू या किसी भी किस्म के पैने औजार, रखने की सख़्त मनाही थी, तलाशी अक्सर और अचानक ली जाती थी। छिपाकर चीज़ें रखना हँसी-खेल न था क्योंकि पकड़े जाने पर सख़्त सज़ा मिलती थी। लेकिन चोर क्या छिपाना चाहता है, यह मालूम करना मुश्किल है, और जेल में चाकुओं और औज़ारों की ज़रूरत रहती ही थी, इसलिए तलाशियों के बावजूद भी ये चीज़ें हमेशा वहाँ मौजूद रहती थीं। अगर ये बरामद भी हो जाती थीं, तो क़ैदी फ़ौरन नई चीज़ें मँगवा लेते थे। सारे क़ैदी दीवार के पास जमा होकर धड़कते हुए दिल से दरारों में से सारे दृश्य को देख रहे थे। सब जानते थे कि इस बार पेत्रोव चुपचाप लेटकर कोड़े खाने का इरादा लेकर नहीं गया था, और ज़रूर मेजर का ख़ात्मा करके रहेगा। लेकिन ऐन मौक़े पर हमारा मेजर गाड़ी में बैठकर चला गया और सज़ा की ज़िम्मेदारी किसी दूसरे अफ़सर को सुपुर्द कर गया। "आज तो ईश्वर ने मेजर की जान बचा

ली।" क़ैदियों का कहना था। पेत्रोव ने भी चुपचाप सजा झेल ली। मेजर के जाते ही उसका गुस्सा ठंडा पड़ गया। हर क़ैदी एक सीमा तक आज्ञाकारी और विनयशील होता है, लेकिन उस सीमा का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए। वैसे तो इस क़िस्म के विद्रोह और अधीरता के प्रदर्शन आश्चर्यजनक मालूम होते हैं। अक्सर एक इन्सान बरसों तक धैर्यपूर्वक क्रूर से क्रूर सजा चुपचाप सहता रहता है, लेकिन किसी दिन सहसा किसी क्षुद्र और नगण्य बात पर अपना संयम खो देता है। एक खास दृष्टि से देखा जाये तो यह पागलपन मालूम होता है और लोग ऐसे व्यक्ति को पागल कहते भी हैं।

मैं यह पहले बता चुका हूँ कि जेल के लम्बे प्रवास में मैंने क़ैदियों में एक बार भी पश्चाताप की अनुभूति के लक्षण नहीं देखे, न ही किसी को अपने अपराध पर निराशापूर्वक सोचते हुए देखा है। अधिकांश क़ैदी मन ही मन अपने आपको बेक़सूर समझते थे। यही हक़ीक़त है। इसमें शक नहीं कि अहंकार, बुरी मिशालें, डींग हांकना और झूठी शर्म इसके लिए काफ़ी हद तक जिम्मेदार हैं। लेकिन कौन कह सकता है कि उसने इन गुमराह दिलों की गहराइयों में झाँककर दुनिया की नजरों से छिपा सत्य देख लिया है? लेकिन आखिरकार इतने बरसों में उन लोगों में आन्तरिक यन्त्रणा की कुछ न कुछ झलक तो मुझे मिल ही सकती थी, लेकिन इसका कोई सबूत वहाँ मौजूद नहीं था, बिल्कुल नहीं, ऐसा लगता है कि पूर्वनिर्धारित परम्परागत दृष्टिकोणों से अपराध की व्याख्या नहीं की जा सकती। अपराध का दर्शन बहुत कठिन है, निश्चय ही जेलखाने और कड़ी सजाएँ अपराधी का सुधार नहीं करतीं, वे सिर्फ़ उसे सजा देती हैं और समाज की सुरक्षा को उनके अगले हमलों से बचाती हैं। जेलख़ाने और कड़ी सज़ाएँ अपराधी के मन में घृणा, वर्जित सुखों की भूख, और भयंकर पतन पैदा कर देती हैं। मेरा यह पक्का विश्वास है कि एकान्त कोठरी में बन्द करने की सज़ा के, जिसकी इतनी तारीफ़ की जाती है, सिर्फ़ झूठे बाहरी भ्रम में डालने वाले परिणाम नज़र

आते हैं। यह इन्सान की जीवन-शक्ति को बहाकर उसकी आत्मा को क्षीण कर देती है और फिर एक सूखी हुई, विवेकहीन लाश को, जिसकी सारी नैतिकता नष्ट हो चुकी है, सुधार और पश्चाताप की प्रतिमा बनाकर दुनिया को दिखाया जाता है। अपराधी, जो समाज से विद्रोह करता है, इस तमाशे से घृणा करता है, और अपने को हमेशा सही और समाज को हमेशा ग़लत समझता है। इसके अलावा वह समाज द्वारा दी गई सज़ा तो भुगत ही चुका होता है, इसलिए वह अपने को शुद्ध समझने के साथ यह भी समझता है कि समाज के साथ उसका हिसाब बेबाक़ हो चुका है। कई दृष्टिकोणों से तो हम अपराधी को ही सही ठहरायेंगे। लेकिन इन तमाम दृष्टिकोणों के बावजूद सबको यह मानना पड़ेगा कि कई अपराध ऐसे हैं, जिन्हें सृष्टि के आरम्भ से ही, चाहे कोई भी कानूनी प्रणाली रही हो, अपराध समझा जाता रहा है, और जब तक इन्सान, इन्सान रहेगा, ऐसा ही समझा जाता रहेगा। सिर्फ़ जेल में ही मैंने लोगों को बाल-सुलभ मुक्त हँसी के साथ अमानुषिक हत्याओं, और ख़ौफ़नाक कारनामों के क़िस्से सुनाते देखा है।

मुझे वह क़ैदी कभी नहीं भूल सकेगा, जिसने अपने पिता की हत्या की थी। वह ऊँचे घराने का था, नौकरी करता था, और माँ-बाप का लाड़ला था। उसने अपने सिर पर बहुत-सा कर्ज़ चढ़ा लिया था। उसके साठ साल के बूढ़े बाप ने उसकी उच्छृंखलता पर प्रतिबंध लगाने की कोशिश की। बाप के पास एक मकान, थोड़ी-सी जायदाद और शायद धन भी था। बेटे ने जायदाद पाने के लालच से बाप की हत्या कर दी। एक महीने बाद इस बात का पता चला। बेटे ने ख़ुद ही पुलिस को जाकर ख़बर दी कि उसका बाप न जाने कहाँ ग़ायब हो गया है। महीने भर तक वह मटरगश्ती करता रहा। आख़िर उसकी ग़ैर-हाज़िरी में पुलिस ने लाश तलाश कर ली। आँगन में लकड़ी के तख़्तों से ढँकी गंदे पानी की एक नाली थी, इसी में लाश पड़ी थी। लाश के बदन पर साफ़ कपड़े थे। हत्यारे ने सफ़ेद बालों वाले कटे हुए

सिर को धड़ से जोड़कर सिर के नीचे एक तकिया लगा दिया था। उसने अपना जुर्म नहीं क़बूल किया, उसकी नौकरी छूट गई और बीस बरस की सख्त क़ैद का हुक्म मिला। जेल में वह हर वक्त खुश और ज़िन्दा-दिल नजर आता था। वह पिलपिले दिमाग़ का, हद से ज़्यादा ग़ैर-ज़िम्मेदार आदमी था, लेकिन बुद्धू नहीं था। मैंने उसे कभी निर्दयता दिखाते नहीं देखा। सारे क़ैदी उससे नफ़रत करते थे, उसके जुर्म की वजह से नहीं, क्योंकि उस प्रसंग पर तो कभी चर्चा तक नहीं होती थी, बल्कि इसलिए कि उसे बातचीत करने तक की तमीज़ नहीं थी। बातचीत के दौरान वह कभी-कभी अपने बाप का जिक्र कर बैठता था। एक बार उसने मुझे बताया कि अच्छी सेहत उसे अपने खानदान से विरासत में मिली है। साथ ही उसने यह भी कहा, "मिसाल के लिए मेरे पिताजी को आखिरी दम तक किसी बीमारी की शिकायत नहीं हुई।" ऐसी राक्षसी, संवेदनशून्यता असंभव मालूम होती है। सचमुच यह आश्चर्य-जनक है। यह साधारण अपराध की मिसाल नहीं, बल्कि किसी जन्म-जात शारीरिक और मानसिक अमानुषिकपन की मिसाल है, जिसे विज्ञान अभी तक नहीं समझ पाया। पहले तो मुझे इस कहानी पर विश्वास नहीं हुआ, लेकिन जब उसके शहर के लोगों ने, जिन्हें सारा इतिहास मालूम था, मुझे सविस्तार सारी बातें बताई तो मुझे सच्चाई पर विश्वास करना ही पड़ा।

क़ैदियों ने एक रात उसे नींद में बड़बड़ाते सुना था, "पकड़ो! पकड़ो! उसका सिर उड़ा दो! सिर उड़ा दो!"

प्राय: सारे कैदी नींद में बड़बड़ाते थे। ऐसे वक्त उनके मुँह से चोर-उचक्कों की पेशेवर ज़बान, गालियाँ, छुरियों और कुल्हाड़ियों की बातें ही निकलती थीं। वे कहा करते थे, "हम मात खाए हुए लोग हैं, हमारी हिम्मत टूट चुकी है इसीलिए हम नींद में शोर मचाते हैं।"

जेल की मशक्कत काम के रूप में काम नहीं थी, बल्कि एक ड्यूटी थी। कैदी निश्चित घंटों में अपना काम* करने के बाद जेल में लौट

आते थे। काम को घृणा की नजरों से देखा जाता था। अगर क़ैदी अपनी सारी मानसिक एकाग्रता और दिलचस्पी अपने निजी कामों में न लगाते, तो जेल में रहना मुश्किल हो जाता। और फिर ये लोग जिन्हें जबरदस्ती समाज से और साधारण जिन्दगी से वंचित करके यहाँ लाया गया था, जिनमें जीने की तीव्र आकांक्षा थी, भला कैसे खुशी से जेल की ज़िन्दगी को साधारण ज़िन्दगी समझ सकते थे? यहाँ के निठल्लेपन से तो अच्छे-खासे आदमी में भी अपराध की नई क्षमताएँ पैदा हो सकती थीं। इन्सान मेहनत और जायदाद के बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता। उसका पतन हो जाता है और वह पशु बन जाता है। इस लिए काम करने की अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को संतुष्ट करने के लिए और अपने व्यक्तित्व की सुरक्षा के लिए हर क़ैदी किसी-न-किसी दस्तकारी या किसी और शौक में दिलचस्पी रखता था। गर्मियों में दिन इतने लंबे होते थे कि सारा वक्त जेल की मशक्कत में ही कट जाता था। रातें छोटी होती थीं, क़ैदियों की नींद भी पूरी नहीं हो पाती थी, लेकिन जाड़ों में अंधेरा होते ही क़ैदियों को ताले में बन्द कर दिया जाता था। लम्बी नीरस शामें कैसे कटतीं? मनाही के बावजूद भी रात होते ही हर वार्ड एक बड़ी वर्कशाप में बदल जाता। वैसे तो सरकार की तरफ़ से काम करने की मनाही नहीं थी, लेकिन क़ैदी अपने पास किसी क़िस्म के भी औज़ार नहीं रख सकते थे और औज़ारों के बग़ैर दस्तकारी नहीं हो सकती थी। क़ैदी छिप-छिपकर काम करते थे, मेरा ख़याल है कि जेल के अधिकारी अवसर जानबूझकर इन बातों को अनदेखा कर जाते थे। कई क़ैदी, जिनको कोई भी हुनर नहीं आता था, जेल में आकर बहुत से धंधे सीख जाते थे और कुशल कारीगर बनकर जेल से बाहर निकलते थे। वहाँ जूता मरम्मत करने वाले, मोची, दर्जी, बढ़ई, ताले ठीक करने वाले, लकड़ी पर नक्क़ाशी करने वाले और मुलम्मासाज़ थे। इज़ाये बमस्टाईन नाम का एक यहूदी सुनार था, जो क़ैदियों की चीज़ें गिरवीं रखकर उन्हें कर्ज़ देता था। सब क़ैदी काम

करके कुछ-न-कुछ कमा लेते थे। शहर से भी उन्हें आर्डर मिल जाते थे। पैसा आजादी का प्रतीक है, इसलिए आज़ादी से वंचित व्यक्ति के लिए पैसा दसगुना क़ीमती हो जाता है। बेशक वह उसे ख़र्च नहीं कर सकता, लेकिन जेब में पैसे की खनखन सुनकर उसे सान्त्वना मिलती है। लेकिन पैसा हमेशा और हर जगह ख़र्चा जा सकता है, ख़ासतौर पर लुकाछिपी में बड़ा मजा आता है। पैसों से जेल में वोद्का तक मंगवाई जा सकती थी। चुरुट पीने की सख्त मनाही थी, लेकिन सब कैदी चुरुट पीते थे। पैसों और तम्बाकू से वे लोग स्कर्वी और अन्य रोगों से बचे रहते थे। दस्तकारियाँ उन्हें नये जुर्म करने से बचाती थीं। कैदी अगर निठल्ले रहते तो जैसे शीशे के मर्तबान में बन्द मकड़ों की तरह एक-दूसरे पर टूट पड़ते। लेकिन वहाँ पैसे रखने और काम करने, दोनों बातों की मनाही थी। समय-समय पर बिना ख़बर किये बैरकों की तलाशी ली जाती थी और सब वर्जित चीजें जेल के अधिकारी उठाकर ले जाते थे। पैसे छिपाने में क़ैदी बड़ी सावधानी बरतते थे, लेकिन कई बार जेल अधिकारियों को सुराग़ मिल ही जाता था। इसीलिए क़ैदी पैसे बचाने की बजाय फ़ौरन शराब पर ख़र्च कर डालते थे—वोद्का भी इसी तरह भीतर पहुँचाई जाती थी। पकड़े जाने पर क़ैदियों से बरामद हुई चीजें ज़ब्त कर ली जाती थीं और उन्हें सख्त सजा मिलती थी। लेकिन हर तलाशी के बाद क़ैदी फ़ौरन बाहर से नई चीजें मँगवा लेते थे और सारा कारोबार पूर्ववत् चलता रहता था। जेल अधिकारियों को यह मालूम था और क़ैदी भी सजा मिलने पर चूं-चपड़ नहीं करते थे, लेकिन यह जिन्दगी उस शान्त ज्वालामुखी विसूवियस[1] की तरह थी जो कभी भी मौक़ा पाने पर आग उगल सकता था।

जिन्हें कोई दस्तकारी नहीं आती थी, वे और धंधे करते थे। कई धंधे तो बड़े विचित्र और मौलिक थे, मिसाल के लिए कुछ क़ैदी तो ऐसी

---

१. प्रसिद्ध ज्वालामुखी पर्वत

चीज़ें खरीदते और बेचते थे, जिनका जेल से बाहर किसी को ध्यान तक नहीं आ सकता था। लेकिन ग़रीब क़ैदियों में व्यावसायिक बुद्धि बहुत मात्रा में थी। फटे-से-फटे चिथड़े की भी क़ीमत आँकी जाती थी। वे लोग इतने ग़रीब थे कि उनके लिए पैसे की क़ीमत ही कुछ और थी। बड़े और पेचीदा काम के लिए फ़ार्दिंग[1] तक वसूल किये जाते थे, कुछ लोग सूद पर पैसा भी उधार देते थे। उनका काम खूब चला हुआ था। फ़िज़ूलखर्च और अभागे क़ैदी अपनी चीज़ें सूदख़ोर के पास गिरवीं रख-कर कुछ तांबे के सिक्के उधार लेते थे, जिस पर उन्हें बहुत ज़्यादा सूद देना पड़ता था। अगर गिरवीं रखी चीजें निश्चित समय पर नहीं छुड़ाई जाती थीं, तो उन्हें फ़ौरन बिना किसी शर्म या लिहाज़ के बेच दिया जाता था। सूदख़ोरी इतनी बढ़ गई थी कि जेल की चीज़ें भी गिरवीं रखी जाती थीं, मिसाल के लिए जेल के कपड़े, जूते वगैरह जिनकी हर क़ैदी को हर वक़्त ज़रूरत रहती थी, लेकिन कई बार यह सौदे अप्रत्याशित शक्ल अख़्तियार कर लेते थे; गिरवीं रखने वाला आदमी पैसे लेकर सीधा बड़े सार्जेंट के पास जाकर शिकायत कर देता था और गिरवीं की चीज फ़ौरन सूदख़ोर से छीन ली जाती थी और इस सारे कांड की ऊपर के अधिकारियों तक भनक नहीं पहुँचती थी। हैरानी इस बात की है कि इतना सब होने पर भी प्रायः लड़ाई-झगड़ा नहीं मचता था। सूदख़ोर क्षोभभरी चुप्पी के साथ गिरवीं की चीज़ें लौटा देता था, लगता था जैसे उसे इस कांड पर जरा भी आश्चर्य न हुआ हो। शायद उसे विश्वास था कि ऐसी स्थिति में वह भी ऐसा ही करता। बाद में वह अगर गालियाँ भी बकता था तो उनमें दुर्भावना की बजाय आत्म-तुष्टि की भावना कहीं अधिक रहती थी।

एक-दूसरे की चीज़ें चुराना तो आम बात थी और यह आदत बहुत भयंकर सीमा तक पहुँच गई थी। प्रायः हर कैदी के पास एक बक्स था,

---

१. एक छोटी क़ीमत का सिक्का

जिसमें वह अपनी जेल की चीज़ों को ताले में रखता था, लेकिन सिद्ध-हस्त चोरों के रहते हुए तालों की कोई सुरक्षा नहीं थी। एक क़ैदी ने, जिसका मुझसे हार्दिक लगाव था (इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं) मेरी बाईबल की प्रति चुरा ली थी। बाईबल के सिवा और कोई किताब जेल के भीतर नहीं आ सकती थी। उसी दिन उस क़ैदी ने मेरे सामने अपनी चोरी क़बूल भी कर ली, पश्चाताप के कारण नहीं, बल्कि मुझे किताब ढूँढ़ने में इतना समय लगा कि उसे मुझ पर तरस आ गया था।

कई क़ैदी वोद्का के व्यापार में बहुत अमीर हो गये थे। इस व्यापार की मैं बाद में विस्तारपूर्वक चर्चा करूँगा। वह व्यापार भी ख़ूब था। कई क़ैदी महसूल वाले माल को चोरी से लाने के अपराध की सज़ा भुगत रहे थे, इसलिए संतरियों की कड़ी निगरानी के बावजूद भी अगर वोद्का जेल में पहुँच जाती थी, तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात थी? स्मगलिंग भी एक विलक्षण अपराध है। भला किसी को इस बात का विश्वास होगा कि स्मगलर्ज़ लालच के कारण स्मगलिंग नहीं करते, बल्कि सहज प्रवृत्ति से प्रेरित होकर, समस्त हार्दिकता से ऐसा करते हैं। देखा जाए तो स्मगलर कलाकार भी होता है, वह भयंकर जोखिमों का सामना करता है और सब कुछ दाँव पर लगा देता है, अपनी कला में दक्ष होता है, बचने के नये तरीके निकालता है। वह भी जुए की तरह एक नशा है। मैं एक ऐसे क़ैदी को जानता था जो देखने में भीमकाय था, लेकिन वैसे इतना शान्त और शरीफ़ कि उसे जेल में देखकर आश्चर्य होता था। उसकी आदतें इतनी अच्छी थीं कि जेल में रहते हुए उसने कभी किसी से झगड़ा नहीं किया। लेकिन वह पश्चिमी सीमा प्रदेश का रहने वाला था और स्मगलिंग के अपराध में उसे क़ैद हुई थी। वह जेल में चोरी से वोद्का लाने के लोभ को संवरण नहीं कर पाया। उसे कितनी मार पड़ती थी, और वह कोड़े से कितना काँपता था! फिर वोद्का लाने के लिए उसे नाममात्र की ही तो आमदनी होती थी, मुनाफ़ा तो सिर्फ़ व्यापारी की जेब में जाता

था। वह कला के लिए कला को प्रेम करता था। औरतों की तरह उसकी आँखों से आँसू बहने लगते थे। सज़ा पाने के बाद वह न जाने कितनी बार तौबा कर चुका था। कई बार तो वह मर्दानगी से पूरे एक महीने तक अपने वायदे पर डटा रहता, लेकिन अन्त में उसका संयम टूट जाता······

ऐसे लोगों के रहते हुए जेल में वोद्का की कमी नहीं रहती थी।

क़ैदियों की आमदनी का एक ज़रिया और भी था। इससे मुनाफ़ा तो ज़्यादा नहीं था लेकिन बँधी हुई आमदनी किसको बुरी लगती है! रूस में ऊँचे तबक़े के लोगों को नहीं मालूम कि हमारे व्यापारियों, दुकानदारों और किसानों को 'अभागे लोगों' की कितनी चिन्ता रहती है। लोग दान में पैसे, रोटियाँ और टिकियाँ देते थे। हवालात में बन्द क़ैदियों के लिए, जिनके साथ जेल के क़ैदियों से भी ज़्यादा बुरा सलूक किया जाता था, दयालु व्यक्तियों के ये तोहफ़े सचमुच वरदान थ। क़ैदी दान में मिली चीज़ों को धार्मिक ईमानदारी से आपस में बाँट लेते हैं, अगर सबके लिए रोटियाँ काफ़ी नहीं होतीं तो उन्हें बराबर टुकड़ों में काट लिया जाता है। अक्सर एक-एक रोटी के आधे दर्जन टुकड़े तक कर दिये जाते हैं और हमेशा हर क़ैदी को उसका हिस्सा मिलता है।

मुझे याद है, जब पहली बार मुझे दान में पैसे मिले थे, मैं जेल में नया ही आया था। और सन्तरी की निगरानी में सुबह के काम से लौट रहा था। इसी वक्त एक औरत अपनी दस बरस की बच्ची को लेकर मुझसे मिलने आई। बच्ची परी-सी ख़ूबसूरत थी। एक बार पहले भी मैंने उन्हें देखा था। वह औरत एक सैनिक की विधवा थी। उसका पति मुक़दमे से पहले ही जेल के हस्पताल में मर गया था। उन दिनों मैं भी वहाँ बीमार पड़ा था। माँ-बेटी उससे अन्तिम विदा लेने आईं थीं और फूट-फूट कर रोई थीं। इस बार मुझे देखते ही लड़की शरमा गई और उसने अपनी माँ के कानों में फुसफुसा कर कुछ कहा। माँ ने खड़े होकर अपने बटुए में से एक फ़ार्दिंग निकाला जिसे लेकर बच्ची भागती

हुई मेरे पास आई, "ये लो एक फ़ार्दिग, ईसा के नाम पर!" उसने जबरदस्ती सिक्का मेरे हाथ में पकड़ा दिया। मैंने वह सिक्का ले लिया और लड़की संतुष्ट भाव से अपनी माँ के पास चली गई। वह फार्दिग मैंने बहुत दिनों तक संभाल कर रखा था।

प्रारंभिक अनुभव

जेल की ज़िन्दगी के प्रारंभिक दिन अब भी स्पष्ट रूप से मेरी आँखों के सामने आते हैं। क़ैद के बाक़ी बरसों की स्मृति अब धुंधली हो गई है, कुछ बरस तो पिघलकर विस्मृति के गर्भ में खो गये हैं—सिर्फ़ उनकी आतंकभरी, नीरस और दम घोंटने वाली अनुभूति बाक़ी है।

लेकिन साइबेरिया में गुज़ारे प्रारंभिक दिनों की घटनायें मेरे दिमाग़ में बिल्कुल ताज़ी हैं, लगता है, जैसे ये सब कल ही की बातें हैं। ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

मुझे अच्छी तरह याद है कि जेल की ज़िन्दगी की जिस बात ने सबसे पहले मेरा ध्यान आकर्षित किया था, वह थी वहाँ की साधारणता। वहाँ कोई विलक्षण या अप्रत्याशित बात नहीं होती थी। लगता था जैसे साइबेरिया के रास्ते में ही मुझे भावी जीवन की झलक मिल चुकी थी। लेकिन साइबेरिया पहुँचने के बाद ही मुझे हर क़दम पर अमानुषिक यथार्थों का सामना करना पड़ा। बहुत दिनों बाद, जब मैं जेल के जीवन का आदी हो गया था, मुझे उस जीवन की विलक्षणता और असाधारणता का आभास हुआ और मेरा आश्चर्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। सच पूछिये तो बरसों लंबी क़ैद काटने के बाद भी मेरे उस आश्चर्य में कमी नहीं हुई।

जेल में घुसते ही मेरा मन वितृष्णा से भर गया, लेकिन आश्चर्य है कि जेल की ज़िन्दगी मेरी कल्पना से कहीं अधिक आसान थी। क़ैदियों ने बेड़ियाँ ज़रूर पहन रखी थीं, लेकिन वे जेलभर में मटरगश्ती करते, गाते, झूमते, सिगरेट और वोद्का पीते, गालियाँ बकते फिरते थे (वोद्का बहुत थोड़े क़ैदी ही पीते थे)। रात के वक्त कुछ लोग ताश भी खेलते थे। मुझे जेल की मशक्कत भी इतनी 'कड़ी' नहीं मालूम हुई,

लेकिन बहुत दिनों बाद जाकर मुझे आभास हुआ कि जेल की मशक्कत क़ैदियों को इसलिए अप्रिय नहीं लगती, क्योंकि उन्हें लगातार, कठिन से कठिन काम करना पड़ता है, बल्कि इसलिए क्योंकि वे काम करने के लिए बाध्य हैं, मजबूर हैं। आज़ादी में रहकर किसान गर्मी की रातों में भी जाग-जाग कर काम करता है, लेकिन वह उसका अपना काम है, उसके सामने एक तर्कसंगत लक्ष्य है। लेकिन क़ैदी का काम मजबूरी का काम है, उस काम का क़ैदी के लिए कोई महत्त्व नहीं। सहसा मेरे मन में यह विचार आया है कि ख़ूँखार से ख़ूँखार हत्यारे को सज़ा देने और उसे पालतू बनाने का सबसे सरल तरीका यह है कि उसे कोई न कोई निरर्थक और ऊलजलूल काम दिया जाये। हालांकि आजकल जेलों में जो मशक्कत कराई जाती है, वह थका देने वाली और नीरस होती है, लेकिन आख़िर इसमें कुछ संगति तो है ही। क़ैदी ईंटें बनाता है, मिट्टी खोदता है, इमारतें बनाता है, उन पर रोग़न करता है—कई बार तो क़ैदी को अपने काम से लगाव भी महसूस होने लगता है, और वह पहले से ज़्यादा तेज़, बेहतर और दक्षतापूर्वक काम करने की कोशिश करता है। लेकिन अगर उसे एक बर्तन से दूसरे बर्तन में पानी डालने, रेत पीसने, मिट्टी के ढेर को उठाने और फिर वापिस उसी जगह पर रखने का काम दिया जाये तो कुछ ही दिनों में वह पागल हो जायेगा या हज़ारों नए जुर्म करेगा, और ऐसे अपमान और यंत्रणा की ज़िन्दगी की बजाय मर जाना कहीं बेहतर समझेगा। सचमुच ऐसी सज़ा पाकर क़ैदी को लगेगा कि उसे जानबूझ कर सताया जा रहा है और उससे बदला लिया जा रहा है। निश्चय ही ऐसी सज़ा एक निरर्थक, असंगतिपूर्ण यंत्रणा के सिवा कुछ नहीं। लेकिन मजबूरी के हर काम में अपमान और यंत्रणा रहती ही है, इसलिए जेल की मशक्कत आज़ादी की मेहनत से कहीं ज़्यादा कष्टदायी होती है—सिर्फ़ इसलिए कि उसमें मजबूरी है।

चूंकि मैं जाड़ों में वहाँ आया था, इसलिए गर्मियों की मशक्कत की कल्पना भी नहीं कर सकता था, जो पांचगुना सख़्त थी। जाड़ों में

मशक्कत कम करवाई जाती थी। क़ैदी इर्तिश नदी के किनारे जाकर पुरानी सरकारी नावों को तोड़ते थे, वर्कशाप में काम करते थे, सरकारी इमारतों पर जमी बर्फ़ की तहें हटाते थे। सफ़ेद खड़िया मिट्टी कूटते थे और भट्टों में पकाते थे। जाड़ों में दिन छोटे होते थे, काम जल्दी खत्म हो जाता था, इसलिए हम लोग भी जल्द ही वापिस लौट आते थे। अगर प्रत्येक क़ैदी का कोई-न-कोई शग़ल न होता तो सब निठल्ले बैठे रहते। लेकिन सिर्फ़ एक-तिहाई क़ैदियों को ही दस्तकारियों में दिलचस्पी थी, बाक़ी लोग खाली बैठे रहते, मटरगश्ती करते, एक-दूसरे को गालियाँ देते, साजिशें करते और पैसा होने पर शराब पीते और रात के वक्त जुए में अपनी कमीज़ें तक गँवा देते थे। यह सब इसलिए होता था क्योंकि निठल्ले लोगों के पास समय गुज़ारने का और कोई साधन नहीं था। बाद में जाकर मुझे इस बात का अहसास भी हुआ कि बंधन और मशक्कत के सिवा जेल की ज़िन्दग़ी में यंत्रणा का सबसे बड़ा कारण एक और है—क़ैदियों को मजबूरी से इकट्ठे रहना पड़ता है। और जगहों पर भी लोग सम्मिलित ज़िन्दग़ी बिताते हैं, लेकिन जेल में कई इस क़िस्म के व्यक्ति भी होते हैं जिनके साथ कोई भी रहना पसंद नहीं करेगा। मुझे विश्वास है कि हर क़ैदी अचेतन रूप में इस यंत्रणा का अनुभव करता था।

वैसे मुझे जेल की ख़ूराक मात्रा में पर्याप्त मालूम हुई। क़ैदियों का कहना था कि यूरोपीय रूस में डिसिप्लिनेरी बटालियनों का खाना जेल से भी रद्दी होता है। मैं दावे से इस विषय में कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि मुझे इन बटालियनों में रहने का मौक़ा नहीं मिला। कई क़ैदी अपना खाना खुद मँगवाते थे। आधी पैनी का आध सेर गोश्त मिल जाता था, गर्मियों में इसकी क़ीमत तीन फ़ार्दिंग हो जाती थी, लेकिन सिर्फ़ वही क़ैदी अपना खाना मँगवा सकते थे, जिनके पास हमेशा पैसे रहते थे; बाक़ी सब जेल की ख़ूराक खाते थे। जेल की ख़ूराक से उनका मतलब दरअसल पावरोटी से था, और वे इस बात पर शुक्र मनाते थे कि उन्हें तौलकर राशन नहीं

मिलता था। नाप-तौल से उन्हें सख्त चिढ़ थी। अगर तौलकर हरेक क़ैदी को पावरोटी दी जाती तो एक तिहाई लोग भूखे रह जाते, लेकिन सांझी रसद मिलने के कारण सबको भरपेट मिल जाता था। जेल की पावरोटी बढ़िया थी और सारे शहर में मशहूर थी, क्योंकि जेल का तंदूर अच्छा था। लेकिन करमकल्ले का शोरबा रद्दी होता था। एक बड़ी-सी देग में सबके लिए एक साथ शोरबा बनाया जाता था और उसे गाढ़ा करने के लिए आटा मिलाया जाता था। आमतौर पर शोरबे में पानी बहुत होता था। शोरबे में तैरते हुए टिड्डों की संख्या देखकर मुझे बड़ी ग्लानि हुई, लेकिन और किसी ने इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया।

पहले तीन दिन मैं काम पर नहीं गया, वहाँ के क़ायदे के मुताबिक़ हर क़ैदी को सफ़र के बाद आराम करने दिया जाता था। लेकिन आने के बाद अगले ही दिन मुझे अपनी बेड़ियाँ बदलवाने के लिये जाना पड़ा, क्योंकि उसमें छल्ले थे, जिन्हें क़ैदियों ने 'घुंघरू' का नाम दिया था। ये बेड़ियाँ मैंने अपने कपड़ों के ऊपर पहन रखी थीं, जबकि जेल की असली बेड़ियों में छल्लों की बजाय, छल्लों से जुड़ी उंगली जितनी मोटी चार लोहे की सलाखें रहती थीं, जिन्हें क़ैदी कपड़ों के नीचे पहनते थे। बीच के छल्ले में एक डोरी बांधकर डोरी को कमीज़ के भीतर बंधी पेटी से बांध दिया जाता था।

अपने बंदी जीवन की पहली सुबह मुझे अभी तक याद है। फाटक के पास गारद के कमरे में सुबह का नगाड़ा बजा और दस मिनट बाद ड्यूटी पर तैनात सार्जेन्ट ने बैरकों के ताले खोलने शुरू कर दिये। ढिबरी की मद्धिम रौशनी में जाड़े से ठिठुरते हुए क़ैदी, चबूतरों पर से उठने लगे। बहुतों की आँखों में अब भी नींद छाई थी और वे एक क्षोभ-भरी चुप्पी धारण किये थे। कुछ अपने शरीर पर क्रॉस का चिह्न बना रहे थे, और कुछ ने लड़ाई-झगड़ा भी शुरू कर दिया था। बंद बैरक में बुरी तरह दम घुटता था। दरवाज़ा खुलते ही जाड़ों की ताज़ी

हवा भाप के बादलों की तरह बैरक में छा गई। पानी की बाल्टियों के गिर्द क़ैदियों की भीड़ जमा हो गई। बारी-बारी से सबने हाथ-मुँह धोए। रात को 'पराशनिक' (कहार) पानी भर लाता था। हर बैरक के क़ैदी अपना 'पराशनिक' चुनते थे, जो काम करने के लिए बाहर नहीं जाता था, जिसका काम बैरक की सफ़ाई करना, चबूतरों को और फ़र्श को धोना, पीने और मुँह-हाथ धोने का पानी लाना होता था। सब क़ैदी लोटे के लिए झगड़ते थे क्योंकि हर बैरक में एक ही लोटा रहता था।

"धक्कामुक्की क्यों कर रहा है बे, मछली का सिर!" एक लंबे, पतले क़ैदी ने, जिसके मुंडे हुए सिर में गुठलियाँ-सी पड़ी थीं, कर्कश आवाज़ में एक गोलमटोल, मसख़रे से आदमी से कहा, "रुक जाओ!"

"चिल्ला क्यों रहे हो? जानते हो लोग जगह पाने के लिए क़ीमत देते हैं! तुम ही क्यों नहीं ज़रा दूर सरक जाते? बुत बने खड़े हो! भाइयो, इस आदमी में ज़रा भी शर्म-हया नहीं है।"

बहुत से क़ैदी हँस पड़े। मसख़रा भी यही चाहता था। वह बैरक में विदूषक का अभिनय किया करता था। लंबा क़ैदी उसे नफ़रत-भरी निगाह से देखकर बुड़बुड़ाया, "जेल की ख़ूराक पर पल कर सुअरिया की तरह मुटा गया है। अच्छा है, क्रिसमस तक सुअरिया एक दर्जन बच्चे पैदा कर देगी।"

मसख़रे को भी ताव आ गया, "अपनी कहो, तुम किस क़िस्म की चिड़िया हो?" उसका चेहरा लाल हो गया था।

"ठीक है, चिड़िया हूँ"

"किस क़िस्म की?"

"उस क़िस्म की।"

"वह क़िस्म क्या है?"

"बस कह दिया—वह क़िस्म।"

"लेकिन कैसी क़िस्म?"

दोनों एक-दूसरे की तरफ़ घूरने लगे। मोटा क़ैदी मुट्ठियाँ ताने जवाब का इन्तज़ार कर रहा था। मेरा ख़्याल था कि सचमुच लड़ाई होकर रहेगी, ऐसी बातें मेरे लिए नई थीं। इसलिए मैं उत्सुकतापूर्वक सारा कांड देख रहा था। बाद में मैं जान गया कि ऐसे नाटक, जानबूझ कर दर्शकों के मनोरंजन के लिए किये जाते हैं। इनमें लड़ाई-झगड़ा नहीं होता। जेल के शिष्टाचार का यह प्रतिनिधि उदाहरण था।

लंबा क़ैदी चुपचाप शान से खड़ा रहा, उसे लगा कि सारे लोग यह देखने के लिए लालायित हैं कि वह जवाब देकर अपनी साख गिराता है या नहीं। वह दिखा देना चाहता था कि वह किस क़िस्म की चिड़िया है। उसने हिक़ारत-भरी नज़रों से अपने प्रतिद्वन्द्वी की ओर देखा, जैसे वह कोई कीड़ा-मकौड़ा हो और धीमी, लेकिन साफ़ आवाज़ में जवाब दिया :

"कुकड़ूँ-कूँ"

उसने बता दिया कि वह किस क़िस्म की चिड़िया है। इस पर सब लोग ज़ोर से हँस पड़े।

"तुम मुर्ग़ा नहीं, पूरे बदमाश हो!" मोटे क़ैदी ने गरजकर कहा। उसे लगा जैसे उसे हर बात पर मुँहतोड़ जवाब मिला है, इस-लिए उसके क्रोध का पारा चढ़ गया।

जैसे ही झगड़े ने गम्भीर रूप धारण किया, लोगों ने उन्हें डाँटा, "किसलिए दोनों जने चीख़-चिल्ला रहे हो?"

"गला फाड़ने की बजाय जाकर मारपीट क्यों नहीं करते!" एक कोने से आवाज़ आई।

"झगड़ चुके ये लोग! हम सब लोग शूरवीर हैं, ए. के मुक़ाबले में सात हों तब भी नहीं डरते!"

"दोनों कैसे शानदार आदमी हैं? एक तो आध सेर रोटी चुराकर आया है, और दूसरा ऐसा चोट्टा और मरभुक्कखड़ है कि एक देहाती औरत की तश्तरी चाट गया, इसीलिए यहाँ की हवा खा रहा है।"

"बस, बस, बकवास बन्द करो !" बूढ़े सिपाही ने कहा, जो बैरक में अनुशासन रखता था और कोने में जिसके लिए सोने का ख़ास इन्तज़ाम किया गया था।

"ऐ छोकरो, पानी लाओ ! बूढ़े पेत्रोविच जाग गये हैं। गुड मौर्निंग प्यारे बुज़ुर्ग भाई पेत्रोविच !"

"भाई !……खूब कहा ! आज तक मैंने तुम्हारे साथ बैठकर एक फूटे रूबल तक की शराब नहीं पी, और मैं तुम्हारा भाई कैसे बन गया ?" बूढ़ा सिपाही ओवरकोट पहनते हुए बुड़बुड़ाया।

सब मुआयने के लिए तैयार हो रहे थे। दिन चढ़ रहा था। बावर्चीख़ाने में बहुत भीड़ जमा हो गई थी। पोस्तीनें और अधरंगी टोपियाँ पहने क़ैदी पावरोटियाँ लेने आये थे। हर बावर्चीख़ाने के लिए क़ैदी दो रसोइये चुनते थे। बावर्ची रोटी काटकर बाँट रहे थे। रोटी और गोश्त काटने के लिए छुरियाँ भी उन्हीं के पास रहती थीं।

सब मेजों के इर्द-गिर्द पोस्तीनें, टोपियाँ पहने, कमर में पेटी बाँधे क़ैदी काम पर जाने के लिए तैयार थे। कुछ के सामने लकड़ी के प्यालों में क्वास रखी थी। वे प्याले में रोटी के टुकड़े डालकर क्वास पी रहे थे। बेहद शोर मच रहा था, लेकिन कोनों में कुछ लोग शान्तिपूर्वक अक्लमन्दी से भी बातें कर रहे थे।"

"गुड मौर्निंग एन्तोनिच, नाश्ता मुबारक हो," एक जवान क़ैदी ने एक झुर्रियों वाले, दन्तहीन बुज़ुर्ग के पास बैठते हुए कहा।

"गुड मौर्निंग, अगर तुमने मुझसे मज़ाक नहीं किया तो," बूढ़े ने बिना नज़र ऊपर उठाये, अपने दन्तहीन मसूड़ों से रोटी चबाते हुए जवाब दिया।

"मेरा ख्याल था कि तुम सचमुच मर गये हो, एन्तोनिच।"

"नहीं, शायद तुम्हीं पहले मरोगे, मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आऊँगा।"

मैं भी इन लोगों की बग़ल में आकर बैठ गया। मेरी दाईं तरफ़ दो क़ैदी आपस में शालीनता बरतने की कोशिश कर रहे थे।

एक ने कहा, "वे मेरी कोई चीज़ नहीं चुरा सकते, कहीं मैं ही उनकी चोरी न कर बैठूँ।"

"मैं ख़ुद कंटीली झाड़ी हूँ।"

"सच ! तुम भी सब लोगों की तरह जेल की चिड़िया हो। हम लोगों के लिए और कौन-सा उपयुक्त नाम हो सकता है······वह ऐसी है कि इन्सान के कपड़े-लत्ते भी उतरवा लेगी और मुँह से धन्यवाद का एक शब्द भी नहीं बोलेगी। मेरा पैसा इसी तरह बर्बाद गया भाई, उस दिन वह ख़ुद ही आई थी। मैं भला उसके साथ कहाँ जाता ? मैंने उसे फ़ेदका जल्लाद के यहाँ जाने के लिए कहा, शहर के आख़ीर में उसका अपना मकान है, जो उसने खाज के मारे यहूदी सौलोमन से ख़रीदा था, बाद में जिसने आत्महत्या कर ली थी।"

"मुझे मालूम है। तीन बरस पहले वह यहाँ वोद्का बेचा करता था, उसका नाम लोगों ने 'ग्रिश्का काला कलवरिया' रख छोड़ा था। मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ।"

"नहीं, तुम नहीं जानते, काला कलवरिया तो दूसरा आदमी था।"

"दूसरा आदमी, तुम भी ख़ूब जानते हो ! कहो तो मैं तुम्हारे सामने ढेर से गवाह लाकर खड़े कर दूँ।"

"तुम गवाह लाओगे ! क्यों जी, तुम कहाँ से आये हो और मैं कौन हूँ ?"

"तुम कौन हो ? वाह मैं तुम्हारी खूब पिटाई किया करता था, हालाँकि इस बात की डींग मैं नहीं हाँकता, और तुम मुझसे पूछते हो कि तुम कौन हो ?"

"तुम मुझे पीटा करते थे ! मुझे पीटने वाला तो अभी तक कोई पैदा नहीं हुआ। जिसने पीटने की कोशिश की थी, उसकी लाश कब्र में गड़ी है।"

"जा बे कीड़े !"

"तू साइबेरियन प्लेग से मरे !"

"मुझे उम्मीद है, किसी दिन तुर्की तलवार तुम्हें मजा चखायेगी।"

इसके बाद गालियों की बौछार शुरू हो गई।

"बस, बस ! फिर ठन गई ! ये लोग आज़ादी की ज़िन्दगी नहीं बसर कर सके, ग़नीमत समझें कि यहाँ रोटी तो नसीब होती है।"" लोगों ने उन्हें डाँटा।

दोनों जने शान्त हो गये। जेल में गालियाँ देने और 'ज़बान चलाने' पर कोई बुरा नहीं मानता। कुछ हद तक तो इससे सब का मनोरंजन होता है, लेकिन दुश्मनी लड़ाई की सीमा तक बहुत कम पहुँचती थी। हर लड़ाई-झगड़े की रिपोर्ट मेजर को दी जाती है, इसके बाद तहक़ीक़ात होती है, मेजर खुद भीतर आता है और सब लोगों को इसका नतीज़ा भुगतना पड़ता है, इसलिए क़ैदी झगड़ा-फ़िसाद नहीं होने देते। गालियों का इस्तेमाल मनोरंजन और ज़बान को पैना बनाने के लिए किया जाता था। आमतौर पर वे अपने अभिनय को भी सच मान बैठते हैं और गुस्से में लाल-पीले हो जाते हैं, देखने वाला सोचता है कि अभी एक दूसरे पर टूट पड़ेंगे—लेकिन ऐसी कोई बात नहीं होती। एक ख़ास सीमा तक पहुँच कर वे अलहदा हो जाते हैं। शुरू में ऐसे दृश्यों को देख कर मुझे बड़ी हैरानी हुई। मैंने जान-बूझकर इस बातचीत की मिसाल दी है। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वे गालियों को मनोरंजन का साधन और सुखद व्यायाम समझते हैं। लेकिन क़ैदियों के अहंकार को नहीं भूलना चाहिए। गालियाँ देने की कला में जो जितना पारंगत होता था, उसकी उतनी ही ज़्यादा इज़्ज़त की जाती थी। तालियाँ पीट कर लोग उसे दाद देते थे, जैसे वह कोई बड़ा अभिनेता हो।

एक दिन पहले शाम को मुझे लगा कि सब कौतूहल-भरी नज़रों से मेरी तरफ़ देख रहे हैं।

मैं संदिग्ध नज़रों का शिकार तो पहले ही हो चुका था। उधर कुछ क़ैदी यह सोचकर कि मैं अपने साथ पैसा लाया हूँ, मेरे इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगे थे। उन्होंने फ़ौरन मेरे साथ सांठ-गांठ शुरू कर दी थी।

उन्होंने मुझे बेड़ियाँ पहनने का तरीक़ा बताया और मेरे लिए—पैसे लेकर ही सही एक ताला और संदूक ले आये, ताकि उसमें मैं अपने कपड़े और बाकी चीज़ें रख सकूं। अगले ही दिन उन्होंने मेरा सदूक चुराकर शराब के बदले में बेच डाला। बाद में इनमें से एक क़ैदी तो मेरा पक्का अनुचर बन गया, हालांकि मौक़ा पाते ही मेरी चीज़ें चुराने की आदत वह कभी नहीं छोड़ सका। इसमें उसको रत्ती-भर घबराहट नहीं महसूस होती थी, अनजाने ही अपना कर्त्तव्य समझकर वह चोरी कर बैठता था, इसलिए उस पर क्रोध आना भी ना-मुमकिन था।

और बातों के अलावा मेरे साथियों ने यह भी बताया कि मुझे अपने पास से चाय का प्रबन्ध करना चाहिए, अपनी निजी चायदानी हो तो बड़ी अच्छी बात है। किराये पर उन्होंने मुझे एक चायदानी ला भी दी और बताया कि अगर मैं चाहूँ तो अपनी रसद खुद खरीद कर तीस कोपेक महीने पर एक रसोईया भी रख सकता हूँ, जो मेरे मन के मुता-बिक़ खाना बना दिया करेगा।......

कहने की ज़रूरत नहीं कि उन लोगों ने मुझसे उधार माँगा। पहले दिन ही वे सब के सब तीन बार मुझसे उधार लेने आये।

भद्रवर्ग से आने वाले क़ैदियों को नफ़रत की नज़रों से देखा जाता है। यह वहाँ का क़ायदा है।

हालांकि जेल में सब क़ैदियों का एक ही दर्जा था, और भद्रवर्ग के क़ैदियों को सभी अधिकारों से वँचित कर दिया गया था, फिर भी क़ैदी उन्हें अपना साथी नहीं समझते थे। यह दुर्भावना जान-बूझकर पैदा नहीं की जाती, बल्कि अचेतन रूप से अपने आप मन में पैदा हो जाती है। वे सचमुच हमें शरीफ़ समझते थे, हालांकि हमारी दुर्दशा का मज़ाक उड़ाने में उन्हें बड़ा मज़ा आता था।

"मास्को में प्योत्र रईसों की तरह गाड़ी की सवारी करते थे, अब

प्योत्र महाशय बैठे रस्सी बँट रहे हैं !" इस तरह के मज़ाक अक्सर चलते थे ।

हमारी दुर्दशा देखकर उन्हें बड़ा मजा आता था । हम उनसे अपनी हालत छिपाने की कोशिश करते थे । काम के वक्त भी हमारी दुर्गत होती थी, क्योंकि शारीरिक शक्ति में हम उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते थे, न ही काम में पूरी तरह उनका हाथ बँटा पाते थे । लोगों का विश्वास और प्रेम प्राप्त कर लेना (विशेषकर ऐसे लोगों का) बहुत मुश्किल काम है ।

जेल में बहुत से भद्र लोग थे, जिनमें पाँच या छः पोलिश क़ैदी भी थे, जिनकी चर्चा मैं बाद में अलग से करूँगा । रूसी भद्र लोगों से कहीं ज्यादा नफ़रत क़ैदियों को उन पोलिश क़ैदियों से थी (मैं सिर्फ़ राजनैतिक क़ैदियों के बारे में बात कर रहा हूँ) ये लोग इतने विनम्र थे कि सब लोग उनकी नम्रता से चिढ़ते थे । वे कभी किसी से मिलते-जुलते नहीं थे, और सबको हिक़ारत की नज़रों से देखते थे । यह बात क़ैदियों से छिपी नहीं थी, इसलिए क़ैदी भी उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते थे ।

दो साल जेल में गुज़ारने के बाद मैं कहीं कुछ क़ैदियों की सद्भावना प्राप्त करने में सफल हुआ । बाद में तो अधिकांश क़ैदी मुझसे स्नेह करने लगे थे और मुझे 'नेक' आदमी समझने लगे थे ।

मेरे अलावा भद्रवर्ग के चार और रूसी वहाँ थे । उनमें से एक तो अत्यन्त क्षुद्र और कमीना आदमी था, जो पेशेवर खुफ़िया और मुखबिर था । जेल पहुँचने से पहले ही मैं उसके बारे में बहुत कुछ सुन चुका था, इसलिए कुछ ही दिनों में मैंने उससे सारे संबंध तोड़ लिए । एक अपने पिता का हत्यारा था, जिसके बारे में मैं पहले बता चुका हूँ । तीसरा अकिम अकीमिच था । वैसा विलक्षण व्यक्ति मैंने ज़िन्दगी में कभी नहीं देखा । मुझे अच्छी तरह याद है, वह लम्बा, दुबला, अनपढ़, नीरस और मूर्ख आदमी था । सब जर्मनों की तरह वह क़ायदों का पाबन्द था । सब

क़ैदी उसका मजाक उड़ाते थे और कुछ तो उसकी टीका-टिप्पणी करने की आदत और चिड़चिड़ेपन से इतने परेशान थे कि उससे वास्ता तक नहीं रखना चाहते थे। उसने उन लोगों से शुरू से ही आत्मीयता का रिश्ता जोड़ लिया था, और उनसे अक्सर लड़ाई-झगड़ा किया करता था। उनकी ईमानदारी भी विलक्षणता की सीमा तक पहुँची हुई थी। उसे जहाँ भी बेइन्साफ़ी नज़र आती, वह ज़रूर दख़ल देता। वह बेहद सीधा था। क़ैदियों से झगड़ा होने पर वह उन पर चोर-उचक्के होने का इल्जाम लगाता और गंभीरतापूर्वक उनसे आत्म-सुधार करने की ज़रूरत पर भाषण देता। वह काकेशस में लैफ़्टीनैंट रह चुका था। हम पहले दिन से ही दोस्त बन गये थे। उसने फ़ौरन मुझे अपने केस के बारे में बताया। वह काकेशस की एक रैजीमैंट में रंगरूट भरती हुआ था और कई साल एड़ियाँ रगड़ने के बाद उसे अफ़सरी नसीब हुई थी। उसे एक क़िले का सीनियर कमांडिंग अफ़सर बनाकर भेजा गया था। एक मित्र फ़िरक़े के सरदार ने क़िले में आग लगा दी और रात के वक्त वहाँ धावा बोल दिया। अकिम अकीमिच जिद्दी तबीयत का था, इसलिए उसने यह जाहिर नहीं होने दिया कि वह हमलावर को पहचानता है। कह दिया गया कि यह दुश्मन फ़िरक़े वालों का काम था। एक महीने बाद अकिम अकीमिच ने उस सरदार को मैत्रीपूर्ण ढंग से आमन्त्रित किया। सरदार के मन में जरा भी सन्देह न हुआ; वह वहाँ से चला आया। अकिम अकीमिच ने अपने सिपाहियों के सामने सरदार का जुर्म साबित किया और सबके सामने उसे यह कहकर डांटा-फटकारा कि क़िले जलाना शर्मनाक काम है। भविष्य में सरदारों को किस तरह पेश आना चाहिए, इस पर उसने एक लम्बा-चौड़ा भाषण दिया और अन्त में सरदार को गोली से उड़ा दिया। इसके बाद उसने फ़ौरन अधिकारियों को इस कार्रवाई की रिपोर्ट भेजी, जिस पर उसका कोर्टमार्शल हुआ और उसे फांसी की सजा मिली। फांसी की सजा माफ़ हो गई और उसे बारह साल के लिए साइबेरिया भेज दिया गया। उसे इस बात का पूरा

एहसास था कि उसने क़ायदों का उल्लंघन किया था। उसने मुझे बताया कि सरदार को गोली से उड़ाने से पहले भी उसे यह बात मालूम थी। वह यह भी जानता था कि अगर कोई दोस्त जुर्म करता है तो उस पर बाक़ायदा मुक़दमा चलाया जाता है। यह सब जानते हुए भी वह अपने जुर्म की असलियत नहीं देख पाता था। "अपनी क़सम ! क्या उसने मेरा क़िला नहीं जलाया था ? क्या मैं उसे इस कारनामे पर धन्यवाद देता ?" उसने मेरे द्वारा उठाई गई आपत्तियों का जवाब दिया।

अकिम अकीमिच की मूर्खता पर सब लोग हँसते थे, लेकिन उसकी चुस्त-दुरुस्त आदतों और व्यावहारिक कुशलता के कारण उसका आदर भी करते थे।

कोई ऐसी दस्तकारी नहीं थी, जो अकिम अकीमिच को न आती हो। वह बढ़ई, मोची, रोग़नसाज़, मुलम्मासाज़, लुहार सब कुछ था। ये सब हुनर उसने जेल में आकर सीखे थे। एक बार देखने के बाद उसे ख़ुद बख़ुद सब आ जाता था। वह तरह-तरह के छोटे संदूक, टोकरियाँ, लालटेनें और बच्चों के खिलौने बनाकर शहर में बेचा करता था। इस तरह उसे थोड़ी-सी आमदनी हो जाती थी, जिससे वह फ़ौरन कोई नीचे पहनने का कपड़ा, नर्म तकिया या गद्दा ख़रीद डालता था। हम दोनों एक ही बैरक में रहते थे, मेरी क़ैद के प्रारम्भिक दिनों में उसने मेरी बहुत सहायता की थी।

जेल से बाहर काम पर जाते वक़्त गारदघर के बाहर सब क़ैदी दो क़तारों में खड़े हो जाते थे। उनके आगे-पीछे संगीनधारी सिपाही रहते थे। एक इंजीनियर अफ़सर, फ़ोरमैन और कई छोटे इंजीनियर जिनकी देखरेख में हम लोग काम करते थे, बाहर निकलते थे। फ़ोरमैन क़ैदियों को जत्थों में बांटकर काम पर भेजता था।

मुझे कई क़ैदियों के साथ इंजीनियरों की वर्कशाप में भेजा गया। वर्कशाप की इमारत एक बड़े से अहाते में थी जहाँ बहुत से मसालों की

ढेरियाँ लगी थीं, इसकी छत बहुत नीची थी। वहाँ एक लुहार की भट्टी, ताला बनाने, बढ़ईगीरी और रोग़नसाज़ी के विभाग थे। अकिम अकीमिच यहाँ आकर रोग़नसाज़ी करता था। वह तेल उबालकर उसमें रंग मिलाता था और फ़र्नीचर पर इस तरह की पालिश करता था कि देखने में वह बिल्कुल वालनट[1] की लकड़ी मालूम हो।

अभी मैं अपनी बेड़ियाँ बदलवाने का इन्तज़ार कर रहा था और अकिम अकीमिच से अपने जेल के अनुभवों की चर्चा कर रहा था कि उसने कहा, "यह ठीक है कि यहाँ भद्र लोगों को, खासतौर पर राजनैतिक क़ैदियों को पसन्द नहीं किया जाता। क़ैदियों का बस चले तो उन पर टूट पड़ें। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अव्वल तो आप और ही क़िस्म के लोग हैं; बाक़ी क़ैदियों से एकदम अलग क़िस्म के। इसके अलावा अधिकांश क़ैदी गुलाम या सिपाही रह चुके हैं। तुम खुद ही फ़ैसला करके देखो, वे तुम लोगों को कैसे पसंद करेंगे। यहां की जिन्दगी बड़ी सख्त है, यह मैं कहे देता हूँ। लेकिन रूसी डिसिप्लिनेरी बटालियनों में तो हालत यहाँ से भी गई-गुजरी है। जो लोग वहाँ से आते हैं, वे हमारी जेल की प्रशंसा करते नहीं थकते। उनका कहना है कि वे नर्क से स्वर्ग में आ गये हैं। मशक्कत की वजह से वे नहीं घबराते, उनका कहना है कि पहली श्रेणी में तो सैनिक अनुशासन क़तई नहीं है, लेकिन वहाँ के अधिकारियों का व्यवहार यहाँ जैसा नहीं है। सुना है, वहाँ क़ैदियों को अपने अलग घर मिलते हैं। मैं वहां नहीं गया, लेकिन लोगों का यही कहना है। वहाँ क़ैदियों को सिर भी नहीं मुंडवाना पड़ता, वर्दी भी नहीं पहननी पड़ती हालांकि वर्दी पहनने और सिर मुंडवाने में कोई हर्ज नहीं है। इसमें ज्यादा सलीक़ा रहता है और देखने में भी अच्छा लगता है। सिर्फ़ क़ैदियों को ये बातें नापसन्द हैं। तुमने देखा यहाँ कैसी पंचमेल खिचड़ी

---

१. अखरोट की लकड़ी

है। एक क़ैदी कन्तोनिस्त[1] है, दूसरा सरकेशियन, तीसरा कट्टरपंथी और चौथा दक़ियानूसी किसान होगा जो पीछे बीवी-बच्चे छोड़ आया है। पांचवां यहूदी होगा तो छठा जिप्सी[2]। सातवां क्या होगा यह ईश्वर ही जानता है। इन सब लोगों को एक साथ मिल-जुलकर रहना पड़ता है, एक ही देग़ में उनका खाना पकता है। एक साथ उन्हें सोना पड़ता है, किसी क़िस्म की आज़ादी नहीं। अगर एक ग्रास ज़्यादा खाने की आपकी तबीयत हो तो छिपकर खाना पड़ेगा। एक भी फ़ार्दिंग रखना है तो जूतों में छिपाकर रखना पड़ेगा, और क़िस्मत में सिर्फ़ क़ैद है और ज़्यादा क़ैद—ऐसे में आदमी के दिमाग़ में सब तरह के फ़ितूर कैसे न आयें!"

लेकिन यह तो मैं पहले से ही जान गया था। मैं उससे मेजर के बारे में जानना चाहता था। उसने कभी किसी बात पर पर्दा डालने की कोशिश नहीं की, मुझे याद है कि मुझे ये सब बातें अच्छी नहीं लगीं।

लेकिन अभी मुझे दो बरस तक मेजर के आधीन रहना था। अकिम अकीमिच की सारी बातें बिल्कुल सच साबित हुईं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना था कि यथार्थ वर्णन की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली होता है। मेजर बड़ा ही भयंकर आदमी था। दो सौ इन्सान उसकी मुट्ठी में थे। वह बड़ा नीच और ईर्ष्यालु व्यक्ति था। उसकी सबसे बड़ी ग़लती तो यह थी कि वह क़ैदियों को अपना स्वाभाविक शत्रु समझता था। उसमें सचमुच कुछ योग्यता भी थी, लेकिन न जाने क्यों उसकी सारी अच्छाइयाँ भी विकृत रूप में ही प्रकट होती थीं। वह इतने चिड़चिड़े और असंयत स्वभाव का था कि कभी-कभी रात को भी जेल में आ घुसता था और अगर किसी क़ैदी को बाईं करवट या चित्त सोये देखता था तो अगले

१. फ़ौजियों का बेटा
२. घुमक्कड़ बनजारों की जाति

दिन सजा देता था, "तुम्हें मेरे हुक्म के मुताबिक़ दाईं करवट सोना पड़ेगा।" जेल में सब उससे इस तरह डरते और नफ़रत करते थे, जैसे वह महामारी हो। उसका चेहरा सुर्ख़ और खूँख़्वार था। सबको मालूम था कि वह अपने अर्दली फ़ेद्का की मुट्ठी में है। दुनिया में उसे सबसे ज्यादा प्यार अपने झबरीले कुत्ते त्रेज़ोरका से था। एक बार, जब त्रेज़ोरका बीमार पड़ गया तो मेजर शोक से पागल-सा हो गया। सुनते हैं कि वह इस तरह सिसक रहा था, जैसे उसका सगा बेटा बीमार हो। उसने एक के बाद दूसरे डाक्टर को अपनी आदत के मुताबिक़ बेइज़्ज़त करके निकाल दिया। जब फ़ेद्का ने उसे बताया कि जेल में एक स्वयं शिक्षित वैटेर्नरी डाक्टर भी है, जिसने बहुत से जानवरों का सफल इलाज किया है, तो मेजर ने फ़ौरन उस क़ैदी को बुलवा भेजा।

"मेरी मदद करो! मैं तुम्हें सोने से लाद दूँगा; त्रेज़ोरका को ठीक करदो!" मेजर क़ैदी को देखकर चिल्लाया।

उस क़ैदी ने बहुत अरसे बाद, जब लोग यह कहानी भूल चुके थे, अपने साथियों को बताया, "मैंने देखा कि कुत्ता सोफ़े पर एक सफ़ेद गद्दी पर लेटा हुआ था। मैं समझ गया कि उसे सूजन है और ज़रा-सा खून निकाल देने से वह ठीक हो जायेगा। फिर मैंने मन ही मन सोचा —मान लो, मैं इसका इलाज न कर सकूँ और यह कुत्ता मर जाये? मैंने मेजर से कहा, जनाब, आपने मुझे बहुत देर से बुलाया है। अगर आप मुझे कल या परसों बुलवा लेते तो मैं कुत्ते को चंगा कर देता, अब मैं कुछ नहीं कर सकता।"

त्रेज़ोरका चल बसा।

मुझे बताया गया कि एक बार मेजर को क़त्ल करने की भी कोशिश की गई थी। जेल में एक ऐसा क़ैदी था जो कई बरसों से वहीं था और अपनी भलमनसाहत के लिए मशहूर था। वह बहुत कम बात करता था। लोग उसे धर्म का दीवाना समझते थे। वह लिख-पढ़ सकता था और पिछले एक बरस से लगातार, दिन-रात बाईबल पढ़ा करता था।

जब सब सो जाते, तो आधी रात के वक्त, वह उठकर एक मोमवत्ती जलाता, जैसी गिरजाघरों में जलाई जाती है और चबूतरे पर चढ़कर सुबह होने तक बाईबल का पाठ करता रहता। एक दिन उसने सार्जेन्ट से जाकर कहा कि वह काम पर नहीं जायेगा। इस मामले की रिपोर्ट मेजर को दी गई। मेजर गुस्से से बौखलाकर फ़ौरन जेल में भागा आया। क़ैदी हाथ में एक ईंट लेकर मेजर पर झपटा, लेकिन निशाना चूक गया। उसे पकड़ लिया गया, मुक़दमा हुआ और उसे सजा दी गई। यह सब बहुत जल्द हो गया। तीन दिन बाद वह हस्पताल में मर भी गया। मृत्यु-शैया पर उसने कहा था कि उसने किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाना चाहा, बल्कि वह पीड़ा को खोज रहा था। वैसे वह कोई भिन्नमतावलम्बी नहीं था। जेल में सब उसे आदरपूर्वक याद करते थे।

मेरी बेड़ियाँ बदल दी गई थीं। इस बीच कई लड़कियाँ क्रीमरोल बेचने के लिए वर्कशाप में आई थीं। उनमें से कुछ तो बिल्कुल कमसिन थीं। उनकी माताएँ उन्हें रोल बनाकर दे देती थीं और नन्हीं लड़कियाँ उन्हें बेचने आती थीं। जवान होने पर भी वे वहाँ आती थीं, लेकिन पावरोटी बेचने के लिए नहीं। ऐसा प्रायः सदा ही होता था। उनमें कुछ बड़ी लड़कियाँ भी थीं। आधी पैनी का एक रोल मिलता था, इस-लिए सभी क़ैदी उन्हें खरीदते थे।

मैंने एक बढ़ई को जिसके बाल तो पक गये थे, लेकिन चेहरा सुर्ख़ था, मुस्कराकर उन नानबाई लड़कियों के साथ चुहल करते देखा। उनके आने से पहले बढ़ई ने अपने गले में लाल रंग का रूमाल बांध लिया था। एक मोटी देहाती औरत ने, जिसके चेहरे पर चेचक के दाग़ थे, अपनी ट्रे लाकर बैंच पर रख दी और दोनों में बातचीत शुरू हुई।

"तुम कल क्यों नहीं आईं ?" क़ैदी के चेहरे पर आत्मसंतोष-भरी एक मुस्कान थी।

"अपनी क़सम, मैं तो आई थी, लेकिन तुम दिखाई नहीं दिये," ज़िन्दादिल औरत ने जवाब दिया।

"मुझे काम था, वरना तुम जानती हो मैं वहां जरूर मौजूद रहता।......परसों तुम्हारी सब सहेलियां मुझसे मिलने आई थीं।"

"कौन-कौन थीं ?"

"मार्याश्का थी, हैवरोश्का थी, चैकन्दा थी, तीनकौड़ी भी आई थी।"

"क्या मतलब ? क्या यह सब संभव है ?" मैंने अकिम अकीमिच से पूछा।

"ऐसा होता है," उसने जवाब दिया और आँखें नीची कर लीं। वह बहुत नेक आदमी था।

ऐसी बातें तमाम कठिनाइयों के बावजूद होती थीं, लेकिन कभी-कभी। आमतौर पर क़ैदियों को ऐसी बातों की बजाय शराब पीने का ज्यादा शौक था, हालांकि जिस ढंग से वे जिन्दगी काट रहे थे, वह बड़ी कठिन थी। औरतों से मिलना, मिलने की जगह और समय निश्चित करना, विशेष रूप से एकान्त जगह का प्रबन्ध करना बड़ा मुश्किल काम था। इससे भी ज्यादा मुश्किल काम था, संतरियों से साँठ-गाँठ करना। इन सब के लिए बहुत बड़ी रक़म की जरूरत थी। फिर भी कई बार मैंने ऐसे दृश्य देखे। मुझे याद है गर्मियों में हम तीन क़ैदी इर्तिश नदी के किनारे एक भट्टे में आग सुलगा रहे थे। हमारे संतरी अच्छे स्वभाव वाले लोग थे। इसी समय दो 'झालरें' वहाँ आईं। क़ैदी लड़कियों को इसी नाम से पुकारा करते थे।

"कहो इतनी देर कहाँ रहीं ? मैं शर्त बदकर कह सकता हूँ कि तुम ज्वेरकोफ़ के यहाँ थीं," एक क़ैदी ने, जो उन लड़कियों का इन्तज़ार कर रहा था, कहा

"मैंने देर लगा द   त सिर्फ़ उतनी देर वहाँ ठहरी थी, जितनी देर चिड़िया बांस पर ठहरती है," लड़की ने इठलाकर जवाब

वह सबसे ज्यादा गंदी लड़की थी। इसी का नाम चैकन्दा था।

उसके साथ तीनकौड़ी भी आई थी, जिसकी अश्लीलता का वर्णन नहीं किया जा सकता।

हमारे शूरवीर ने तीनकौड़ी से पूछा, "तुम भी बहुत दिनों से नजर नहीं आईं, इतनी दुबली कैसे हो गईं ?"

"शायद ! पहले तो मैं बहुत मोटी थी, लेकिन अब सींक की तरह दुबली हो गई हूँ !"

"अब तो हमेशा फ़ौजियों के साथ रहती हो, क्यों !"

"नहीं, ईर्ष्यालु लोगों ने तुमसे यह झूठ कहा है। मान लो रहती भी हूँ तो क्या हुआ ? मैं बांस की तरह दुबली भले ही हूँ, लेकिन फ़ौजी जवानों का साथ हरगिज़ नहीं छोड़ूँगी।"

"फ़ौजियों को छोड़कर हम लोगों से प्यार करो, हमारे पास नक़द दाम हैं···।"

अब आप उस सिरमुँडे, अधरंगे कपड़ों वाले, शूरवीर की कल्पना करें, जिसके पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं, और जिस पर संतरियों का पहरा है।

अकिम अकीमिच से विदा लेकर मैं संतरी के साथ जेल वापिस आ गया। क़ैदी काम से लौट रहे थे। क़ैदियों से सख्त मशक्क़त लेने का एकमात्र तरीक़ा यही है कि उन्हें निश्चित घण्टों की बजाए निश्चित काम दिया जाये, जिसे वे दुगुनी जल्दी खत्म कर डालते हैं, और उनके घर वापिस लौटने में भी कोई रुकावट नहीं डाली जाती। ऐसे क़ैदी सबसे पहले काम से लौटते थे।

सब लोग एक साथ खाना नहीं खाते, न ही बावर्चीख़ाने में इतनी जगह है। ज्यों-ज्यों वे काम से लौटते आते हैं, बारी-बारी से उन्हें खाना परोसा जाता है। मैंने शोरबा पीने की कोशिश की, लेकिन उसका आदी न होने की वजह से मैं उसे नहीं पी सका, इसलिए मैंने अपने लिए चाय बनाई। हम मेज के परले सिरे पर जाकर बैठ गये। मेरे साथ एक और भद्रवर्ग का क़ैदी था।

अभी सब लोग काम से नहीं लौटे थे, इसलिए रसोईघर में काफ़ी जगह थी। पाँच क़ैदियों का एक झुन्ड एक बड़ी-सी मेज़ के गिर्द बैठा था। रसोइये ने दो शोरबे के प्याले और तली हुई मछली की एक प्लेट उनके सामने परोसी। वे शायद कोई जशन मना रहे थे; उन्होंने विरोध-भरी नज़रों से हम लोगों की तरफ़ देखा। इतने में एक पोलिश क़ैदी भी आकर हमारे पास बैठ गया।

"मैं आज घर पर नहीं रहा, फिर भी मुझे सारी खबरों का पता चल गया है।" लम्बे क़द के एक क़ैदी ने सब उपस्थित लोगों की तरफ़ एक नज़र डालते हुए कहा।

इस आदमी की उम्र पचास की होगी। वह बहुत दुबला था, उसके चेहरे पर मक्कारी और प्रसन्नता की छाप थी। उसका मोटा, नीचे लटकता हुआ होंठ उसके व्यक्तित्व को विशेष रूप से विलक्षण बना रहा था।

वह जशन मनाने वाले लोगों के पास जाकर बैठ गया और बोला, "कहो कुर्स्क के दोस्तो, क्या हालचाल है? दुआ-सलाम क्यों नहीं करते? कहो रात मज़े में कटी? खूब डट कर खाओ! अपने दोस्त की भी तो कुछ खातिर करो!"

"हम कुर्स्क से नहीं आये हैं, भाई।"

"तो तंबोफ़ से आये हो?"

"नहीं, तंबोफ़ से भी नहीं, भाई, हम लोगों से तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा, जाकर किसी पैसे वाले देहाती से पूछो।"

"आज मेरे पेट में चूहे दौड़ रहे हैं। कहाँ रहता है वह तुम्हारा पैसे वाला देहाती?"

"क्यों, ग़ैज़िन जो पैसे वाला है, उसी के पास जाओ।"

"ग़ैज़िन आज गुलछर्रे उड़ा रहा है, यारो! खूब जमकर पी रहा है। लगता है सारी जमा-पूँजी उड़ा देगा।"

"पूरे बीस रूबल का आदमी है। दोस्तो, वोद्का के व्यापार में बड़ा

फ़ायदा है," एक दूसरे क़ैदी ने कहा।

"अच्छा तो एक दोस्त की ख़ातिरदारी नहीं करोगे ? मुझे जेल के शोरबे का घूँट ही पीना पड़ेगा।"

"सामने बाबू लोग बैठे चाय पी रहे हैं। तुम भी उनसे माँग कर पी लो।"

"बाबू लोग ? यहां कोई बाबू-आबू नहीं है, वे भी हम लोगों जैसे ही हैं।" कोने में बैठे एक क़ैदी ने उदास आवाज़ में कहा। अभी तक वह बिल्कुल ख़ामोश था।

"मैं चाय तो पीना चाहता हूँ, लेकिन माँगने में शर्म आती है; हम लोग स्वाभिमानी जो ठहरे !" लटके हुए होंठ वाले क़ैदी ने प्रफुल्ल दृष्टि से हमारी तरफ़ देखते हुए कहा।

"अगर तुम चाहो, तो मैं तुम्हें चाय दे सकता हूँ। बोलो !" मैंने उसे आमंत्रित करते हुए कहा।

"चाहूँ तो ? वाह, मैं क्यों नहीं चाहूँगा !"

वह उठकर हमारी मेज़ के पास आ गया।

"घर में तो सुसरा चाहे जूते में शोरबा पीता हो, यहाँ आकर चाय की लत लग गई है और बाबू लोगों की तरह प्यालों में चाय पीना चाहता है," उदास क़ैदी फिर बोला।

"यहाँ कोई चाय क्यों नहीं पीता ?" मैंने उससे पूछा। लेकिन उसने कोई जवाब देना उचित न समझा।

"लो रोल भी आ गये। एक ख़रीद लें !"

एक नौजवान क़ैदी रोल बेच रहा था। नानबाई लड़की दस रोल बेचने के बदले में एक रोल मुफ़्त देती थी। वह बावर्चीख़ाने में आकर चिल्लाने लगा, "रोल ले लो ! मास्को के रोल ! गर्मागर्म रोल ! मेरा वश चलता तो सारे के सारे खा जाता, लेकिन मेरे पास ख़रीदने के लिए दाम नहीं हैं। आओ दोस्तो, आख़िरी रोल बच गया है, कोई माँ का पूत तो आयेगा ही।"

मातृ-प्रेम की इस अपील पर लोगों को बड़ी हँसी आई और बहुत से रोल खरीद लिए गये।

"मैं कहता हूँ, दोस्तो, अगर गौज़िन का यही हाल रहा तो वह मुसीबत में जरूर फँसेगा। अपनी क़सम उसने पीने का वक्त भी कौन-सा तलाश किया है। देख लेना आठ आँखों वाला आज जरूर राउण्ड लेगा।"

"लोग उसे छिपा देंगे। क्या सचमुच आज वह धुत्त है?"

"हाँ, उसके होश-हवास ग़ायब हैं और वह सबको परेशान कर रहा है।"

"ओह, तब तो लड़ाई जरूर ठनेगी···।"

"ये लोग किसकी चर्चा कर रहे हैं?" मैंने अपने पास बैठे पोलिश क़ैदी से पूछा।

"गौज़िन नाम का एक क़ैदी यहां लाकर वोद्का बेचता है। जब उसके पास काफ़ी रक़म इकट्ठी हो जाती है तो डटकर शराब पीता है। जब तक होश-हवास रहते हैं, वह चुप रहता है लेकिन नशा चढ़ते ही उसकी असली प्रकृति सामने आ जाती है। वह बड़ा ही बेरहम और ज़ालिम है। चाकू लेकर लोगों के पीछे भागता है। लोग उसे क़ाबू में रखने की कोशिश करते हैं।"

"किस तरह?"

"एक दर्जन क़ैदी उस पर टूट पड़ते हैं और उसे मारते-मारते अधमरा कर देते हैं। जब वह बेहोश हो जाता है तो उसे चारपाई पर लिटा कर पोस्तीन से ढक देते हैं।"

"लेकिन इस तरह उसकी जान निकल जाये तो?"

"कोई और आदमी होता तो कभी का मर चुका होता लेकिन जेल में वह सबसे तगड़ा आदमी है। दूसरे दिन ही वह भला-चंगा हो जाता है।"

मैंने फिर पोलिश क़ैदी से सवाल किया, "मेहरबानी करके यह बताओ कि ये लोग मेरी तरफ़ ईर्ष्या-भरी नज़रों से क्यों देख रहे हैं। मेरी चाय से इन्हें इतनी चिढ़ क्यों है? आखिर वे भी तो स्पैशल खाना

मंगवा कर खा रहे हैं। माजरा क्या है ?"

"ईर्ष्या का कारण चाय नहीं है। वे लोग आपसे इसलिए चिढ़ते हैं, क्योंकि आप भद्र हैं, इन लोगों जैसे नहीं हैं। कई क़ैदी आपसे झगड़ा मोल लेना चाहेंगे, तू-तू-मैं-मैं करके आपको अपमानित करना चाहेंगे। यहाँ रहकर आपको बहुत से अप्रिय अनुभव होंगे। हम लोगों को औरों से ज़्यादा बर्दाश्त करना पड़ता है। इसके लिए दार्शनिक दृष्टिकोण का होना ज़रूरी है। यहाँ बहुत से क़ैदी अपना खाना और अपनी चाय रोज़ ख़ुद मंगवाते हैं, कोई उनकी टीका-टिप्पणी नहीं करता, लेकिन अगर आप ऐसा करेंगे तो आपको गाली-गलौज और अप्रियता सहनी पड़ेगी। ये लोग जो चाहें कर सकते हैं, लेकिन आप नहीं कर सकते।"

यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ। कुछ मिनटों बाद ही उसकी बात सच साबित हुई।

मेरे नये अनुभव

पोलिश क़ैदी के बाहर जाते ही गैंज़िन वहाँ आ धमका। उस समय वह नशे में धुत्त था।

उस दिन छुट्टी नहीं थी, क़ायदे के मुताबिक हर क़ैदी से काम पर जाने की उम्मीद की जाती थी। अफ़सर इतना कठोर था कि किसी वक्त भी जेल के भीतर आ सकता था, सार्जेन्ट तो हमेशा वहीं मौजूद रहता था। संतरियों का कड़ा पहरा था। इतने सख्त अनुशासन के होते हुए भी गैंज़िन ने शराब पीने के लिए वही दिन चुना था। उसके इस दुःसाहस को देखकर जेल-जीवन के बारे में मेरी सारी धारणाएँ बदल गईं। बहुत दिनों बाद जाकर मुझे उन बातों की असलियत मालूम हुई जो शुरू के दिनों में मेरे लिए रहस्यमय थीं।

यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि सब क़ैदियों के पास कुछ न कुछ निजी काम रहता था। क़ैदियों में काम करने की स्वाभाविक और तीव्र इच्छा रहती है। क़ैदी के लिए पैसे की भी उतनी ही क़ीमत है जितनी कि आज़ादी की। अगर उसकी जेब में खनकते हुए सिक्के हों तो उसके दिल को सान्त्वना मिलती है। अगर जेब में पैसे नहीं होते तो उसका दिल उदास हो जाता है और वह पैसा पाने के लिए चोरी तो क्या कुछ भी कर सकता है। जेल में पैसा क़ीमती चीज़ होते हुए भी किसी खुशक़िस्मत की जेब में रह नहीं पाता था। अव्वल तो दूसरों की नज़रों से पैसा छिपाकर रखना ही बहुत मुश्किल था। अगर आकस्मिक तलाशी के दौरान मेजर को कहीं पैसा नज़र आ जाता तो वह उसे ज़ब्त कर लेता था। हो सकता है वह इस ज़ब्त की गई रक़म को क़ैदियों की खूराक को सुधारने में खर्च करता हो। खैर, जो भी हो, तलाशी में बरामद किये गये पैसे मेजर के पास पहुँचा दिये जाते थे।

लेकिन सबसे ज्यादा खतरा चोरी का था। वहाँ कोई आदमी ऐसा नहीं था जिसकी ईमानदारी पर भरोसा किया जा सके। बाद में हम लोगों ने पैसों को सुरक्षित रखने का एक नया ढंग निकाला। हम अपने पैसे स्तारोदुब्रोवस्की की बस्तियों से आये एक साधु स्वभाव के क़ैदी के पास रखवा देते थे।

वह साठ बरस का बूढ़ा था। उसके सारे बाल सफ़ेद हो गये थे। उसे देखते ही मैं उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हो गया था। वह बाक़ी क़ैदियों से इतना भिन्न, शान्त और नम्र था कि उसकी आँखों से नूर बरसता था। मैं अक्सर उससे बातें किया करता था। वैसा नेक और सहृदय आदमी मैंने ज़िन्दगी में दूसरा नहीं देखा। उसे एक भयंकर अपराध के लिए जेल भेजा गया था। उन दिनों स्तारोदुबोवस्की की बस्तियों में कट्टरपन्थी मतावलम्बियों का आन्दोलन चल रहा था। सरकार भी इस आन्दोलन को प्रोत्साहन दे रही थी। स्तारोदुबोवस्की के बहुत से लोग इसमें शामिल हो गये थे। कुछ कट्टरपन्थी लोगों ने अपने ईमान की रक्षा करने का फ़ैसला किया। बस्ती में एक आरथोडौक्स गिरजा बन रहा था, इन लोगों ने उसमें आग लगा दी। लोगों को उपद्रव के लिए भड़काने के अपराध में बूढ़े को भी साइबेरिया भेज दिया गया। वह एक सम्पन्न व्यापारी था, बीवी-बच्चों वाला था, लेकिन उसने बहादुरी से देशनिकाले को क़बूल किया था। अपनी धार्मिक कट्टरता में आकर वह अपने आपको 'शहीद' समझता था। उसके साथ कुछ दिन गुज़ारने के बाद मन में यह सवाल उठना स्वाभाविक ही था कि यह बुज़ुर्ग आदमी, जिसका दिल बच्चों की तरह भोला है, कैसे विद्रोही रहा होगा। कई बार 'ईमान' को लेकर मैंने उससे बातचीत की थी। वह अपनी आस्था से एक इंच भी पीछे हटने के लिए तैयार नहीं था, लेकिन उसकी दलीलों में गुस्से या नफ़रत का कहीं नामोनिशान न था। इसके बावजूद भी उसने एक गिरजाघर जलाया था और वह खुद इस बात को स्वीकार करता था। उसके विचारों से लगता था कि वह अपने जुर्म को एक

शानदार उपलब्धि समझता था, लेकिन निकट से अध्ययन करने पर भी मुझे उसमें कहीं लेशमात्र अहंकार नजर नहीं आया। जेल में और भी कई कट्टरपन्थी थे, जिनमें से अधिकांश साइबेरियन थे। वे पढ़े-लिखे चतुर किसान थे। उनका बाईबल का ज्ञान इतना गहरा था कि हर शब्द की व्याख्या पर उनमें झगड़ा होता था और वे अपने ढंग के महान तार्किक थे। वे चालबाज, अहंकारी, लड़ाके और असहिष्णु लोग थे। लेकिन यह बूढ़ा उन सबसे अलग था। उनसे शायद ज्यादा पढ़ा-लिखा होने के बावजूद भी वह बहस से बचता था। वह हरेक से अपने मन की बात कहता था और हँसमुख था। लेकिन और क़ैदियों की तरह उसकी हँसी बेहूदा और हृदयहीन नहीं थी, बल्कि बड़ी निश्छल और सरल थी। उसमें एक बाल-सुलभ सरलता थी, जो उसके सफ़ेद बालों से एकदम मेल खाती थी। हो सकता है मेरा ख्याल ग़लत हो, लेकिन मुझे लगता है कि इन्सान को उसकी हँसी से पहचाना जा सकता है। किसी भी आदमी के बारे में कुछ और जानने से पहले अगर उसकी हँसी आपको पसंद आती है तो आप बेखटके कह सकते हैं कि वह अच्छा आदमी है। हालांकि सारी जेल में बूढ़े की इज्जत होती थी, फिर भी उसे अहंकार छू तक नहीं गया था।

क़ैदी उसे दादा कहते थे और कभी भी उसकी बेइज्जती नहीं करते थे। अपने साथियों पर उसका क्या प्रभाव पड़ा होगा इसकी कुछ-कुछ कल्पना मैं कर सकता हूँ। लेकिन जिस असंदिग्ध साहस से वह अपनी सजा बर्दाश्त कर रहा था, उसके साथ ही उसके हृदय में एक ऐसी उदासी और आकुलता छाई थी, जिसे वह सबसे छिपाने की कोशिश करता था। मैं उसी के कमरे में रहता था। एक रात तीन बजे मेरी नींद खुली। मैंने किसी के संयत, धीमे स्वर में रोने की आवाज सुनी। बूढ़ा चबूतरे पर बैठा हस्तलिखित प्रार्थना-पुस्तक पढ़ रहा था (वही चबूतरा जिस पर बाईबल पढ़ने वाला क़ैदी रात को बैठकर पढ़ा करता था और जिसने मेजर पर ईंट फेंकी थी)। बूढ़ा रो रहा

था और बीच-बीच में कहता जाता था, "ईश्वर ! मेरा साथ मत छोड़ना ! मालिक ! मुझे शक्ति दो ! मेरे नन्हें बच्चो, मेरे प्यारे नन्हें बच्चो, मैं अब तुम्हें कभी नहीं देख पाऊँगा।" इस बात से मेरा मन कितना उदास हो गया, इसका बयान मैं नहीं कर सकता।

धीरे-धीरे सभी लोग अपने पैसे इसी बूढ़े के पास रखने लगे। क़रीब-क़रीब सभी क़ैदी चोर थे लेकिन न जाने क्यों, उन्हें अचानक यह विश्वास हो गया कि बूढ़ा चोरी नहीं कर सकता। वे जानते थे कि बूढ़ा किसी गुप्त जगह पर उस पैसे को रखता है, जहाँ से किसी को उसकी ख़बर नहीं मिल सकती। बूढ़े ने यह रहस्य मुझे और कुछ पोलिश क़ैदियों को बता दिया था। चहारदीवारी के एक खंभे पर लकड़ी की एक टहनी लगी थी जो खंभे से जुड़ी हुई मालूम होती थी लेकिन जिसे बाहर निकाला जा सकता था। लकड़ी के भीतर एक गहरा छेद था इसी में दादा पैसे रख देता था और किसी को कुछ पता नहीं चलता था।

लेकिन मैं अपनी असली कहानी से भटक रहा हूँ। मैं बता रहा था कि क़ैदियों की जेब में पैसा क्यों नहीं ज्यादा देर तक टिकता। पैसा रखने की दिक़्क़तों के अलावा, जेल की जिन्दगी इतनी नीरस थी, क़ैदी स्वभावतः आजादी के लिए इतने व्याकुल होते हैं, इतने लापरवाह और उद्धत होते हैं कि अपना अवसाद भूलने के लिए, चाहे क्षण भर के लिए ही क्यों न हो, वे बड़े जोर-शोर से गाने-बजाने और हुल्लड़बाजी के जरिए जी भर मजे उड़ाने के लिए अपनी आखिरी पाई तक खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं। मुझे उन क़ैदियों को देखकर ताज्जुब होता था जो लगातार, महीनों तक सख्त मेहनत करते थे, ताकि एक ही दिन में अपनी सारी कमाई उड़ा सकें, और फिर महीनों तक मेहनत करते रहते थे। कई क़ैदियों को नये कपड़े खरीदने का बहुत शौक था, ये कपड़े सरकारी नमूने के कपड़ों से एकदम अलग रहते थे—काली पतलूनें, कमीजें, कोट, सूती कमीजों और पीतल के बटनों से सजी पेटियों की वहाँ बहुत माँग

थी। वे लोग छुट्टी के दिन ये पोशाकें पहनते थे और जेल के सारे वार्डों में अपनी साज-सज्जा दिखाने के लिए मटकते हुए घूमते थे। बढ़िया कपड़े पहनने में उन्हें एक बाल-सुलभ सुख मिलता था और कई बातों में क़ैदी थे भी निरे बच्चे। यह सच है कि यह बढ़िया चीज़ें जल्द ही गायब हो जाती थीं—कई बार तो खरीदने के बाद, उसी दिन शाम को ही वे बड़ी मामूली रक़म के लिए उन चीज़ों को गिरवीं रख देते थे या बेच डालते थे। पीने का दौर धीरे-धीरे आता था। किसी छुट्टी के दिन या जन्मदिन तक उसे स्थगित किया जाता था। जब किसी क़ैदी का जन्मदिन आता था तो वह तड़के उठते ही पवित्र मूर्ति के आगे मोम-बत्ती जलाता था और प्रार्थना करता था। इसके बाद वह अपने सबसे बढ़िया कपड़े पहनता था और बढ़िया डिनर का आर्डर देता था। वह गोश्त, मछली खरीदता था, उसके लिए साइबेरियन टिकियाँ बनाई जाती थीं और वह अकेला बैल की तरह डटकर खाता था, अपने साथियों को बहुत कम निमंत्रित करता था। इसके बाद वोद्का निकाली जाती थी। हीरो महाशय रईसों की तरह नशे में चूर हो जाते थे और लड़खड़ाते क़दमों से सारे जेल का चक्कर काटते थे, सबको यह दिखाने के लिए कि वे नशे में धुत्त हैं, "मज़े में हैं," इसलिए उनकी इज्ज़त होनी चाहिये। रूसी जनता के दिल में नशे में चूर व्यक्ति के प्रति एक खास क़िस्म की हमदर्दी रहती है। जेल में तो ऐसे व्यक्ति की बहुत इज्ज़त होती थी। जेल में आनन्दोत्सव मनाने के लिए भद्रलोगों के रीति-रिवाजों का पालन किया जाता था। पीने वाला हमेशा किराये पर संगीत का इन्तज़ाम करता था। जेल में एक नाटे क़द का पोलिश क़ैदी था, जो फ़ौजी भगोड़ा था। उसे वायलिन बजानी आती थी और उसके पास वायलिन थी भी—उसकी एकमात्र जायदाद। वह और कोई रोजगार नहीं करता था, सिर्फ़ मौजी क़ैदियों के लिए डान्स की धुनें बजाकर ही वह कुछ पैसा पैदा करता था। नशे में चूर क़ैदी के पीछे-पीछे सारे कमरों में पूरे ज़ोर से वायलिन बजाते हुए चक्कर काटना ही उसका काम था। अक्सर

उसके चेहरे पर निराशा और उकताहट झलकती थी, लेकिन "बजाते जाओ ! तुम्हें वायलिन बजाने के पैसे दिए जाएँगे," की आवाज़ सुनकर वह वायलिन बजाना जारी रखता था। क़ैदी जब शराब पीना शुरू करता है तो उसे इस बात का पूरा भरोसा रहता है कि नशे में धुत्त होने पर ज़रूर उसकी देखभाल की जायेगी, ठीक वक्त पर उसे बिस्तर में लिटा दिया जायेगा और अगर जेल के अधिकारी आ पहुँचे तो उसे छिपा दिया जायेगा। यह सारा काम निस्वार्थ भाव से किया जायेगा। सार्जेन्ट और गारद के सिपाही, जो अनुशासन रखने के लिए जेल के भीतर ही रहते थे, निश्चिन्त रह सकते थे कि नशे में चूर क़ैदी कोई गड़बड़ नहीं कर सकता था। बैरक के सारे क़ैदी उसकी देखभाल करते थे और अगर वह हुल्लड़ मचाता था या क़ाबू से बाहर हो जाता था तो वे फ़ौरन उसे रोकते थे, यहाँ तक कि उसे हाथ-पैर बाँधकर डाल देते थे। इसलिए जेल के छोटे अफ़सर पियक्कड़पन की तरफ़ कोई ध्यान नहीं देते थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि अगर जेल में वोद्का न आने दी गई तो स्थिति और भी बिगड़ जायेगी। लेकिन क़ैदियों को वोद्का मिलती कैसे थी ?

वोद्का जेल ही में तथाकथित 'भटियारों' से मिलती थी। भटियारों की संख्या काफ़ी थी और वे लगातार सफलतापूर्वक अपना कारोबार चलाते थे, हालांकि शराब पीने वालों और 'ऐश' करने वालों की संख्या बहुत कम थी, क्योंकि ऐश के लिए पैसा चाहिए और क़ैदियों के पास पैसा मुश्किल से आता है। इन 'भटियारों' का कारोबार बड़े ही मौलिक ढंग से आयोजित किया गया था। मान लीजिये अगर किसी क़ैदी को कोई काम नहीं आता और वह मेहनत करने को भी तैयार नहीं है (जेल में ऐसे लोग भी थे) लेकिन वह पैसा कमाने का इच्छुक है और तबीयत से जल्दबाज़ है, फ़ौरन पैसे का ढेर जमा करना चाहता है। अगर उसके पास थोड़ी-सी पूँजी हो तो वह वोद्का का व्यापार करने का फ़ैसला कर लेता है। यह बड़ा ही दुस्साहसपूर्ण और जोखिम का

काम है, साथ में खतरनाक भी। इसके लिए उसे कोड़े भी पड़ सकते हैं और उसकी सारी पूँजी और माल फ़ौरन जब्त किया जा सकता है। लेकिन 'भटियारा' जोखिम उठाने के लिए तैयार हो जाता है। वह थोड़ी-सी पूंजी से कारोबार शुरू करता है और शुरू में खुद ही जेल में छिपाकर वोद्का लाता है। दो-तीन बार ऐसा करने पर अगर वह पकड़ा नहीं जाता, तो वह फ़ौरन सारा स्टॉक बेच देता है, तभी बड़े पैमाने पर उसका कारोबार शुरू होता है। वह उत्साही पूंजीपति बन जाता है, सहकारी और एजेन्ट रखता है, उसका जोखिम कम हो जाता है और आमदनी बहुत बढ़ जाती है। उसके नीचे काम करने वाले लोग उसकी खातिर जोखिम उठाते हैं।

जेल में हमेशा बहुत से ऐसे क़ैदी होते हैं जो अपना सब कुछ जुए या शराब में खो देते हैं। इन बदनसीब फटेहाल लोगों का कोई कारोबार नहीं होता लेकिन वे बड़े दुःसाहसी होते हैं। ऐसे लोगों के पास संपत्ति के रूप में सिर्फ उनकी पीठ बच जाती है, इसलिए ऐसे खर्चीले आवारा लोग इसका फ़ायदा उठाने का निश्चय करके 'भटियारे' के पास जाते हैं और चोरी से वोद्का भीतर लाने के काम के लिए अपने को पेश कर देते हैं। भटियारा ऐसे कई लोगों से काम लेता है। जेल से बाहर कोई आदमी—सिपाही, मजदूर, या कोई औरत—बहुत बड़ा कमीशन लेकर वोद्का खरीद कर उसे कहीं दूर-दराज जगह पर, जहाँ क़ैदी काम करने जाते हैं, छिपाकर रख देता है। यह वोद्का 'भटियारे' के पैसे से ही खरीदी जाती है। बीच का व्यापारी हमेशा वोद्का को चखकर देखता है और बेरहमी से सारा बर्तन पानी से भर देता है—'भटियारा' चाहे तो उसे ले या लेने से इन्कार कर दे। लेकिन एक क़ैदी इस स्थिति में नहीं होता कि अपनी शर्तें मनवा सके। ग़नीमत है, उसे वोद्का तो मिल जाती है, चाहे कितनी ही घटिया क्वालिटी की हो, कम से कम उसका पैसा डूबा तो नहीं। 'भटियारा' पहले से उन बीच के व्यापारियों से अपने एजेंटों का परिचय करवा देता है और वे

अपने साथ बैल की आंतें लेकर जाते हैं, इन आंतों को लचीला बनाये रखने के लिए, इनमें पानी भर दिया जाता है। इन्हीं आंतों में वोद्का भर के क़ैदी इन्हें अपने बदन पर ऐसी जगह लपेट लेते हैं, जहाँ किसी की नजर न पड़ सके। कहने की जरूरत नहीं कि इस काम में चोरी से माल ले जाने वाले को बड़ी चालाकी और सतर्कता से चलना पड़ता है। कुछ हद तक उसकी इज्जत भी खतरे में पड़ जाती है। उसे संतरियों और गारद दोनों को धोखा देना पड़ता है और वह इसमें सफल भी हो जाता है। पहरेदार अक्सर नये रंगरूट होते हैं। वे चालाक चोरों का मुक़ाबला नहीं कर सकते। निश्चय ही, पहले से ही पहरेदार कहां और किस वक्त तैनात रहेगा, इसका पूरा अध्ययन किया जाता है। मान लो क़ैदी कहीं एक बड़ी अंगीठी बना रहा है। वह अंगीठी की छत पर चढ़ जाता है। कौन बता सकता है कि वहाँ वह क्या कर रहा है? आख़िर पहरेदार उसके पीछे-पीछे तो चढ़ने से रहा। जेल में लौटते वक्त वह अपने हाथ में वक्त-जरूरत के लिए पन्द्रह या बीस चांदी के सिक्के रखता है और फाटक पर पहुँच कर कारपोरल का इन्तज़ार करता है। कार-पोरल काम से लौटने वाले हर क़ैदी को देखता है और उसका सारा शरीर टटोलता है। तभी जेल का फाटक खुलता है। चोरी से माल लाने वाले क़ैदी को कारपोरल की शराफ़त पर भरोसा रहता है और वह सोचता है कि कारपोरल को शरीर के कुछ हिस्सों की तलाशी लेने में शायद संकोच हो। लेकिन कई बार नीच कारपोरल तकल्लुफ़ नहीं बरतता और वोद्का पकड़ी जाती है। ऐसे वक्त क़ैदी के लिए एक ही चारा रह जाता है। वह पहरेदार की नजर बचाकर चुपके से कारपोरल के हाथों में सिक्के थमा देता है और जेल में वोद्का पहुँचाने में सफल हो जाता है। लेकिन कई बार यह तरीक़ा कारगर नहीं होता। फिर उसे अपनी आख़िरी संपत्ति—अपनी पीठ से क़ीमत अदा करनी पड़ती है। इस मामले की रिपोर्ट मेजर को कर दी जाती है, क़ैदी की पीठ पर कोड़े बरसाये जाते हैं! खूब बेरहमी से, वोद्का ज़ब्त कर ली जाती

है, क़ैदी अपने मालिक का नाम बताये बग़ैर जुर्म की सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लेता है। यह स्मरण रहे, क़ैदी इसलिये ऐसा नहीं करता कि उसे किसी को बदनाम करने से नफ़रत है, बल्कि इसलिए कि इसमें उसका कोई फ़ायदा नहीं। उसे तो हर हालत में कोड़े खाने ही होंगे, दूसरे आदमी को कोड़े पड़ते देखकर शायद उसे थोड़ी-सी तसल्ली मिल सकती है, लेकिन उसे अपने मालिक की ज़रूरत फिर पड़ेगी, हालांकि क़ायदे और समझौते के मुताबिक़ अगर एजेन्ट को कोड़े पड़ते हैं, तो मालिक उसका हर्जाना नहीं देता। रही बात चुग़ली करने की, यह जेल में आम बात है। जेल में अगर कोई किसी को धोखा देता है तो इसके लिए उसे अपमान नहीं सहना पड़ता। उसके प्रति लोगों के मन में क्षोभ की कल्पना भी नहीं की जा सकती। न ही उससे कोई बचने की कोशिश करता है। सब लोग उससे दोस्ती करते है, सच पूछिये तो अगर आप उन लोगों को विश्वासघात का घृणित रूप दिखाने की कोशिश करेंगे तो कोई आपकी बात को नहीं समझेगा। जिस क़ैदी के साथ मैंने सारे रिश्ते तोड़ लिए थे, जो किसी ज़माने में शरीफ़ आदमी था, लेकिन अब कमीना और नीच हो गया था, वह मेजर के अर्दली फ़ेद्का का बड़ा दोस्त था और क़ैदियों पर जासूसी करता था। फ़ेद्का क़ैदियों की सारी बातें मेजर को बता देता था। हम सब लोग इस बात को जानते थे, फिर भी किसी को इस बदमाश को सज़ा देने का या उसे डांटने-फटकारने का ख़्याल नहीं आया।

लेकिन मैं अपने विषय से बहक रहा हूँ। वोद्का चोरी से भीतर लाने में क़ैदी सफल भी हो जाते हैं। फिर 'भटियारा' आंतों को ले लेता है और क़ैदी को मजदूरी देने के बाद अपनी लागत का हिसाब लगाता है। अगर उसे लगता है कि वोद्का उसे महँगी पड़ी है तो वह अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए वोद्का में उतना ही पानी और मिला देता है और ग्राहकों को माल सप्लाई करने के लिए तैयार हो जाता है। पहली ही छुट्टी के रोज, कभी-कभी काम के रोज़ भी ग्राहक आ

जाता है। यह वह क़ैदी होता है, जो पिछले कई महीनों से बैल की तरह मेहनत करने के बाद अपनी कमाई को पहले से निश्चित किये गये दिन पर शराब में उड़ाने के लिए आता है। वह बदक़िस्मत आदमी दिन-रात इसी दिन के सपने देखता रहा है और इसी आकर्षण ने उसके नीरस क़ैदी जीवन में उत्साह का संचार किया है। आखिर वह मुबारक दिन आ पहुँचता है। क़ैदी ने पैसा बचा रखा है, उसकी चोरी नहीं हुई, न ही किसी ने पैसा निकाल लिया है। वह पैसा लेकर 'भटियारे' के पास आता है। शुरू में तो भटियारा उसे बिना मिलावट की वोद्का देता है, यानी जिसमें सिर्फ़ दो ही बार पानी मिला होता है, लेकिन ज्यों-ज्यों बोतल खाली होती जाती है, वह उसमें पानी भरता है। जेल में वोद्का के एक जाम की क़ीमत शराबखाने से पांच या छः गुना ज्यादा होती है। अब आप कल्पना कर सकते हैं कि नशे के बिन्दु तक पहुँचने के लिए एक आदमी को कितनी वोद्का पीनी पड़ती होगी और कितना खर्च करना पड़ता होगा, लेकिन पीने की आदत भूल जाने से और वोद्का से इतने लम्बे अर्से तक वंचित रहने के बाद क़ैदी को जल्द ही नशा आ जाता है और वह तब तक पिये चला जाता है जब तक उसकी सारी कमाई खर्च नहीं हो जाती। इसके बाद वह अपने सारे नये कपड़े बाहर निकालता है। भटियारे के पास क़ैदी चीजें गिरवीं भी रखते हैं। पहले तो क़ैदी अपनी नई चीजें निकालता है, फिर पुरानी चीजों को। अन्त में जेल के कपड़ों की नौबत आ जाती है। आखिरी चीथड़ा तक गिरवीं रखकर शराब पीने के बाद नशे में धुत्त क़ैदी सो जाता है और अगले दिन सुबह उठते ही उसका सिर दर्द से फटने लगता है, जो कि अनिवार्य है। वह भटियारे से एक घूँट वोद्का के लिए मिन्नत करता है, ताकि उसके शरीर में ताक़त आ जाये, लेकिन उसकी कोई सुनवाई नहीं होती। शोक-भरे दिल से वह कड़वा घूँट पीकर रह जाता है और उसी दिन से फिर काम में जुट जाता है और लगातार कई दिनों तक मेहनत करता है, और ऐय्याशी के उस दिन के सपने देखता है जो सदा के

लिए चला गया है और धीरे-धीरे फिर उसकी हिम्मत लौट आती है और वह ऐसे ही एक और दिन की इन्तज़ार करने लगता है जो अभी बहुत दूर है—लेकिन वक्त आने पर कभी ज़रूर आयेगा।

और उधर भटियारा, अपना मुनाफ़ा बनाने के बाद—कुछ दर्जन रूबल का मुनाफ़ा—आख़िरी बार वोद्का निकालता है, उसमें पानी की एक बूँद भी नहीं मिलाता क्योंकि यह उसके अपने पीने के लिए होती है—उसने काफ़ी व्यापार कर लिया है, अब उसके ऐश करने का भी वक्त आ गया है ! अब शराब, खाना और संगीत का अन्धा दौर चलता है, इतने साधनों से कई बार वह जेल के छोटे अफ़सरों का दिल भी नर्म कर देता है। यह ऐश अक्सर कई दिनों तक चलती है। वह सारी वोद्का पी जाता है, फिर वह उड़ाऊ क़ैदियों और भटियारों के पास जाता है जो उसकी फ़िराक़ में रहते हैं। वह अपनी आख़िरी पाई तक शराब में फूँक देता है ! क़ैदी नशे में धुत् साथी को कितनी ही सावधानी से क्यों न छिपाएँ कभी-कभी बड़ा अफ़सर—मेजर या ड्यूटी पर तैनात अफ़सर उसे देख लेता है। उसे गारदघर में ले जाया जाता है। अगर उसके पास कोई रक़म हुई तो वह छीन ली जाती है और उसे कोड़ों से पीटा जाता है। क़ैदी उठकर अपने बदन को हिलाता है, जेल में वापिस लौटकर कुछ हफ़्ते बाद फिर वोद्का का कारोबार शुरू कर देता है। कुछ रंगीली तबीयत के आदमी, जिनके पास ख़ूब पैसा रहता है, औरतों के सपने भी देखते हैं। अपने साथ जाने वाले पहरेदार को बड़ी रिश्वत देकर वे काम पर जाने की बजाय पहरेदार को लेकर चोरी से शहर में चले जाते हैं। शहर के सबसे दूर कोने पर सड़क से दूर एक छोटा-सा मकान है जहाँ बड़े पैमाने पर महफ़िल जमती है। अगर क़ैदी के पास पैसा हो तो उससे भी नफ़रत नहीं की जाती। पहले से ही ऐसे कामों के लिए उपयुक्त पहरेदार चुना जाता है। ऐसे पहरेदार अक्सर जेल के भावी उम्मीदवार होते हैं, लेकिन पैसे की ख़ातिर इन्सान कुछ भी कर सकता है; इसलिए ऐसे अभियान हमेशा

गुप्त ही रहते हैं। मैं यह जरूर कहूँगा कि ऐसे अभियान बहुत विरले होते हैं। इनके लिए बहुत पैसा चाहिये, इसलिये नारी जाति के भक्त कई और तरीक़े अपनाते हैं, जिनमें कोई खतरा नहीं रहता।

जेल में आते ही एक खूबसूरत लड़के को देखकर, ख़ासतौर पर मेरी जिज्ञासा जागृत हुई थी। इसका नाम सिरोत्कीन था। कई बातों में वह एक पहेली था। सबसे पहले मेरा ध्यान उसके खूबसूरत चेहरे की तरफ़ गया। उसकी उम्र तेईस बरस से ज़्यादा नहीं थी। वह 'स्पैशल डिवीज़न' में अर्थात् उम्र-क़ैदियों में से था, जिसका मतलब है कि उसे सबसे ज़्यादा खतरनाक फ़ौजी क़ैदियों में से समझा जाता था। वह बड़ा नम्र और शिष्ट था, बहुत कम बातें करता था और शायद ही कभी हँसता था। उसकी आँखें नीली थीं, नाक-नक़्शा दुरुस्त था, चेहरा नाज़ुक और पारदर्शी था, बाल सुनहरे थे। वह इतना खूबसूरत था कि आधे मुंडे हुए सिर ने भी उसकी शक्ल को नहीं बिगाड़ा था। उसे कोई कारोबार नहीं आता था, लेकिन उसके पास अक्सर पैसे रहते थे, हालाँकि ज़्यादा नहीं। कोई भी देख सकता था कि वह आलसी आदमी था। उसके कपड़े अस्त-व्यस्त और मैले रहते थे। लेकिन कभी-कभी कोई क़ैदी उसे बढ़िया कपड़े पहनने के लिए दे देता था, यहाँ तक कि लाल रंग की कमीज़ भी। और सिरोत्कीन नये कपड़ों से बेहद खुश दिखाई देता और सबके सामने शान दिखाने के लिए जेल-भर में मटकता फिरता। वह न शराब पीता था न जुआ खेलता था, और शायद ही किसी से उसका झगड़ा हुआ हो। वह जेल के पिछवाड़े में, अपनी दोनों जेबों में हाथ डालकर खामोश और स्वप्निल भाव से चहलक़दमी किया करता था। वह क्या सपने देखता था, इसका अनुमान लगाना कठिन है। अगर कभी कोई जिज्ञासावश उसे बुलाकर कोई सवाल पूछता तो वह फ़ौरन, आदरपूर्वक, क़ैदियों की तरह नहीं, जवाब देता था; लेकिन वह किसी से बातें करना पसन्द नहीं करता था और उसके जवाब बहुत संक्षिप्त होते थे। ऐसे मौक़ों पर वह दस बरस के बच्चे की तरह मासूम आँखों से देखता

था। जब उसके पास पैसे होते थे, तो वह जरूरत की कोई चीज नहीं खरीदता था, न अपने कोट की मरम्मत करवाता था, न ही नये बूटों का आर्डर देता था, बल्कि सात बरस के बच्चे की तरह मीठी रोटी और रोल्ज़ ख़रीदकर खाता था। कई बार क़ैदी उससे कहते थे, "अरे सिरोत्कीन ! तुम निरे यतीम[1] हो ! अकेले !" काम के घंटों में भी कुछ देर वह जेल की बैरकों में घूमा करता था। बाक़ी सारे लोग काम करते थे, सिर्फ़ वही निकम्मा आदमी था। अगर उससे कोई कुछ कहता, या ताना मारता (उसकी डिवीज़न के क़ैदियों का मजाक उड़ाया जाता था) तो वह वापिस मुड़ जाता था और बिना कुछ कहे किसी और कमरे में चला जाता था। अगर कभी उसका ज़्यादा मजाक उड़ाया जाता तो उसका चेहरा सुर्ख़ हो जाता था। मुझे अक्सर ताज्जुब होता था कि ऐसे शान्त स्वभाव का सरल हृदय जीव जेल में कैसे आ गया। एक बार मैं हस्पताल में क़ैदियों के वार्ड में भर्ती हुआ था। सिरोत्कीन भी बीमार था और उसका बिस्तर मेरे बिस्तर के बिल्कुल क़रीब था। एक दिन शाम को हम दोनों में बातचीत हो गई। न जाने कैसे उसे बोलने का उत्साह आ गया और उसने मुझे बताया कि किस तरह उसे फ़ौज में भर्ती कर लिया गया था, उससे विदा लेते वक्त उसकी माँ कैसे रोई थी और रंगरूट बनकर वह कितना दुखी रहता था। साथ ही उसने यह भी बताया कि वह रंगरूट की जिन्दगी बर्दाश्त न कर सका, क्योंकि फ़ौज में सब लोग सख़्त और बदमिज़ाज थे और उसके अफ़सर तो हमेशा ही उससे नाराज रहते थे।

"तो फिर तुम्हारी फ़ौजी जिन्दगी ख़त्म कैसे हुई ? तुम यहाँ कैसे आये ? और फिर स्पैशल डिवीज़न में—आह, सिरोत्कीन, सिरोत्कीन !" मैंने पूछा।

"वाह, बटालियन में मैं सिर्फ़ एक ही साल तो रहा था,

---

१. रूसी भाषा में सिरोता शब्द का अर्थ यतीम है।

पेत्रोविच ! और मैं इसलिये यहाँ आया, क्योंकि मैंने अपने कमांडिंग अफ़सर को क़त्ल कर दिया था।"

"मैंने भी यह बात सुनी थी, सिरोत्कीन, लेकिन मैं इस पर विश्वास नहीं कर सकता। भला तुम किसी को कैसे मार सकते थे ?"

"लेकिन ऐसा हो गया, अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच। बाद में मुझे सख्त अफ़सोस हुआ।"

"लेकिन और रंगरूट किस तरह गुज़ारा करते हैं ? शुरू में ज़रूर उन्हें तकलीफ़ होती होगी, लेकिन वे उस ज़िन्दगी के आदी हो जाते हैं और अन्त में ये शानदार सिपाही बन जाते हैं, ज़रूर तुम्हारी माँ ने तुम्हें बिगाड़ा होगा। अट्ठारह बरस की उम्र तक उसने तुम्हें दूध और मिठाई पर पाला होगा।"

यह सच है कि मेरी माँ मुझ से बहुत प्यार करती थी। जब मैं रंगरूट भर्ती होकर गया तो उसने बिस्तर पकड़ लिया और मैंने सुना है कि वह कभी वहाँ से नहीं उठ सकी......जब मैं रंगरूट बन गया तो ज़िन्दगी मेरे प्रति बड़ी कठोर हो गई। मेरा अफ़सर मुझे पसन्द नहीं करता था, हमेशा मुझे सज़ा देता रहता था—किस लिए ? मैं हर किसी से शराफ़त से पेश आता था, वक्त का पाबन्द था, वोद्का को छूता तक नहीं था, कोई ऐब मैंने नहीं सीखा था। आप जानते हैं, अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच, जब आदमी ऐब सीखता है तो कितना बुरा होता है। चारों तरफ इतनी क्रूरता हो और इन्सान को जी भर कर रोने का भी मौक़ा न मिले तो कैसा लगेगा ! अक्सर मैं कोने में छिपकर रोया करता था। अच्छा तो, एक बार मैं सन्तरी की ड्यूटी पर था। रात का वक्त था। मुझे शस्त्रागार पर तैनात किया गया था। ठंडी हवा चल रही थी, पतझड़ का मौसम था। घटाटोप अन्धेरा छाया था और मेरा मन ऊब गया था, बेहद ऊब गया था। मैंने अपनी बन्दूक ज़मीन पर खड़ी कर दी और संगीन उतार कर एक तरफ़ रख दी, अपना दायाँ बूट

उतार दिया, बन्दूक की नली मैंने अपने सीने से लगाई और झुककर अपने पैर के अँगूठे से घोड़ा दबाया। निशाना चूक गया। मैंने बन्दूक को अच्छी तरह देखा, छेद को साफ़ किया, नली में ताज़ा बारूद भरा और फिर उसे सीने से लगाकर चलाया। आप विश्वास करेंगे, क्या हुआ? बारूद तो जल गया लेकिन बन्दूक फिर नहीं चली। मेरी समझ में नहीं आया कि आख़िर माजरा क्या है। मैंने अपना बूट फिर पहन लिया, बन्दूक पर संगीन चढ़ा ली और चुपचाप इधर से उधर चहल-क़दमी करने लगा। उसी वक्त मैंने मन ही मन उस काम का फ़ैसला कर लिया था। मैं बस किसी तरह उस जगह से मुक्ति पाना चाहता था। मुझे और चाहे कहीं भी भेज दिया जाये, इसकी मुझे परवाह नहीं थी। आधे घंटे बाद मेरा अफ़सर घोड़े पर सवार होकर वहाँ आया। वह निरीक्षण करने आया था। वह सीधा मुझ पर झपटा "क्या इस तरह खड़े होकर सन्तरी की ड्यूटी बजाई जाती है?" मैंने हाथों में बन्दूक उठा ली और पूरी की पूरी संगीन उसके शरीर में भोंक दी। मैं पूरे चार हज़ार मील दूर से आया हूँ, मुझे उम्र-क़ैद मिली है...।"

वह झूठ नहीं बोल रहा था। और भला किस जुर्म के लिए उसे उम्र-क़ैद मिल सकती थी? मामूली जुर्मों की तो कहीं कम सजा दी जाती है। लेकिन उम्र-क़ैद वालों में से सिर्फ़ सिरोत्कीन ही इतना ख़ूबसूरत था। बाक़ियों की सूरतें, जिनकी संख्या पन्द्रह के क़रीब थी, बड़ी भयानक थीं, सिर्फ दो या तीन ही उनमें से ऐसे थे, जिनकी सूरतों की तरफ देखना आप बर्दाश्त कर सकते थे। बाक़ी सबकी सूरतें बड़ी घिनौनी और बदसूरत थीं और उनके कान लम्बे थे। उनमें से कुछ सफ़ेद बालों वाले बूढ़े भी थे। अगर सम्भव हुआ तो बाद में मैं इन लोगों का ज़िक्र करूँगा। सिरोत्कीन की दोस्ती अक्सर गैज़िन नाम के उस क़ैदी से रहती थी, जिसके बारे में मैं इस परिच्छेद के शुरू में ही बता चुका हूँ कि किस तरह वह नशे में धुत्त होकर लड़खड़ाता हुआ बावर्ची-

खाने में आया था और उसे देखकर जेल-जीवन के बारे में मेरी पूर्व निश्चित धारणाएं बदल गई थीं।

यह गैज़िन बड़ा भयंकर आदमी था। उसे देखकर सब लोगों के मन पर बड़ा आतंकपूर्ण और दुखदायी प्रभाव पड़ता था। मुझे हमेशा ऐसा लगता था कि संसार में उससे ज्यादा खूंखार राक्षस कोई नहीं हो सकता। तोवलोस्क में मैंने कामानेव नाम का डाकू देखा था, जो अपने जुर्मों के लिए मशहूर था। बाद में मैंने एक फ़ौजी भगोड़े सोकोलोव को भी देखा था, जिस पर कई भयंकर क़त्लों के लिए मुक़दमा चल रहा था, लेकिन उन दोनों में से मुझे कोई भी इतना घृणित नहीं मालूम हुआ था जितना कि गैज़िन था। कई बार मुझे ऐसा लगता कि मैं किसी मानवाकार मकड़े को देख रहा हूँ। वह तातार था, उसके शरीर में भयंकर ताक़त थी। जेल में वही सबसे ज्यादा ताक़तवर आदमी था। उसका क़द औसत से कहीं लम्बा था, दानवाकार देह थी और सिर बड़ा ही कुरूप, लम्बा और बेढब था। वह कमर झुका-कर चलता था और गुस्से-भरी आँखों से सबकी तरफ़ देखता था। जेल में उसके बारे में तरह-तरह की अफ़वाहें फैली थीं। कहा जाता था कि वह सिपाही था, लेकिन क़ैदी आपस में कहते थे, पता नहीं इस बात में कितनी सच्चाई थी कि वह नर्चिन्स्क से भागा हुआ क़ैदी था और उसे कई बार साइबेरिया भेजा गया था और वह कई बार वहाँ से भाग निकला था और कई बार उसने अपना नाम बदला था, और अन्त में उसे उम्र-क़ैद की सजा देकर हमारे जेल में भेजा गया था। यह भी कहा जाता था कि उसे छोटे-छोटे बच्चों की हत्या करने में बड़ा आनन्द मिलता था। वह किसी बच्चे को किसी सुविधाजनक स्थान पर बुलाकर उसे डराता और यंत्रणा देता था, और निरीह बच्चे के आतंक का पूरा आनन्द उठाने के बाद उसे धीरे-धीरे छुरे से मारता था। इसमें उसे बड़ा आनन्द मिलता था। गैज़िन को देखकर सभी के मन में इस तरह का आतंक पैदा होता था, शायद इसीलिए यह कहानियाँ गढ़ी गई थीं। लेकिन

ये कहानियां ग़ैज़िन की सूरत और स्वभाव से बिल्कुल मेल खाती थीं। फिर भी आमतौर पर जब वह नशे में नहीं होता था, जेल में उसका व्यवहार बड़ा संयत होता था। वह हमेशा ख़ामोश रहता था, किसी से नहीं झगड़ता था, लड़ाई-झगड़े से बचता था, लेकिन ऐसा मालूम होता था कि औरों के लिए उसके मन में तिरस्कार का भाव है। वह अपने को बाक़ी लोगों से ऊँचा समझता था इसीलिए इतना ख़ामोश रहता था। वह बहुत कम बोलता था और जान-बूझकर दूर-दूर रहता था। उसकी आँखों से पता चलता था कि वह बड़ा होशियार और चालाक आदमी था। उसकी हर गतिविधि में ख़ामोशी और आत्म-विश्वास था। उसके चेहरे और मुस्कराहट में एक अहंकारपूर्ण तिरस्कार और क्रूरता थी। वह वोद्का का व्यापार करता था और जेल के सबसे धनी व्यापारियों में से था। लेकिन साल में दो बार वह ख़ुद भी नशा करता था, उस वक्त उसके स्वभाव की सारी पाशविकता प्रकट हो जाती थी। ज्यों-ज्यों उस पर सरूर चढ़ता जाता था, पहले तो वह लोगों को ईर्ष्या-भरे, नीच ढंग से ताने मारता था, जो उसने शायद बहुत पहले से सोच रखे थे, बाद में जब पूरा नशा चढ़ जाता था तो वह क्रोध से अंधा हो जाता था और छुरा उठाकर लोगों पर झपटता था। क़ैदी उसकी भयंकर शक्ति से परिचित थे इसलिए वे भागकर इधर-उधर छिप जाते थे। उसे जो भी नज़र आता था, उसी पर वार करता था। लेकिन जल्द ही लोगों को उस पर क़ाबू पाने का तरीक़ा आ गया। ग़ैज़िन के वार्ड के एक दर्जन आदमी फ़ौरन पकड़कर उसे पीटते थे। इससे ज़्यादा क्रूर दृश्य की कल्पना नहीं की जा सकती। वे उसके सीने पर, दिल पर, पेट पर, ज़ोर-ज़ोर से बहुत देर तक घूँसे मारते रहते थे, जब वह बेहोश होकर लाश की तरह लुढ़क पड़ता था, तब कहीं जाकर उसकी पिटाई ख़त्म होती थी। किसी और क़ैदी की इतनी पिटाई नहीं हो सकती थी, क्योंकि इतने में उसकी जान निकल जाती, लेकिन ग़ैज़िन की बात और थी। बेहोश होने पर

वे ग़ैज़िन को एक पोस्तीन में लपेट कर बिस्तर पर लिटा देते थ। "सोने से इसका नशा उतर जायेगा" और सचमुच अगले दिन वह फिर भला-चंगा होकर उठ खड़ा होता था और काम पर चला जाता था। ख़ामोश और ग़ुस्सैल। हर बार जब ग़ैज़िन शराब पीता था, तो सब लोग समझ जाते थे कि उसकी पिटाई होगी। वह खुद भी इस बात को जानता था, फिर भी खूब पीता था। यह सिलसिला कई बरसों तक चलता रहा। आख़िर देखा गया कि ग़ैज़िन की हिम्मत टूटने लगी। वह तरह-तरह के दर्दों की शिकायत करने लगा, कमज़ोर होता गया और अक्सर हस्पताल में रहने लगा। क़ैदियों ने आपस में कहा, "ग़ैज़िन ख़त्म हो रहा है।"

वह बावर्चीख़ाने में आया। उसके पीछे-पीछे वायलिन बजाने वाला घिनौना पोलिश क़ैदी भी था, जिसे 'रंगरेलियाँ मनाने वाले' अपना आनन्द बढ़ाने के लिए किराये पर लाते थे। ग़ैज़िन कमरे के बीचोंबीच खड़ा होकर चुपचाप ग़ौर से सब लोगों का निरीक्षण करने लगा। सब ख़ामोश रहे। उसकी नज़र मुझ पर और मेरे साथी पर गई। उसने हमारी तरफ़ तिरस्कार और प्रतिहिंसा-भरी नज़रों से देखा और अहंकार से मुस्कराता हुआ कुछ सोचने लगा। फिर लड़खड़ाते क़दमों से वह हमारी मेज के पास आया।

"इस दावत के लिए तुम्हें पैसे कहाँ से मिले, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ?" उसने कहना शुरू किया (वह रूसी ज़बान बोलता था)।

मैं ख़ामोश रहा। मेरे साथी की नज़रें मेरी नज़रों से टकराईं। हम दोनों ने फ़ैसला किया कि ख़ामोश रहना ही सबसे अच्छा होगा। अगर हम उसकी बात काटते तो वह ग़ुस्से से पागल हो जाता।

"अच्छा, तो तुम्हारे पास पैसा है, क्यों? खूब पैसा है, क्यों? तुम लोग जेल में इसलिए आए हो कि बैठकर चाय उड़ाओ! बोलो भी! लानत है तुम पर!" उसने सवाल किये।

लेकिन यह देखकर कि हम लोगों ने ख़ामोश रहने का फ़ैसला किया

है, उसका चेहरा सुर्ख हो गया और वह गुस्से में काँपने लगा। उसके पास ही कोने में एक बड़ी-सी थाली रखी थी, जिसमें क़ैदियों के खाने के लिए रोटियाँ काटकर रखी जाती थीं। इस थाली में जेल के आधे क़ैदियों की रोटी आ जाती थी। इस वक्त यह थाली खाली पड़ी थी। गैज़िन ने दोनों हाथों से थाली उठाकर हमारे सिरों की तरफ़ निशाना साधा। अगले ही क्षण हम दोनों के सिर फूट गये होते। सब क़ैदी डर रहे थे कि आज कोई न कोई हत्या होगी, जिसके बहुत बुरे नतीजे निकलेंगे। इसके बाद जाँच-पड़ताल, तलाशियाँ और सख्तियाँ होंगी, इसलिए क़ैदियों ने पूरी कोशिश की थी कि मामला उस हद तक न बढ़ने पाये। लेकिन इस कोशिश के बावजूद भी इस वक्त सब खामोश थे। हम लोगों के पक्ष में एक भी शब्द नहीं कहा गया। गैज़िन को एक बार भी किसी ने नहीं डाँटा। वे हम लोगों से इतनी नफ़रत करते थे। जाहिर था कि हमारी खतरनाक हालत देखकर उन्हें खुशी हो रही थी, लेकिन बिना किसी दुर्घटना के बला टल गई। वह थाली मारने ही वाला था कि कोई बरामदे से चिल्लाया "गैज़िन! वोद्का की चोरी हो गई।" गैज़िन ने थाली फ़र्श पर पटक दी और पागलों की तरह बावर्चीखाने से बाहर भागा।

"चलो, ईश्वर ने आज इन लोगों की जान बख़्श दी।" क़ैदी आपस में कहने लगे।

बहुत दिनों तक क़ैदियों की ज़बान पर यही शब्द रहे। मैं यह नहीं मालूम कर सका कि वोद्का की चोरी की खबर सच्ची थी या हम लोगों को बचाने के लिए गढ़ी गई थी।

शाम को अंधेरे के बाद, जब बैरक का ताला अभी बन्द नहीं हुआ था, मैं चहारदीवारी के चक्कर काटने लगा और मेरे मन में एक गहरी उदासी छा गई। अपने सारे बन्दी-जीवन में ऐसी उदासी मुझे फिर कभी महसूस नहीं हुई। क़ैद का पहला दिन चाहे वह जेल हो, किला हो या साइबेरिया हो मुश्किल से बर्दाश्त होता है·········लेकिन मुझे याद

है, सबसे ज्यादा एक ख्याल मेरे दिमाग में छाया हुआ था और जब तक मैं जेल में रहा, यह ख्याल छाया रहा। यह एक ऐसी कठिन समस्या थी जिसका हल मैं आज तक नहीं ढूँढ सका। एक ही जुर्म के लिए असमान की सजाएँ क्यों दी जाती हैं। यह सच है कि जुर्मों की आपस में कोई तुलना नहीं की जा सकती। मिसाल के लिए मान लीजिए कि दो आदमी क़त्ल करते हैं। दोनों क़त्लों की सारी परिस्थितियों पर ग़ौर किया जाता है, फिर भी दोनों जुर्मों की सज़ा क़रीब-क़रीब एक ही होती है। लेकिन ज़रा देखिये, इन जुर्मों में कितना फ़र्क़ है। एक आदमी बड़ी मामूली-सी चीज़ के लिए क़त्ल करता है, सड़क पर जाते हुए एक किसान का क़त्ल करता है, लेकिन उस किसान के पास से एक प्याज़ से ज्यादा कुछ नहीं मिलता। "देखा पिता, आपने मुझे लूट का माल लाने भेजा था, मैंने एक किसान का क़त्ल किया है और मुझे सिवा एक प्याज के कुछ नहीं मिला!" "बेवक़ूफ़! एक प्याज़ का मतलब है एक कोपेक! सौ क़त्लों का मतलब है, सौ प्याज, और लो तुम्हारे पास एक रूबल हो गया!" (जेल में प्रचलित कथा) दूसरा आदमी अपनी मंगेतर की बहन की या अपनी बेटी की रक्षा के लिए किसी कामुक अत्याचारी का क़त्ल करता है। तीसरा आदमी जो भागकर आया है पीछा करने वालों से घिर जाता है और अपनी आज़ादी के और ज़िंदगी के लिए क़त्ल करता है, और चौथा आदमी इसलिए क़त्ल करता है क्योंकि छोटे बच्चों को क़त्ल करने में उसे आनन्द मिलता है, बच्चों के ख़ून से अपने हाथ रंगने में, उनका आतंक देखने में, छुरे के नीचे कबूतर की तरह उनकी आख़िरी छटपटाहट देखने में उसे आनन्द मिलता है। फिर भी इन सारे व्यक्तियों को एक ही तरह की उम्र-क़ैद की सज़ा दी जाती है।

यह सच है कि सज़ा की मियाद में ज़रूर फ़र्क़ होता है, लेकिन यह फ़र्क़ बहुत कम होता है, हालाँकि एक ही जुर्म की असंख्य क़िस्में होती हैं। उन क़िस्मों में उतना ही फ़र्क़ होता है, जितना कि इन्सानों के चरित्र में। सबकी रंगत अलग-अलग होती है। लेकिन चलिये, हम मान

लेते हैं कि इस असमानता को दूर करना संभव नहीं है और यह एक ऐसी समस्या है, जिसे सुलझाया नहीं जा सकता, जिस तरह गोल वृत्त को चौकोर नहीं बनाया जा सकता।

इसके अलावा एक और असमानता को देखें। सज़ा के असर में कितनी असमानता है। एक आदमी मोमबत्ती की तरह जलकर ख़त्म हो जाता है, तड़प-तड़पकर सूख जाता है, दूसरे आदमी को जेल में आने से पहले इस बात का बिल्कुल आभास नहीं था कि यहाँ ज़िन्दगी इतनी मज़ेदार हो सकती है और उसे दुनिया में इतने उत्साही लोगों की सोहबत भी प्राप्त हो सकती है। हाँ, जेल में कुछ ऐसे लोग भी होते हैं। या एक पढ़े-लिखे आदमी की मिसाल लीजिए, जिसके भीतर अन्तरात्मा है, प्रतिभा है, हृदय है। किसी सज़ा से कहीं जल्दी उसके हृदय की पीड़ा उसे मार डालेगी। वह सख़्त से सख़्त क़ानून से भी ज़्यादा निर्दयता से स्वयं अपने आपको सजा देता है। उसके साथ ही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसे अपनी पूरी सजा काट चुकने पर भी अपने जुर्म का ख़्याल नहीं आता। उसे विश्वास है कि उसने ठीक काम किया है। और ऐसे लोग भी होते हैं जो जान-बूझकर जुर्म करते हैं, ताकि उन्हें उम्र-क़ैद मिले क्योंकि जेल से बाहर रहकर उन्हें ज़्यादा मेहनत करनी पड़ती है और वे उस सख़्ती से बचना चाहते हैं। बाहर रहकर उन्हें ज़लालत की ज़िन्दगी बसर करनी पड़ती है, सुबह से लेकर शाम तक अपने शोषक की ख़ातिर काम करने के बावजूद भी उसे भरपेट खाना नहीं मिल पाता। जेल में घर की बजाय हल्की मेहनत करनी पड़ती है, पेटभर रोटी खाने को मिलती है, अच्छे क़िस्म की रोटी, जैसी उन लोगों ने पहले नहीं देखी। छुट्टी के रोज़ गोश्त भी मिलता है, इसके अलावा ख़ैरात मिलती है और कुछ कमाने का भी मौक़ा मिल जाता है। और उन्हें सोहबत मिलती है ऐसे चालाक और तिकड़मी लोगों की, जो सब कुछ जानते हैं, जो निराले हैं। जेल में आने वाला क़ैदी समझता है कि ऐसी ऊँची सोहबत उसे कभी नहीं मिल सकती थी। क्या ऐसे मुजरिमों पर

सजा का एक-सा असर पड़ता है ? लेकिन ऐसे सवालों के साथ, जिनका जवाब नहीं दिया जा सकता, क्यों माथापच्ची की जाए ? नगाड़ा बज रहा है, बैरकों में वापिस लौटने का वक्त हो गया है ।

प्रारंभिक दिनों के संस्मरण

आख़िरी हाज़िरी शुरू हुई। इस हाज़िरी के बाद जेल की बैरकों को ताले लगा दिये जाते हैं और क़ैदी सुबह होने तक बैरकों के भीतर बन्द रहते हैं।

एक सार्जेन्ट और दो सिपाही हाज़िरी लेने के लिए आये थे। कई बार क़ैदियों को सहन में क़तारें बनाकर खड़ा किया जाता था और ड्यूटी पर तैनात अफ़सर भी वहाँ मौजूद रहता था। लेकिन आमतौर पर इस रस्म को ज्यादा घरेलू ढंग से अदा किया जाता था। बैरकों के भीतर ही हाज़िरी ली जाती थी। उस मौक़े पर भी ऐसा ही हुआ। पहरेदारों ने गिनने में ग़लती की और वे जाकर फिर लौट आये, फिर उन बेचारों का हिसाब कहीं जाकर ठीक हुआ और हमारी बैरक में ताला लगा दिया गया। इस बैरक में तीस क़ैदी थे और सारी जगह ठसाठस भरी हुई थी। अभी सोने का वक्त नहीं आया था, इसलिए ज़ाहिर था कि हर आदमी को किसी न किसी काम की ज़रूरत थी।

सारी बैरक में अधिकारियों का एकमात्र प्रतिनिधि वह बूढ़ा सिपाही था, जिसका ज़िक्र मैं पहले कर चुका हूँ। हर बैरक में एक हैड भी होता था जिसे अच्छे चाल-चलन के आधार पर मेजर ख़ुद हैड नियुक्त करता था। कई बार ऐसा भी होता था कि ये हैड क़ैदी कोई न कोई गंभीर शरारत कर बैठते थे। तब उन्हें कोड़े पड़ते थे, उन्हें पदच्युत करके और लोगों को हैड के पद पर नियुक्त कर दिया जाता था। हमारी बैरक का हैड अकिम अकीमिच था। मुझे देखकर ताज्जुब हुआ कि वह अक्सर और क़ैदियों को डाँटता-फटकारता रहता था, क़ैदी जवाब में उसका मज़ाक उड़ाते थे। बूढ़ा सिपाही ज्यादा अक्लमन्द था और

वह क़ैदियों के मामले में किसी क़िस्म का दख़ल नहीं देता था और अगर कभी ज़बान खोलता भी था, तो सिर्फ़ औपचारिक रूप से अपनी अन्तरात्मा को सन्तुष्ट करने के लिये। वह अपने बिस्तर पर बैठा बूट गाँठता रहता था। क़ैदी उसकी तरफ़ बिल्कुल ध्यान नहीं देते थे।

जेल में आकर पहले ही दिन मैंने एक बात देखी और ज्यों-ज्यों वक्त बीतता गया, वह बात सच्ची साबित होती गई। वे तमाम लोग जो ख़ुद क़ैदी नहीं हैं, चाहे वे कोई हों, सन्तरियों, ड्यूटी पर तैनात सिपाहियों से लेकर जिनका क़ैदियों से सीधा सम्पर्क रहता है, वे लोग जिनका जेल की ज़िन्दगी से कभी भी कोई ताल्लुक़ रहा है क़ैदियों के बारे में ग़लत और बढ़ा-चढ़ाकर सोचते हैं, ऐसा लगता है जैसे उनका ख़्याल हो कि क़ैदी अचानक छुरे लेकर उन पर झपट पड़ेंगे। लेकिन असाधारण बात तो यह थी कि ख़ुद क़ैदियों को भी पता था कि लोग उनसे डरते हैं, इससे उनमें एक ख़ास क़िस्म का अहंकार आ गया था। फिर भी क़ैदियों की देखभाल वही आदमी कर सकता है, जो उनसे डरता नहीं, और सचमुच अपने अहंकार के बावजूद क़ैदी उसी को पसन्द करता है जो उस पर विश्वास करता है। इस तरह से क़ैदी का स्नेह भी प्राप्त किया जा सकता है। जितने दिनों मैं जेल में रहा, ऐसा बहुत कम हुआ कि कोई बड़ा अफ़सर बिना पहरेदार को साथ लिए जेल में आया हो। इस बात का क़ैदियों के मन पर कैसा प्रभाव पड़ता था और कैसा अच्छा प्रभाव पड़ता था, यह बात देखने के क़ाबिल थी। ऐसे निर्भय आगन्तुक की वे हमेशा इज्ज़त करते थे और अगर कोई शरारत होनी भी होती थी तो उस आदमी की मौजूदगी में नहीं हो सकती थी। जहाँ कहीं भी क़ैदी होते हैं, लोगों के मन में आतंक छा जाता है, मैं नहीं जानता इसका कारण क्या है? निश्चय ही इसका कोई आधार है, यहाँ तक कि क़ैदी का हुलिया भी इसके लिए ज़िम्मेदार है। क़ैदी समाज का अनिष्ट करता है यह मानी हुई बात है। इसके अलावा जेल के नज़दीक आने वाला हर आदमी

यह महसूस करता है कि क़ैदियों का समुदाय अपनी मर्ज़ी से वहाँ नहीं आया। और चाहे कुछ भी हो जिन्दा आदमी को लाश में नहीं बदला जा सकता। उसकी भावनाएँ, जीवन और प्रतिशोध की प्यास, तीव्र आकांक्षाएँ और उनकी पूर्ति की आकुलता सभी ज्यों की त्यों रहती हैं। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि क़ैदियों से डरने की कोई ज़रूरत नहीं। कोई भी इन्सान दूसरे इन्सान पर छुरा लेकर इतनी आसानी से और इतनी जल्दी नहीं झपटता। दरअसल अगर ख़तरा हो भी और झगड़ा-फ़िसाद हो जाए तो यह घटनाएँ इतनी कम होती हैं कि इनसे साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि जोखिम कितना कम है। मैं तो उन क़ैदियों की बात कर रहा हूँ, जिनमें से अधिकतर इस बात से ख़ुश होते हैं कि चलो आख़िर जेल में पहुँच ही गये (कई बार नई ज़िन्दगी इतनी अच्छी मालूम होती है) और इसका नतीजा यह होता है कि वे शान्ति और खामोशी से वहाँ रहते हैं। इसके अलावा शरारती क़ैदियों को ऐसे लोग शरारत नहीं करने देते। हर क़ैदी, चाहे वह कितना दु:साहसी और गुस्ताख़ क्यों न हो, जेल की हर चीज़ से डरता है। लेकिन जिस मुजरिम को अभी सजा नहीं मिली, उसकी बात अलग है। वह तो निश्चय ही किसी भी बाहर के आदमी पर वार कर सकता है, सिर्फ़ इसलिए क्योंकि अगले दिन उसे कोड़े पड़ेंगे और अगर वह अपने ऊपर नया मुकदमा चलवा सके, तो उसकी सजा स्थगित हो जायेगी। यहाँ हमले के पीछे एक उद्देश्य रहता है, वह है किसी भी क़ीमत पर और जल्द से जल्द "अपनी क़िस्मत बदलना।" मुझे इस क़िस्म की एक अजब मनोवैज्ञानिक मिसाल याद है।

हमारे जेल की मिलिटरी डिवीज़न में एक क़ैदी था, जो पहले सिपाही रह चुका था; जिसे दो बरस की सजा दी गई थी, लेकिन उसे अधिकारों से वंचित नहीं किया गया था। वह बेहद डींग हाँकता था और अपनी भीरुता के लिए मशहूर था। वैसे किसी भी रूसी सिपाही में डींग हाँकने और भीरुता की आदतें नहीं होतीं। हमारे सिपाही इतने

व्यस्त रहते हैं कि चाहने पर भी उनके पास डींग हाँकने का समय नहीं होता; लेकिन अगर कोई आदमी डींग हाँकता है, तो वह हमेशा निकम्मा और डरपोक भी होता है। दूतोव (उस क़ैदी का यही नाम था) अपनी सज़ा भुगतकर अपनी रजीमैंट में चला गया। लेकिन उसकी तरह जो भी जेल में सुधार के लिए भेजा जाता है, यहाँ से भ्रष्ट होकर ही लौटता है। अक्सर ऐसा होता है कि रिहाई के दो-तीन हफ़्तों के भीतर ही वह फिर गिरफ़्तार हो जाता है और जेल में वापिस आ जाता है। इस बार दो या तीन बरस के लिए नहीं, बल्कि 'उम्र' भर के लिए, पंद्रह या बीस बरस की सज़ा पाकर। दूतोव के साथ भी ऐसा ही हुआ। जेल से रिहा होने के तीन हफ़्ते बाद ही दूतोव ने चोरी की, किसी का ताला तोड़ा, साथ ही गुस्ताख़ी और उच्छृंखलता भी दिखाई। उस पर मुकदमा चलाया गया और सख़्त सज़ा दी गई। आने वाली सज़ा की कल्पना से आतंक के मारे उसके प्राण सूख गये। वह डरपोक तो था ही। जिस दिन उसे 'ग्रीन स्ट्रीट' जाना था उससे एक दिन पहले वह छुरा लेकर एक अफ़सर पर झपट पड़ा। उसे निश्चित रूप से मालूम था कि ऐसी हरकत से उसकी सज़ा बहुत लम्बी हो जाएगी, लेकिन वह तो चाहता था कि सज़ा की घड़ी कुछ दिनों के लिए, चाहे कुछ घंटों के लिए ही, किसी तरह टल जाये। वह इतना डरपोक था कि उसने अफ़सर को ज़ख़्मी तक नहीं किया, सिर्फ़ हमला करने की ख़ातिर ही हमला किया, ताकि उस पर एक नये जुर्म के लिए फिर से मुकदमा चलाया जा सके।

सज़ा मिलने से पहले का क्षण मुजरिम के लिए निश्चय ही बड़ा भयंकर होता है। जेल की ज़िन्दगी में बहुत से ऐसे अभागे लोगों को ऐसी परिस्थिति में देखना मेरी क़िस्मत में बदा था। अक्सर जब मैं बीमार होकर हस्पताल पहुँचता था तो ऐसे क़ैदियों से मेरी मुलाक़ात होती थी। रूस-भर में क़ैदी जानते हैं कि डाक्टर लोग ही उनके प्रति सबसे अधिक दयालु हैं। डाक्टर कभी भी क़ैदियों में और दूसरे लोगों

में भेदभाव नहीं करते, जैसा कि जेल के बाहर के सभी लोग, शायद किसानों को छोड़कर करते हैं। किसान कभी भी अपराधी की भर्त्सना नहीं करते, चाहे उसने कितना ही भयंकर अपराध क्यों न किया हो। वे अपराधी को क्षमा कर देते हैं क्योंकि वह दुखी जीव है और अपने किये की सजा भुगत रहा होता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि रूस भर में किसान अपराध को दुर्भाग्य और अपराधी को बदक़िस्मत समझते हैं। इस परिभाषा का गहरा अर्थ है, और यह परिभाषा और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि यह लोगों के अचेत मन में एक सहज वृत्ति के रूप में पैठी हुई है। कई बार तो डाक्टर सचमुच क़ैदियों के लिए, खासतौर पर उन क़ैदियों के लिए जिन्हें सज़ा मिलने वाली होती है, शरणदाता सिद्ध होते हैं; क्योंकि ऐसे क़ैदियों के साथ साधारण क़ैदियों की अपेक्षा कहीं ज्यादा सख्ती बरती जाती है। सजा पाने वाला क़ैदी, भयंकर यंत्रणा की संभावित तारीख़ का अनुमान लगा लेने के बाद, अक्सर हस्पताल में भर्ती होकर उस भयंकर क्षण को टालने की कोशिश करता है। हस्पताल से छुट्टी पाने के बाद जब उसे निश्चित रूप से पता चल जाता है कि यंत्रणा की घड़ी अगले दिन आने वाली है, तो हमेशा उसके मन में भयंकर उत्तेजना पैदा हो जाती है। कुछ क़ैदी अहंकार के कारण अपनी भावनाओं को छिपाने की कोशिश करते हैं, लेकिन उनकी झूठी लापरवाही का फूहड़ प्रदर्शन उनके साथियों को धोखे में नहीं डाल सकता। सब इस स्थिति को समझते हैं, लेकिन इन्सानी हमदर्दी की वजह से चुप रहते हैं।

मैं एक ऐसे नौजवान सिपाही को जानता था जिसे क़त्ल के अपराध में ज्यादा से ज़्यादा कोड़ों की सज़ा मिली थी। वह इतना घबरा गया कि सज़ा से ऐन पहले उसने वोद्का का पूरा एक जग पी लिया, जिसमें उसने पहले से नसवार मिला रखी थी। वैसे मैं यहाँ बता दूँ कि कोड़े खाने से पहले क़ैदी हमेशा वोद्का पीते हैं। सज़ा के दिन से बहुत पहले वोद्का चोरी से जेल के भीतर मँगवाई जाती है। यह बहुत महँगे दामों

पर मिलती है। क़ैदी कोड़े खाने से पंद्रह मिनट पहले वोद्का की एक बोतल पीने की खातिर छः महीने तक जिन्दगी की जरूरी चीज़ों से वंचित रहने के लिए तैयार रहते हैं। क़ैदियों में यह विश्वास प्रचलित है कि शराब के नशे में कोड़ों की या डंडों की मार कम महसूस होती है, लेकिन मैं अपनी असली कहानी से भटक रहा हूँ। वह नौजवान सिपाही वोद्का की पूरी सुराही पीने के बाद सचमुच बीमार पड़ गया था। उसे खून की उल्टियाँ शुरू हो गईं और बेहो.ी की हालत में उसे हस्पताल पहुँचाया गया। उस उल्टी ने उसकी छाती पर इतना बुरा असर डाला कि कुछ ही दिनों के भीतर उसमें तपेदिक़ के निश्चित लक्षण प्रकट हो गये और छः महीने बाद ही तपेदिक़ से उसकी मौत हो गई। जो डाक्टर उसका इलाज कर रहे थे, उन्हें यह पता नहीं चला कि मरीज़ को तपेदिक़ किस कारण से हुआ।

लेकिन सज़ा से पहले क़ैदी की भीरुता की चर्चा करते हुए मैं यह जरूर कहूँगा कि कुछ क़ैदी तो इतने निर्भीक होते हैं कि देखने वाला चकित रह जाता है। मुझे कुछ ऐसे क़ैदियों की मिसालें भी याद हैं, जिनका दुःसाहस संवेदन-शून्यता की हद तक जा पहुँचा था। लेकिन ऐसी मिसालें विरल नहीं थीं। मुझे एक भयंकर क़ैदी के साथ अपनी मुलाक़ात याद है। गर्मी में एक दिन हस्पताल के वार्डों में अफ़वाह फैली कि एक ओर्लोव नाम के मशहूर डाकू और भगोड़े सिपाही को उसी शाम कोड़े पड़ेंगे और बाद में उसे हस्पताल लाया जाएगा। सारे मरीज़ हस्पताल में ओर्लोव के आने के इन्तज़ार में थे और उनका दावा था कि उसे आज बड़ी बेरहमी से सज़ा दी जायेगी। सबके सब उत्तेजित थे और मैं भी यह मानने को तैयार कि मैं भी बड़ी उत्सुकता से उस मशहूर डाकू के आने की राह देख रहा था। मैंने उसके बारे में बहुत पहले से चमत्कारपूर्ण कहानिय सुन रखी थीं। उस जैसे क़ातिल दुनिया में विरले ही होते हैं। उसने निर्ममतापूर्वक अनेक बूढ़ों और बच्चों का क़त्ल किया था—उसकी इच्छाशक्ति अत्यन्त प्रबल थी,

उसे इस बात पर घमंड भी था। उसने बहुत से क़त्ल क़बूल कर लिये थे और उसे डंडों की मार की सज़ा मिली थी।

जब उसे वार्ड में लाया गया तो शाम हो चुकी थी। अंधेरा हो गया था। बैरक में मोमबत्तियाँ जला दी गई थीं। ओर्लोव क़रीब-करीब बेहोश था, उसका चेहरा बुरी तरह पीला पड़ गया था, उसके घने काले बाल बिखरे हुए थे। उसकी पीठ सूजकर नीली पड़ गई थी। क़ैदी रात-भर उसकी परिचर्या करते रहे और लगातार उसे पानी देते रहे। वे उसे इस तरह दवा पिलाते रहे जैसे किसी भाई या शुभचिन्तक व्यक्ति की सेवा कर रहे हों। अगले दिन उसे पूरी तरह होश आ गया और उसने बैरक के दो चक्कर काटे। मुझे यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ। जब वह हस्पताल आया था तो कमजोरी और थकान से उसका बुरा हाल हो रहा था। एक बार में उसे आधे डंडे पड़े थे। डाक्टर ने जब देखा कि डंडे बरसने से वह ज़रूर मर जायेगा तभी जाकर उसने सज़ा रुकवा दी थी। इसके अलावा ओर्लोव दुबला-पतला कमज़ोर आदमी था, और मुक़दमे से पहले लम्बी क़ैद ने उसे चूर-चूर कर दिया था। जिसने भी ऐसे क़ैदियों को कोड़े पड़ने से पहले देखा है, उनके दुबले, पीले और मुर्झाये हुए चेहरे, उनकी उत्तप्त दृष्टि बहुत दिनों तक स्मृति में छाई रहती है। लेकिन ओर्लोव बहुत जल्दी स्वस्थ हो रहा था। साफ़ जाहिर था कि उसकी आत्मा की शक्ति प्रकृति की सहायता कर रही थी। निश्चय ही वह साधारण व्यक्ति नहीं था। मेरे मन में उसे नज़दीक से जानने की इच्छा हुई। एक हफ़्ते तक मैं उसे ग़ौर से देखता रहा। मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मैंने अपनी सारी जिन्दगी में इतनी प्रबल इच्छा-शक्ति वाला व्यक्ति कभी नहीं देखा था। उसमें लौह-शक्ति थी। तोबोल्स्क में मैंने इसी तरह का एक मशहूर डाकुओं का सरदार देखा था। वह तो निरा जंगली जानवर था, उसके नज़दीक खड़े होने वाले व्यक्ति को ऐसा महसूस होता था, जैसे वह किसी भयंकर जन्तु के पास खड़ा है। उसका नाम मालूम होने से पहले ही इस तरह की भावना

मन में उठती थी। लेकिन उसकी मरी हुई आत्मा को देखकर मेरा हृदय ग्लानि से भर उठता था। उसकी आत्मा पर पाशविक वृत्तियाँ इस तरह छा गई थीं कि उसके चेहरे को एक बार देखकर ही आप भाँप सकते थे कि वहाँ शारीरिक तृप्ति की पाशविक लालसा—कामुकता और पेटू-पन के सिवा कुछ न था। मुझे पूरा यक़ीन है कि कोरेनेव—डाकुओं के उस सरदार का यही नाम था—कोड़ों की मार के आगे ज़रूर घबरा जाता और डर से काँपने लगता, हालांकि वह बेझिझक किसी भी आदमी का गला काट सकता था।

ओर्लोव इससे ठीक विपरीत था। उसने तो जैसे अपनी इन्द्रियों के ऊपर संपूर्ण विजय पा ली थी। उसकी संयम-शक्ति असीमित थी, वह हर सज़ा और यंत्रणा को तिरस्कारपूर्वक देखता था और संसार में किसी चीज़ से नहीं डरता था—यह साफ़ ज़ाहिर था। हम लोगों को उसमें सिर्फ़ असीम शक्ति, लड़ने-भिड़ने और बदला लेने की प्यास और अपने उद्देश्य की प्राप्ति की तीव्र लालसा ही नज़र आती थी। और बातों के अलावा मुझे उसके विचित्र अहंकार पर बड़ा ताज्जुब हुआ था। वह हर चीज़ को बेहद तिरस्कार की नज़र से देखता था। उसका यह उदात्त दृष्टिकोण स्वाभाविक था, जानबूझ कर नहीं बनाया गया था। मेरा ख़्याल है कि संसार का कोई व्यक्ति उस पर रोब नहीं डाल सकता था। वह बड़े शान्तभाव से हर चीज़ को देखता था, मालूम होता था कि उसे कोई भी चीज़ हैरत में नहीं डाल सकती। वह अच्छी तरह जानता था कि बाक़ी क़ैदी उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं, फिर भी वह उनके सामने बनने की कोशिश नहीं करता था, हालांकि अहंकार और रोब की प्रवृत्ति हर क़ैदी में बिना किसी अपवाद के पाई जाती है। वह बड़ा होशियार था, और खुलकर बात करता था, हालांकि वह बातूनी क़तई नहीं था। मेरे सवालों के जवाब में उसने साफ़-साफ़ बताया कि वह अपने स्वस्थ होने का इन्तज़ार कर रहा है, ताकि जल्द से जल्द बाक़ी की सज़ा भी भुगत सके। उसने यह भी बताया कि उसे पहले डर था कि शायद

वह डंडों की मार खाने के बाद जिन्दा नहीं रह सकेगा। उसने मेरी तरफ़ आँख मारकर कहा, "लेकिन अब तो मुसीबत टल गई समझिये। बाक़ी की मार तो मैं हँसी-खुशी सह लूँगा और फिर फ़ौरन नेरशिन्स्क जाने वाली टुकड़ी के साथ रवाना हो जाऊँगा और रास्ते में ही भाग जाऊँगा। मैं ज़रूर भाग जाऊँगा। काश मेरी पीठ के ज़ख़्म जल्द भर जाते।" और उन पांच दिनों में वह उस क्षण का इन्तजार करता रहा जब उसे हस्पताल से छुट्टी मिलेगी और खूब हँसता खेलता रहा। मैंने उसके कारनामों के बारे में उससे बातचीत करने की कोशिश की। ऐसे सवालों को सुनकर उसके माथे पर त्यौरियां चढ़ जाती थीं, लेकिन हमेशा वह साफ़-साफ़ जवाब देता था। जब उसे यह महसूस हुआ कि मैं यह देखने के लिए कि उसके भीतर पश्चाताप का कोई निशान है या नहीं, मैं उसका मन कुरेदकर उसकी अंतरात्मा तक पहुँचने की कोशिश कर रहा हूँ, तो उसने मेरी तरफ़ अहंकार और तिरस्कार-भरी नजरों से इस तरह देखा जैसे मैं उसकी नजरों में अचानक एक बेवकूफ़, छोटा-सा लड़का बन गया होऊँ, जिसके साथ उन बातों पर बहस नहीं की जा सकती जो वयस्क लोगों के साथ की जाती है। उसके चेहरे पर मेरे लिए दया का भाव भी झलक रहा था। अगले ही क्षण वह मेरी तरफ़ देखकर ज़ोर से हँस पड़ा। यह मुक्त हँसी थी, इसमें व्यंग्य का कोई संकेत नहीं था, मुझे पूरा यक़ीन है कि एकान्त में मेरे शब्दों को याद करके शायद वह अनेक बार मन ही मन हँसा होगा। अभी उसकी पीठ के ज़ख़्म भरे भी नहीं थे कि उसे हस्पताल से छुट्टी मिल गई। उसी वक्त मुझे भी छुट्टी मिल गई। संयोगवश हम हस्पताल से एक साथ बाहर निकले। मैं जेल की तरफ़ चला गया और वह जेल के पास बने गारद-घर में जहाँ वह पहले बंद था। विदा लेते वक्त उसने मुझसे हाथ मिलाये, यह उसके आत्मविश्वास का सूचक था। मेरा ख़्याल है कि वह मन ही मन खुश था कि जाने का वक्त आ गया है। वह मुझसे नफ़रत किये बग़ैर नहीं रह सकता था और ज़रूर वह मुझे कमज़ोर, दयनीय, भीरु और

अपने से घटिया आदमी समझता होगा। अगले दिन उसे बाक़ी की आधी सजा भुगतने के लिए ले जाया गया।

जब हमारी बैरक बंद हो जाती थी, तो सहसा उसका रूप बदल जाता था। वह रहने की जगह—घर बन जाती थी। इसी वक्त मैं अपने साथी क़ैदियों का स्वाभाविक, बेतकल्लुफ़ रूप देख पाता था। दिन के समय सार्जेन्ट, पहरेदार और कोई भी अफ़सर किसी भी वक्त जेल में आ सकता था, इसलिए सब क़ैदियों का व्यवहार और ही क़िस्म का रहता था; ऐसा मालूम होता था कि उन्हें कोई परेशानी है और वे लगातार व्यग्र भाव से किसी बात का इन्तज़ार कर रहे हैं। लेकिन बैरक बंद होते ही सब ख़ामोशी से अपनी-अपनी जगह बैठ जाते थे और क़रीब-क़रीब हर आदमी कोई-न-कोई दस्तकारी का काम शुरू कर देता था। अचानक बैरक में रोशनी हो जाती थी। हर क़ैदी के पास अपनी मोमबत्ती और लकड़ी का बना शमादान था। कोई जूते बनाता था और कोई कपड़े सीता था। बैरक की हवा प्रतिक्षण गंदी होती जाती थी। फक्कड़ क़ैदियों की एक टोली एक कोने में रखे क़ालीन पर एड़ियों के बल बैठकर ताश खेलती थी। हर बैरक में एक-न-एक ऐसा क़ैदी रहता था, जो एक गज़ चौड़ा चिथड़ेनुमा क़ालीन, एक मोमबत्ती और बेहद गंदी, चिपचिपी ताश रखता था—इन सब चीज़ों को 'मैदान' कहा जाता था। खिलाड़ियों से एक रात का पन्द्रह कोपेक किराया मिलता था। यह भी एक कारोबार था। खिलाड़ी अक्सर 'तीन पत्ती' और 'पहाड़ी' जैसे खेल खेलते थे। हमेशा पैसे दाँव पर लगाकर ताश खेला जाता था। हर खिलाड़ी अपने सामने ताँबा के सिक्कों की ढेरी लगा लेता था—यही उसकी जेब की सारी रक़म होती थी—और तभी उठता था जब वह आख़िरी कौड़ी तक हार चुकता था या जीत में अपने साथियों के कपड़े तक उतरवा लेता था। बहुत देर रात तक, अक्सर दिन निकलने तक, जब तक बैरक का दरवाज़ा नहीं खुलता था, यह खेल चलता रहता था। सब बैरकों की तरह हमारी बैरक में भी ऐसे भुख-

मरे क़ैदी थे, जो अपना सब कुछ जुए में या शराब में गँवा चुके थे या जो स्वभाव से ही भिखारी थे। मैं उन्हें 'स्वभाव से भिखारी' कहूँगा और इस शब्द पर ख़ास ज़ोर दूँगा। और सचमुच रूस में सब जगह, सारी परिस्थितियों और हर क़िस्म के वातावरण में हमेशा कुछ ऐसे विनीत और आलसी व्यक्ति होते हैं और होते रहेंगे, जिनकी क़िस्मत में हमेशा के लिए अनाथ रहना लिखा है। ऐसे लोगों पर कभी भी परिवार के बंधन नहीं हुआ करते। वे फूहड़ होते हैं और हमेशा दबे-दबे और उदास नज़र आते हैं, हमेशा किसी के इशारे पर नाचते हैं। आमतौर पर कोई आवारा आदमी या वह आदमी जो अकस्मात धनी हो गया है, ऐसे लोगों को अपने इशारों पर नचाता है। उन्हें आदर या ऐसी कोई स्थिति, जिसमें अगुआई करनी पड़े, एक मुसीबत और भार मालूम होती है। उन्हें देख कर ऐसा मालूम होता है कि ईश्वर ने उन्हें इसी शर्त पर पैदा किया है कि वे अपने लिए कुछ न करके सिर्फ़ दूसरों की चाकरी करेंगे; अपने मन-पसन्द का काम न करके सिर्फ़ दूसरों की धुन पर नाचेंगे। दूसरे लोगों के हुक्म का पालन करना ही उनका पेशा होगा। सबसे बड़ी बात तो यह है कि कोई परिस्थिति, भाग्य का कोई भी फेर उन्हें सम्पन्न नहीं बना सकता। वे हमेशा ही भिखारी बने रहते हैं। मैंने देखा है कि ऐसे व्यक्ति सिर्फ़ किसानों में ही नहीं बल्कि समाज के हर वर्ग में, हर दल में, हर संस्था में, हर पत्रिका के स्टॉफ़ में मिलते हैं। हर जेल की हर बैरक में भी यही हालत है। ताश का खेल शुरू होते ही कोई-न-कोई ऐसा अनाथ खिलाड़ियों की सेवा में हाजिर हो जाता है और सच-मुच ऐसे सेवक के बगैर कोई भी ताश का खेल नहीं चल सकता। सब खिलाड़ी मिलकर एक रात के लिए उसे पाँच कोपेक मज़दूरी में देते थे और उसकी मुख्य ड्यूटी रातभर पहरा देना होती थी। वह लगातार छः-सात घंटों तक तीस डिग्री बर्फ़ीले तापमान में खड़े होकर सहन में होने वाली हर खटखटाहट, कदमों की हर आहट और झनझनाहट को कान लगाकर सुनता रहता था। लेकिन कभी-कभी मेजर या जेल के

और अफ़सर रात को देर से चुपके-चुपके बैरक में आ जाते थे और क़ैदियों को खेलते और काम करते हुए देखते थे। सहन से उन्हें अतिरिक्त मोमबत्तियाँ भी नजर आ जाती थीं। खैर, जब बरामदे और सहन के बीच के दरवाज़े के ताले में चाबी घुमाई जाती थी, तो क़ैदियों को इतना मौक़ा नहीं मिल पाता था कि वे फ़ौरन अपने काम और खेल छिपा दें और मोमबत्तियाँ बुझाकर सो जायें। लेकिन बाद में जुआरी लोग सेवक की खूब मरम्मत करते थे, इसलिए ऐसी लापरवाही कम ही होती थी। पाँच कोपेक की रक़म जेल के भीतर भी हास्यास्पद रूप से छोटी होती है, लेकिन जेल में मालिक अपने नौकरों से जिस बेरहमी और कठोरता से पेश आते थे, उसे देखकर मुझे हमेशा बड़ा ताज्जुब होता था। मैं सिर्फ़ इसी प्रसंग की चर्चा नहीं कर रहा। "तुम्हें मज़दूरी मिल गई है इसलिए काम करो," यह एक ऐसी दलील थी जिस पर कोई ऐतराज़ नहीं किया जा सकता था। छोटी-सी मज़दूरी के बदले में मालिक ज्यादा-से-ज्यादा काम लेने की कोशिश करता था, अगर सम्भव हो सके तो ज़रूरत से भी ज्यादा; और इसके बावजूद वह सोचता था कि वह दूसरे लोगों पर एहसान भी कर रहा है। शराब के नशे में चूर, गुलछर्रे उड़ाने वाला क़ैदी, जो पानी की तरह पैसा बहाता है, हमेशा अपने सेवक को पीटता है, यह बात मैंने सभी जेलों में, सभी किस्म की खिलाड़ी मंडलियों में देखी है।

मैं पहले जिक्र कर चुका हूँ कि बैरक के सब लोग किसी-न-किसी काम में जुट जाते थे, ताश खेलने वालों के अलावा मुश्किल से पाँच आदमी ऐसे होंगे जो बिल्कुल निकम्मे थे। वे फ़ौरन सो जाते थे। मेरा बिस्तर दरवाज़े के बिल्कुल पास था। मेरे सिरहाने के पास ही अकिम अकीमिच का बिस्तर था। दस या ग्यारह बजे तक वह एक रंगीन चीनी लालटेन बनाता रहता था, जिसे बनाने के लिए उसे शहर से आर्डर मिला था और अच्छे दाम मिलने की उम्मीद थी। वह लालटेनें बनाने में दक्ष था और बड़े कायदे से, लगातार बिना रुके काम करता था। काम

खत्म करने के बाद वह सारी चीज़ें क़रीने से एक तरफ़ रख देता था और अपना छोटा-सा गद्दा बिछाकर प्रार्थना करता था। फिर शुद्ध अंतः-करण से सो जाता था। उसकी धर्मपरायणता और नियम-पालन की प्रवृत्ति क्षुद्र दम्भ की सीमा तक पहुँच गई थी। साफ़ जाहिर था कि वह अपने को असाधारण रूप से अक्लमंद समझता था, जैसा कि छोटे दिमाग़ के और कुन्द-ज़हन लोग अपने को समझते हैं। मुझे वह पहले दिन से ही अच्छा नहीं लगा, हालांकि मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने पहले दिन ही उसके बारे में बहुत कुछ सोचा था। सबसे ज्यादा ताज्जुब मुझे इस बात पर हुआ कि ऐसा आदमी दुनियादारी करने के बजाय जेल में कैसे चला आया। अभी बाद में मुझे कई बार अकिम अकीमिच का ज़िक्र करना होगा।

लेकिन मैं अपनी बैरक के सभी क़ैदियों का संक्षिप्त परिचय दूँगा। मुझे इस बैरक में अनेक साल गुजारने थे और भविष्य में यही लोग मेरे संगी-साथी होने वाले थे। आप समझ सकते हैं कि मैं उन्हें किस हार्दिक जिज्ञासा से देखता था। मेरी बग़ल में बाईं तरफ़ काकेशस के पहाड़ियों का एक दल था जो यहाँ कई क़िस्म के जुर्मों की, ज्यादातर लूटमार की सज़ाएँ भुगत रहा था। दल के मनुष्यों में दो लेज़गी, एक चेचेनियन और दाग़िस्तान के तीन तातार थे। चेकेनियन बड़ा उदास और गुमसुम रहने वाला आदमी था। वह शायद ही कभी किसी से बात करता था और हमेशा नफ़रत-भरी ज़हरीली नज़रों से सबकी तरफ़ देखा करता था। उसके ओठों पर व्यंग्य और दुर्भावनापूर्ण मुस्कान छाई रहती थी। लेज़गियों में एक लम्बी, पतली, मुड़ी हुई नाक वाला एक बूढ़ा भी था जो देखने में निरा डाकू लगता था, लेकिन दूसरे आदमी नूरा ने पहले दिन से ही मेरे मन पर सुखद और आकर्षक प्रभाव डाला। वह अभी जवान था, उसका क़द दरम्याना था, डीलडौल हरक्लीज़ जैसा था, चेहरा फ़िनलैंड की किसी औरत जैसा था, उसके बाल एकदम पीले थे और नाक चपटी थी। आँखें नीली थीं। जेल से पूर्व की सारी जिन्दगी घुड़सवारी में बिताने

के कारण उसकी टाँगें मुड़ गई थीं। उसके सारे शरीर पर गोलियों और संगीनों के ज़ख्मों के दाग़ थे। कॉकेशस में वह एक मित्र क़बीले का सदस्य था, लेकिन हमेशा चुपके से घोड़े पर सवार होकर शत्रु पहाड़ी क़बीलों की तरफ़ चला जाता था और उनसे मिलकर रूसियों पर हमले किया करता था। जेल में उसे सब लोग पसंद करते थे। वह सबसे अच्छी तरह और खुशमिज़ाजी से पेश आता था। बिना शिकायत किए काम करता था और ख़ामोश और शान्त रहता था, हालांकि अक्सर जेल-जीवन की गंदगी और कुत्सितता को वह क्रोध-भरी निगाहों से देखता था और उसे चोरी, धोखेबाज़ी और पियक्कड़पन से सख्त चिढ़ थी। लेकिन वह किसी से झगड़ता नहीं था, गुस्सा होने पर वह मुँह फेरकर चल देता था। अपनी सारी क़ैद में उसने न कभी कोई चीज़ चुराई न ही कोई बुरा काम किया। वह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का था और बड़ी आस्था से नमाज पढ़ता था। मुसलमानों के पवित्र त्यौहारों पर वह बड़े जोश से व्रत रखता था और रात-रातभर जागकर नमाज़ पढ़ता रहता था। सब लोग उसे चाहते थे और उसकी ईमानदारी में विश्वास रखते थे। "नूरा शेर है," क़ैदी कहा करते थे और 'शेर' शब्द उसके नाम के पीछे जुड़ गया था। उसे विश्वास दिलाया गया था कि सजा पूरी होने पर उसे वापिस उसकी मातृभूमि कॉकेशस में भेज दिया जाएगा। वह सिर्फ़ इसी उम्मीद पर ज़िन्दा था। मेरा ख़याल है कि अगर उसे इस उम्मीद से वंचित रखा जाता तो वह ज़रूर मर जाता। जेल में आने के पहले दिन ही मैंने उसे अच्छी तरह से देखा। बाकी क़ैदियों के कर्कश, क्रुद्ध और व्यंग्य-भरे चेहरों के बीच उसके नेक, हमदर्दी भरे चेहरे की तरफ़ ध्यान न जाता, भला यह कैसे संभव था? मुझे जेल में आये अभी आधा घंटा ही हुआ था कि उसने मेरे पास से गुजरते हुए मेरे कंधे थपथपाये और मेरे क़रीब आकर सहृदयतापूर्वक हँसने लगा। शुरू में मैं उसकी इस हरकत का मतलब न समझ सका। वह अशुद्ध रूसी बोलता था। जल्द ही वह फिर मेरे पास आया और उसने फिर

मुस्कराकर दोस्ताना ढंग से मेरा कंधा थपथपाया। वह लगातार तीन दिनों तक मेरे पास आता रहा और मेरे कंधे थपथपाता रहा। बाद में मैंने अनुमान लगाया और मुझे पता चला कि इसका मतलब यह था कि उसे मुझ पर तरस आ रहा था। वह महसूस करता था कि जेल-जीवन का आदी होने में मुझे कितनी दिक़्क़त हो रही है। वह मेरे प्रति अपनी सद्भावना प्रकट करना चाहता था, मुझे तसल्ली देना चाहता था और इस बात का आश्वासन देना चाहता था कि उसका साया मेरे सिर पर है। सीधा-सादा, नेकदिल नूरा!

जेल में दाग़िस्तान के तीन तातार थे। तीनों भाई थे। उनमें से दो तो अधेड़ उम्र के थे, लेकिन तीसरा अली, सिर्फ़ बाईस बरस का था और देखने में और भी छोटा मालूम होता था। वह मेरी बगल में ही सोता था। शुरू से ही उसके सुन्दर, निश्छल, सीधे-सादे, सहृदयता और बुद्धिमानी से भरे चेहरे ने मेरा मन जीत लिया था। मैंने ऐसा पड़ौसी पाकर अपने भाग्य को सराहा। उसकी आत्मा की संपूर्ण छवि उसके सुन्दर और सजीले चेहरे में नज़र आती थी। उसकी मुस्कान में बड़ी आत्मीयता थी, एक शिशु-सुलभ आस्था थी, उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें इतनी कोमल और दुलार-भरी थीं कि उसकी तरफ़ देखने में मुझे हमेशा एक विशेष प्रकार का आनन्द आता था। मेरी दुर्दशा और उदासी कुछ कम हो जाती थी, इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं। जब वह अपने वतन में था, उसके पाँच बड़े भाई थे; बाक़ी दो दंडितों के किसी कारखाने में भेज दिये गये थे—तब उसके एक भाई ने हुक्म दिया कि वह अपनी तलवार लेकर घोड़े पर सवार हो जाये और उनके साथ किसी अभियान पर चले। पहाड़ी लोग बड़े भाई की इतनी ज़्यादा इज्ज़त करते हैं कि उस लड़के में यह तक पूछने की हिम्मत न हुई—न ही कभी उसे ख़्वाब में भी हो सकती थी—कि वे लोग कहाँ जा रहे हैं। बाकी लोगों ने भी उसे यह बताना आवश्यक न समझा। वे लूट-मार करने जा रहे थे, एक धनी आर्मेनियन सौदागर को रास्ते में रोककर लूटने के लिए, और सचमुच

उन्होंने ऐसा ही किया। मार्ग-रक्षकों की और आर्मेनियन सौदागर की हत्या करने के बाद वे उनका सामान लूटकर ले आये। लेकिन इस मामले का भण्डा फूट गया, छहों जने पकड़े गये। उन पर मुकदमा चला। उन्हें कालेपानी की सज़ा देकर साइबेरिया भेज दिया गया। अदालत ने अली पर सिर्फ़ इतना ही रहम किया कि उसे कम सज़ा दी गई—सिर्फ़ चार बरस की। उसके भाई उससे बहुत स्नेह करते थे। भाइयों की तरह नहीं बल्कि पितृवत्-भावना से प्रेरित होकर। उस प्रवासी-जीवन में अली ही उनका एक मात्र सहारा था। वे अक्सर क्षुब्ध और उदास रहते थे, लेकिन अली को देखते ही वे मुस्करा उठते और जब वे अली से बातें करते, (हालाँकि उसे वे निरा बच्चा समझते थे, जिसके साथ गंभीर चर्चा करना व्यर्थ था) तो उनके चेहरों का तनाव कम हो जाता। मेरा ख़्याल था कि वे हमेशा उससे बचकानी, हँसी-मज़ाक की ही बातें करते थे, कम से कम उसका जवाब सुनकर वे एक दूसरे की तरफ़ देखते और एक विनोद-भरी मुस्कान उनके चेहरों पर छा जाती। अली अपने भाइयों की इतनी इज़्ज़त करता था कि उन्हें संबोधित करने का साहस उसमें नहीं था। समझ में नहीं आता था कि उस कारावास में भी वह लड़का अपने हृदय की कोमलता को किस तरह सुरक्षित रखने में समर्थ है, किस तरह वह अपने को ईमानदार, भावुक और शिष्ट बना रहा है, और अशिष्टता और बेहूदगी से अपने को बचाये हुए है। लेकिन बाहरी कोमलता के बावजूद उसके स्वभाव में एक दृढ़ता थी। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, मैं उससे अच्छी तरह परिचित होता गया। वह एक सच्चरित्र लड़की की तरह पवित्र था, और जेल में होने वाली किसी भी बदसूरत गंदी, बेजा, हृदयहीन और हिंस्र हरकत को देखकर उसकी सुन्दर आँखों में क्षोभ फैल जाता और उसकी आँखें और भी अधिक सुन्दर हो जातीं। लेकिन वह हमेशा झगड़े-फ़िसाद और बहस से बचता था, हालाँकि वह उन लोगों में से नहीं था जो ख़ामोशी से बेइज़्ज़ती बर्दाश्त कर लेते हैं। वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ना जानता था।

लेकिन उसका कभी किसी से झगड़ा नहीं हुआ। सब लोग उसे चाहते थे और दोस्ताना ढंग से पेश आते थे। शुरू-शुरू में तो वह मेरे साथ केवल शिष्टता ही बरतता था, धीरे-धीरे मैंने उससे बातें करना शुरू किया, कुछ ही महीनों में वह अच्छी तरह रूसी भाषा बोलना सीख गया था। जबकि उसके भाई साइबेरिया में इतने बरस रहकर भी नहीं सीख पाये थे। मुझे उस लड़के में एक खास क़िस्म की विनयशीलता और कोमलता नज़र आती थी। वह असाधारण रूप से समझदार और चिन्तनशील था। मैं फ़ौरन यह कहूँगा कि मैं अली को एक असाधारण व्यक्ति समझता हूँ और अतीत के दिनों की याद करके कह सकता हूँ कि वह मेरे जीवन की सबसे सुखद मुलाक़ातों में से थी। कुछ लोगों के स्वभाव ईश्वर द्वारा दी गई नेकी से इतने सम्पन्न होते हैं कि आप कभी कल्पना में भी नहीं सोच सकते कि ऐसे लोगों का पतन हो सकता है। उनके बारे में आदमी सदा आश्वस्त रहता है। मैं आज भी अली के बारे में आश्वस्त हूँ। वह अब कहाँ होगा?

मुझे जेल में आये कुछ दिन हो गये थे, एक रात को मैं अपने बिस्तर पर लेटा कुछ सोच रहा था; अली, जो मेहनती आदमी था और हमेशा किसी न किसी काम में व्यस्त रहता था, उस वक्त ख़ाली था, हालाँकि अभी सोने का वक्त नहीं हुआ था। लेकिन उस दिन मुसलमानों का छुट्टी का दिन था और वे ख़ाली थे। वह अपने दोनों हाथ सिर के पीछे रखे, लेटकर कुछ सोच रहा था। अचानक उसने मुझसे सवाल किया, "क्या आप इस वक्त बहुत उदास हैं?" मैंने कौतूहल-भरी नज़रों से उसकी तरफ देखा, क्योंकि अली जैसे बुद्धिमान, कोमल और विचारशील व्यक्ति के मुँह से अकस्मात् ऐसा सीधा सवाल सुनकर मुझे अजब-सा लगा। लेकिन जब मैंने ग़ौर से उसके चेहरे की तरफ़ देखा तो मुझे इतनी उदासी दिखाई दी, किसी याद से उस पर इतना अवसाद छा गया था कि मुझे फ़ौरन ऐसा लगा कि ख़ुद उसका दिल दुख से बोझिल हो उठा था। मैंने उसे यह कह भी दिया। उसने एक

ठंडी साँस ली और शोक-भरे ढंग से मुस्कराया। मुझे उसकी मुस्कराहट से प्यार था, जो हमेशा हार्दिक और मधुर होती थी। इसके अलावा जब वह मुस्कराता था तो उसकी मोतियों जैसे दंतावली चमक उठती थी, जिससे संसार की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सुन्दरी ईर्ष्या कर सकती थी।

"आह अली, निश्चय ही तुम सोच रहे हो कि तुम्हारे वतन दाग़िस्तान में यह छुट्टी कैसे मनाई जा रही होगी। वहाँ बहुत अच्छा होगा।"

"हाँ", उसने जोश से जवाब दिया और उसकी आँखें चमक उठीं। लेकिन मैं इस बारे में सोच रहा हूँ, यह आपको कैसे पता चला ?"

"पता कैसे न चले ? यहाँ से तो वह जगह अच्छी ही है, है न ?"

"ओह, आप यह क्यों कह रहे हैं !……"

"वहाँ अब कैसे फूल खिले होंगे ! कैसा स्वर्ग होगा ?"

"ओ—ओह, अब इस बारे में बात मत कीजिये।"

उसके दिल में हलचल मच गई थी।

"सुनो अली, क्या तुम्हारी कोई बहन थी ?"

"हाँ, लेकिन आप किस लिए पूछ रहे हैं ?"

"अगर उसकी शक्ल तुमसे मिलती है तो वह ज़रूर बहुत खूबसूरत होगी।"

"मेरी तरह ! वह इतनी खूबसूरत है कि सारे दाग़िस्तान में उससे ज़्यादा खूबसूरत लड़की कोई नहीं है। आह ! वह कितनी खूबसूरत है ! मेरी बहन ! आपने उतनी खूबसूरत लड़की कहीं नहीं देखी होगी। मेरी माँ भी खूबसूरत थी।"

"क्या तुम्हारी माँ तुम्हें चाहती थी ?"

"आह ! आप क्या कह रहे हैं ? मेरे ग़म में अब तक वे ज़रूर मर चुकी होंगी। मैं उनका सबसे ज़्यादा लाडला बेटा था। वे मुझे बहन से भी ज़्यादा प्यार करती थीं, सबसे ज़्यादा…कल रात वे मुझे सपने में दिखाई दी थीं। वे रो रही थीं।"

इसके बाद वह खामोशी में खो गया और उस रात कुछ न बोला। लेकिन इसके बाद वह मुझसे बातचीत करने का हर मुमकिन मौक़ा तलाश करने लगा। हालाँकि वह किसी कारण से मेरी इतनी इज्ज़त करता था कि कभी भी पहले मुझे सम्बोधित नहीं कर पाता था, लेकिन मैं जब भी उसे बुलाता था, उसे बड़ी खुशी होती थी। मैंने उससे कॉकेशस के बारे में, जेल आने से पहले उसकी ज़िन्दगी के बारे में पूछ-ताछ की। उसके भाइयों ने भी उसे मुझसे बातचीत करने पर कभी नहीं टोका। बल्कि उन्हें यह अच्छा लगा। यह देखकर कि अली के प्रति मेरा स्नेह दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, वे भी मुझसे दोस्ताना ढंग से पेश आने लगे।

अली मेरे काम में मदद करता था और मेरी खिदमत करने की पूरी कोशिश करता था, मैंने देखा कि कोई ऐसा काम करने में, जिससे मुझे खुशी हो और मेरी ज़िन्दगी आसान बनाने में उसे बहुत खुशी होती थी, और उसकी इन कोशिशों में रत्तीभर स्वार्थ या चापलूसी नहीं होती थी, बल्कि एक हार्दिक दोस्ती की भावना रहती थी, जिसे अब वह छिपाता नहीं था। इसके अलावा उसमें दस्तकारी की प्रतिभा थी, उसने बनियानें और बूट बनाना सीख लिया था और बाद में अपनी सामर्थ्य के अनुसार बढ़ईगीरी का काम भी। उसके भाई उसकी तारीफ़ करते थे और उन्हें अली पर बहुत गर्व था।

मैंने एक दिन उससे कहा, "सुनो अली, तुम रूसी लिखना और पढ़ना क्यों नहीं सीखते ? जानते हो, बाद में जाकर साइबेरिया में तुम्हें इसका बहुत फ़ायदा रहेगा।"

"मैं सीखना तो चाहता हूँ, लेकिन किससे सीखूं ?"

'यहाँ बहुत से लोग लिख-पढ़ सकते हैं। अगर चाहो तो मैं तुम्हें सिखा सकता हूँ।"

"ओह ! मेहरबानी करके ज़रूर सिखाइये।" वह उठकर बिस्तर में बैठ गया और उसने दोनों हाथ जोड़कर मेरी तरफ़ याचनाभरी

दृष्टि से देखा ।

अगले दिन शाम से हमने पढ़ाई शुरू कर दी । मेरे पास बाईबल के न्यू टेस्टामेंट के रूसी अनुवाद की एक प्रति थी । जेल में इस पुस्तक के आने पर प्रतिबंध नहीं था । बिना वर्णमाला सीखे, सिर्फ़ इसी पुस्तक के सहारे कुछ हफ़्तों के भीतर ही अली फर्राटे से पढ़ने लगा । तीन महीनों में उसे पुस्तक की भाषा पर पूरा अधिकार हो गया । वह बड़े उत्साह और मेहनत से पढ़ना सीखता था ।

एक दिन हमने एक साथ 'सर्मन ऑन दी माऊन्ट'[१] पढ़ा । मैंने ग़ौर किया कि सर्मन के कुछ हिस्से वह अत्यन्त भावुक और ऊँचे स्वर में पढ़ रहा था ।

मैंने उससे पूछा कि वह जो बातें पढ़ता है, क्या वे उसे पसंद हैं ?"

उसने फ़ौरन मेरी तरफ़ देखा और उसका चेहरा लाल हो गया ।

"हाँ, ईसामसीह पैग़ंबर हैं, उनकी वाणी ईश्वर की वाणी है । यह पुस्तक कितनी अच्छी है !" उसने कहा ।

"तुम्हें इसमे कौनसी बात सबसे ज्यादा अच्छी लगी ?"

"वह हिस्सा, जहाँ प्रभु कहते हैं, 'क्षमा कर दो । सबसे प्रेम करो । दूसरों को चोट न पहुँचाओ । अपने दुश्मनों से भी प्रेम करो' आह ! वे कितने अच्छे ढंग वे बातें कहते हैं ?"

अली ने अपने भाइयों की तरफ मुड़कर उत्साह-भरे स्वर में कुछ कहा । वे लोग हमारी बातचीत को ध्यान से सुन रहे थे । बहुत देर तक वे आपस में गंभीरतापूर्वक बातें करते रहे और समर्थन में सिर हिलाते रहे । फिर एक अत्यन्त शालीन और विनीत मुस्कान सहित, जो मुसलमानों की ख़ास अदा है (जिस अदा को मैं बहुत पसंद करता हूँ, ख़ासकर उसकी शालीनता की वजह से) वे मेरी तरफ मुख़ातिब हुए और उन्होंने भी यही शब्द दुहराये कि ईसामसीह ईश्वर के पैग़ंबर हैं, और उन्होने बहुत

---

१. ईसामसीह का एक प्रसिद्ध प्रवचन

बड़े चमत्कार दिखाये हैं। उन्होंने मिट्टी का एक पक्षी बनाया, उसमें फूंककर प्राण डाल दिये, जिससे पक्षी उड़ गया······और यह घटना उनकी धार्मिक पुस्तकों में लिखी हुई है। उन्हें विश्वास था कि इन बातों से और ईसामसीह की तारीफ से मुझे बड़ी खुशी हो रही है। अली को भी इस बात की खुशी थी कि उसके भाई मेरे प्रति विनम्रता दिखा रहे हैं और मुझे खुश कर रहे हैं।

लिखाई के सबक़ भी बहुत कामयाब रहे। अली ने काग़ज़ (उसने मुझे अपने पैसों से काग़ज़ नहीं ख़रीदने दिया) क़लमें, और स्याही मंगवाई और दो महीनों में वह बहुत बढ़िया अक्षरों में लिखने लगा। सचमुच इस बात से उसके भाई बहुत प्रभावित हुए। उनके गर्व और संतोष का कोई ठिकाना नहीं था। उनकी समझ में नहीं आता था कि मेरे प्रति किस तरह अपनी कृतज्ञता प्रकट करें। अगर वे मेरे नज़दीक कहीं काम कर रहे होते, तो लगातार मेरी मदद करते और ऐसा करने में उन्हें खुशी महसूस होती। अली के बारे में यही बात कहने की मुझे जरूरत नहीं। शायद वह मुझसे भी उतना ही प्यार करने लगा था, जितना वह अपने भाइयों से करता था। मैं उसकी रिहाई के दृश्य को कभी नहीं भूलूंगा। वह मुझे खींचकर जेल के पिछवाड़े ले गया और मेरे गले से लगकर रो पड़ा। इससे पहले उसने मुझे कभी नहीं चूमा था, न ही आँसू बहाये थे। उसने कहा, "आपने मेरे लिए बहुत कुछ किया है! बहुत कुछ किया है! मेरे मां-बाप भी इससे ज्यादा मेरे लिए नहीं कर सकते थे! आपने मुझे इन्सान बना दिया है। ईश्वर आपको इस भलाई का बदला देगा और मैं आपको कभी नहीं भूलूंगा।······"

वह अब कहाँ होगा, मेरा प्यारा नेक, अली?

सरकेशियनों के अलावा हमारे कमरे में पोलिश क़ैदियों का भी एक दल था, जिनका बाक़ी क़ैदियों से कोई ताल्लुक़ नहीं था, मैं पहले भी जिक्र कर चुका हूँ कि वे सब लोगों से अलग-अलग रहते थे और रूसी क़ैदियों से नफ़रत करते थे, इसलिए वे सबकी घृणा के पात्र बन गये थे,

उनकी संख्या छः थी; दुख ने उन्हें भग्न और रुग्ण-हृदय बना दिया था। उनमें से कुछ पढ़े-लिखे भी थे। बाद में मैं उनकी विस्तार से चर्चा करूँगा, मैं अक्सर उनसे पुस्तकें भी लिया करता था। जो पुस्तक मैंने पहले-पहल उनसे लेकर पढ़ी, उसका मेरे दिल पर गहरा, विचित्र और एक खास किस्म का असर पड़ा। मैं बाद में इन प्रभावों की अलग से चर्चा करूँगा। मुझे तो वे बहुत दिलचस्प मालूम हुए, और मेरा विश्वास है कि कुछ लोगों के लिए वे अबोध्य होंगे। कई बातें ऐसी होती हैं, जिनका तजुर्बा हुए बग़ैर उन पर राय नहीं क़ायम की जा सकती। एक बात मैं कह सकता हूँ कि समस्त शारीरिक पीड़ाओं से भी कहीं अधिक कठिन नैतिक अभाव का सहना है। जब कोई किसान जेल में जाता है तो उस अपने बराबर वालों का, शायद अपने से बेहतर व्यक्तियों का साथ मिल जाता है। निश्चय ही वह बहुत कुछ खोकर वहाँ आता है। घर-बार, परिवार, सब कुछ; लेकिन उसकी परिस्थितियाँ वही रहती हैं। उसी सज़ा को पाने वाला पढ़ा-लिखा आदमी इससे भी कहीं ज्यादा खोता है। उसे अपनी सारी तमन्नाओं, सारी आदतों पर क़ाबू पाना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में रहना पड़ता है जो उसके लिए अपर्याप्त हैं। उसे एक नई हवा में साँस लेना सीखना पड़ता है······उसकी दशा पानी के बाहर तड़पती मछली जैसी हो जाती है······और अक्सर ऐसी सज़ा जो क़ानून की नज़रों में उसके जुर्म के बराबर होती है, दरअसल दस गुना भारी और क्रूर हो जाती है। यह है सचाई, चाहे हम उन सांसारिक आदतों को ही लें, जिनका जेल में त्याग करना पड़ता है।

लेकिन पोलिश क़ैदियों का अलग ही दल था। वे छहों के छहों एक साथ रहते थे। उन्हें हमारी बैरक में से सिर्फ़ एक यहूदी पसंद था, शायद इस लिए क्योंकि उससे उनका मनोरंजन होता था। यहूदी को और लाग भी पसंद करते थे, हालांकि सबके सब उस पर हँसते थे। सारी जेल में सिर्फ़ वही एक यहूदी था और अब भी जब मुझे उसका ख़्याल आता है तो मैं हँसे बग़ैर नहीं रह सकता। उसे देखकर हर बार मुझे गोगोल

की रचना 'तरास बल्बा' के यहूदी यँकेल की याद आ जाती थी, जब रात को कपड़े उतारकर वह अलमारी में अपनी बीवी के साथ सोने के लिए जाता था तो वह बिल्कुल चूज़े जैसा नज़र आता था। ईसायफोमिच भी बिल्कुल ऐसे चूज़े की तरह था, जिसके पंख नोंच लिये गये हों। उसकी उम्र पचास के करीब होगी, उसका क़द नाटा था, वह दुबला-पतला मरियल आदमी था, चालाक और निश्चय ही मूर्ख भी। वह गुस्ताख और घमंडी था, लेकिन भीतर से डरपोक भी। उसके सारे बदन पर झुर्रियाँ थीं, उसके माथे और दोनों गालों पर लोहे से दाग़े जाने के निशान थे। मेरी समझ में नहीं आता था कि वह साठ कोड़े खाकर भी कैसे ज़िन्दा था। उसे क़त्ल के जुर्म में जेल भेजा गया था। उसके दोस्तों ने किसी डाक्टर से एक ऐसी मरहम का नुस्खा लाकर दिया था, जिससे पंद्रह दिनों में ही सज़ा के दाग़ मिट सकते थे। इस नुस्खे को उसने छिपा कर रखा था। उसमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि जेल में उस मरहम का इस्तेमाल करता। वह इस इन्तज़ार में था कि जब उसकी सज़ा के बारह बरस पूरे हो जायेंगे और वह साइबेरिया में बस जायेगा तो उस नुस्खे से फ़ायदा उठायेगा। उसने एक बार मुझसे कहा था, "मैं ज़रूर शादी करना चाहता हूँ, वरना मेरी शादी नहीं होगी"। हम दोनों में गाढ़ी दोस्ती थी। वह हमेशा खुश नज़र आता था, जेल में उसके दिन अच्छी तरह कट रहे थे। वह सुनार था। चूंकि उस शहर में कोई सुनार नहीं था, इसलिए उसके पास हमेशा ज़रूरत से ज्यादा काम रहता था। वह सख्त मेहनत से बच गया था। साथ ही वह लोगों को गिरवीं रखी चीज़ों पर सूद लेकर कर्ज़ देता था। वह मुझसे पहले जेल में आया था, और एक पोलिश क़ैदी ने मुझे उसके आगमन का पूरा ब्यौरा बताया था। यह बड़ी दिलचस्प कहानी है जिसे मैं बाद में बताऊँगा। मैं कई बार ईसायफ़ोमिच का ज़िक्र करूँगा।

हमारी बैरक में चार प्राचीन धर्मावलम्बी भी थे। वे सब बुज़ुर्ग थे और बाईबल के गंभीर पाठक थे। उनमें से एक स्तारोदुबोवस्की

बस्ती वाला बूढ़ा था। उनके अलावा दो या तीन लिटल रशियन भी थे, जो हमेशा उदास रहते थे। वहाँ तेईस बरस का, दुबले चेहरे और तीखी नाक वाला एक नौजवान था जो आठ क़त्ल कर चुका था; जाली सिक्के बनाने वालों का एक दल था, जिनमें से एक आदमी सारी बैरक का मनोरंजन करता रहता था; खिन्न और क्षुब्ध चेहरों वाले कुछ क़ैदी भी थे जिनके सर मुंडे हुए थे, जो बेहद बदसूरत, ख़ामोश और ईर्ष्यालु थे, जिनकी आँखों में घृणा भरी रहती थी, जो अपनी सज़ा के सारे लंबे साल इसी तरह भृकुटी चढ़ाये गुज़ार देना चाहते थे। जेल में आकर, उस मनहूस शाम को धुआँ और गन्दगी, गालियों और अवर्णनीय अश्लीलता, बदबूदार हवा, झनझनाती हुई बेड़ियों और बेहया हँसी के बीच मुझे इस नयी ज़िन्दगी की सिर्फ़ एक झलक ही दिखाई दे पाई थी। मैं नंगे तख़्तों पर लेट गया और मैंने अपने कपड़े अपने सिर के नीचे रख लिए (अभी तक मुझे तकिया नहीं मिला था) और पोस्तीन से अपना बदन ढाँप लिया; लेकिन बहुत देर तक मुझे नींद नहीं आ सकी, हालांकि मैं पहले दिन के उन अप्रत्याशित, विकट अनुभवों की थकान से चूर-चूर हो गया था। लेकिन मेरी नई ज़िन्दगी तो अभी शुरू हो रही थी। अभी भविष्य में मुझे बहुत कुछ देखना था जिसकी मैंने न कल्पना की थी न ही मुझे कोई अन्दाज़ हो सकता था।

जेल में पहला महीना

जेल में आने के तीसरे दिन ही मुझे बाहर काम पर जाने का हुक्म मिला। काम के पहले दिन की स्मृति मेरे मन में अभी तक ताज़ी है, हालांकि उस दिन के दौरान कोई विशेष असाधारण घटना नहीं हुई, सिवा इसके कि मेरी स्थिति अपने आप में ही असाधारण थी। लेकिन तब भी यह मेरा पहला अनुभव था और मैं उत्सुक दृष्टि से हर चीज़ को देख रहा था। वे तीन दिन मैंने बड़ी उदासी में गुज़ारे थे। "यह मेरी यात्राओं का अन्त है, मैं जेल में हूँ।" मैं लगातार मन ही मन ये शब्द दुहराता जाता था, साथ ही यह भी "कई लम्बे बरसों के लिए यह स्थान, जिसमें दाखिल होते हुए मेरे मन में पीड़ा और अविश्वास हो रहा है, मेरा शरणस्थल और आश्रय होगा.........और क्या पता ? शायद कई बरस बाद जब मैं यहाँ से जाऊँगा तो मेरे मन में अफ़सोस होगा !" मेरे मन में एक ऐसी दुर्भावना उठी, जिसके आवेश में इन्सान को अपने ज़ख़्म जानबूझकर कुरेदने में आनन्द आता है, इन्सान को जैसे अपनी पीड़ा में आनन्द का उन्माद महसूस होता है, जैसे अपनी बदक़िस्मती के आभास से उसे सचमुच आनन्द मिलता है। इस कल्पना से कि कभी इस अंधेरे गर्त की स्मृति से मुझे अफ़सोस होगा, मेरा मन ख़ौफ़ से भर गया। तब भी मुझे महसूस हुआ कि इन्सान कितने राक्षसी ढंग से परिस्थितियों का आदी हो जाता है। फिर भी ये सब भविष्य की बातें थीं, लेकिन उस बीच मुझे लगा जैसे मेरे आसपास की सब चीज़ें मेरी दुश्मन हैं और ख़ौफ़नाक हैं हालांकि दरअसल ऐसी बात नहीं थी, लेकिन मुझे यही लगता था। जिस पैशाचिक जिज्ञासा के साथ मेरे नये साथी, क़ैदी लोग मेरी तरफ़ घूरते थे, अपने समाज के नये सदस्य के प्रति जो 'अभिजात वर्ग' में रह चुका था, उनके व्यवहार में अतिशय रुक्षता आ गई थी, जो

कभी-कभी तीव्र घृणा की सीमा तक जा पहुँचती थी—इन सारी बातों से मेरा मन इतना व्यथित हो गया था, कि मैं काम पर जाने के लिए उत्सुक हो गया, ताकि मैं जल्द से जल्द अपनी सारी मुसीबतों को जान-परख लूँ, औरों की तरह जेल की ज़िन्दगी बसर करना शुरू कर दूँ, और अविलम्ब जल्द से जल्द पिटी-पिटाई लकीर पर चलना शुरू कर दूँ। निश्चय ही उस वक्त मैं बहुत सी बातों को ठीक से देख नहीं पाया था। कई बातें जो ठीक मेरी आँखों के आगे हो रही थीं, मुझे उनका आभास तक नहीं था। उन विरोध-भरी परिस्थितियों में सान्त्वना के जो तत्त्व मौजूद थे, उन्हें मैं नहीं देख पाया। फिर भी उन तीन दिनों में जो चन्द दयालु और दोस्ती-भरे चेहरे मुझे नज़र आये थे, उन्होंने मुझे ढाढ़स बंधाने में मदद दी।

सबसे ज़्यादा दयालु और दोस्ती-भरा व्यवहार अकिम अकीमिच का था। क़ैदियों के क्षोभ और घृणा-भरे चेहरों में कुछ चेहरे ऐसे भी थे, जिनमें सद्‌भावना थी, उन पर मेरी नज़र पड़े बग़ैर न रह सकी। मैंने यह सोचकर अपने को तसल्ली दी, "हर जगह भले-बुरे दोनों क़िस्म के लोग होते हैं। कौन जानता है कि शायद ये लोग उन बाक़ी लोगों से बदतर न हों, जो जेल से बाहर 'रह गये' हैं। इस विचार मात्र से मैंने अपने सिर को एक झटका दिया, लेकिन हे मेरे ईश्वर! काश मुझे उसी वक्त पता चल जाता कि यह विचार कितना सच्चा था!"

मिसाल के लिए वहाँ एक आदमी था जिसे मैं बहुत बरसों बाद कहीं जाकर समझ सका, हालांकि जेल में वह क़रीब-क़रीब सारा वक्त मेरे नज़दीक रहता था। उसका नाम सुशीलोव था। मैं जब भी कहता हूँ कि क़ैदी भी उतने ही भले या बुरे होते हैं जितने कि बाक़ी लोग, तो मुझे अनायास ही सुशीलोव की याद आ जाती है। वह मेरा खाना परसा करता था। ऊपर के काम के लिए एक और आदमी भी था। शुरू से ही अकिम अकीमिच ने मुझ से ओसिप नाम के क़ैदी की सिफ़ा-रिश की थी और कहा था कि अगर मुझे जेल का खाना नापसन्द हो

और मेरे पास खाने-पीने का सामान मँगवाने के लिए पर्याप्त रक़म हो, तो ओसिप तीस कोपेक महीने पर मेरा खाना रोज़ पका दिया करेगा। वह हमारे दो बावर्चीख़ानों के लिए क़ैदियों द्वारा चुने गये चार बावर्चियों में से था। इन बावर्चियों को पूरी आज़ादी थी कि वे अगर चाहें तो किसी आदमी का खाना पकाने से इनकार कर दें और किसी वक्त भी उसे 'न' कर दें। बावर्ची काम करने के लिए बाहर नहीं जाते थे और उनका काम रोटी पकाने और शोरबा तैयार करने तक ही सीमित था। उन्हें पोवार (बावर्ची) की बजाय स्त्रयापकी (बावर्चिनें) कहा जाता था। इस शब्द के पीछे कोई घृणा की भावना नहीं थी, क्योंकि खाना पकाने के काम के लिए हमेशा समझदार और जहाँ तक संभव था, ईमानदार आदमी ही चुने जाते थे—लेकिन हमारे बावर्ची इस विनोदपूर्ण और सुखद दिल्लगी पर बिल्कुल बुरा नहीं मनाते थे। हर बार ओसिप को चुना जाता था और लगातार कई बरस तक वह बावर्ची का काम करता रहा। कभी-कभी जब उसे भयंकर अवसाद सताता था और चोरी से जेल में वोद्का लाने की इच्छा उसके मन में भी बलवती हो जाती थी, तो कुछ दिनों के लिए वह खाना पकाना छोड़ देता था। उसका सा ईमानदार और विनयशील आदमी मिलना मुश्किल है हालांकि वह महसूल की ख़ोरी के जुर्म में जेल आया था। यह वही लम्बा और बलिष्ठ 'स्मगलर' था, जिसका ज़िक्र मैं पहले कर चुका हूँ। उसे हर चीज़ से, ख़ासतौर पर कोड़ों की मार से डर लगता था। वह हरेक से दोस्ताना सलूक करता था, बेहद नेक और शिष्ट था। उसने कभी किसी से झगड़ा नहीं किया था, फिर भी चोरी से माल लाने का उसे इतना शौक़ था कि अपने डरपोक स्वभाव के बावजूद भी वह जेल में वोद्का लाता था। बाक़ी बावर्चियों की तरह वह भी वोद्का का कारोबार करता था, लेकिन ग़ैज़िन की तरह बड़े पैमाने पर नहीं, क्योंकि उसमें ज्यादा जोख़िम उठाने की हिम्मत नहीं थी। मेरी ओसिप से ख़ूब पटती थी। खाने-पीने का ख़र्च बहुत कम था। मैं ग़लत नहीं कह रहा, खाने पर महीने भर में

मेरा एक रूबल से ज़्यादा ख़र्च नहीं आता था। इस खाने में रोटी शामिल नहीं थी, क्योंकि वह तो जेल के खाने में मिलती थी। कभी-कभी जब मुझे बहुत ज़्यादा भूख लगती थी तो शोरबा भी ले लेता था, हालांकि उस शोरबे को देखकर मेरे मन में बड़ी ग्लानि होती थी। यह ग्लानि भी वक्त के साथ क़रीब-क़रीब दूर हो गई। आमतौर पर मैं रोज़ आधा सेर गोश्त खरीदता था। जाड़ों में आधा सेर गोश्त आधे कोपेक में मिल जाता था। हर बैरक में अनुशासन रखने के लिए एक पुराना क़ैदी रखा गया था। वही बाज़ार से गोश्त खरीदकर लाता था। ये पुराने क़ैदी, क़ैदियों की ज़रूरत की चीज़ें खरीदने के लिए खुशी-ख़ुशी रोज़ बाजार जाते थे और नाम मात्र की उजरत वसूल करते थे। अपनी शान्ति और आराम के लिए वे ऐसा करते थे—वरना उनका जेल में ज़िन्दा रहना मुश्किल हो जाता। इस तरह वे तंबाकू, चाय, गोश्त, बढ़िया डबलरोटी वग़ैरह—सिवाय वोद्का के और सारी चीजें भीतर पहुँचा देते थे। कोई उनसे वोद्का लाने के लिए नहीं कहता था, बल्कि कभी-कभी उन्हें वोद्का पीने की दावत ज़रूर दी जाती थी।

कई बरसों तक ओसिप मुझे गोश्त पकाकर देता रहा, हमेशा एक ही क़िस्म का गोश्त—कैसा पका होता था, यह सवाल नहीं है। लेकिन ताज्जुब है कि बरसों तक मेरे और ओसिप के बीच कोई बात नहीं हुई थी। कई बार मैंने उससे बात करने की कोशिश की। लेकिन बात-चीत जारी रखना उसे आता ही न था। वह सिर्फ़ मुस्कराकर 'हाँ' या 'न' में जवाब देता था। उस आदमी को देखकर ताज्जुब होता था, जिसका शरीर तो दैत्याकार था, लेकिन दिमाग़ सात बरस के बच्चे जैसा था।

एक और क़ैदी जो मेरी मदद करता था, वह सुशीलोव था। मैंने उसे कभी किसी काम के लिए नहीं कहा। वह खुद अपनी मर्ज़ी से ही मेरी सेवा के लिए तैयार हो गया था। यह कब हुआ मुझे ठीक से याद नहीं। वह मेरे कपड़े धोता था। जेल के पिछवाड़े में जान-बूझकर पानी

फेंकने के लिए एक गड्ढा बनाया गया था। इसके ऊपर कपड़े धोने का स्थान था, जहाँ क़ैदियों के कपड़े धुलते थे। सुशीलोव ने मुझे खुश करने के लिए क़िस्म-क़िस्म की हज़ारों जिम्मेदारियाँ अपने लिए ईजाद की थीं। वह मेरी चाय बनाता था, बाहर के काम करता था, मेरी जाकेट की मरम्मत करवा लाता था। महीने में चार बार मेरे जूतों में तेल लगाता था, ये सारे काम वह बड़ी खुशी और शौक़ से इस तरह करता था, जैसी किसी को न मालूम हो कि उसके सिर पर कितने काम पड़े हैं, दरअसल उसने अपनी ज़िन्दगी को मेरी ज़िन्दगी से पूरी तरह बाँध लिया था और मेरे सारे कामों का ज़िम्मा उठा लिया था। मिसाल के लिए वह कभी यह नहीं कहता था, 'तुम्हारे पास इतनी कमीज़ें हैं, या तुम्हारी जाकेट फटी हुई है,' बल्कि यह कि 'हमारे पास इतनी कमीज़ें हैं। हमारो जाकेट फटी हुई है।' वह हर वक्त मेरी तरफ़ देखता रहता था और मेरी हर जरूरत का अनुमान पहले से ही लगा लेता था और उन जरूरतों को पूरा करना जैसे उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य बन गया था। वह कोई कारोबार नहीं करता था। जहाँ तक मेरा ख़्याल है, मेरे अलावा उसकी आमदनी का और कोई ज़रिया भी नहीं था। मैं उसे अक्सर आधा पेंस दे देता था और वह इसी से सन्तुष्ट हो जाता था। वह किसी की सेवा किये बग़ैर नहीं रह सकता था, इसलिए उसने मेरा दामन पकड़ा था। मेरा ख्याल है, वह मुझे औरों से ज़्यादा शरीफ़ और ईमानदार समझता था। वह उन लोगों में से था जो कभी भी अमीर और कामयाब नहीं हो सकते, जो ताश खेलने वालों के संतरी बनकर रात-भर सर्द, बर्फ़ीली गैलरी में खड़े होकर आँगन से आने वाली हर आवाज़ को कान लगाकर सुनते रहते थे। चौकन्ने रहते थे कि कहीं मेजर न आ जाये। पाँच कोपेक के बदले में वे सारी रात खड़े-खड़े बिता देते थे, ज़रा-सी भी ग़लती होने पर उनकी सब चीज़ें छीन ली जाती थीं और उनकी पिटाई होती थी। मैं पहले भी उनका ज़िक्र कर चुका हूँ। ऐसे लोगों की सबसे बड़ी चारित्रिक

विशेषता यह होती है कि वे हमेशा, सब जगह, सबके सामने अपने व्यक्तित्व को मिटा देते हैं, हर काम में गौण और तीसरे दर्जे का रोल अदा करते हैं। यह उनकी प्रकृति में शुमार होता है।

सुशीलोव बड़ा ही दयनीय व्यक्ति था। उसमें ईर्ष्या का लेशमात्र भी नहीं था। वह बेहद विनीत और दलित था, हालांकि किसी ने उससे बुरा सलूक नहीं किया। लेकिन वह स्वभाव से ही दलित था। हर बार उसे देखकर मुझे उस पर तरस आता था और अफ़सोस होता था, लेकिन क्यों होता था, इसका कारण मुझे खुद भी नहीं मालूम था। मैं भी उससे कोई बात नहीं कर पाता था, उसे भी बातचीत करनी नहीं आती थी और बातचीत करने में उसे मेहनत करनी पड़ती थी। बातचीत के अन्त में जब मैं उसे कोई काम सौंपता था या कहीं जाने के लिए कहता था तो वह फिर आपे में आ जाता था। आखिरकार मुझे यक़ीन हो गया कि उसे काम सौंपकर मैं उसे भारी प्रसन्नता प्रदान करता हूँ। उसका क़द न लंबा था न नाटा, वह न ख़ूबसूरत था न बदसूरत, न बेवकूफ़ न होशियार। उसके चेहरे पर कुछ-कुछ चेचक के दाग़ थे और उसके बालों का रंग सुनहरी-सा था। उसके बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता था। बस एक बात और थी: जहाँ तक मेरा अनुमान था, वह सिरोत्कीन के सैक्शन में था, क्योंकि वह अत्यन्त विनीत और निष्प्राण व्यक्ति था। क़ैदी अक्सर उसका मज़ाक उड़ाया करते थे, क्योंकि साइबेरिया के रास्ते में उसे किसी और क़ैदी की जगह बदल दिया गया था—सिर्फ़ एक रूबल और एक लाल कमीज़ की ख़ातिर। सुशीलोव ने क़ैदी का स्थान लेना मंज़ूर कर लिया था। उसने इतनी कम क़ीमत पर अपने को बेचा था, इसीलिए सब उसका मज़ाक उड़ाया करते थे। दूसरे क़ैदी से जगह बदलने का मतलब था, अपना नाम बदलना और दूसरे की सज़ा के साथ अपनी सज़ा बदल लेना। यह बात चाहे कितनी विचित्र मालूम होती हो, लेकिन दरअसल ऐसा होता था। उस ज़माने में यह एक आम बात थी, साइबेरिया की सड़क पर क़ैदियों के तब्दील

होने की एक परंपरा बन गई थी, जिसकी अपनी औपचारिकताएँ थीं। पहले तो मुझे भी यक़ीन नहीं होता था, लेकिन अपनी आँखों से देखने के बाद मुझे यक़ीन हो गया।

यह इस तरह किया जाता है। मान लो क़ैदियों के एक दल को साइबेरिया ले जाया जा रहा है। उनमें सब क़िस्म के लोग हैं, जिन्हें उम्र-क़ैद हुई है, कई को फ़ैक्टरियों में, कुछ को क़ैदियों की बस्तियों में भेजा जा रहा है, वे एक साथ सफ़र कर रहे हैं। सड़क पर किसी जगह मिसाल के लिए पर्म के सूबे में, कोई क़ैदी किसी दूसरे क़ैदी से अपनी जगह बदलना चाहता है। मान लो मिलहाईलोव को क़त्ल या किसी और संगीन जुर्म की सज़ा हुई है और उसे कई बरस क़ैद काटना ख़ुशगवार नहीं। मान लो कि वह चालाक़ आदमी है, उसने दुनिया देखी है, और वह हर तिकड़म जानता है, इसलिए वह किसी सीधे-सादे, मरियल क़ैदी की तलाश करता है, जिसे साइबेरिया की किसी बस्ती या खान में तो भेजा जा रहा है, लेकिन जिसकी सज़ा अपेक्षाकृत कम है। आख़िर उसे सुशीलोव जैसा कोई आदमी मिल जाता है। सुशीलोव एक भूमिदास है, जिसे पकड़कर क़ैदियों की बस्ती में भेजा जा रहा है। वह ख़ाली जेब लिये पंद्रह-सौ मील चलकर आया है—सुशीलोव के पास कभी एक पाई हो भी नहीं सकती थी। वह हमेशा क्लांत, और शिथिल रहता था। जेल के खाने के सिवा उसने कभी खाने की कोई बढ़िया चीज़ नहीं चखी थी, वह हमेशा जेल की वर्दी पहने रहता था, और तांबे के एक तुच्छ सिक्के के लिए किसी की भी सेवा करने को तैयार रहता था। मिलहाईलोव सुशीलोव को घेरकर उससे परिचय बढ़ाता है, यहाँ तक कि घनिष्ठता भी पैदा कर लेता है। फिर वह उसे वोद्का पिलाता है और अंत में उससे पूछता है कि क्या वह मिलहाईलोव से अपनी जगह तब्दील नहीं करेगा? वह बताता है कि उसका नाम मिलहाईलोव है, वह उसे इधर-उधर की बातें बताता है और कहता है कि वह जेल में नहीं बल्कि 'स्पेशल डिवीज़न' में जा रहा है। जेल होते हुए भी वह 'स्पेशल' जगह है, इस

लिए जेल से बेहतर है। बहुत से लोगों ने, मिसाल के लिये पीटर्जबर्ग के सरकारी लोगों ने भी कभी 'स्पेशल डिवीज़न' का नाम नहीं सुना था। हालांकि साइबेरिया में दूर एक स्थान पर यह डिवीज़न मौजूद थी। इस डिवीज़न में इतने कम क़ैदी थे, कि उसकी चर्चा सुनना आसान न था। मेरे वक्त में वहाँ सिर्फ़ सत्तर क़ैदी 'स्पेशल डिवीज़न' में थे। बाद में मुझे कई ऐसे लोग मिले जो साइबेरिया में क़ैद काट चुके थे और साइ-बेरिया से अच्छी तरह परिचित थे, फिर भी उन्होंने पहली बार मेरे मुँह से 'स्पेशल डिवीज़न' का नाम सुना था। क़ानूनी कोड में इस डिवीज़न के बारे में सिर्फ़ छः पंक्तियाँ लिखी हुई हैं—"अमुक-अमुक जेल में—सबसे ख़तरनाक क़ैदियों के लिए एक स्पेशल डिवीज़न खोली जानी चाहिये, जब तक साइबेरिया में क़ैदियों के लिए नये, और ज़्यादा सख़्त मेहनत के काम नहीं शुरू किये जाते।" यहाँ तक कि उस डिवीज़न के क़ैदियों को भी यह मालूम नहीं था कि वह डिवीज़न स्थायी है या अस्थायी। सज़ा की कोई सीमा नहीं निर्धारित की गई थी। बस इतना ही कहा गया था कि "जब तक और भी ज़्यादा सख़्त मेहनत के काम नहीं शुरू किये जाते," उन्हें वहीं रखा जायेगा। इसलिए इस डिवी-ज़न में सिर्फ़ उम्र-क़ैद पाने वाले लोग ही थे।

इसमें कोई ताज्जुब नहीं कि सुशीलोव और उसके बाक़ी साथियों को इस बारे में कोई पता नहीं था, यहाँ तक कि मिलहाईलोव भी अपने जुर्म की संगीनी से ही इस डिवीज़न का अनुमान लगा सकता था। उसे अपने जुर्म के बदले में तीन-चार हज़ार घूँसे पहले ही मिल चुके थे। वह आसानी से अनुमान लगा सकता था कि उसे किसी बढ़िया स्थान पर नहीं भेजा जा रहा। सुशीलोव क़ैदियों की एक बस्ती में जा रहा था। इससे बेहतर बात और क्या हो सकती थी। उससे पूछा गया "तुम अपनी जगह तब्दील नहीं करोगे?" सुशीलोव, जो बेहद सीधा आदमी था, इस वक्त नशे की हालत में था और मिल-हाईलोव के एहसानों के नीचे दबा हुआ था, इनकार करने का साहस न

कर सका। इसके अलावा उसने औरों से सुन रखा था कि क़ैदियों का आपस में तब्दील होना मुमकिन है। बहुत से क़ैदी ऐसा कर चुके हैं। इसलिये यह कोई विशेष या अद्भुत बात नहीं है। दोनों में समझौता हो जाता है। बेशर्म मिलहाईलोव, सुशीलोव के असाधारण भोलेपन का फ़ायदा उठाकर चांदी के एक रूबल और एक लाल कमीज़ के बदले में, जो वह फ़ौरन गवाहों के सामने सुशीलोव को दे देता है, सुशीलोव का नाम ख़रीद लेता है। अगले दिन सुशीलोव नशे में नहीं होता, लेकिन उसे फिर शराब पिलाई जाती है। इसके अलावा किसी सौदे से मुकरना कमीनापन है। वह रूबल और उसके बाद लाल कमीज़ दोनों चीजें शराब की भेंट चढ़ चुकी हैं। अगर उसे सौदा नामंज़ूर है तो उसे वह रूबल लौटाना पड़ेगा, और सुशीलोव पूरा एक रूबल कहाँ से पायेगा? अगर वह रक़म अदा नहीं करता, तो उसकी टोली के लोग उससे ज़बरदस्ती करते। इस मामले में वे बहुत सख़्ती बरतते हैं। इसके अलावा अगर उसने कोई वादा किया है तो उसे निभाना पड़ेगा—टोली इस बात की भी ज़िद करेगी। वरना वे लोग उसे चीर डालेंगे। मुमकिन है वे उसे मारे-पीटें या जान से ही मार डालें। हर सूरत में वे उसे ऐसी धमकी तो देंगे ही।

सचमुच अगर टोली इस मामले में ढील बरतने लगे तो नाम तब्दील करने की प्रथा ही ख़त्म हो जाये। अगर किसी वादे को तोड़ना और रक़म ले लेने के बाद किसी सौदे को ख़त्म करना मुमकिन हो जाये तो भला कौन आदमी बाद में कभी वादा निभायेगा? दरअसल यह एक ऐसा सवाल है, जिससे टोली का, और सारे क़ैदियों का ताल्लुक़ है, इस लिए इस मामले में बहुत ही सख़्ती बरती जाती है। आख़िरकार सुशीलोव यह देखकर कि इस मुसीबत से कोई छुटकारा नहीं, बिना किसी प्रतिवाद के राजी हो जाता है। यह ख़बर सारी टोली को बता दी जाती है। ज़रूरत पड़ने पर और लोगों को भी पैसे और शराब की रिश्वत दी जाती है। सुशीलोव जहन्नुम में जाये या मिलहाईलोव, उन

लोगों को कोई फ़र्क नहीं पड़ता, लेकिन चूंकि उनकी ख़ातिर की जाती है, उनके पेट में वोद्का पहुँच जाती है, इसलिए वे ख़ामोश रहते हैं। अगले पड़ाव पर क़ैदियों की हाज़िरी ली जाती है। जब मिलहाईलोव का नाम पुकारा जाता है तो सुशीलोव जवाब देता है और जब सुशीलोव का नाम पुकारा जाता है तो मिलहाईलोव जवाब देता है। वे फिर आगे चल पड़ते हैं। इस बारे में और चर्चा नहीं होती। तोबोल्स्क पहुँच कर क़ैदियों को छांटा जाता है, मिलहाईलोव को क़ैदियों की बस्ती में भेज दिया जाता है और सुशीलोव को अतिरिक्त गारद के साथ 'स्पेशल डिवीजन' में ले जाया जाता है, बाद में प्रोटेस्ट करना नामुमकिन है। और फिर सुशीलोव के पास क्या सबूत है ? ऐसे केस की तहक़ीक़ात में न जाने कितने बरस लगेंगे। वह किसी और जुर्म में वहाँ नहीं आ सकता ? उसके गवाह कहाँ हैं ? अगर गवाह हुए भी तो वे साफ़ मुकर जायेंगे। कहने का मतलब यह है कि एक रूबल और एक लाल कमीज़ के बदले सुशीलोव को 'स्पेशल डिवीज़न' में भेज दिया जाता है।

क़ैदी इसलिए सुशीलोव का मज़ाक नहीं उड़ाते थे; क्योंकि वह किसी की जगह आया था (हालांकि उन क़ैदियों के प्रति जो अपनी कम सज़ा के बदले दूसरों की भारी सज़ा अपने सिर पर ले लेते हैं—उन्हें सख़्त नफ़रत थी, उसी तरह जैसे ठगे हुए मूर्खों से नफ़रत होती है) बल्कि वे इसलिए सुशीलोव का मजाक उड़ाते थे, क्योंकि उसने एक लाल कमीज़ और एक रूबल के बदले में ऐसा किया था, जो बहुत क्षुद्र रक़म थी। क़ैदी अपनी जगह बदलने के लिए अक्सर बहुत बड़ी रक़में लिया करते हैं। कभी-कभी तो वे दर्जनों रूबल वसूल करते हैं। लेकिन सुशीलोव सब की नज़रों में इतना भीरु और क्षुद्र था कि वह इस क़ाबिल भी नहीं था कि उसका मज़ाक उड़ाया जा सके।

बरसों तक सुशीलोव से मेरी ख़ूब पटी। धीरे-धीरे उसे मुझसे बहुत मोह हो गया। लेकिन एक दिन उसने मेरा काम न किया, हालांकि मैं उसे उस काम के लिए थोड़ी-सी रक़म भी दे चुका था। मैं अपने को

कभी माफ़ नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने यह कहने की क्रूरता की थी, "देखो सुशीलोव, तुम पैसे तो ले लेते हो, लेकिन काम नहीं करते।" उसने कुछ न कहा, वह फ़ौरन काम करने के लिए दौड़ पड़ा, लेकिन सहसा वह उदास हो गया। इसी तरह दो दिन गुजर गये। मैंने मन ही मन सोचा, 'कहीं मेरी बात का तो उस पर असर नहीं पड़ा?' मुझे मालूम था कि एन्तन वासीलेव नामका एक क़ैदी, एक मामूली से कर्ज़ के लिए उसे लगातार बहुत तंग कर रहा था, मैंने सोचा, 'शायद सुशीलोव के पास पैसे नहीं हैं और उसे मुझसे माँगने में शर्म आ रही है।' तीसरे दिन मैंने उससे कहा, "सुशीलोव, मेरा ख्याल है कि तुम एन्तन वासीलेव का कर्ज़ अदा करने के लिए मुझसे पैसे माँगना चाहते थे। यह लो।" मैं उस वक्त बिस्तर पर बैठा था। सुशीलोव मेरे सामने खड़ा था, वह मेरी इस बात से बहुत प्रभावित हुआ कि मैंने खुद-ब-खुद उसकी ज़रूरत का अंदाज़ लगा लिया है, क्योंकि उसका ख्याल था कि इन दिनों मैं उसे जरूरत से ज्यादा पैसे दे चुका हूँ और उसमें इससे ज्यादा उम्मीद करने की जुर्रत तक नहीं थी। उसने पैसों की तरफ़ देखा, फिर मेरी तरफ़ देखा और चुपचाप बाहर चला गया। इस बात से मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। मैं उसके पीछे-पीछे गया। वह जेल के पिछवाड़े खड़ा था। वह चहारदीवारी से कुहनियाँ टिकाकर सिर झुकाये खड़ा था। "सुशीलोव, क्या बात है?" मैंने पूछा। उसने मेरी तरफ़ देखा तक नहीं। मुझे देख कर ताज्जुब हुआ कि उसकी आँखों में आँसू छलछला आये थे।

उसने दूर देखने की कोशिश करते हुए, टूटी-फूटी आवाज़ में कहा, "अलेक्ज़ेंद्र पेत्रोविच, आपका ख्याल है···कि···कि···मैं आपका काम ···पैसे के लिए···लेकिन मैं···"

फिर उसने अपना मुँह फेर लिया और चहारदीवारी से सिर टकरा कर सिसकने लगा। यह पहली बार थी जब मैंने जेल में किसी को रोते देखा था। मैंने उसे सान्त्वना दी। हालांकि इसके बाद वह पहले से भी अधिक उत्साह से मेरी सेवा करता था—लेकिन कुछ अदृश्य कारणों से

मैं समझ गया था कि वह मेरी उस डाँट को कभी नहीं भूल सकता। फिर भी और लोग उसका मजाक उड़ाते थे, हर मौक़े पर उसे सताते थे, और कभी-कभी उसे बेहूदी गालियाँ भी देते थे—और वह हमेशा उनसे सौजन्य और मैत्री का व्यवहार करता था, किसी बात पर बुरा नहीं मनाता था। हाँ, यह सच है कि लंबे सालों तक एक साथ रहने पर भी एक इन्सान दूसरे इन्सान को नहीं समझ सकता।

इसीलिए मैं शुरू में क़ैदियों का असली रूप नहीं पहचान सका, जो मुझे बाद में जाकर दिखाई दिया। इसीलिए मैंने कहा था कि हालाँकि मैं हर चीज को बड़े ग़ौर से देखता था, फिर भी कई प्रत्यक्ष बातों का सच्चा स्वरूप देखने में मैं असमर्थ रहा था। यह स्वाभाविक था कि शुरू-शुरू में असाधारण और प्रमुख तथ्यों की ओर ही मेरा ध्यान जाता, लेकिन शायद इन तथ्यों को भी मैंने सही रूप में नहीं देखा था, उन तथ्यों का एक दम घोंटने वाला विषादपूर्ण संवेदन मेरे मन में रह गया था, जो 'अ' नामक क़ैदी से मिलकर और भी पुष्ट हो गया था। 'अ' मेरे जेल आने से कुछ ही दिन पहले वहाँ पहुँचा था। बंदी-जीवन के प्रारंभिक दिनों में उसे देखकर मेरे मन पर एक बड़ा व्यथापूर्ण प्रभाव पड़ा था। जेल में आने से पहले मैं जानता था कि मुझे 'अ' वहाँ मिलेगा। उसकी वजह से मेरे बंदी जीवन के प्रारंभिक और खौफ़नाक दिन और भी विषाक्त हो गये थे। उसने मेरी मानसिक यंत्रणाओं को बढ़ा दिया था। मैं उसका जिक्र किए बग़ैर नहीं रह सकता। कोई इन्सान नीचता और पतन के गड्ढे में कितना नीचे गिर सकता है, और किस हद तक अपनी नैतिक भावनाओं को बिना किसी दिक़्क़त या पश्चाताप के कुचल सकता है—'अ' इस बात की जीती-जागती मिसाल था। 'अ' एक भद्र ख़ानदान में पैदा हुआ था, मैं यह पहले ही बता चुका हूँ कि वह जेल की हर ख़बर मेजर तक पहुँचा देता था और मेजर के अर्दली फ़ेद्का का पक्का दोस्त था। संक्षेप में उसकी कहानी यूँ है : मास्को में अपने रिश्तेदारों से झगड़कर,

जो उसके नीच व्यवहार से तंग आ चुके थे, वह अपनी पढ़ाई ख़त्म किए बग़ैर ही पीटर्ज़बर्ग में आ गया था। पैसे की ख़ातिर उसने बड़े ही नीचतापूर्ण ढंग अपनाये। उसने एक दर्जन नौजवानों की ज़िन्दगियां अपनी जघन्य, नीच और कभी न सन्तुष्ट होने वाली वासनाओं की ख़ातिर पुलिस के हाथों बेच दीं। पीटर्ज़बर्ग और उसके शराबख़ानों के प्रलोभनों से आकर्षित होकर वह अपने ऐबों का इतना आदी हो गया कि मूर्ख न होते हुए भी उसने एक पागलपन और मूर्खतापूर्ण काम शुरू कर दिया। जल्द ही पुलिस को उसका सुराग़ लग गया। पुलिस को ख़बर देकर उसने कई निर्दोष लोगों को फँसा दिया था, कइयों को धोखा दिया था। इसी जुर्म में उसे दस बरस के लिए साइबेरिया भेज दिया गया था। वह अभी नौजवान था। अभी तो उसकी ज़िन्दगी शुरू हो रही थी। यह देखकर मन में ख़्याल उठता है कि जीवन में आने वाले ऐसे भयंकर परिवर्तन ने जरूर उसके स्वभाव पर असर डाला होगा। उसके भीतर संघर्ष करने वाली सारी शक्तियाँ जाग्रत हो उठी होंगी और उसकी काया पलट हो गई होगी। लेकिन उसने बिना किसी घबराहट के बिना रत्तीभर ग्लानि के, अपनी नई ज़िन्दगी को क़बूल कर लिया था। उसकी नैतिकता उस ज़िन्दगी से विद्रोह नहीं करती थी, उसे किसी भी चीज़ से, सिवा काम के, डर नहीं लगता था। उसे अफ़सोस यही था कि पीटर्ज़बर्ग के शराबखाने और आकर्षण के दूसरे केन्द्र पीछे रह गए हैं। उसे सचमुच यह लगता था कि क़ैदी बनकर उसे पहले से भी ज़्यादा बदमाशी और ग्लानिपूर्ण हरक़तें करने की आज़ादी मिल गई है। "अगर आदमी क़ैदी बन ही गया है तो क्यों न क़ैदियों की तरह पेश आए? उसे बुरे से बुरा काम करने में भी कोई शर्म नहीं है।" यह उसकी अक्षरशः राय थी। मेरे ख़्याल में तो वह घृणित जीव, एक अजूबा था। मैंने हत्यारों, बदमाशों और लुच्चों के बीच अनेक बरस गुज़ारे हैं, लेकिन मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि मैंने ज़िन्दगी में 'अ' से अधिक किसी को इतना नैतिक रूप से पतित, लम्पट, नीच और धृष्ट नहीं

देखा। वहाँ अच्छे खानदान का एक और क़ैदी था, जिसने अपने बाप की हत्या की थी। उसका ज़िक्र मैं पहले ही कर चुका हूँ, लेकिन कई प्रवृत्तियों और घटनाओं को देखकर मुझे यक़ीन हो गया कि वह क़ैदी भी 'अ' से अधिक नेक और मानवीय था। जेल में रहकर लगातार मुझे यही एहसास हुआ कि 'अ' सिर्फ़ गोश्त का एक लोथड़ा है, जिसके दाँत और पेट है और जिसके अन्दर एक ऐसी पाशविक और कामुक प्यास है जो कभी नहीं बुझ सकती। अपनी हर मामूली ख्वाहिश और सनक की खातिर वह कुछ भी, यहाँ तक कि क्रूर से क्रूर हत्या भी करने के लिए उद्धत रहता था, बशर्ते कि वह हत्या छिपाई जा सके। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। मैं 'अ' को अच्छी तरह जान गया था। किसी आन्तरिक कसौटी या सिद्धान्त के अभाव में जब शारीरिक वासनाओं को खुली छूट मिल जाती है तो इन्सान की क्या हालत होती है, इसकी वह जीती-जागती मिसाल है। उसकी व्यंग्यपूर्ण मुस्कान को देखकर मुझे कितनी ग्लानि होती थी। वह राक्षस था, एक नैतिक कासीमोदो[1]। इसके साथ ही वह चालाक, मक्कार और खूबसूरत भी था। यहाँ तक कि सुशिक्षित और सुयोग्य भी था। हाँ, ऐसा व्यक्ति समाज के लिए आग, बाढ़ और अकाल से भी ज़्यादा खतरनाक होता है। मैं पहले कह चुका हूँ कि जेल के सब क़ैदियों में नैतिक गिरावट थी, वहाँ जासूसी और विश्वासघात का बाज़ार गर्म था और क़ैदी इस बात से क्षुब्ध नहीं थे, बल्कि उन सब की 'अ' से ख़ूब पटती थी और वे हम लोगों से उतना अच्छा सलूक नहीं करते थे जितना उससे। नशे में चूर रहने वाले मेजर का कृपा-पात्र होने के कारण क़ैदियों की दृष्टि में उसका महत्व और उसकी हैसियत बहुत बढ़ गई थी। उधर उसने मेजर को यक़ीन दिला दिया था कि वह लोगों के चित्र बना सकता है। (उसने क़ैदियों को

---

१. ह्यूगो के प्रसिद्ध उपन्यास 'नोत्र दाम द' पेरिस' का नायक जो कुबड़ा और बदसूरत था।

यक़ीन दिलाया था कि वह अंग-रक्षकों की टुकड़ी में लेफ़्टिनेन्ट रह चुका है।) मेजर का आग्रह था कि 'अ' को उसका चित्र बनाने के लिए उसके घर में भेजा जाय। वहाँ जाकर 'अ' ने मेजर के अर्दली फ़ेद्का से दोस्ती कर ली, जिसका अपने मालिक के ऊपर असाधारण असर था। नतीजा यह हुआ कि जेल के हर मामले और हर आदमी की ज़िन्दगी में उसका हस्तक्षेप बढ़ गया। जब मेजर नशे में धुत्त होकर 'अ' को मारता था तो वह हमेशा उसे जासूस और विश्वासघाती कहता था। कई बार, बल्कि अक्सर ऐसा होता था कि 'अ' को मारने के फ़ौरन बाद मेजर उससे कहता था कि वह उसकी तस्वीर बनाना जारी रखे। हमारे मेजर का शायद सचमुच यही ख़्याल था कि 'अ' एक असाधारण कलाकार है, जिसे ब्रूलोव की कोटि में रखा जा सकता है। ताज्जुब था कि मेजर ने भी ब्रूलोव का नाम सुन रखा था। लेकिन फिर भी मेजर का ख़्याल था कि भले ही 'अ' एक महान कलाकार हो, लेकिन है तो क़ैदी ही, इसलिए मेजर को उसे पीटने का अधिकार है। अगर वह ब्रूलोव से दस गुना बड़ा कलाकार होता, तब भी मेजर तो उसका अफ़सर ही था और उस पर मनमानी कर सकता था। मेजर 'अ' से अपने जूते उतरवाया करता था और बावर्चीख़ाने का गन्दा पानी फिंकवाया करता था। फिर भी मेजर यह नहीं भूल पाता था कि 'अ' एक महान कलाकार है। मेजर की तस्वीर बनने में पूरा एक बरस लग गया। आख़िरकार मेजर को एहसास हो गया कि उसे धोखा दिया जा रहा है, उसे यक़ीन हो गया कि वह तस्वीर कभी ख़त्म नहीं होगी, हर रोज़ तस्वीर में मेजर की शक्ल कुछ और ही बनती चली जा रही थी। मेजर को सख़्त गुस्सा आया। उसने कलाकार की ख़ूब मरम्मत की और उसे सज़ा देने के लिए मशक्कत पर लगा दिया। ज़ाहिर है कि 'अ' को इस बात पर सख़्त अफ़सोस हुआ। वे दिन चले गए थे जब वह मज़े उड़ाता था, मेजर के खाने से बची-खुची बढ़िया चीज़ें चखता था, अपने दोस्त फ़ेद्का के साथ मेजर के बावर्चीख़ाने में गुलछर्रे उड़ाया करता था। ख़ैर, जो भी

हो, 'अ' से छुटकारा पाकर मेजर ने 'म' को सताना बन्द कर दिया, जिसके खिलाफ़ 'अ' हर वक्त मेजर के कान भरा करता था।

'अ' के जेल आने के वक्त सिर्फ़ 'म' ही जेल में अकेला राजनैतिक क़ैदी था। वह बहुत दुःखी था। और क़ैदियों के साथ उसकी कोई बात सांझी नहीं थी। वह उन्हें नफ़रत और ग्लानिभरी नजरों से देखता था। जिन बातों के आधार पर उनमें सुलह हो सकती थी, वे बातें उसे नजर ही नहीं आती थीं, इसलिए उसकी बाक़ी क़ैदियों से नहीं पटती थी। वे भी बदले में उससे सख्त नफ़रत करते थे। आम तौर पर 'अ' जैसे लोगों की जेल में बहुत दुर्दशा होती है। 'म' को 'अ' के जुर्म के बारे में कुछ पता नहीं था। बल्कि 'अ' ने 'म' की प्रकृति को भाँपकर उसे यक़ीन दिला दिया कि उसे विश्वासघात के जुर्म में नहीं बल्कि उससे उल्टे जुर्म में जेल भेजा गया है—यह वही जुर्म था जिसकी वजह से 'ब' क़ैद काट रहा था। 'ब' को बड़ी खुशी हुई कि एक दोस्त और साथी मिल गया। वह शुरू-शुरू में उसकी मदद किया करता था, उसे सान्त्वना दिया करता था। यह सोचकर कि 'अ' बड़े कष्ट में है 'म' ने अपनी आख़िरी पाई तक उसे दे डाली। उसे खिलाया-पिलाया और जिन्दगी की हर ज़रूरी चीज़ में 'अ' को हिस्सा दिया। लेकिन 'अ' को फ़ौरन उससे नफ़रत हो गई, क्योंकि 'म' एक शानदार व्यक्ति था। उसे हर क्षुद्रता से नफ़रत थी। वह 'अ' के बिल्कुल विपरीत था। 'म' 'अ' से जो बात मेजर के बारे में या जेल की जिन्दगी के बारे में कहता, 'अ' उसे फ़ौरन मेजर तक पहुँचा देता जिसके फलस्वरूप मेजर को 'म' से सख्त नफ़रत हो गई और वह 'म' को सताने लगा। अगर जेल का गवर्नर न होता तो ज़रूर इस झगड़े का अन्त भयंकर ट्रैजेडी में होता। बाद में जब 'म' को 'अ' की सारी नीचताओं का पता चल गया तो 'अ' बिल्कुल नहीं घबराया, बल्कि उसे 'म' से मिलने में बहुत मज़ा आता था। वह व्यंग्य भरी नज़रों से 'म' को देखता था। इसमें उसे बहुत सन्तोष मिलता था। 'म' ने कई बार यह बात मुझे बताई। वह नीच आदमी बाद में

एक और क़ैदी और एक सन्तरी के साथ जेल से भाग गया था—यह प्रसंग मैं बाद में बताऊँगा। शुरू में उसने मुझसे दोस्ती करने की कोशिश की। उसका ख़्याल था कि मैं उसके इतिहास से अपरिचित हूँ। मैं फिर कहता हूँ कि उसने मेरे उन प्रारंभिक दिनों को विषाक्त बना दिया था और मेरी ज़िन्दगी हराम कर दी थी। अपने को नीचता और नैतिक पतन के ऐसे वातावरण में पाकर मैं आतंकित हो उठा था। मुझे लगा कि जेल का हर व्यक्ति नीच और पतित था, लेकिन यह मेरी ग़लती थी। मैं 'अ' को देखकर ही हर आदमी के चरित्र का अंदाज़ लगाने लगा था।

वे तीन दिन मैंने जेल में निरुद्देश्य घूमने और बिस्तर पर लेट कर बिता दिये। अकिम अकीमिच ने जिस विश्वस्त क़ैदी की सिफ़ारिश की थी, मैंने अपनी चीज़ें उसे दे दीं और उसे कमीज़ें बनाने के लिए कहा। (वह एक कमीज़ की सिलाई के लिए कुछ कोपेक मांगता था) अकिम अकीमिच की सलाह पर मैंने फ़ैल्ट पर कपड़ा चढ़ाकर एक गद्दा बनवाया, जो पुए की तरह पतला था। ऊन भरवा कर मैंने उससे एक तकिया भी तैयार करवाया। यह तकिया बहुत सख़्त था, मुश्किल से जाकर मैं उसका आदी हुआ। अकिम अकीमिच मेरे लिए इन्तज़ाम करने में व्यस्त था और ख़ुद चीज़ें मँगवा रहा था। पुरानी जेकेटों और पतलूनों के चिथड़े जोड़ कर उसने अपने हाथों से मेरे लिए एक रज़ाई तैयार की थी। ये चिथड़े मैंने क़ैदियों से ख़रीदे थे। घिस जाने के बाद जेल के कपड़ों पर क़ैदियों का अधिकार हो जाता है। उन्हें बेच दिया जाता है। कोई कपड़ा चाहे कितना ही पुराना क्यों न हो, उसके किसी न किसी इस्तेमाल की उम्मीद निकल ही आती है। शुरू में मुझे यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ था। एक तरह से कृषक-वर्ग के लोगों के साथ यह मेरा पहला संपर्क था। मैं अचानक बाक़ी लोगों की तरह क़ैदियों के निम्न-वर्ग का सदस्य बन गया था। उनकी आदतें, विचार, रायें, रीति-रिवाज—मेरे बन गए थे। कम से कम बाहर से, कानूनी दृष्टि से तो बन ही गए थे, हालांकि

दरअसल मैं उन्हें नहीं मानता था। मुझे ताज्जुब हुआ और मैं इस तरह घबरा गया जैसे मैंने इन बातों के अस्तित्व को इससे पहले देखा या सुना ही न हो। फिर भी यह बातें मैं पहले से जानता था और मैंने उनके बारे में सुन रखा था। लेकिन सुनी-सुनाई बातों की अपेक्षा वास्तविकता का मन पर कहीं गहरा असर पड़ता है। मिसाल के लिए मैं कभी कल्पना तक नहीं कर सकता था कि पुराने चिथड़ों जैसी चीजों को भी क़ीमती समझा जा सकता है। और मैंने इन्हीं चिथड़ों से अपनी रज़ाई तैयार की थी।

क़ैदियों को वर्दी के लिए कैसा कपड़ा मिलता है, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। वह देखने में मोटा मालूम होता था, जैसा फ़ौजियों को दिया जाता है, लेकिन कुछ दिन पहनने के बाद ही वह छलनी हो जाता था और बुरी तरह फटने लगता था। क़ैदियों से उम्मीद की जाती थी कि वे उन वर्दियों को एक बरस तक चलाएँगे, लेकिन इतने अर्से तक उस कपड़े को चलाना बेहद मुश्किल था। क़ैदी को मेहनत करनी पड़ती है, भारी बोझ उठाना पड़ता है; उसके कपड़े जल्द ही घिस जाते हैं और उनमें छेद हो जाते हैं। पोस्तीन के कोट वैसे तीन बरस तक चलते हैं—क़ैदी दिन के वक्त उन्हें कपड़ों के ऊपर पहनते थे और रात के वक्त कम्बल की तरह इस्तेमाल करते थे। लेकिन पोस्तीन का कोट मज़बूत होता है, हालाँकि तीन बरस बीतने पर उन कोटों में टाट के पैबन्द लगा लिये जाते थे। तीन बरस पहनने के बाद भी उन फटे-पुराने कोटों के बदले में क़ैदियों को चालीस कोपेक तक मिल जाते थे। अगर कोट अच्छी हालत में होते तो वे साठ या सत्तर कोपेक में बिक जाते थे, जो जेल के लिहाज़ से बहुत बड़ी रक़म थी।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, जेल में पैसे का महत्व बहुत ज़्यादा था। यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि जिस क़ैदी के पास पैसा है, चाहे कितना कम पैसा क्यों न हो, उसकी मुसीबतें बिना पैसे वाले क़ैदियों के मुक़ाबिले में दस गुना कम हो जाती थीं, हालाँकि बाक़ी

क़ैदियों को भी ज़रूरत की सारी चीज़ें सरकार देती थी और जेल के अधिकारियों का कहना था कि उन क़ैदियों को पैसे की कोई ज़रूरत नहीं पड़ सकती थी। मैं फिर कहता हूँ कि अगर क़ैदियों को अपना पैसा रखने की तमाम सम्भावनाओं से वंचित कर दिया जाता तो वे या पागल हो जाते या मक्खियों की तरह मरने लगते (हर चीज़ मिलने के बावजूद भी), या ऐसे हिंस्र काम करते जिन पर यक़ीन नहीं किया जा सकता। कुछ तो दुखी होकर करते, कुछ अपनी मानसिक यन्त्रणा से छुटकारा पाने के लिए, मौत की सज़ा पाने के लिए या "अपनी क़िस्मत बदलने के लिए" (जो प्रचलित पारिभाषिक शब्द था) हिंसा को अपनाते। अनेक क्रूर क्षणों में या असाधारण चालाकी से कमाए हुए पैसे को, जिसमें चोरी और दग़ाबाज़ी भी शामिल रहती है, अगर क़ैदी लापरवाही और बच्चों की-सी विवेकशून्यता से खर्च कर डालते हैं, तो इससे यह साबित नहीं होता कि क़ैदी पैसे की क़ीमत नहीं समझते, हालाँकि सरसरी निगाह से देखने पर ऐसा ही मालूम होता है। क़ैदी पैसे के पीछे पागल रहता है। अगर वह पैसे को कूड़े की तरह फेंकता है तो ऐसी चीज़ की खातिर जिसे वह पैसे से ज़्यादा क़ीमती समझता है। एक क़ैदी के लिए पैसे से ज़्यादा क़ीमती और कौन-सी चीज़ है? आज़ादी या आज़ादी का कोई सपना। क़ैदी बहुत बड़ा स्वप्नद्रष्टा होता है। मैं इस बारे में बाद में कुछ कहूँगा। इस प्रसंग में अगर मैं कहूँ कि मैंने कई ऐसे क़ैदी देखे हैं, जिन्हें बीस बरस की क़ैद हुई है और मुझसे बातचीत करते हुए जिन्होंने शान्त स्वर में इस तरह की बातें की हैं, "इन्तज़ार करो। ईश्वर की कृपा से जब मेरी सज़ा पूरी हो जाएगी तब मैं......" क्या आपको यक़ीन हो सकेगा? क़ैदी शब्द का अर्थ है, ऐसा आदमी जिसकी अपनी कोई इच्छा न हो। पैसे खर्च कर वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का प्रदर्शन करता है। दाग़ने की सलाखों, बेड़ियों और घृणित चहारदीवारी के बावजूद, जो उसे ईश्वर की सृष्टि से दूर रखकर जंगली जानवर की तरह पिंजरे में बन्द रखती है। क़ैदी

जेल में वोद्का मंगवा लेने में कामयाब हो जाता है जिसकी सख्त मनाही है और पकड़े जाने पर उसे भयंकर सजा मिल सकती है। वह औरतों तक पहुँचने में कामयाब हो जाता है। कभी-कभी (हमेशा नहीं) पुराने सन्तरियों और यहाँ तक कि सार्जेन्टों को भी रिश्वत देने में कामयाब हो जाता है, जो उसे क़ानून और अनुशासन भंग करते हुए देखकर भी आँख मारकर अनदेखा कर देते हैं। साथ ही वह उन लोगों पर रोब भी जमा लेता है। क़ैदी को रोब दिखाने का बड़ा शौक होता है। वह अपने साथियों को, यहाँ तक कि अपने-आप को भी यह यक़ीन दिला देना चाहता है, चाहे थोड़े वक्त के लिए ही सही, कि उसे जितना आज़ाद और ताक़तवर समझा जाता है, उसके पास उससे कहीं ज़्यादा ताक़त और आज़ादी है। वह गुलछर्रे उड़ाता है, शोर मचाता है, दूसरे लोगों से जा भिड़ता है, उनका अपमान करता है—वह उनके सामने साबित कर देना चाहता है कि वह यह सब कुछ कर सकता है—ये सारी बातें उसके अपने हाथों में हैं—अर्थात् जो चीजें उस बेचारे के बस से बाहर हैं। शायद इसीलिए तमाम क़ैदियों में, जब वे नशे में चूर न भी हों तो शेख़ी बघारने की, आत्म-प्रदर्शन की, और अपने व्यक्तित्व को महिमा-मंडित करने की विलक्षण किन्तु हास्यास्पद प्रवृत्ति पाई जाती है, चाहे यह प्रवृत्ति कितनी ही बचकानी क्यों न हो। इसके अलावा इस सारी अनुशासनहीनता में एक ख़ास क़िस्म का जोखिम रहता है, इसलिए इसमें जीवन का आभास मिलता है और आज़ादी की गन्ध आती है। आज़ादी के लिए इन्सान क्या नहीं दे सकता ? कौन करोड़पति, अगर उसकी गर्दन फाँसी के फन्दे में फँसी हो तो, एक साँस के बदले अपने करोड़ों नहीं न्यौछावर कर देगा ?

ख़ुद जेल-अधिकारियों को भी यह देखकर ताज्जुब होता है कि बरसों तक ख़ामोश, आदर्श ज़िन्दगी बसर करने के बाद जिस क़ैदी को फ़ोरमैन बना दिया जाता है, वह अचानक बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के अपने होश-हवास खो बैठता है, हुड़दंग मचाता है, शराब पीता है,

शोर मचाता है और कभी-कभी सचमुच संगीन जुर्म भी कर बैठता है—मिसाल के लिए वह अपने से ऊँचे अफ़सर की खुले आम बेइज्ज़ती करता है, या हत्या और बलात्कार तक कर बैठता है। वे उसकी तरफ़ देखकर ताज्जुब करते रहते हैं। और इस आकस्मिक विस्फोट का कारण सम्भवत: आत्म-अभिव्यक्ति की एक विक्षिप्त और अचेतन आकांक्षा होती है। ऐसे आदमी से इन बातों की क़तई उम्मीद नहीं होती। वह अपने कुचले हुए व्यक्तित्व को स्वीकार करवाने के लिए बेचैन हो उठता है। उसकी आकांक्षा, पागलपन, जलन, मानसिक रोग, हिस्टीरिया के फ़िटों और स्नायुविक दौरों तक जा पहुँचती है। ज़िन्दा दफ़नाए जाने के बाद अगर किसी आदमी को होश आ जाए और वह पैर पटक-पटक कर अपने ताबूत को खोलना चाहे तो उसकी सारी कोशिशें बेकार जाएंगी। लेकिन मुसीबत है कि यह तर्क का नहीं स्नायुओं का सवाल है। हमें इस बात पर भी ग़ौर करना चाहिए कि क़ैदी के व्यक्तित्व के प्रदर्शन की हर कोशिश को जुर्म समझा जाता है, इसलिए जुर्म छोटा हो या बड़ा, इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता। अगर उसे शराब पीनी ही है तो वह सोचता है, क्यों न वह अच्छी तरह नशे में ग़र्क हो जाए। अगर उसे कोई हिम्मत का काम करना ही है, तो वह सब कुछ, यहाँ तक कि हत्या भी क्यों न कर डाले। दिक्क़त सिर्फ़ शुरू करने में होती है, ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता जाता है, उस पर नशा छाता जाता है, फिर कोई उसे पीछे नहीं हटा सकता। इसलिए हर दृष्टि से यह बेहतर होगा कि उसे उस सीमा तक पहुँचने ही न दिया जाये। इसी में सबकी भलाई है।

हाँ—लेकिन यह कैसे किया जाए ?

जेल में पहला महीना

जब मैं जेल में आया था तो मेरे पास बहुत कम पैसे थे ; इस डर से कि पैसे मुझसे छिन न जाएं, मैं अपने साथ बहुत थोड़ी रक़म लाया था। आख़िरी चारे के रूप में मैंने बाईबल की जिल्द में कुछ रूबल छिपा दिए थे। जेल में बाईबल लाने की मनाही नहीं है। यह किताब और रूबल मुझे कुछ लोगों ने तोबोल्स्क में दिए थे, वे लोग भी प्रवासी थे, उन्हें भी कभी दसियों बरस की नज़रबन्दी की सज़ा मिली थी। वह मुद्दत से हर 'बदक़िस्मत' को अपने भाई के समान समझने के आदी हो गए थे। साइबेरिया में अब और हमेशा से कुछ ऐसे लोग रहे हैं जिन्होंने 'बदक़िस्मतों' की सेवा करना अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया है। वे नये क़ैदियों के प्रति निःस्वार्थ और पवित्र सहानुभूति और दया दिखाते हैं—मानो वे अभागे उनके अपने बच्चे हों। मैं यहाँ एक ऐसी ही घटना का संक्षेप में ज़िक्र करूँगा, जो मेरे साथ बीती थी।

जिस शहर में हमारी जेल थी, वहाँ एक विधवा रहती थी, जिसका नाम नस्तास्या ईवानोव्ना था। निश्चय ही जेल में रहकर हमारे लिए उसका परिचय पाना सम्भव नहीं था। उसने क़ैदियों की सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दिया था, वह हम लोगों की सहायता के लिए विशेष-रूप से प्रयत्नशील रहती थी। हो सकता है, उसके अपने परिवार में भी ऐसी कोई ट्रैजेडी हुई हो या उसके किसी नज़दीकी रिश्तेदार या प्रिय-जन को इसी जुर्म[1] में सज़ा भुगतनी पड़ी हो। ख़ैर, जो भी हो, हम लोगों की सहायता करने में उसे बहुत सुख मिलता था। ग़रीब होने की वजह से वह हमारी ज़्यादा सहायता नहीं कर सकती थी, लेकिन जेल में रहने वाले हम लोगों को महसूस होता था कि जेल के सीख़चों के बाहर

---

१. जु राजनैतिक मं में

हमारा भी कोई सच्चा दोस्त है। वह अक्सर हमें खबरें भेजा करती थी, जिनकी हमें सख्त जरूरत रहती थी। जेल से छूटकर जब मैं दूसरे किसी शहर में जाने लगा तो मैं उस औरत से मिलने गया। वह शहर से दूर अपने एक रिश्तेदार के घर रहती थी। वह न बुढ़िया थी न जवान, न खूबसूरत थी, न बदशक्ल। वह पढ़ी-लिखी और अक़लमंद भी थी या नहीं, यह भी बता सकना मुमकिन न था। उसमें जो बात साफ़ जाहिर होती थी, वह थी एक अनंत दयालुता, लोगों को खुश करने की, उन्हें सान्त्वना देने की और उनकी सेवा करने की एक दुर्दमनीय इच्छा। ये सारी बातें उसकी दयालु, स्नेहभरी आँखों में पढ़ी जा सकती थीं। जेल के एक और साथी के साथ मैंने पूरी एक शाम उस महिला के यहाँ गुज़ारी थी। वह हमारी ख्वाहिशों का पहले से ही अनुमान लगाने के लिए उत्सुक थी। जब हम हँसते थे तो वह भी हँसती थी, हमारी हर बात का समर्थन करने के लिए और हमारी खातिरदारी करने के लिए वह बेहद उत्सुक थी। उसने खाने की कई चीज़ें और मिठाइयाँ चाय के साथ हमें परसीं। लगता था, अगर उसके पास हज़ारों रूबल होते तो उसे हमारे साथियों की मदद करने में और भी खुशी होती, क्योंकि तब वह ज़्यादा मदद पहुँचा सकती थी। जब हमने उससे विदाई ली, तो उसने बतौर निशानी हम दोनों को एक-एक सिगरेट-केस दिया। उसने अपने हाथों से गत्ते के वे सिगरेट-केस हमारे लिए तैयार किए थे। (कितनी होशियारी से गत्तों को आपस में जोड़ा गया था!) उन पर रंगीन कागज़ चढ़ा दिया गया था, जैसे स्कूलों में बच्चों की गणित की पुस्तकों पर रंगीन कागज़ की जिल्दें चढ़ाई जाती हैं। (हो सकता है इन कागज़ों के लिए किसी किताब की कुर्बानी की गई हो।) दोनों सिगरेट-केसों पर सुनहरी कागज़ का हाशिया बना हुआ था, जो शायद उस महिला ने विशेष रूप से उन सिगरेट-केसों के लिए ही खरीदा था। "देखती हूँ, आप लोग सिगरेट पीते हैं—शायद यह सिगरेट-केस आपके कुछ काम आ सके।" उसने अपने तोहफ़े के लिए भीरु स्वर में क्षमा-

याचना की।······कुछ लोगों की राय है (मैंने भी ऐसा सुना और पढ़ा है) कि अपने पड़ोसियों के प्रति हमारा पवित्र प्रेम स्वार्थ का ही महानतम रूप होता है। इस महिला में कौन-सा स्वार्थ था, यह मेरी समझ में नहीं आता।

हालांकि जब मैं जेल में आया था, मेरे पास ज़्यादा पैसे नहीं थे। मैं उन क़ैदियों से सख्त चिढ़ गया जो मेरे आने के कुछ घंटों के भीतर ही मुझे एक बार धोखा देने के बाद कई बार आकर उधार ले गए। लेकिन एक बात मैं साफ़-साफ़ क़बूल करता हूँ। मुझे इस बात से जरूर चिढ़ थी कि ये लोग अपनी भोली चालाकी में आकर जरूर मुझ पर हँसते होंगे, मुझे बेवक़ूफ़ और बुद्धू समझते होंगे, सिर्फ़ इसलिए, क्योंकि मैंने उन्हें मांगने पर पाँचवीं बार भी पैसे दे दिए थे। उन्होंने जरूर सोचा होगा कि मैं उनकी मक्कारी और धोखेबाज़ी के झांसे में आ गया हूँ—मुझे यक़ीन है कि अगर मैं उन्हें कर्ज़ देने से इन्कार कर देता और उन्हें दुत्कार देता तो वे मेरी कहीं ज़्यादा इज्ज़त करते। लेकिन अपनी खीज के बावजूद मैं इन्कार नहीं कर सका। मैं खीज इसलिए गया था, क्योंकि जेल के प्रारंभिक दिनों में मैं गंभीरता और उत्सुकतापूर्वक सोच रहा था कि जेल में मुझे अपनी क्या हैसियत रखनी चाहिए और उन लोगों से किस स्तर पर मिलना-जुलना चाहिए। मैंने यह महसूस किया और मुझे पूरी तरह एहसास हो गया कि वे परिस्थितियाँ मेरे लिए बिल्कुल नई थीं, मैं अंधेरे में था और लगातार इस हालत में वहाँ नहीं रह सकता था। मुझे अपने-आप को तैयार करना था। मैंने तय किया कि चाहे कुछ हो मुझे अपनी अन्तरात्मा की और आन्तरिक भावनाओं की प्रेरणा से सीधा, निष्कपट व्यवहार करना चाहिए। लेकिन मैं यह भी जानता था कि यह सिर्फ़ एक सूक्ति है, मेरे सामने बहुत-सी अप्रत्याशित, व्यावहारिक कठिनाइयाँ आएंगी।

जेल का आदी होने में जो छोटी-छोटी दिक्क़तें आईं, जिनका जिक्र मैं पहले ही कर चुका हूँ, अकिम अकीमिच ने उन्हें हल करने में मेरी

मदद की थी, कुछ हद तक इन बातों ने मेरा ध्यान भी बँटाया था, फिर भी एक भयंकर अवसाद मेरे मन को खाए जा रहा था। मैं कई बार गोधूलि वेला के समय जेल की सीढ़ियों पर खड़ा होकर काम से लौटते क़ैदियों को देखता था, जो अहाते में मटरगश्ती कर रहे होते थे और बार-बार बावर्चीखाने में आते-जाते थे—मैं मन ही मन सोचता, 'यह मुर्दों का घर है।' मैं ग़ौर से उनके चेहरों और गतिविधियों को देखकर यह अंदाज़ लगाने की कोशिश करता कि वे किस क़िस्म के आदमी हैं, उनका चरित्र कैसा है। या तो उनके माथों पर त्यौरियाँ चढ़ी रहती थीं, या वे ज़रूरत से ज़्यादा ख़ुश नज़र आते थे (जेल में इन दो विपरीत श्रेणियों के ही क़ैदी अक्सर नज़र आते हैं।) वे कुछ गाली देते हुए या आपस में बातचीत करते हुए, कुछ अकेले, ख़ामोश, नपे-तुले क़दमों से किसी विचार में खोए हुए—कुछ क्लान्त और दुखी भाव से, कुछ (वहाँ भी!) अपने बड़प्पन के घमंड में सिर पर तिरछी टोपियाँ लगाए, कंधों पर कोट डाले चलते थे। वे सबको चालाकी, धृष्टता और व्यंग्यभरी नज़रों से देखते थे। मैं सोचता था, 'अब यही मेरा क्षेत्र और संसार है। मुझे पसन्द हो या न हो, अब मुझे यहीं रहना है।' मैंने उन लोगों के बारे में अकिम अकीमिच से पूछ-ताछ की। मैं एकान्त से बचने के लिए उसके साथ बैठकर चाय पीना पसन्द करता था। यहाँ पर यह भी बता दूँ कि शुरू में मैं सिर्फ़ जेल की चाय ही पी सकता था। अकिम अकीमिच ने भी चाय पीने से कभी इन्कार नहीं किया। वह घर के बने, एक हास्यास्पद, टीन के समावार में चाय तैयार किया करता था। यह समावार मुझे 'म' ने दिया था। अकिम अकीमिच अक्सर एक गिलास चाय पीता था। (उसके पास गिलास भी थे) सौम्य और शान्त भाव से चाय पीकर गिलास मुझे वापिस दे देता था और मुझे धन्यवाद देकर फ़ौरन मेरी रज़ाई सीने में लग जाता था। लेकिन मैं जिन बातों को जानना चाहता था, वह मुझे नहीं बता सकता था। दरअसल उसकी समझ में यह बात आती ही नहीं थी कि अपने

आसपास के क़ैदियों के चरित्र में आखिर मुझे क्यों इतनी दिलचस्पी है। वह एक चालाकी भरी मुस्कराहट से मेरी बातों को सुनता था, वह मुस्कान मुझे अच्छी तरह याद है। हाँ, मैं समझ गया कि मुझे तजुर्बे से ही सारी बातें जाननी चाहिएँ, सवाल पूछकर नहीं।

चौथे दिन सुबह सब क़ैदियों को जेल के फाटक के पास, गारद-घर के सामने दो क़तारों में खड़ा किया गया। जब मुझे नई बेड़ियां पहनाई गई थीं, तब भी क़ैदी इसी तरह खड़े थे। क़ैदियों के आगे-पीछे राइफ़लों और संगीनों से लैस सिपाही खड़े थे। अगर कोई क़ैदी भागने की कोशिश करे तो सिपाही को गोली चलाने का अधिकार है। लेकिन बिना जरूरत के गोली चलाने पर सिपाही की जवाब-तलबी की जाती है। अगर क़ैदी बाग़ी हो जाएं तब भी यही नियम लागू होता है। लेकिन कौन क़ैदी खुले आम भागने का साहस कर सकता है? इंजीनियरों का एक अफ़सर, एक फ़ोरमैन, कई नॉन-कमीशंड अफ़सर और क़ैदियों के काम की देखरेख करने वाले सिपाही वहाँ मौजूद थे। हाज़िरी ली गई। सबसे पहले, दर्ज़ीख़ाने में काम करने वाले क़ैदियों को काम पर भेजा गया। इंजीनियरिंग विभाग के अफ़सरों से इन क़ैदियों का कोई ताल्लुक न था, वे सिर्फ़ जेल का ही काम करते थे और सब क़ैदियों के कपड़े सीते थे। इसके बाद वर्कशाप में काम करने वाली टुकड़ी आगे बढ़ी। उनके पीछे-पीछे बीस मज़दूर थे, मैं भी उनके साथ काम पर रवाना हो गया।

किले के पीछे जाड़े से जमे हुए दरिया में दो सरकारी नावें खड़ी थीं, जिनका अब कोई इस्तेमाल नहीं रह गया था। इन नावों की लकड़ी काटकर निकालनी थी ताकि वह बर्बाद न हो जाए, हालांकि मेरा ख्याल है कि वह सड़ी-गली लकड़ी बिल्कुल बेकार थी। शहर में ईंधन का दाम बहुत कम था और चारों तरफ़ जंगल थे। जेल-अधिकारियों ने हमें व्यस्त रखने के लिए ही इस काम पर लगाया था। क़ैदी भी इस बात को समझते थे। वे हमेशा निरुत्साह और नापसंदगी से ऐसे काम

करते थे। जब काम सचमुच फ़ायदेमंद और करने के क़ाबिल होता था, ख़ास तौर पर जब उन्हें कोई निश्चित काम सौंपा जाता था, तो उनका दृष्टिकोण भी बदल जाता था। उनमें उत्साह पैदा हो जाता था, हालांकि उसमें उनका अपना कोई व्यक्तिगत फ़ायदा नहीं था। मैंने क़ैदियों को पूरी ताक़त से काम करते देखा है, वे काम को जल्दी से जल्दी और अच्छे से अच्छा करने के लिए इच्छुक रहते हैं। न जाने क्यों इसमें उनके अहंकार का सवाल भी रहता था। लेकिन उस दिन जो काम हमें सौंपा गया था, उसकी कोई ज़रूरत नहीं थी, वह सिर्फ़ दिखावे के लिए किया जा रहा था। इसमें काम निश्चित नहीं था, सुबह ग्यारह बजे का नगाड़ा बजने तक हमें वहाँ काम करना था।

उस दिन धुंध छाई हुई थी और कुछ-कुछ गर्मी थी। बर्फ़ क़रीब-क़रीब पिघलने लगी थी। हमारी टुकड़ी के सब लोग क़िले से दूर नदी के किनारे अपनी बेड़ियां झनझनाते चले जा रहे थे। बेड़ियां हमारे कपड़ों के नीचे छिपी थीं फिर भी हर क़दम पर उनकी तेज़, कर्कश आवाज़ सुनाई दे रही थी। दो या तीन आदमी उस मकान में गए जहाँ हमारे काम के औज़ार रखे जाते थे। मैं भी औरों के साथ चल रहा था और मेरा दिल पहले से ज्यादा हल्का हो गया था। मैं यह जानने और देखने के लिए बेक़रार था कि हमें कैसा काम करना पड़ेगा। सख़्त मशक़्क़त क्या चीज़ थी? ज़िन्दगी में पहली बार न जाने मैं कैसे काम करूंगा?

मुझे उस दिन की सब बातें याद हैं। सड़क पर हमें दाढ़ी वाला एक मज़दूर मिला। उसने रुककर अपनी जेब में हाथ डाला। हमारी टोली का एक क़ैदी फ़ौरन आगे बढ़ा, उसने अपनी टोपी उतारी और दान ले लिया—पांच कोपेक थे। वह फिर अपनी टोली में वापिस आ गया। मज़दूर ने अपने शरीर पर क्रॉस का चिह्न बनाया और चला गया। पांचों कोपेक उस दिन मिठाई पर ख़र्च कर दिए गए, जो टोली के सब लोगों में बराबर बाँट दी गई।

हमारे कुछ साथी हमेशा की तरह ख़ामोश और क्षुब्ध थे, बाक़ी आपस में गप-शप कर रहे थे। उनमें से एक तो न जाने क्यों बेहद ख़ुश और सुखी दिखाई देता था। वह रास्ते भर अपनी बेड़ियों को बजाता हुआ नाच रहा था। यह वही नाटे क़द का मोटा क़ैदी था, जिसे मैंने पहले दिन ही एक दूसरे क़ैदी से झगड़ते हुए देखा था। दोनों जने कपड़े धो रहे थे। दूसरे क़ैदी ने बेवकूफ़ी में उसे 'कव्वा' कहा था। इस ख़ुश-मिज़ाज आदमी का नाम स्कूरातोव था। फिर उसने एक रंगीला गीत गाना शुरू कर दिया, जिसका अन्तरा मुझे याद है—

"उन्होंने मेरी ग़ैर-मौजूदगी में मेरी शादी कर दी।"
जब मैं कारख़ाने में काम पर गया था।"

बस अब एक साज़ की ही कसर बाक़ी रह गई थी।

स्कूरातोव की असाधारण ख़ुश-मिज़ाजी से फ़ौरन हमारे कुछ साथी क्षुब्ध हो उठे—वे अपने को अपमानित महसूस कर रहे थे।

"वह भेड़िये की तरह चिल्ला रहा है।" एक क़ैदी ने ग्लानि-भरे स्वर में कहा, हालांकि इस बात से उसका कोई ताल्लुक़ नहीं था।

"भेड़िये के गले में एक ही स्वर होता है, वह तुमने छीन लिया है ओ तुला के रहने वाले," उदास क़ैदियों में से एक ने कहा, उसके उच्चारण में 'लिटल रशिया' का पुट था।

"मैं तुला का रहने वाला भले ही होऊँ लेकिन तुम पोल्तावा वाले तो पकौड़ियों से पेट ठूंसते हो," स्कूरातोव ने फ़ौरन जवाबी हमला किया।

"ख़ूब झूठ बोलते जाओ! तुम लोग क्या खाते हो? करमकल्ले के शोरबे को जूते में परसा करते थे?"

"और अब शैतान चाहे हमें तोप के गोले खिला रहा हो," तीसरे क़ैदी ने टिप्पणी की।

"मैं जानता हूँ, मैं लाड़-प्यार से बिगड़ा हुआ हूँ, साथियो," स्कूरातोव

ने एक ठंडी सांस ली। लग रहा था, उसे अपने बिगड़ने का बहुत अफ़सोस है। वह किसी ख़ास आदमी को लक्ष्य कर के नहीं बल्कि सबसे कह रहा था, "बचपन से ही मैं फलों और बढ़िया मीठी पावरोटी पर पला हूँ" (उसने जान-बूझकर अपने शब्दों को विकृत करते हुए कहा)। अभी तक मास्को में मेरे भाइयों की अपनी दुकान है। वे तो मैन स्ट्रीट में वायलिन बेचते हैं—वे बड़े पैसे वाले दुकानदार हैं।"

"और क्या तुम भी दुकानदार थे?"

"मैं भी क़िस्म-क़िस्म के काम करता था। साथियो, तभी मुझे दो सौ—"

"तुम्हारा मतलब रूबलों से तो नहीं?" एक उत्सुक श्रोता ने पूछा। इतनी बड़ी रक़म के ज़िक्र से ही वह चौंक उठा था।

"नहीं प्यारे, रूबल नहीं, बेंतों की मार पड़ी। लूका, अरे लूका!"

"मैं लूका ज़रूर हूँ लेकिन तुम्हारे लिए मैं लूका कुज़मिच हूँ।" एक दुबले, तीखी नाक वाले क़ैदी ने चिढ़कर कहा।

"अच्छा, लूका कुज़मिच ही सही। जहन्नुम में जाओ।"

"कुछ लोगों के लिए मैं लूका कुज़मिच हूँ, लेकिन तुम्हें मुझे चचा-जान कहना चाहिए।"

"अच्छा चचाजान, जहन्नुम में जाओ! तुम इस क़ाबिल नहीं हो कि तुमसे कोई बात की जा सके। लेकिन मैं एक बढ़िया बात बताना चाहता था। साथियो, तो यूँ हुआ। मास्को में मैं ज़्यादा कमाई न कर सका; पुलिस वालों ने आख़िरी तोहफ़े के तौर पर मुझे पंद्रह कोड़े मार कर वहाँ से मेरा बोरिया-बिस्तर गोल कर दिया तो फिर मैं···"

"लेकिन तुम्हारा बोरिया-बिस्तर क्यों गोल किया गया?" उस क़ैदी ने पूछा जो ध्यान से उसकी बातें सुन रहा था।

"इसलिए क्योंकि क्वारेन्टीन[1] में जाकर शराब पीना और जुआ

---

१. संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए यात्रियों पर लगाई गई पाबंदी।

खेलना सरकारी नियमों के खिलाफ़ है। इसलिए साथियो, मुझे मास्को में पैसे कमाने का खास मौक़ा नहीं मिला और मैं अमीर होने के लिए बेचैन था, इतना बेचैन कि मैं बयान नहीं कर सकता।"

बहुत से श्रोता हँस पड़े। स्पष्टत: स्कूरातोव उन विदूषकों में से था, जो अपने उदास साथियों का मनोरंजन करना अपना कर्तव्य समझते हैं। इन स्वयंसेवकों को उनकी सेवाओं के बदले में सिर्फ़ गालियाँ मिलती हैं। वह उस खास क़िस्म की, प्रमुख श्रेणी के व्यक्तियों में से था, जिनका ज़िक्र मैं बाद में विस्तार से करूँगा।

"अब तो क़ीमती फ़र वाले जानवर की तरह तुम्हारा शिकार किया जाएगा। सौ रूबल तो सिर्फ़ तुम्हारे कपड़ों की ही क़ीमत होगी।" लूका कुज़मिच ने कहा। स्कूरातोव बहुत पुराना पोस्तीन पहने था जो इस वक्त जर्जर हालत में था और उसमें सारी जगह पैबंद लगे थे। उसने गौर से, लेकिन लापरवाही से अपने कपड़ों की तरफ़ देखा, और जवाब दिया :

"साथियो, असली क़ीमत तो मेरे सिर की, मेरे दिमाग़ की है। जब मैंने मास्को को अलविदा कहा तो मुझे सिर्फ़ एक ही तसल्ली थी। वह यह कि मेरा सिर अभी सलामत था। मैंने कहा, अलविदा मास्को, तुम्हारी मार के लिए शुक्रिया, तुम्हारी चोटों के लिए शुक्रिया! तुमने मेरी खूब मरम्मत की है। मेरा पोस्तीन का कोट इस क़ाबिल नहीं कि उसकी तरफ़ देखा जा सके—मेरी नेक आत्मा…"

"तो क्या तुम्हारा सिर देखने के क़ाबिल है?"

"इसका सिर भी इसका अपना नहीं, यह उसे ख़ैरात में मिला था। जब यह त्यूमन में एक टोली के साथ जा रहा था तो किसी ने ईसा के नाम पर इसे सिर दे दिया था," लूका ने फिर टिप्पणी की।

"मैं पूछता हूँ, स्कूरातोव, क्या तुम्हारा कोई कारोबार था?"

"कारोबार? क्या खूब! वह कुत्तों के पिल्लों को इधर-उधर घुमाया करता था और उनकी खाने की चीजें चुराया करता था—बस

वही इसका कारोबार था।" उदास क़ैदियों में से एक ने कहा।

"मैंने सचमुच मोची का काम करने की कोशिश की थी। मैंने सिर्फ़ एक जोड़ी जूता बनाया था," स्कूरातोव ने तीखे व्यंग्य को न समझ कर कहा।

"तो क्या वे जूते किसी ने खरीदे थे?"

"हाँ, एक ग्राहक आया तो था; मेरे ख़्याल में उसे न ईश्वर का डर था न वह अपने माँ-बाप की इज्ज़त करता था। ईश्वर ने उसे उसके गुनाहों की सजा दी और उसने वे जूते खरीद लिये।"

स्कूरातोव के इस कथन पर सब श्रोता ज़ोर से हँस पड़े।

स्कूरातोव ने हद से ज्यादा लापरवाही से कहा, "मैंने जेल में भी एक बार काम किया था। लेफ़्टीनेन्ट पोमोर्ज़ेव के जूतों का ऊपरी हिस्सा बनाया था।"

"क्या लेफ़्टीनेंट को तुम्हारे काम से संतोष हुआ था?"

"नहीं दोस्तो, संतोष नहीं हुआ था। उसने मुझे इतनी गालियाँ दीं, जो सारी उम्र के लिए काफ़ी होंगी, और अपने घुटने से मेरी पीठ पर भी मारा था। वह बेहद गुस्से में था, आह, मेरी ज़िन्दगी ने मुझे धोखा दिया है, छिनाल ने मुझे धोखा दिया है।"

उसने फिर नाचते हुए यह गाना शुरू कर दिया,

"और मुझे अभी पता भी नहीं चला था, कि
अकुलीना का पति आ गया..."

"छिः, कसा बेहया आदमी है," मेरे साथ चलने वाले लिटल रशियन ने स्कूरातोव की तरफ़ नफ़रत और ग्लानिभरी, तिरछी नज़र डाली।

"निकम्मा आदमी है।" एक और क़ैदी ने गम्भीर और निश्चित स्वर में कहा। मेरी समझ में नहीं आया कि वे लोग स्कूरातोव से इतने नाराज़ क्यों थे और क्यों सारे क़ैदी इन ख़ुशमिज़ाज लोगों से नफ़रत करते थे, जैसा मैंने उन प्रारंभिक दिनों में ही देख लिया था। मेरा ख़्याल था कि लिटल रशियन और दूसरे क़ैदी, व्यक्तिगत कारणों

से स्कूरातोव से चिढ़ते थे। लेकिन यह व्यक्तिगत नापसंदगी की बात नहीं थी। वे स्कूरातोव से इसलिए चिढ़ते थे, क्योंकि उसमें संकोच की कमी थी, वह कठोर व्यक्तिगत शालीनता का प्रदर्शन नहीं करता था, जिसका सब क़ैदियों को ख़ास तौर पर ख़्याल और मिथ्याभिमान रहता था। दरअसल क़ैदियों के शब्दों में कहा जाए तो वे उसके 'निकम्मेपन' से तंग थे। फिर भी वे सब रंगीले क़ैदियों से नहीं चिढ़ते थे और उनसे वैसा सलूक नहीं करते थे, जैसा कि वे स्कूरातोव और उस जैसे और लोगों से करते थे। यह सब लोगों की सहनशक्ति पर निर्भर करता था। खुशमिज़ाज और सीधे आदमी की फ़ौरन बेइज्ज़ती कर दी जाती थी। मुझे यह देखकर बेहद ताज्जुब हुआ था। लेकिन खुशमिज़ाज लोगों में से कई ऐसे थे जिनमें दम-ख़म था, और वे लोगों से अपनी इज्ज़त करवा लेते थे। इस टोली में भी ऐसा ही एक तेज-तर्रार आदमी था। वह लम्बा ख़ूबसूरत आदमी था। उसके गाल पर एक बड़ा-सा मस्सा था। उसके ख़ूबसूरत चेहरे से अक़्लमंदी टपकती थी, फिर भी उस पर मसख़रापन छाया रहता था। दरअसल वह एक खुशमिजाज और प्यारा आदमी था, यह बात मुझे बाद में जाकर मालूम हुई। सब उसे 'पायनीयर' कहकर पुकारते थे, क्योंकि कभी वह पायनियरों की टुकड़ी में काम कर चुका था। अब वह 'स्पेशल डिवीज़न' में था। बाद में मैं उसका विस्तार से ज़िक्र करूँगा।

लेकिन सब 'गम्भीर' लोग उस गुस्ताख़ लिटल रशियन की तरह मुँहफट नहीं थे। जेल में कुछ ऐसे लोग भी थे, जो बड़प्पन पाना चाहते थे और दिखाना चाहते थे कि वे सर्वगुणसम्पन्न हैं, चरित्रवान और अक़्लमंद हैं, उनकी ऊपर तक पहुँच है। इनमें से कई तो सचमुच सच्चरित्र और अक़्लमंद थे और उन्होंने अपना उद्देश्य पूरा कर लिया था। अपने साथियों में उन्हें प्रमुख स्थान मिल गया था और सब पर उनका नैतिक प्रभाव छा गया था। इन सयाने लोगों की आपस में ख़ूब दुश्मनी थी, उनमें से हरेक के कई दुश्मन थे। वे और लोगों को

इस शालीन दृष्टि से देखते थे, जैसे कोई बड़ा एहसान कर रहे हों। वे अकारण ही लोगों से झगड़ बैठते थे। वे जेल-अधिकारियों के मुँह लगे थे और काम में अगुआ बनते थे। मिसाल के लिए उनमें से कोई भी किसी के गाने में दोष निकालने के लिए तैयार न था, ऐसी क्षुद्र बातों की उन्हें परवाह नहीं थी। जब तक मैं जेल में रहा, ये लोग मुझसे बेहद शिष्टता दिखाते रहे, लेकिन ये ज़्यादा बातूनी नहीं थे। जाहिर था कि उन्हें अपनी शालीनता का हर वक्त एहसास रहता था। मुझे इन लोगों के बारे में भी विस्तारपूर्वक बताना पड़ेगा।

हम दरिया के किनारे पहुँचे। पुरानी नाव, जिसे काटकर हमें लकड़ी निकालनी थी, नीचे बर्फ़ में जमी पड़ी थी। दरिया के उस पार दूर क्षितिज तक स्तेपीज़ के मैदान की नीलिमा छाई थी। यह अत्यन्त उदास और उजाड़ दृश्य था। मेरा ख़्याल था कि सब लोग फ़ौरन काम शुरू कर देंगे लेकिन उनका ऐसा कोई इरादा नहीं था। कुछ लोग किनारे पर रखी बल्लियों पर बैठ गये; क़रीब-क़रीब सब ने अपने जूतों में से स्थानीय तम्बाकू की छोटी-छोटी थैलियाँ निकालीं। यह तम्बाकू तीन कोपेक का एक पौण्ड मिलता था। उन लोगों के पास वेद वृक्ष की लकड़ी के बने पाइप भी थे, जो उन्होंने अपने हाथों से तैयार किए थे। क़ैदियों ने पाइप सुलगा लिये। सिपाही हमारे चारों तरफ़ गोल बाँध कर उकताए हुए भाव से पहरा देने लगे।

एक क़ैदी ने जैसे अपने-आप से कहा, "नाव को तुड़वाना किसके दिमाग़ की उपज है? क्या उन लोगों को लकड़ी की छीलन चाहिए?"

"चाहे किसी के दिमाग़ की उपज हो, लेकिन यह साफ़ है कि उस आदमी को हम लोगों के ग़ुस्से से डर नहीं था।" एक और क़ैदी ने कहा।

"वे किसान कहाँ जा रहे हैं?" पहले क़ैदी ने, अपने पहले सवाल के जवाब की तरफ़ ध्यान न देकर सामने बर्फ़ में चलती हुई किसानों की एक क़तार की तरफ़ इशारा किया। सब लोग अलसाए भाव से

उधर देखने लगे और वक्त काटने के लिए उन किसानों का मज़ाक उड़ाने लगे। क़तार में सबसे आख़िर का किसान बाँहें फैलाकर बड़े ही हास्यास्पद ढंग से चल रहा था, उसके सिर पर किसानों जैसी टोपी थी और वह अपना सिर तिरछा करके बार-बार हिला रहा था। सफ़ेद बर्फ़ की पृष्ठभूमि में उसकी आकृति साफ़ उभर रही थी।

"ज़रा देखो तो, भाई पीटर आज कैसे बने-ठने हैं!" एक क़ैदी ने किसानों के लहजे की नक़ल करते हुए कहा।

ताज्जुब की बात थी कि क़ैदी किसानों को नफ़रत की निगाहों से देखते थे, हालांकि उनमें से आधे लोग ख़ुद किसान-श्रेणी के थे।

"साथियो, सबसे पीछे वाला तो ऐसे चल रहा है जैसे मूलियाँ बो रहा हो।"

"वह कुंदज़हन है, मालूम होता है, उसके पास बहुत पैसा है," एक तीसरे क़ैदी ने कहा।

सब जने हँस पड़े, लेकिन उनकी अलसाई हँसी से मालूम होता था कि वे मरज़ी के ख़िलाफ़ हँस रहे हों। इसी बीच एक नानबाइन वहाँ आ गई, जो तेज़ ज़िन्दादिल औरत थी।

क़ैदियों ने दान के पांच कोपेकों से क्रीमरोल ख़रीद लीं और फ़ौरन उनके बराबर हिस्से कर लिए।

जो नौजवान जेल में मीठी रोटी बेचता था उसने दो दर्जन क्रीमरोल ख़रीद लिए और नानबाइन से झगड़ा शुरू कर दिया। पहले उसे दर्जन में दो रोल कमीशन में मिलते थे। इस बार वह तीन मांग रहा था, लेकिन नानबाइन राज़ी नहीं होती थी।

"अच्छा, तो तुम मुझे बदले में कुछ और नहीं दोगी?"

"और कौन-सी चीज़?"

"वह चीज़ जो चूहे नहीं खाते।"

"तुम पर शैतान की मार पड़े," औरत ज़ोर से चिल्लाई और हँस पड़ी।"

आख़िरकार सार्जेंट, जो काम की निगरानी करता था, हाथ में एक छड़ी लिए वहाँ आ पहुँचा।

"अरे, तुम बैठे क्यों हो, उठ कर काम करो !"

"हमें कोई काम सौंपिये ईवान मातवीच," एक 'अगुआ' ने आहिस्ता से उठते हुए कहा।

"तुमने पहले क्यों नहीं पूछा ? नाव को तोड़ो, यही तुम्हारा काम है।"

आख़िर सब लोग बेतरतीब से उठे और फूहड़ चाल से दरिया की तरफ़ बढ़े। कुछ फ़ौरन फ़ोरमैन बन बैठे, कम से कम बोलचाल से तो यही लगता था। ऐसा ज़ाहिर होता था कि नाव को नहीं तोड़ना था बल्कि जहाँ तक संभव हो सके, लकड़ी को साबुत रखना था, ख़ासतौर पर नाव के नीचे लकड़ी के पेचों से लगी शहतीरों को साबुत रखना था।

"सबसे पहले हमें इस शहतीरी को बाहर निकालना चाहिए, काम शुरू करो, लड़को !" एक क़ैदी ने कहा जो ख़ामोश और सुशील आदमी था, जो पहले एक शब्द भी नहीं बोला था, जो रोब डालने वाले आदमियों में से नहीं था। उसने नीचे उतर कर एक मोटी-सी शहतीरी को पकड़ लिया। वह इस इन्तज़ार में था कि और जने आकर उसकी मदद करेंगे, लेकिन किसी ने उसकी मदद नहीं की।

"इसे उठाओ, डर की कोई बात नहीं ! तुम इसे नहीं उठा पाओगे और अगर तुम्हारा पितामह भालू भी यहाँ आ जाए तो वह भी नहीं उठा पाएगा।" किसी ने दबी ज़बान में कहा।

"अच्छा तो भाइयो, हम कैसे काम शुरू करें ? मैं नहीं जानता…" घबराए हुए आदमी ने जो आगे बढ़ा था, कहा। उसने शहतीरी छोड़ दी और फिर अपने क़दमों पर खड़ा हो गया।

"चाहे तुम कितनी मेहनत कर लो, तुम्हारा काम कभी नहीं हो सकता…तो फिर आगे किसलिए आते हो ?"

"यह आदमी तीन मुर्गियों को भी सही ढंग से दाना नहीं खिला सकता, और अब यह अगुआ बनने चला है···इसे बहुत बेचैनी हो रही थी !"

"साथियो, मेरा यह मतलब नहीं था," हताश नौजवान ने अपनी सफ़ाई देने की कोशिश की।

"क्या तुम लोग चाहते हो कि मैं तुम्हें कपड़ों में लपेट कर रखूँ या सर्दी भर तुम्हें अचार में बन्द रखूँ ?" सार्जेन्ट फिर चिल्लाया। वह हक्का-बक्का होकर बीस क़ैदियों की टोली की तरफ़ देख रहा था, जिन्हें यह नहीं मालूम था कि वे काम कैसे शुरू करें। सार्जेन्ट चिल्लाया, "काम शुरू करो ! जल्दी करो !"

"इन्सान जितनी जल्दी काम कर सकता है उतनी ही जल्दी करेगा, ईवान मातवीच !"

"वाह, तुम तो कुछ भी नहीं कर रहे। अरे सेवीलीव ! तुम्हारा नाम तो बालूनी पेत्रोविच होना चाहिए ! मैं पूछता हूँ, तुम खड़े-खड़े आँखें क्यों मटका रहे हो ? काम करो।"

"लेकिन मैं अकेला क्या कर सकता हूँ ?"

"हमें कोई निश्चित काम दीजिए, ईवान मातवीच।"

"तुमसे पहले कह दिया गया है कि कोई निश्चित काम तुम्हें नहीं मिलेगा। नाव तोड़ो और वापिस अपने घर जाओ ! काम शुरू करो।"

आख़िर क़ैदियों ने काम शुरू किया, लेकिन अनिच्छापूर्वक, हताश-भाव से। काम ठीक से हो नहीं पा रहा था। सचमुच देखने वाले को गुस्सा आ सकता था कि इतने तगड़े लोग मिलकर भी यह नहीं तय कर पा रहे कि काम कैसे शुरू किया जाए। ज्यों ही उन लोगों ने पहली शहतीरी को निकालना शुरू किया, जो सबसे छोटी थी, तो शहतीरी टूटने लगी। "अपने आप टूटने लगी," जैसा कि ओवरसीयर को सफ़ाई देते हुए बताया गया था। तब क़ैदियों ने सोचा कि इस तरह काम नहीं चलेगा, कोई और तरीक़ा सोचना चाहिए। वह तरीक़ा क्या हो सकता

है, इस पर लम्बी-चौड़ी बहस शुरू हो गई। अब क्या किया जाए? धीरे-धीरे गाली-गलौज की नौबत आ गई और मामला इससे भी ज़्यादा बढ़ने। लगा'''सार्जेंट फिर चिल्लाया। उसने अपनी छड़ी घुमाई लेकिन शहतीरी फिर टूट गई। कुल्हाड़ियों से काम चलता न देखकर, और औज़ारों की ज़रूरत महसूस हुई। दो क़ैदियों को संतरियों के पहरे में औज़ार लाने भेजा गया, और इस बीच बाक़ी क़ैदी मज़े से कश्ती पर बैठ गए और फिर अपने पाइप निकाल कर तम्बाकू पीने लगे।

सार्जेंट का धैर्य ख़त्म हो गया।

"मैं मेहनत का मज़ाक नहीं उड़ाने दूंगा। उफ़! कैसे लोग हैं! कैसे लोग हैं'''!" सार्जेंट गुस्से में बड़बड़ाया और अपनी छड़ी घुमाता हुआ क़िले की तरफ़ चला गया।

एक घंटे बाद फ़ोरमैन वहाँ आया। शान्तिपूर्वक क़ैदियों की बात सुनने के बाद उसने कहा कि वे बिना तोड़े, चार और शहतीरियाँ नाव में से निकालें, नाव के काफ़ी बड़े हिस्से को काटकर अलग करें, इसके बाद वे घर जा सकते हैं। काम बहुत था, लेकिन हे ईश्वर! वे लोग किस तरह काम पर टूट पड़े थे! आलस या अयोग्यता का नामोनिशान नहीं था। कुल्हाड़ियों की आवाज़ें सुनाई देने लगीं; वे लकड़ी के पेचों को खोलने लगे। बाक़ियों ने कश्ती के नीचे मोटी बल्लियां लगा दीं, और बीस हाथों ने एक साथ ज़ोर लगाकर शहतीरियों को बाहर निकाला। मुझे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि इस बार शहतीरियाँ बिना टूटे, साबुत ही बाहर निकल आई थीं। काम जंगली आग की तरह जारी रहा। सहसा हर क़ैदी प्रतिभावान बन गया।

कोई भी एक शब्द नहीं बोला, एक भी गाली नहीं सुनाई दी; सब लोगों को जैसे मालूम हो गया था कि उन्हें क्या कहना चाहिए, क्या करना चाहिए, कहाँ खड़े होना चाहिए, क्या सलाह देनी चाहिए। नगाड़ा बजने से आध घंटा पहले, काम का आख़िरी हिस्सा भी ख़त्म हो गया और क़ैदी थके-मांदे लेकिन संतुष्ट घर लौटे, हालांकि उन्होंने

अपने काम के वक्त में से सिर्फ़ आधा घंटा ही बचाया था। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध था, मैंने एक चीज़ देखी; जब भी काम के दौरान मैंने उनकी मदद करनी चाही, वह अनावश्यक साबित हुई ; हर जगह, मैं लोगों के रास्ते में अड़चन साबित होता था, हर जगह मुझे गालियां और धक्के मिलते थे।

शोहदे से शोहदा आदमी, जिसे काम करने का सलीक़ा नहीं आता था, और अपने से ज़्यादा होशियार और तेज़ क़ैदियों के सामने ज़बान तक खोलने की जिसे जुर्रत नहीं होती थी, वह अपने को मुझ पर रोब डालने के क़ाबिल समझता था। अगर मैं उसके पास जाकर खड़ा होता था तो उसे यह बहाना मिल जाता था कि मैं उसके काम में दख़ल दे रहा हूँ। आख़िर तेज़-तर्रार क़ैदियों में से एक ने मुझसे साफ़-साफ़ भोंडे ढंग से कह ही दिया, "तुम क्यों लोगों को धक्के दे रहे हो ? यहाँ से चले जाओ ! जिस जगह तुम्हारी ज़रूरत नहीं वहाँ क्यों टाँग अड़ाते हो ?"

"तुम्हारा खेल ख़त्म हो गया है !" एक दूसरे क़ैदी ने फ़ौरन सुर में सुर मिलाकर कहा।

"तुम्हारे लिए तो बेहतर है कि तुम हाथ में एक बर्तन लेकर लोगों से बढ़िया मकान बनाने के लिए आधे-आधे पेंस की ख़ैरात मांगो और उसे नसवार में बर्बाद कर दो, लेकिन यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं।"

मुझे एक तरफ़ हटकर खड़ा होना पड़ा। जब सब लोग काम कर रहे हों तो एक तरफ खड़े रहने में शर्म लगती है। लेकिन जब मैं जाकर नाव के परले सिरे पर खड़ा हो गया तो वे लोग फ़ौरन चिल्ला उठे,

"हमें बहुत अच्छे मज़दूर दिए गए हैं; इन लोगों से भला कौन-सा काम करवाया जा सकता है ? कुछ भी नहीं करवाया जा सकता।"

यह सब जानबूझकर कहा गया था, क्योंकि इससे हरेक का

मनोरंजन हुआ। वे उस आदमी का मज़ाक ज़रूर उड़ाते हैं जो कभी सुसंस्कृत भद्रपुरुष रह चुका हो और निस्सन्देह, यह मौक़ा पाकर उन्हें बेहद ख़ुशी हुई थी।

अब आप समझ गए होंगे कि जेल में दाख़िल होते ही, जैसा मैं पहले ज़िक्र कर चुका हूँ, सबसे पहला सवाल मेरे मन में यही उठा था कि मुझे इन लोगों से किस तरह पेश आना चाहिए और कैसा रुख़ रखना चाहिए। मुझे इस बात का पूर्वाभास हो गया था कि अक्सर इन लोगों से मेरी टक्कर हुआ करेगी। लेकिन तमाम दिक्क़तों के बावजूद मैंने फ़ैसला किया था कि मैं अपनी उस योजना को नहीं बदलूँगा जो मैंने उन दिनों सोची थी। मैं जानता था कि वह योजना सही है। मैंने तय किया था कि जहाँ तक सम्भव होगा मैं अपना व्यव-हार सरल और स्वतन्त्र रखूँगा, उन लोगों से आत्मीयता बढ़ाने की ख़ास कोशिश नहीं करूँगा, लेकिन अगर वे ख़ुद मुझसे दोस्ती करना चाहेंगे तो मैं उन्हें निरुत्साहित भी नहीं करूँगा। उनकी धमकियों और नफ़रत से नहीं डरूँगा और जहाँ तक मुमकिन होगा, उन्हें अनदेखा करने का उपक्रम करूँगा। कई बातों में उनके नज़दीक नहीं जाऊँगा और उनकी कुछ आदतों और रिवाजों को प्रोत्साहन नहीं दूँगा। मैं इस बात की कोशिश नहीं करूँगा कि वे मुझे अपना साथी समझें। मैं पहली निगाह में ही समझ गया था कि अगर मैंने उनका साथी बनने की कोशिश की तो वे लोग नफ़रत करने में पहल करेंगे। लेकिन उनके ख़्यालों के मुताबिक़ (जैसा मुझे बाद में जाकर मालूम हुआ) मुझे उनके सामने हर वक़्त अपने आभिजात्य को बनाए रखना चाहिए, अर्थात् मुझे अपनी सुविधाओं का ख़्याल रखना चाहिए, अहंकार का प्रदर्शन करना चाहिए, उन लोगों से नफ़रत करनी चाहिए, हर चीज़ पर नाक-भौं सिकोड़नी चाहिए—दरअसल मुझे एक कुलीन भद्रपुरुष का पार्ट अदा करना चाहिए। इन्हीं बातों को वे एक भद्रपुरुष का आचरण समझते थे। इस आचरण के लिए वे मुझे गालियाँ ज़रूर देते, लेकिन

मन ही मन मेरी इज्ज़त करते। इस तरह का पार्ट अदा करना मेरे स्वभाव के विरुद्ध था, उन लोगों के विचारों में मैं कुलीन नहीं था; लेकिन मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं कोई ऐसा काम नहीं करूँगा जिससे मेरी शिक्षा और विचार कलंकित हों। अगर मैंने उनसे सुलह करके उनकी हाँ में हाँ मिलाकर उनकी सद्भावना पाने की कोशिश की होती और मैं उनके अनेक 'गुणों' को अपनाता तो वे फ़ौरन समझते कि मैं डरपोक हूँ और वे मुझे हीन समझने लगते। 'अ' की मिसाल भी अनुकरणीय नहीं थी ; वह मेजर के यहाँ आया-जाया करता था, क़ैदी ख़ुद उससे डरते थे। मैं पोलिश क़ैदियों की तरह सर्द और एक शिष्ट दूरी भी नहीं रखना चाहता था। मैं समझ गया कि वे लोग मुझसे इसलिए नफ़रत करने लगे हैं कि मैंने उनके साथ मिलकर काम करने की इच्छा प्रकट की है, अपनी सुविधा का ख़्याल नहीं किया, न ही उन पर अपनी कुलीनता का रोब जमाया। हालाँकि मुझे यक़ीन था कि बाद में जाकर वे लोग मेरे बारे में अपनी राय ज़रूर बदल लेंगे, लेकिन इस विचार ने—कि वे इसलिए मुझसे नफ़रत करने का हक़ रखते हैं क्योंकि उनके ख़्याल में मैं उनसे सुलह करना चाहता था—मेरे मन में कटुता भर दी।

दिन का काम ख़त्म करके शाम को जब मैं थका-मांदा जेल लौटा तो फिर मुझे भयंकर अवसाद ने आ घेरा। मैं सोचने लगा, 'न जाने ऐसे ही कितने हज़ार दिन अभी मुझे यहाँ गुज़ारने होंगे, ये सारे दिन बिल्कुल एक ही जैसे होंगे।' अंधेरा होने पर मैं जेल के पिछवाड़े, चहारदीवारी के पास अकेला ख़ामोशी से चहलक़दमी करने लगा। सहसा मैंने देखा, शारिक मेरी तरफ़ भागा आ रहा था। शारिक हमारे जेल का कुत्ता था, जिस तरह फ़ौज की कम्पनियों, बैटरियों और टुकड़ियों के अपने-अपने कुत्ते होते हैं। वह मुद्दत से जेल में रह रहा था, कोई ख़ास आदमी उसका मालिक नहीं था, वह हर क़ैदी को अपना मालिक समझता था और बावर्चीख़ाने की जूठन पर ज़िन्दा रहता था। वह बड़े आकार का दोगला कुत्ता था। उसका रंग काला था, जिस पर सफ़ेद

चकत्ते थे, वह ज्यादा उम्र का नहीं था, उसकी आँखों से समझदारी टपकती थी। उसकी पूंछ झबरीली थी। कोई स्नेह से उसे न पुचकारता था, न ही उसकी तरफ़ ध्यान देता था। मैंने पहले दिन से ही उसे सहलाना और हाथ से रोटी खिलाना शुरू किया। जब मैं उसकी पीठ पर हाथ फेरता था तो वह चुपचाप खड़ा होकर मेरी तरफ़ स्नेह से देखता था और अपनी खुशी जाहिर करने के लिए दुम हिलाता था। इतने बरसों के बाद मैं ही वह आदमी था, जिसने उसे सहलाया था। मुझे वहाँ न पाकर वह सब क़ैदियों में मुझे तलाश करता फिरा और मुझे जेल के पिछवाड़े में खड़ा देखकर खुशी से हाँफता हुआ वहाँ भागा आया। न जाने मुझे क्या हो गया, मेरी तबीयत हुई कि उसे चूम लूं। मैंने उसकी गर्दन में बाँहें डाल दीं, उसने अपने अगले पंजे मेरे कंधों पर रख दिए और मेरा चेहरा चाटने लगा। 'तो क़िस्मत ने मुझे यही एक दोस्त भेजा है', मैंने मन ही मन सोचा। उस कठिन अवसाद-भरे काल में हर रोज काम से लौटते ही सबसे पहले मैं जेल के पिछवाड़े जाता था। शारिक मुझे देखकर खुशी से कराहने और उछलने लगता था। मैं उसका सिर अपनी बाँहों में लेकर उसे बार-बार चूमता था—एक मधुर और तीव्र कटु अनुभूति से मेरा मन कचोट उठता था। मुझे दया है, यह सोचकर कि दुनिया में सिर्फ़ एक ही जीव है, जो मुझसे प्यार करता है, मेरे प्रति वफ़ादारी दिखाता है—वह है मेरा दोस्त और एकमात्र दोस्त—मेरा वफ़ादार कुत्ता शारिक—मेरे मन में एक मधुर अनुभूति उठती थी, अपनी पीड़ा पर अभिमान होने लगता था।

नये परिचित लोग—पेत्रोव

लेकिन वक्त बीतने के साथ-साथ धीरे-धीरे मैं जेल की ज़िन्दगी का आदी होता गया। नई ज़िन्दगी की दैनिक घटनाओं को देखकर मेरी घबराहट कम होती गई। मेरी आँखें उन घटनाओं की, परिस्थितियों और व्यक्तियों की अभ्यस्त हो गईं। इस ज़िन्दगी से समझौता करना तो नामुमकिन था लेकिन उसे यथार्थ समझ कर स्वीकार करने का वक्त आ पहुँचा था। मेरे मन में जो घबराहटें बाकी थीं, वे मैंने यथासम्भव, पूरी तरह से अपने मन में छिपा लीं। मैं अब विक्षिप्त की तरह जेल में नहीं घूमता था, न ही अपने दुख को व्यक्त करता था। क़ैदियों की पाशविक-कौतूहल से भरी आँखें अब मुझ पर अक्सर नहीं गड़ी रहती थीं, वे धृष्टतापूर्वक मेरी तरफ़ अब नहीं घूरते थे। जाहिर था कि वे भी मेरी उपस्थिति के आदी हो गए थे, मुझे इस बात की बेहद खुशी थी। मैं जेल में इस तरह घूमा करता था, जैसे वह मेरा अपना घर हो। मैं बैरक में अपने सोने के स्थान का भी आदी हो गया था। मैं उन बातों का भी अभ्यस्त हो गया था, जिनके बारे में मेरा ख्याल था कि मैं कभी अभ्यस्त नहीं हो सकूँगा।

हफ़्ते में एक बार मैं अपना आधा सिर मुंडवाने के लिए नियमित रूप से जाता था। हर शनिवार को फ़ुर्सत के वक्त हम लोगों को बारी-बारी से गारदघर में बुलाया जाता था (अगर हम न जाते तो हमें अपने ख़र्च पर हजामत करवानी पड़ती थी) वहाँ हमारी बटालियन के नाई साबुन की ठंडी झाग से हमारे बाल रगड़ते थे और फिर मोथरे उस्तरों से, बेहद बेरहमी के साथ हमारे बाल छीलते थे। उस यन्त्रणा की कल्पना से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लेकिन जल्द ही इस मुसीबत का हल भी निकल आया। अकिम अकीमिच ने मुझे मिलिटरी डिवीज़न का

एक क़ैदी दिखाया जो एक कोपेक के बदले अपने उस्तरे से क़ैदियों के बाल मूंडा करता था। यह उसका पेशा था। बहुत से क़ैदी जेल के नाइयों से बचने के लिए उसके पास जाया करते थे, हालाँकि वे इतने संवेदनशील नहीं थे। उस क़ैदी नाई को सब 'मेजर साहब' पुकारते थे, किसलिए पुकारते थे, मैं नहीं जानता। वह हमारे मेजर से किन बातों में मिलता था, यह भी मैं नहीं बता सकता। इन पंक्तियों को लिखते हुए मुझे इस मेजर की याद आ रही है, जो लंबा, दुबला, ख़ामोश और बेवकूफ़ आदमी था। हर वक्त वह अपने काम में लगा रहता था। दिन-रात वह चमड़े की एक पट्टी पर अपना बेहद घिसा हुआ उस्तरा तेज़ किया करता था। उसका ध्यान अपने काम में लगा रहता था, इसे वह अपना असली धंधा समझता था। जब उस्तरा अच्छी हालत में होता था और कोई क़ैदी हजामत करवाने के लिए आ जाता था तो उसे बड़ी खुशी होती थी। उसके साबुन की झाग गर्म होती थी, उसके हाथ सधे हुए थे और उसके तराशे हुए बाल मख़मल की तरह मुलायम होते थे। ज़ाहिर था कि उसे अपनी कला से बहुत प्रेम था। वह मज़दूरी का कोपेक इतनी लापरवाही से लेता था, जैसे वह पैसे की ख़ातिर नहीं बल्कि कला की ख़ातिर हजामत करता हो। उसे अपनी कला पर गर्व था।

'अ' को एक दिन जेल के मेजर से बेभाव की पड़ीं, जब उसने क़ैदियों की चुगली करते हुए लापरवाही में हमारे नाई को मेजर कह दिया। मेजर गुस्से से लाल-पीला हो गया, उसके दिल को बहुत ठेस लगी थी, "बदमाश आदमी, जानते हो मेजर का क्या मतलब होता है ?" मेजर के मुँह से झाग निकलने लगी और अपनी आदत के मुताबिक़ वह 'अ' पर पिल पड़ा, "जानते हो मेजर का क्या मतलब होता है ? तुम मेरे सामने, मेरी मौजूदगी में एक लफ़ंगे क़ैदी को मेजर कहो, तुम्हारी इतनी मजाल !" सिर्फ़ 'अ' ही ऐसे आदमी के साथ गुज़ारा कर सकता था।

जेल में आने के पहले दिन से ही मैंने आजादी के सपने देखने शुरू कर दिए थे। मेरी क़ैद के दिन कब ख़त्म होंगे, हज़ार अलग-अलग ढंगों से इसका हिसाब लगाना मेरा प्रिय व्यसन बन गया। यह बात हमेशा मेरे दिमाग़ में रहती थी, मुझे यक़ीन है कि हर आदमी, जिसे निश्चित समय के लिए आज़ादी से वंचित कर दिया जाता है, ऐसा ही सोचता है। मालूम नहीं, बाक़ी क़ैदी भी ऐसा सोचते थे या नहीं, लेकिन शुरू से ही उनके सपनों की आश्चर्यजनक उद्दण्डता से मैं प्रभावित हुआ था। आज़ादी से वंचित क़ैदी के सपने उस आदमी से बिल्कुल अलग होते हैं जो स्वाभाविक जिन्दगी बसर कर रहा हो। एक आज़ाद आदमी सपने देखता है (मिसाल के लिए क़िस्मत बदलने के या किसी काम की सफलता के) लेकिन वह जिन्दगी की दुनिया में रहता और काम करता है। क़ैदी की बात इससे बिल्कुल अलग है। जिन्दगी उसकी भी है, मान लिया। जेल की ज़िन्दगी ही सही—लेकिन एक क़ैदी चाहे जहाँ हो उसकी क़ैद की मियाद चाहे जितनी हो, वह अपनी परिस्थितियों को निश्चित और अंतिम नहीं समझता। उसके अन्दर एक सहज वृत्ति होती है, वह महसूस करता है कि वह 'अपने घर में नहीं है' बल्कि घर से बाहर कुछ अरसे के लिए आया है। बीस बरसों को वह दो बरस समझता है। उसे पूरी तरह यक़ीन होता है कि पचपन बरस की उम्र में जब वह जेल से बाहर निकलेगा, तब भी उसमें उतनी ही ताक़त और ज़िन्दादिली होगी जो उसमें अब है—जबकि वह पैंतीस बरस का है। 'अभी तो मेरी जिन्दगी बाक़ी पड़ी है,' ऐसा सोचकर वह सब संदेहों और परेशानी पैदा करने वाले ख्यालों को दूर भगा देता है। यहाँ तक कि स्पैशल डिवीज़न के वे क़ैदी जिन्हें उम्र-क़ैद हुई थी, कभी-कभी सपने देखते थे कि शायद अचानक किसी दिन पीटर्ज़बर्ग से उनकी रिहाई का हुक्म आ जाए कि "उन्हें नेर्चिन्स्क की खानों में भेज दिया जाए और उनकी सजा कम कर दी जाए," तब सारा मामला ठीक हो जाएगा। छः महीने तो नेर्चिन्स्क पहुँचने में ही लग जाएंगे, जेल

में रहने की बजाय सफ़र करने में कितना आनन्द आएगा ! और फिर नेर्चिन्स्क की मियाद भी पूरी हो जाएगी, और फिर···कई बार तो सफ़ेद बालों वाले क़ैदी भी इसी ढंग से सोचा करते थे ।

तोबोल्स्क में मैंने क़ैदियों को ज़ंजीरों से दीवार में बंधा देखा है । ज़ंजीर सात फुट लंबी होती है । क़ैदी के पास ही उसकी चारपाई भी रखी रहती है । साइबेरिया में किसी असाधारण जुर्म की सज़ा देने के लिए क़ैदियों को इस हालत में पाँच बरस, दस बरस तक रखा जाता है । आमतौर पर ये क़ैदी डाकू या लुटेरे होते हैं । उनमें से एक क़ैदी ही मुझे कुलीन ख़ानदान का मालूम हुआ । वह कहीं सरकारी नौकरी करता था । वह बड़ी हलीमी से तुतलाकर बोलता था । उसकी मुस्कराहट में एक फीकी मिठास थी । उसने हमें अपनी ज़ंजीर दिखाई और दिखाया कि वह किस तरह मज़े में बिस्तर पर लेट सकता है । वह ज़रूर बढ़िया नमूना रहा होगा ! आमतौर पर सब क़ैदी ख़ामोशी से पेश आते हैं और संतुष्ट दिखाई देते हैं, लेकिन उनमें से हरेक तीव्र उत्सुकता से अपनी सज़ा के ख़त्म होने का इन्तज़ार करता है । किसलिए ? मैं बताता हूँ किसलिए । वह उस दम घोंटने वाले अंधेरे कमरे से, जिसकी छत नीची और ईंटों की बनी हुई है, निकल कर जेल के सहन में घूम-फिर सकेगा ···बस इसीलिए । उसे कभी जेल से बाहर नहीं जाने दिया जाएगा । वह जानता है कि जिन्हें ज़ंजीरों में बांधा जाता है, उन्हें हमेशा जेल में रहना पड़ता है और जिन्दगी के आख़िरी दिन तक ज़ंजीरों से बंधा रहना पड़ता है । यह जानते हुए भी वह उस वक्त के इन्तज़ार में रहता है, जब उसे ज़ंजीरों से मुक्ति मिल जाएगी । लेकिन इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए वह भला किस तरह मरे या पागल हुए बग़ैर पांच या छः साल तक रह सकेगा ?

मैंने महसूस किया कि शायद शारीरिक मेहनत मुझे इन परेशानियों से बचा ले, मेरी सेहत और जिस्म सुधर जाए । लगातार मानसिक चिन्ताएं, स्नायुविक तनाव, और जेल की गंदी हवा मुझे बर्बाद कर

देगी । हर वक्त खुली हवा में रहकर, लगातार मेहनत करने से, भारी वज़न उठाने से किसी तरह मैं अपने को बचा लूँगा। मैंने सोचा, मैं अपने को मज़बूत बनाऊँगा और ख़ूब तंदुरुस्त और ताक़तवर होकर अच्छी हालत में जेल से जाऊँगा, बुढ़ापा लेकर नहीं । मेरा ख़्याल ग़लत नहीं था ; मेहनत और वर्जिश मेरे लिए फ़ायदेमन्द साबित हुई । अपने एक साथी की हालत देखकर, जो कुलीन ख़ानदान का था, मेरा दिल दहशत से भर गया । वह मेरे साथ ही जेल में आया था, तब वह जवान, ख़ूब-सूरत और ताक़तवर था । जब वह जेल से रिहा हुआ तो वह क़रीब-क़रीब जर्जर हो चुका था, उसके बाल सफ़ेद हो गये थे, वह क़दम-क़दम पर हाँफने लगता था और उससे चला तक नहीं जाता था । उसकी तरफ़ देखकर मैंने सोचा, नहीं, मैं ज़िन्दा रहना चाहता और ज़रूर रहूँगा । लेकिन शुरू में काम का शौक़ दिखाने की वजह से मैं क़ैदियों की नफ़रत का शिकार बन गया और बहुत अरसे तक वे मेरा मज़ाक उड़ाते रहे और बेइज्ज़ती करते रहे । लेकिन मैंने किसी की तरफ़ ध्यान नहीं दिया और ख़ुशी-ख़ुशी डबल रोटी बनाने और चूना कूटने के लिए जाने लगा। सब से पहले मैंने यही काम सीखा था । यह आसान काम था ।

काम की निगरानी करने वाले अफ़सर भी कुलीन वर्ग के क़ैदियों को आसान से आसान काम देने के लिए तैयार रहते थे, इसमें अनुचित लिहाज़ की बात नहीं थी, बल्कि यह सीधा-सादा इन्साफ़ था । जिस आदमी को शारीरिक मेहनत का तजुर्बा नहीं और जिसकी शारीरिक शक्ति भी एक साधारण मज़दूर से आधी है, वह मामूली मज़दूर जितना काम करे—यह उम्मीद करना बड़ी अजब बात होगी । लेकिन यह 'लिहाज़' हमेशा नहीं दिखाया जाता था, और इसे रोकने के लिए बाहर से कड़ी निगरानी रखी जाती थी । अक्सर हमें बहुत भारी काम करने जाना पड़ता था और हम लोगों के लिए यह काम दुगुना भारी हो जाता था ।

उन तीन या चार आदमियों को अक्सर चूना कूटने के लिए भेजा

जाता था, जो बूढ़े या कमज़ोर होते थे, हमें भी उसी श्रेणी में रखा जाता था। लेकिन एक ऐसा आदमी हमारे ऊपर रखा जाता था जो काम को अच्छी तरह समझता था। बरसों से अलमाज़ोव नाम का एक साँवला, दुबला और बूढ़ा आदमी वहाँ आया करता था। वह गंभीर, असामाजिक और कुढ़ने की प्रवृत्ति वाला आदमी था। हम लोगों से उसे सख़्त नफ़रत थी। लेकिन वह घुन्ना था और उसे बड़बड़ाने में भी आलस लगता था। जिस शैड में चूना पकाया और कूटा जाता था, वह भी दरिया के ढलुवाँ, उजाड़ किनारे पर बना था। जाड़ों में, ख़ासकर ख़राब मौसम में दरिया और दरिया के परले पार का दृश्य बहुत नीरस हो जाता था। इस उजाड़ नीरस दृश्य में एक हृदय-विदारक मार्मिकता थी। लेकिन जब बर्फ़ से ढके हुए विशाल मैदान पर धूप चमकती थी तो यह दृश्य और भी दुखदायी हो जाता था। दरिया के उस पार जहाँ दक्षिण में बारह सौ मील तक का अछूता मैदान फैला है, वहाँ भाग जाने की आकांक्षा होती थी। अलमाज़ोव संजीदा ख़ामोश ढंग से काम शुरू करता था। हमें शर्म आती थी कि हम उसे सचमुच की मदद नहीं दे सकते थे, वह अकेला ही काम चला लेता था और शायद जान-बूझकर हमें अपनी असमर्थताओं का एहसास करवाने के लिए और अपने निकम्मेपन पर अफ़सोस पैदा करने के लिए—हमसे मदद नहीं मांगता था। उसका काम सिर्फ़ भट्टी को गर्म करना था। पकाने के लिए चूना हम लोग लाते थे। अगले दिन जब चूना पूरी तरह पक जाता था, उसे भट्टी से निकालने का काम शुरू होता था। हम में से हर आदमी एक भारी मुंगरी और चूने का भरा एक ख़ास क़िस्म का संदूक लेकर चूना कूटने लगता था। यह मजेदार काम था। भुरभुरा चूना फ़ौरन चमकदार पाऊडर में बदल जाता था, और बड़ी आसानी से टूट जाता था। हम लोग अपनी मुंगरियाँ उठाकर ख़ूब आवाज़ करते थे और इसमें हमें ख़ूब मज़ा आता था। काम के बाद हम थक जाते थे, लेकिन हमारी हालत बेहतर हो जाती थी। हमारे गाल लाल हो जाते थे और

ख़ून ज़्यादा तेज़ी से रगों में दौड़ने लगता था। इस वक्त अलमाज़ोव भी हमें दुलार-भरी नज़रों से देखने लगता था, जैसे कोई छोटे छोटे बच्चों की तरफ़ देखता है। वह बड़ी मेहरबानी जताते हुए अपना पाइप पीने लगता था, हालाँकि बिना बड़बड़ाए वह एक शब्द भी नहीं बोल सकता था। लेकिन वह सबके साथ इसी तरह पेश आता था, हालाँकि मुझे यक़ीन है कि वह दिल का साफ़ आदमी था।

मुझे वर्कशॉप में खराद की मशीन घुमाने का काम भी सौंपा गया था। खराद का पहिया बहुत बड़ा और भारी था। उसे घुमाने में बहुत मेहनत लगती थी, ख़ासतौर पर जब खराद का मैकेनिक (जो रेजीमेंट का मज़दूर था) किसी अफ़सर का फ़र्नीचर बनाने के लिए लकड़ी का कोई टुकड़ा, मिसाल के लिए सीढ़ी का डंडा या मेज़ की टांग खराद रहा होता था जिसके लिए बड़ी-सी बल्ल ी का ज़रूरत पड़ती थी। ऐसे वक्त पहिया घुमाना एक आदमी की ताक़त से बाहर था, इसलिए दो आदमियों को भेजा जाता था, मुझे और एक और 'भद्रपुरुष' को, जिसे मैं 'ब' कहूँगा। कई बरसों तक जब भी खराद के पहिए को घुमाने की ज़रूरत पड़ती तो हमीं लोगों को यह काम सौंपा जाता। 'ब' एक दुर्बल, मरियल नौजवान था, जिसके फेफड़े कमज़ोर थे। वह मुझसे एक बरस पहले, अपने दो साथियों के साथ जेल में आया था। उसके साथियों में एक बूढ़ा था जो दिन-रात प्रार्थना करता रहता था (इस वजह से क़ैदियों में उसकी बहुत इज़्ज़त थी) वह मेरे रिहा होने से पहले ही चल बसा था। दूसरा साथी एक नौजवान लड़का था, जिसके गाल ताज़े और गुलाबी थे, जो बड़ा साहसी और ताक़तवर था। उसने 'ब' को पांच सौ मील तक अपने कंधों पर लादा था—जब 'ब' बहुत थक गया था। दोनों का स्नेह देखते ही बनता था। 'ब' ने बहुत बढ़िया तालीम पाई थी, वह सहृदय और सच्चरित्र था। बीमारी की वजह से उसका स्वभाव कटु और चिड़चिड़ा हो गया था। हम दोनों एक साथ पहिया घुमाया करते थे। हम दोनों को काम में दिलचस्पी थी। मेरे लिए तो काम आला दर्जे

की वर्जिश साबित हुआ।

मुझे कुदाली से बर्फ़ हटाना भी बहुत पसंद था। बर्फ़ानी तूफ़ानों के बाद यह काम क़ैदियों से लिया जाता था। जाड़े में ये तूफ़ान अक्सर आते थे। चौबीस घंटों के बर्फ़ानी तूफ़ान के बाद कुछ घर खिड़कियों तक बर्फ़ में दब जाते थे और कुछ बिल्कुल दफ़्न हो जाते थे। तूफ़ान ख़त्म होते ही, जब धूप निकलती थी तो हमें बड़ी टोलियों में बांटकर, कभी-कभी तो सारे क़ैदियों को ही सरकारी इमारतों पर से बर्फ़ हटाने के लिए भेज दिया जाता था। हर क़ैदी को एक कुदाल दी जाती थी और सब को एक सांझा काम सौंप दिया जाता था। कई बार तो यह काम इतना ज्यादा होता था कि उसे ख़त्म होते देखकर आदमी को ताज्जुब होने लगता था। सब लोग प्रबल इच्छा-शक्ति लेकर काम में जुट जाते थे। नई बर्फ़ जो ऊपर से नर्म होती थी, आसानी से कुदालों में आ जाती थी, बर्फ़ का बारीक़ चमकदार चूरा हवा में फैल जाता था। धूप में चमकती हुई बर्फ़ की सफ़ेदी में कुदालें फ़ौरन धँस जाती थीं; क़ैदियों को हमेशा इस काम से ख़ुशी होती थी। जाड़े की ताजी हवा और वर्जिश से उनके बदन में गर्मी आ जाती थी। सब लोगों के मन पर ख़ुशी छा जाती थी, हँसी-मजाक और चिल्लाने की आवाजें सुनाई देने लगतीं। क़ैदी बर्फ़ के गोले बनाकर एक-दूसरे की तरफ़ फेंकते थे। लेकिन संजीदा क़िस्म के लोग बुरा मनाते थे और उन्हें इस हँसी-ख़ुशी पर ग़ुस्सा आता था। इस जोश का ख़ात्मा गाली-गलौज में होता था।

धीरे-धीरे मैंने अपने परिचितों का वर्ग बढ़ाना शुरू किया, हालाँकि मैं अपनी ओर से नए लोगों के साथ परिचय नहीं बढ़ाना चाहता था। मेरी बेचैनी, उदासी और अविश्वास अभी तक क़ायम था। लोग ख़ुद ही आकर मुझसे परिचय बढ़ाने लगे। सबसे पहले मुझसे पेत्रोव नाम का क़ैदी मिलने आया। मैंने 'मिलने आया' शब्द इस्तेमाल किया है, और मैं इस शब्द पर विशेष जोर दे रहा हूँ। पेत्रोव, स्पैशल डिवीजन में था और जेल के सबसे दूर के हिस्से में रहता था। जाहिर था कि हम दोनों

में कोई सम्पर्क या समानता नहीं थी। लेकिन उन प्रारंभिक दिनों में पेत्रोव अपना फ़र्ज़ समझकर क़रीब रोज़ ही मुझसे मिलने मेरी बैरक में आया करता था और फ़ुर्सत के वक्त जब मैं लोगों की नज़रों से बचने के लिए जेल के पिछवाड़े में चहलक़दमी करने लगता था, तो वह मुझे रोक दिया करता था। शुरू में तो यह बात मुझे सख्त नापसन्द आती थी। लेकिन बाद में, उसके आने से सचमुच मेरा ध्यान बंटने लगा। यह कैसे हुआ, मैं नहीं जानता, हालाँकि वह विशेष रूप से सामाजिक या बातूनी प्राणी नहीं था। वह नाटे क़द का तगड़ा, फ़ुर्तीला और बेचैन रहने वाला आदमी था। उसके चेहरे का रंग पीला था, गालों की हड्डियां उभरी हुई थीं और आँखों से निर्भीकता टपकती थी। उसका चेहरा खुशनुमा था, उसके सफ़ेद, सुडौल दांतों और निचले होंठ के बीच हमेशा तम्बाकू रहता था। मुँह में तम्बाकू रखने की आदत क़ैदियों में आम थी। वह अपनी उम्र से छोटा दिखाई देता था। वह था तो चालीस बरस का लेकिन तीस से ज्यादा नहीं मालूम होता था। वह हमेशा खुशी-खुशी मुझसे बातें करता था, और हमेशा शिष्ट और कोमल व्यवहार करता था। मिसाल के लिए जब वह देखता कि मैं एकान्त चाहता हूँ तो वह फ़ौरन मुझसे दो-चार शब्द कहने के बाद रुख़सत मांग लेता था। वह हमेशा बातचीत के बाद मेरा धन्यवाद करता था, ऐसा शिष्टाचार वह जेल-भर में और किसी के प्रति नहीं दिखाता था। ताज्जुब है कि बरसों तक हमारे बीच ऐसा ही बंध रहा, और हमारी घनिष्ठता और आगे नहीं बढ़ी, हालाँकि उसे सचमुच मुझसे बहुत लगाव था। मैं अभी तक नहीं जान पाया कि वह मुझसे क्या चाहता था और किसलिए रोज़ मेरे पास आता था। बाद में जाकर उसने मेरी चोरी की, लेकिन ऐसा लगा कि वह चोरी संयोगवश उससे हो गई थी; उसने कभी मुझसे पैसे नहीं मांगे, इसलिए यह जाहिर है कि वह पैसे या किसी और स्वार्थ की खातिर वहाँ नहीं आता था।

न जाने क्यों मुझे हमेशा यही महसूस होता था कि वह मेरे साथ

जेल में नहीं बल्कि दूर शहर के किसी घर में रह रहा है और मुझसे मिलने, हालचाल पूछने और हम क़ैदियों की हालत जानने के लिए रास्ते में रुक जाता है। वह हमेशा जल्दी में रहता था, लगता था पीछे वह कोई काम अधूरा छोड़ आया है या कोई उसका इन्तजार कर रहा है। लेकिन वह विक्षिप्त नहीं मालूम होता था। उसकी आँखों का भाव भी विचित्र था, दृढ़ता, धृष्टता और व्यंग्य का पुट लिए। फिर भी उसकी नज़रें कहीं दूर खोई रहती थीं, लगता था कि वह नज़र आने वाली चीज़ों से दूर किसी और चीज़ को देख रहा है। इससे वह खोया-खोया मालूम होता था। मैं कभी-कभी जानबूझकर देखता था कि पेत्रोव मुझसे मिलने के बाद कहाँ जाता है। क्या सचमुच कोई उसकी इन्तजार करता है? लेकिन मुझसे मिलने के बाद वह जेल के किसी वार्ड या बावर्चीख़ाने में घुस जाता था, क़ैदियों के पास बैठकर ध्यान से उनकी बातें सुनता था, कभी-कभी ख़ुद भी बातचीत में हिस्सा लेता था, यहाँ तक की भावावेश में आकर बातें करने लगता था, फिर अचानक वह बातचीत ख़त्म करके ख़ामोश हो जाता था। बोलते हुए या ख़ामोश रहते हुए हमेशा ऐसा लगता था कि वह क्षण भर के लिए वहाँ चला आया है, दरअसल उसे कोई और काम है, और कोई उसका इन्तजार कर रहा है। सबसे अजब बात तो यह थी कि फ़ुर्सत के वक्त उसके पास कोई काम नहीं रहता था। वह एकदम निठल्ला रहता था। (सिर्फ़ जेल का काम करता था) उसके पास कोई हुनर न था और शायद ही कोई पैसा रहा हो, लेकिन उसे इस बात की कोई शिकायत नहीं थी। और वह मुझसे किस बारे में बातें करता था? उसकी बातचीत भी उसकी तरह ही अजब थी। जेल के पिछवाड़े में मुझे अकेला देखकर वह अचानक मेरी तरफ़ बढ़ आता था। वह हमेशा तेज़ क़दमों से चलता था और अचानक मुड़ जाया करता था।

वह मेरे नज़दीक आता था, लेकिन इतने तेज क़दमों से कि लगता था कि वह भागकर आया है।

"गुड मॉर्निंग।"

"गुड मॉर्निंग।"

"मैं आपके काम में दखल तो नहीं दे रहा ?"

"नहीं।"

"मैं आपसे नैपोलियन के बारे में पूछना चाहता था। वह उस आदमी का रिश्तेदार है न जो १८१२ में हमारे यहाँ आया था ?" (पेत्रोव ने सैनिकों के बच्चों के स्कूल में कुछ दिन शिक्षा पाई थी और वह पढ़लिख सकता था)

"हाँ।"

कहते हैं कि वह प्रेज़ीडेन्ट है। किस क़िस्स का "प्रेज़ीडेन्ट ?" वह हमेशा तेजी से, अकस्मात सवाल कर बैठता था ; लगता था, वह कुछ जानने की जल्दी में है, जैसे वह कोई अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज कर रहा है, जिसमें देरी बर्दाश्त नहीं की जा सकती।

मैंने उसे समझाया कि नैपोलियन किस क़िस्म का प्रेज़ीडेंट था, और यह भी कहा कि हो सकता है, जल्द ही वह सम्राट बन जाएगा।

"यह कैसे होगा ?"

मैंने यथासंभव उसको समझाने की कोशिश की। पेत्रोव ने ध्यान से मेरी बातें सुनीं। बात उसकी समझ में आ गई, वह तेज़ी से कुछ सोच रहा था, उसने मेरी तरफ़ कान लगा रखे थे।

"हूँ···मैं आपसे पूछना चाहता था, अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच, क्या यह सच है, जैसा कि लोग कहते हैं कि दुनिया में ऐसे बंदर भी होते हैं जिनकी बाँहें एड़ियों तक लंबी होती हैं और जो आदमी जितने लम्बे होते हैं।"

"हाँ, ऐसे बन्दर होते हैं।"

"उनकी शक्ल कैसी होती है।"

ने उसे फिर समझाने की कोशिश की।

"वे कहाँ रहते हैं ?"

"गर्म देशों में। सुमात्रा द्वीप में भी ऐसे कुछ बन्दर हैं।"

"वह द्वीप अमेरिका में है न ? लोग कहते हैं न कि उस देश में लोग सिर के बल चलते हैं ?"

"सिर के बल नहीं चलते। तुम उन लोगों की बात कर रहे हो, जो इन्सानों से उलटे हैं।"

मैंने उसे अमेरिका और इन्सानों से उलटे जीवों के बारे में समझाया। वह ग़ौर से इस तरह मेरी बातें सुन रहा था, जैसे वह बिल्कुल यही बातें जानने के लिए मेरे पास आया था।

"आह ! पिछले बरस मैंने काउन्टेस ला वालियेर के बारे में पढ़ा था। आरिफ़ेव यह किताब एडजुटेन्ट से मांगकर लाया था। यह कहानी सच्ची है या मनघड़ंत है ? ड्यूमास की लिखी हुई है।"

"निश्चय ही काल्पनिक है।"

"अच्छा, गुडबाई। शुक्रिया।"

पेत्रोव चला गया। हमेशा इसी शैली में हमारी बातचीत होती थी।

मैंने उसके बारे में लोगों से पूछताछ की। 'म' ने जब पेत्रोव से मेरे परिचय की बात सुनी तो उसने मुझे सावधान किया। उसने बताया कि शुरू में वह कई क़ैदियों को देखकर आतंकित हुआ था, लेकिन किसी को देखकर उसके मन में इतना आतंक पैदा नहीं हुआ जितना कि पेत्रोव को देखकर हुआ था; गज़िन को देखकर भी नहीं।

'म' ने बताया, "वह सब क़ैदियों से ज़्यादा प्रबल इच्छाशक्ति वाला और निर्भीक आदमी है। वह कुछ भी कर सकता है। उसके मन में अगर कोई बात समा जाए तो वह आगा-पीछा नहीं सोचता, अगर उसे सनक सवार हुई तो वह फ़ौरन बिना किसी हिचकिचाहट के तुम्हें क़त्ल कर सकता है। बाद में उसे अपनी करनी पर रत्तीभर अफ़सोस नहीं होगा। मेरा ख़्याल है कि उस आदमी का दिमाग़ दुरुस्त नहीं है।"

इस बात से मेरी दिलचस्पी और भी बढ़ गई। लेकिन 'म' मुझे

इस बात का कोई कारण न बता सका। ताज्जुब है कि इसके बाद कई बरस तक रोज़ पेत्रोव से मेरी बातचीत होती रही, उसे सचमुच मुझसे बहुत लगाव था (हालाँकि इसका कारण मुझे बिल्कुल मालूम नहीं)। उन तमाम बरसों में उसका व्यवहार ठीक रहा और उसने कोई ख़ौफ़नाक काम नहीं किया। फिर भी हर बार जब मैं उसकी तरफ़ देखता था तो मुझे यक़ीन हो जाता था कि 'म' ने ठीक कहा था। सचमुच पेत्रोव बेहद प्रबल इच्छा-शक्ति का और निर्भीक व्यक्ति था, वह किसी संयम को नहीं मानता था। मैं ऐसा क्यों सोचता था यह भी नहीं बता सकता।

लेकिन यहाँ मैं इतना ज़िक्र करूँगा कि पेत्रोव ही वह क़ैदी था जिसे कोड़ों की सज़ा के लिए जब बाहर ले जाया गया था तो उसने मेजर को जान से मार डालने का इरादा किया था। क़ैदियों का कहना था, कि किसी 'चमत्कार से' मेजर की जान बच गई थी, क्योंकि वह पेत्रोव को कोड़े पड़ने से पहले ही गाड़ी में बैठकर चला गया था। ऐसी बात पहले भी हो चुकी थी। जेल में आने से पहले क़वायद के वक्त एक कर्नल ने पेत्रोव को पीटा। शायद पहले भी वह कई बार पीटा जा चुका था। लेकिन इस बार उससे यह बर्दाश्त न हुआ और उसने दिन-दहाड़े, पूरी रैजीमेन्ट के सामने कर्नल को चाकू से मार डाला। लेकिन मुझे इस कहानी का ब्यौरा मालूम नहीं है। उसने यह बात मुझे कभी नहीं बताई। इसमें शक नहीं कि यह घटना उन बिस्फोटों में से थी, जब किसी व्यक्ति का चरित्र फ़ौरन, पूरी तरह सामने आ जाता है। लेकिन ऐसे विस्फोट उसमें बहुत कम होते थे। वह सचमुच बहुत समझदार और शान्ति-प्रिय व्यक्ति था। उसकी उग्र भावनाएँ, जो सचमुच प्रचण्ड थीं, उसके मन में छिपी हुई थीं। लेकिन जलते हुए वे अंगारे राख की तह से ढके थे और भीतर ही भीतर सुलगते रहते थे। मैंने उसमें अहंकार या डींग हाँकने का नामोनिशान नहीं देखा, जो बाक़ी क़ैदियों में अक्सर देखने को मिलता था। वह बहुत कम झगड़ा करता था; उसकी

किसी खास आदमी से दोस्ती नहीं थी, थोड़ी-बहुत दोस्ती सिरोत्कीन से थी, वह भी तब जब सिरोत्कीन उसके किसी काम आ सकता था। लेकिन एक बार मैंने उसे सचमुच गुस्से की हालत में देखा। उसके हिस्से की कोई चीज उसे नहीं मिली थी। सिविलियन डिवीज़न का एक क़ैदी, जिसका नाम वैसिली एन्तोनोव था, उससे झगड़ रहा था। एन्तोनोव लम्बा, तगड़ा पहलवान था, वह ईर्ष्यालु और झगड़ालू प्रकृति का था, ज़रा-सी बात पर लोगों से बैर साध लेता था और स्वभाव का दिलेर था। वे बहुत देर तक आपस में ज़ोर से चिल्लाते रहे थे। मेरा ख़याल था कि मामला एकाध घूंसे में तय हो जाएगा, क्योंकि कभी-कभी, हालाँकि ऐसा बहुत कम होता था, पेत्रोव एक कमीने क़ैदी की तरह गालियाँ बकने और लड़ने लगता था। लेकिन इस बार ऐसा नहीं हुआ। अचानक पेत्रोव का चेहरा सफ़ेद पड़ गया, उसके होंठ काँपने लगे और नीले पड़ गए, वह हाँफने लगा। अपनी जगह से उठकर आहिस्ता से, बहुत आहिस्ता से बिना क़दमों की आहट किये, (गर्मियों में उसे नंगे पैर चलने का शौक़ था) वह एन्तोनोव की तरफ़ बढ़ा। भीड़ में सन्नाटा छा गया; उस वक्त मक्खी तक की आवाज़ सुनाई दे सकती थी। सब यह देखने के लिए खड़े हो गए कि आगे क्या होगा। एन्तोनोव उछलकर खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर ख़ौफ़ छा गया...... मुझसे यह दृश्य न देखा गया, मैं उस कमरे से चला आया। मुझे उम्मीद थी कि सीढ़ियाँ उतरने से पहले ही मुझे क़त्ल हुए आदमी की चीख़ सुनाई देगी। लेकिन इस बार भी लड़ाई का कोई खास नतीजा नहीं निकला। पेत्रोव अभी एन्तोनोव तक पहुँचा भी न था कि एन्तो-नोव ने एक पुराना चिथड़ा, जो टांगों पर बांधने के काम आता था, पेत्रोव की तरफ़ फेंक दिया। इसी चिथड़े को लेकर दोनों में लड़ाई हुई थी। दो या तीन मिनट बाद एन्तोनोव ने अपनी अंतरात्मा को संतुष्ट करने के लिए दो-चार गालियाँ दीं और साबित कर दिया कि वह पेत्रोव से दबा नहीं। लेकिन पेत्रोव ने गालियों की तरफ़ कोई ध्यान न

दिया, गालियों का जवाब तक न दिया क्योंकि गाली-गलौज का सवाल ही नहीं था। उसकी जीत हुई थी। उसने खुशी-खुशी चिथड़ा उठा लिया। पन्द्रह मिनट बाद वह हमेशा की तरह लापरवाही से जेल में मटरगश्ती करने लगा। वह चाहता था कि कहीं दिलचस्प बातचीत सुनने को मिल जाए, ताकि वह भी अपनी टांग अड़ा सके। उसे हर चीज़ में दिलचस्पी थी, लेकिन न जाने क्यों वह अधिकांश चीज़ों के प्रति उदासीन रहता था और निरुद्देश्य भाव से जेल में कभी इधर तो कभी उधर चक्कर काटता रहता था। उसकी तुलना ऐसे तगड़े कारीगर से की जा सकती थी जो आनन-फ़ानन में काम खत्म कर सकता था, लेकिन जो कुछ वक्त के लिए बेकार था और बच्चों के साथ खेलने बैठ गया था। मेरी समझ में नहीं आता था कि वह जेल में क्यों रह रहा था, वहाँ से भाग क्यों नहीं गया था। अगर उसके मन में भागने की प्रबल इच्छा उठती तो वह ज़रूर भाग जाता। पेत्रोव जैसे लोग विवेक-शक्ति से तभी तक चलते हैं, जब तक उनके मन में कोई प्रबल इच्छा नहीं पैदा होती; दुनिया की कोई चीज़ तब उन्हें रोक नहीं सकती। मुझे यक़ीन है कि वह चालाकी से हर आदमी की आँखों में धूल झोंककर भाग जाता और एक हफ़्ते तक बिना खाए-पिए किसी जंगल में या दरिया के किनारे नरकुल में छिपा रहता। लेकिन अभी तक उसकी आकांक्षा उस बिन्दु तक नहीं पहुँची थी और वह पूरे दिल से यह बात नहीं चाहता था। मैंने उसमें कभी विचार-शक्ति या सामान्य-बुद्धि नहीं देखी। ऐसे लोग एक निश्चित विचार को लेकर पैदा होते हैं, जो अचेतन रूप से उन्हें इधर-उधर हिलाता-डुलाता रहता है; इसलिए वे जिन्दगी भर एक चीज़ से दूसरी चीज़ पर तब तक भटकते रहते हैं, जब तक उन्हें अपने मन के मुताबिक़ कोई काम नहीं मिल जाता। फिर वे कोई भी जोखिम उठाने को तैयार हो जाते हैं। मुझे कई बार यह सोचकर ताज्जुब होता था कि एक ऐसा आदमी जिसने एक घूंसे के बदले में अपने अफ़सर को क़त्ल कर डाला हो, वह खामोशी

से कोड़ों की मार क़बूल कर ले, यह कैसे हो सकता है। कई बार जब वह चोरी से जेल में श्रोद्का लाता हुआ पकड़ा जाता था तो उसे कोड़े पड़ते थे। तमाम उन क़ैदियों की तरह, जिनका कोई पेशा नहीं था, वह भी कभी-कभी वोद्का लाने के लिए राजी हो जाता था। लेकिन सजा के वक्त वह इस तरह लेट जाता था जैसे उसकी रज़ामन्दी से ही सब कुछ हो रहा हो, जैसे उसने यह क़बूल कर लिया हो कि उसे यह सजा मिलनी ही चाहिए; अगर ऐसा न होता तो वह हरगिज वहाँ न लेटता, सज़ा भुगतने की बजाए मर जाना ज़्यादा पसन्द करता। मुझसे इतना लगाव होने के बावजूद, जब उसने मेरी चोरी की तब भी मुझे उस पर ताज्जुब हुआ था। यह बात अचानक ही उसमें प्रकट हुई थी। उसी ने मेरी बाईबल चुराई थी, जब मैंने उसे एक जगह से उठाकर दूसरी जगह ले जाने के लिए कहा था। उसे कुछ ही क़दम दूर जाना था, लेकिन रास्ते में ही वह एक ख़रीददार पटाने में कामयाब हो गया, उसने बाईबल बेच दी और उन पैसों से शराब पी डाली। ज़रूर उसे शराब पीने की बहुत ख्वाहिश थी, हर ऐसी चीज जिसकी उसे बहुत ख्वाहिश होती थी, वह उसे करके ही दम लेता था। इसी तरह का आदमी वोद्का की एक बोतल ख़रीदने के लिए, छः कोपेक की ख़ातिर दूसरे आदमी को क़त्ल कर सकता है और मर्ज़ी होने पर, अगर किसी के पास दस हज़ार पाउण्ड हों तब भी उसे छोड़ सकता है। शाम को उसने ख़ुद बिना किसी अफ़सोस या पश्चाताप के, मुझे इस चोरी के बारे में बताया। वह इस तरह उदासीन स्वर में बात कर रहा था, जैसे यह कोई बहुत मामूली घटना हो। मैंने उसे अच्छी तरह डाँटने की कोशिश की; मुझे अपनी बाईबल खोने का सख़्त अफ़सोस था। उसने बिना खीज के विनयपूर्वक मेरी बात सुनी और इस बात का समर्थन किया कि बाईबल बहुत काम की किताब है। उसने बाईबल खो जाने पर हार्दिक खेद प्रकट किया, लेकिन उसने चोरी की थी, इस बात का उसे कोई अफ़सोस न था।

उसने मेरी तरफ़ इतने आत्म-विश्वास से देखा कि मैंने फ़ौरन उसे डाँटना बन्द कर दिया। शायद उसने यह सोचकर मेरी डाँट-फटकार को क़बूल कर लिया था कि ऐसी हरकतों पर गालियाँ पड़ना लाज़िमी है, और मैं बकभक कर अपने दिल का बोझ हल्का कर लूँ और अपने को तसल्ली दे दूँ तो अच्छा ही है। लेकिन वह मेरी फटकार को बेकार की बकवास समझता था, ऐसी कि वह इस क़ाबिल नहीं थी कि कोई संजीदा आदमी उस पर ध्यान देता। मुझे लगा कि वह मुझे एकदम नन्हा-सा बच्चा समझता था, जिसे दुनिया की मामूली से मामूली बात का भी ज्ञान नहीं। मिसाल के लिए अगर मैं उससे किसी विद्वत्तापूर्ण या किताबी विषय के अलावा किसी और प्रसंग पर बातें करता था तो वह मुझे शिष्टतावश बहुत संक्षिप्त जवाब देकर खामोश हो जाता था। मुझे अक्सर ताज्जुब होता था कि जिस किताबी ज्ञान के बारे में वह मुझसे इतने सवाल पूछता था, आख़िर उसके लिए उन बातों का क्या महत्व था। कई बार बातचीत के दौरान, यह देखने के लिए कि कहीं वह मेरा मज़ाक तो नहीं उड़ा रहा, मैं कनखियों से उसकी तरफ़ देखा करता था। लेकिन नहीं, वह अक्सर बड़ी संजीदगी और ध्यान से मेरी बातें सुनता था। कई बार उसकी लापरवाही से मैं खीज उठता था। वह मुझसे साफ़ और निश्चित सवाल पूछता था, लेकिन उन सवालों का जवाब पाकर उसने कभी आश्चर्य प्रकट नहीं किया, बल्कि अनमने मन से मेरी बातें सुना करता था। मुझे ऐसा लगा कि उसने हमेशा के लिए, बिना किसी परेशानी के यह तय कर लिया था कि मुझसे बातचीत करना बेकार है, क्योंकि सिवाय किताबों की बातों के, मुझे और कोई बात न समझ में आती है न आ सकती है, इसलिए मुझे परेशान करने की कोई ज़रूरत नहीं।

मुझे यक़ीन है कि उसे मुझसे सच्चा स्नेह नहीं था, इस बात से मुझे बहुत तकलीफ़ हुई थी। या तो वह समझता था कि मेरे व्यक्तित्व का विकास नहीं हुआ, मैं पूरी तरह आदमी नहीं बना या उसके दिल

में मेरे लिए एक खास क़िस्म की दया थी, जो हर ताक़तवर आदमी कमज़ोर के लिए महसूस करता है—मैं ठीक से नहीं कह सकता। हालांकि इसके बावजूद भी कि उसने मेरी चोरी की थी, मुझे यक़ीन है कि यह काम करते वक्त उसे ज़रूर मुझ पर दया आई होगी। मेरी चीज़ चुराते वक्त उसने सोचा होगा, 'छि:, यह कैसा आदमी है जो अपनी चीज़ों की देखभाल भी नहीं कर सकता।' लेकिन मेरा ख़्याल है कि इसी वजह से वह मुझे पसन्द भी करता था। एक दिन बातों ही बातों में उसने कहा था कि मैं "ज़रूरत से ज्यादा अच्छे दिल" का आदमी हूँ। "आप इतने सीधे हैं, इतने सीधे हैं, अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच, कि आपके ऊपर तरस आता है। आप इस बात पर बुरा न मनाइएगा। मैंने बिना सोचे-समझे अपने दिल की बात कह दी है।" उसने कुछ देर बाद कहा।

कई बार ऐसा होता है कि इस क़िस्म के लोग किसी क्रांति या हिंस्र जन-आन्दोलन में प्रमुखता प्राप्त करके सामने आते हैं और एक ही बार में अपनी सब सम्भावनाओं को प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें बोलना नहीं आता, इसलिए वे किसी आन्दोलन के मुख्य नेता या प्रेरक नहीं बन सकते, लेकिन वे आन्दोलन के सबसे अधिक शक्तिशाली कार्यकर्ता होते हैं और सबसे पहले कार्रवाई शुरू करते हैं। वे सीधे-सादे ढंग से, बिना किसी आडम्बर के काम शुरू करते हैं और सबसे पहले कठिन से कठिन अड़चनों को पार कर जाते हैं, बिना सोचे-बूझे, निर्भीक होकर हर ख़तरे का मुक़ाबला करते हैं—और सब लोग आख़िरी मंज़िल तक अंधी श्रद्धा के साथ उनके पीछे-पीछे चलते हैं, जहाँ अक्सर वे अपने प्राण न्योछावर कर देते हैं। मेरा ख़्याल नहीं कि पेत्रोव का अच्छा अन्त हुआ होगा, वह फ़ौरन हर चीज़ का ख़ात्मा कर चुका होगा, और अगर अभी तक वह तबाह नहीं हुआ, तो उसकी वजह सिर्फ़ यही है कि वह क्षण अभी नहीं आया। लेकिन कौन जानता है? हो सकता है कि वह अपने बालों के सफ़ेद होने तक ज़िन्दा रहे

और पूरा बुढ़ापा बिता कर, इधर-उधर भटकने के बाद मरे। लेकिन मेरे ख्याल में 'म' का यह कहना ठीक था कि पेत्रोव जेल में सबसे अधिक प्रबल इच्छा-शक्ति वाला आदमी है।

दृढ़ निश्चय वाले अन्य लोग—लूच्का

दृढ़ निश्चय वाले लोगों के बारे में कुछ कहना कठिन है। सब जगहों की तरह जेल में भी ऐसे लोगों की संख्या कम होती है। देखने में कोई आदमी ख़ौफ़नाक हो सकता है। अगर उनके बारे में कही जाने वाली बातों पर कोई ग़ौर करने लगे तो वह ऐसे लोगों से बचकर रहेगा। शुरू में मैं भी एक सहज भावना के कारण ऐसे लोगों से दूर-दूर रहता था। बाद में कई दृष्टियों से, यहाँ तक कि भयंकर हत्यारों के बारे में भी मेरे विचार बदल गए। वे लोग जिन्होंने कभी किसी की हत्या नहीं की थी, उन क़ैदियों से ज्यादा भयंकर थे, जिन्होंने छः-छः क़त्ल किए थे। कुछ जुर्म तो इतने विचित्र थे कि उनके बारे में साधारण अनुमान लगाना भी मुश्किल था। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि किसानों में कई बार बहुत साधारण कारणों पर क़त्ल हो जाते हैं, जिन्हें देखकर ताज्जुब होता है। मिसाल के लिए एक क़िस्म का हत्यारा अक्सर देखने में आता है। वह खामोशी और शान्ति की जिन्दगी बसर करता है और तक़लीफ़ें बर्दाश्त करता है। वह किसान, भूमिदास, सैनिक या मजदूर हो सकता है। सहसा उसके भीतर की कोई चीज़ टूटने लगती है। उसका धैर्य खत्म हो जाता है और वह अपने दुश्मन या तंग करने वाले के पेट में छुरा भोंक देता है। फिर वह अजब चीज़ शुरू होती है। कुछ देर के लिए वह आपे से बाहर हो जाता है। पहली बार उसने अपने ऊपर जुल्म करने वाले का क़त्ल किया था, जो उसका दुश्मन था। यह जुर्म है, लेकिन इसका कारण समझ में आता है; इसके पीछे कोई कारण था, लेकिन बाद में वह अपने दुश्मनों को नहीं, बल्कि जो भी सामने आता है उसका क़त्ल कर डालता है। वह मनोरंजन की ख़ातिर, अपमान के एक शब्द

नजर या क़त्लों की संख्या पूरी करने के लिए या "मेरे रास्ते से हट जाग्रो, सामने मत श्राश्रो, मैं श्रा रहा हूँ," इसी वजह से क़त्ल कर डालता है। वह श्रादमी नशे में या विक्षिप्त दिखाई देता है। ऐसा मालूम होता है कि एक बार नैतिकता की पवित्र सीमा लांघने के बाद उसे इस बात में खुशी महसूस होने लगती है कि श्रब उसके सामने कोई भी चीज पवित्र नहीं है। फ़ौरन समस्त शासनों श्रौर क़ानूनों को तोड़ने के लिए उसका मन बेचैन हो उठता है! वह श्रसंयत श्रौर श्रसीमित श्राजादी चाहता है, श्रपनी खौफ़नाक हरक़तों से उसे जो सुख मिलता है, वह उस सुख का श्रानंद लूटना चाहता है। वह यह भी जानता है कि उसे खौफ़नाक सजा मिलेगी। शायद उसे भी ऐसा ही संवेदन होता होगा जो ऊँची मीनार पर खड़े होकर नीचे गहराइयों में देखने वाले श्रादमी को महसूस होता है, जब तक वह सीधा नीचे नहीं कूद पड़ता—श्रौर फ़ौरन सब कुछ खत्म करने के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। श्रौर ऐसे लोग भी यह करते हैं जो उस वक्त तक शान्तिप्रिय श्रौर श्रविशिष्ट रह चुके होते हैं। जो श्रादमी जितना ही दलित रह चुका होता है, इस वक्त वह लोगों पर रोब डालने श्रौर उन्हें श्रातंकित करने के लिये उतना ही बेचैन हो उठता है। उसे लोगों को श्रातंकित देखकर मजा श्राता है, यहाँ तक कि लोगों के मन में उसके प्रति जो ग्लानि पैदा होती है, वह भा उसे पसन्द श्राती है। वह विक्षिप्ति का श्रभिनय करने लगता है। ऐसा श्रादमी कभी-कभी जल्दी से सजा पाने के लिए उत्सुक हो जाता है, वह चाहता है कि सारा मामला तय हो जाए, क्योंकि श्रपनी विक्षिप्ति के श्रभिनय को जारी रखने में उसके मन पर बहुत बोझ पड़ता है। यह देखकर ताज्जुब होता है कि श्रधिकांश ऐसे लोगों में विक्षिप्ति का यह पूरा श्रभिनय फांसी चढ़ने के क्षण तक जारी रहता है; श्रौर फिर यह हमेशा के लिए खत्म हो जाता है, लगता है जैसे पहले से ही इसकी श्रवधि सीमित श्रौर निश्चित थी। इस श्रवधि

के समाप्त होने पर सहसा वह आदमी आत्मसमर्पण कर देता है, पृष्ठभूमि में जाकर चिथड़े की तरह निर्जीव हो जाता है। फांसी के तख़्ते पर पहुँचकर वह मिमियाने और लोगों से माफ़ी मांगने लगता है। जब वह जेल में आता है तो उसके चीख़ने-चिल्लाने को देखकर यक़ीन नहीं होता कि यही वह आदमी है, जिसने पांच या छः आदमियों का क़त्ल किया है।

लेकिन कुछ लोग जेल में भी अपनी विक्षिप्ति नहीं छोड़ते। उनमें झूठी मर्दानगी और डींग बाक़ी रहती है, लगता है वह सबको बता देना चाहता है, 'तुम मुझे जो समझते हो मैं वह नहीं हूँ। पूरे छः आदमियों का ख़ून करके जेल में आया हूँ।' लेकिन अंत में ऐसे लोगों की हिम्मत भी टूट जाती है। कभी-कभी अपने विक्षिप्ति-पूर्ण कारनामों की, उन रंगीले दिनों की याद करके जब वह 'ख़ौफ़नाक' आदमी था, वह खुश हो लेता है। अगर उसे कोई सीधा-सादा श्रोता मिल जाए तो डींग हांकने, अपने कारनामों का बखान करने से ज़्यादा सुख उसे किसी बात में नहीं मिलता, हालांकि वह इस सुख को कभी जाहिर नहीं होने देता। वह यह दिखाना चाहता है, 'तुमने देखा, मैं किस क़िस्म का आदमी था।'

और यह रूप कितनी सूक्ष्मता से क़ायम रखा जाता है, कभी-कभी कहानी कितनी अलसाई और लापरवाही से भरी होती है! उसके लहजे में, हर शब्द में कितनी पूर्व-निश्चित लापरवाही होती है! ऐसे लोग ऐसी बातें आख़िर कहाँ सीखते हैं?

जेल के उन प्रारंभिक दिनों में मैंने एक लंबी शाम, ख़ाली और उदास हालत में लकड़ी में तख़्ते पर लेट कर ऐसी कहानी सुनने में गुज़ारी थी। अपनी नातजुर्बेकारी की वजह से मैं समझ बैठा था कि वह एक भीमकाय और भयंकर आदमी है। उसकी इच्छाशक्ति अविश्वस-नीय रूप से प्रबल है। पेत्रोव की बात मैंने हँसी-मज़ाक में उड़ा दी थी। कहानी का मुख्य विषय यह था कि कैसे वक्ता, लूका कूज़मिच ने सिर्फ़

अपने मनोरंजन के लिए एक मेजर को 'खत्म' कर दिया था। लूका कूज़मिच वही नाटा, दुबला, तीखी नाक वाला लिटल रशियन नौजवान था, जो हमारी बैरक में रहता था। उसका ज़िक्र मैं पहले भी कर चुका हूँ। दरअसल था तो वह रूसी ही, लेकिन उसका जन्म दक्षिण में हुआ था। मेरा ख्याल है कि वह एक गृह-दास था। वह सचमुच तेज़ और गुस्ताख था, "परिन्दा छोटा है लेकिन इसके पंजे तेज़ हैं।" लेकिन क़ैदी अपनी सहजवृत्ति से ही एक आदमी को भांप लेते हैं। लूका कूज़मिच के लिए उन लोगों के दिल में बहुत कम इज्ज़त थी या क़ैदियों की भाषा में कहा जाए, "उसको कम इज्ज़त थी।" वह हद से ज़्यादा अहंकारी था। उस शाम वह चबूतरे पर बैठा एक कमीज़ सी रहा था। वह बनियानें और जांघिये सीने का काम करता था। उसके पास कोबेलीन नाम का लड़का बैठा था, जो लंबा, तगड़ा, बेवकूफ़, अहमक़ लेकिन अच्छे स्वभाव का था, उसकी सब लोगों के साथ दोस्ती थी। लूका कूज़मिच की बग़ल में उसके सोने की जगह थी। नज़दीक रहने के कारण लूका अक्सर उससे झगड़ता था और उस पर रोब डालता था और उसका मज़ाक उड़ाता था। अपने सीधेपन की वजह से कोबेलीन इन बातों को ठीक से नहीं समझ पाता था। वह ऊनी मोज़ा बुन रहा था और उदासीन भाव से लूका की कहानी सुन रहा था। लूका ऊँची और स्पष्ट आवाज़ में अपनी कहानी सुना रहा था। वह चाहता था कि सब लोग उसकी कहानी को सुनें, हालांकि ज़ाहिरा तौर पर वह सिर्फ़ कोबेलीन को ही कहानी सुना रहा था।

"तो भाई, मुझे अपने वतन से 'च'–'व' में आवारागर्दी के अपराध में भेजा गया।"

"यह तो बहुत पहले की बात होगी," कोबेलीन ने पूछा।

"मटरों के मौसम में पूरा एक साल हो जाएगा। अच्छा तो जब हम 'क' शहर में आए तो मुझे कुछ देर के लिए जेल में भेज दिया गया। मेरे साथ जेल में एक दर्जन लंबे, तंदुरुस्त हम-वतन थे, जो बैलों की

तरह तगड़े थे। लेकिन वे बड़े खामोश लोग थे। जेल का खाना बहुत रद्दी था और मेजर उनसे मनमाना सलूक करता था। मैंने वहाँ आकर दो दिनों में ही भांप लिया कि वे सब के सब डरपोक हैं। मैंने उनसे पूछा, "तुम उस बेवकूफ़ के आगे क्यों गिड़गिड़ाते हो ?"

उन्होंने कहा, "तुम खुद ही जाकर ज़रा उससे बात कर लो।" यह कहकर वे हँस पड़े। मैंने कुछ न कहा। उनमें से एक लड़का बहुत शरारती था। लूका ने सहसा कोबेलीन की बजाय सब लोगों को संबोधित करते हुए कहा, "वह हमें बताया करता था कि उस पर कैसे मुक़दमा चला और उसने कचहरी में क्या कहा। वह बातें करते-करते रोने लगता था। उसने बताया कि उसके पीछे घर में उसके बीवी-बच्चे हैं।" वह लंबा-चौड़ा, तगड़ा आदमी था। उसके सर के बाल सफ़ेद थे। उसने हमें बताया, "मैं जज से कहता हूं—बस करो, लेकिन वह शैतान का बेटा लिखता ही गया। मैंने मन ही मन कहा—'ईश्वर करे तुम्हारा दम घुट जाए, मुझे यह देखकर बहुत खुशी होगी।' वह लिखता गया, लिखता गया। आखिर उसने एक ऐसी चीज लिख दी, जिससे मेरी जिन्दगी तबाह हो गई।" लूका ने कहा, "वास्या, थोड़ा-सा धागा दो, यह कम्बख्त बड़ा ही खराब धागा है।"

"यह बाजार से आया है।" वास्या ने थोड़ा धागा देते हुए कहा।

"दर्ज़ीखाने में हमें बेहतर धागा मिलता है। अभी उस रोज मैंने नंबरदार को धागा लेने भेजा था, न जाने वह किस मनहूस औरत से धागा खरीदता है," लूका ने रोशनी के पास आकर सुई में धागा डालते हुए कहा।

"ज़रूर उस औरत से उसकी यारी होगी।"

"इसमें कोई शक नहीं।"

"अच्छा तो मेजर का क्या बना ?" कोबेलीन ने पूछा। उसे बिल्कुल भुला दिया गया था।

यही तो लूका चाहता था, लेकिन उसने फ़ौरन अपनी कहानी नहीं

शुरू की ; उसने ऐसा दिखाया जैसे उसने कोबेलीन को देखा ही न हो। उसने खामोशी से धागा सँभाला और अलसाए ढंग से टाँगें फैलाकर बोलना शुरू किया,

"मैंने अपने साथियों को जोश दिला दिया था और उन लोगों ने मेजर को बुलाने की माँग की थी। मैंने उस रोज़ सुबह अपने पड़ौसी से एक छुरा ले लिया था और वक्त-ज़रूरत के लिए छिपा रखा था। मेजर गुस्से में आग-बबूला होकर गाड़ी में वहाँ आया। मैंने अपने साथियों से कहा, "देखो मामला गड़बड़ न कर देना, लौंडो," लेकिन उन लोगों की हिम्मत ने साथ न दिया और वे सब-के-सब काँपने लगे। मेजर नशे की हालत में भागता हुआ भीतर आया, "कौन है? यहाँ क्या हो रहा है? मैं जार हूँ और ईश्वर भी हूँ।" उसकी यह बात सुनकर मैंने आस्तीन में छुरा छिपा लिया और आगे बढ़ा।

"मैंने कहा "नहीं योर ऑनर, यह कैसे हो सकता है?" यह कहकर मैं मेजर के और क़रीब आ गया, "यह कैसे हो सकता है कि आप हमारे जार भी हैं और ईश्वर भी हैं?"

"आह! मैं समझ गया, यह तुम्हारी करतूत है बाग़ी कहीं के!"

"नहीं, योर ऑनर, आपको भी यह मालूम होगा कि सर्वशक्तिमान ईश्वर एक ही है जो सब जगह मौजूद है। ईश्वर ने हमारे ऊपर सिर्फ़ एक ही जार नियुक्त किया है। उसे सम्राट् कहा जाता है।" यह कह कर मैं और ज़्यादा क़रीब सरक आया। "और आप सिर्फ़ एक मेजर है जार की मेहरबानी और अपनी योग्यता की वजह से आप इस ओहदे पर पहुँचे हैं।" "क्या? क्या? क्या?" मेजर कें-कें करने लगा। गुस्से से उसका गला रुंध गया और वह बोल न सका। उसे मेरी बात से बहुत हैरानी हुई थी। मैंने कहा, "यह लो," और मैं उस पर झपट पड़ा। मैंने पूरे का पूरा छुरा उसके पेट में भोंक दिया। उसी से सारा काम तमाम हो गया। मेजर जमीन पर लेट गया। वह हिलडुल भी न सका, सिर्फ़ टांगें पटकता रहा। मैंने छुरा फेंककर कहा, "देखो, साथियो

आकर इसे उठाओ।"

यहाँ मैं पाठकों का ध्यान एक दूसरी बात की तरफ़ खींचूंगा। बद-क़िस्मती की बात है कि "मैं तुम्हारा जार हूँ, मैं तुम्हारा ईश्वर भी हूँ" इस तरह के वाक्य उस ज़माने में बहुत से हाकिम इस्तेमाल किया करते थे। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि अब इस क़िस्म के अफ़सरों की संख्या अधिक नहीं है। शायद ऐसे लोग एकदम ख़त्म हो गए हैं। मैं यह भी कह दूँ कि सिर्फ़ ऐसे अफ़सर ही ऐसी बातें करते थे, जो निम्न वर्ग से उठकर अफ़सर बने थे। तरक्की पाने पर ऐसे लोगों की हर चीज, यहाँ तक कि दिमाग़ भी बिगड़ जाता है। बरसों तक चाकरी में पिसने के बाद अचानक उन्हें एहसास होता है कि वे अफ़सर हैं—पद के नशे में और नातजुर्बेकारी की वजह से वे अपनी ताक़त और महत्व को बढ़ा-चढ़ा कर—जहाँ तक मातहतों के साथ उनके संबंध हैं—देखने लगते हैं। अपने से बड़े अफ़सरों के सामने वे पहले की तरह दुम हिलाते हैं, हालांकि इसकी कोई ज़रूरत नहीं होती। लेकिन कई लोगों को तो इस काम से बहुत ग्लानि होती है। इनमें से दुम हिलाने वाले कुछ लोग अपने से बड़े अफ़सरों के सामने विशेष उत्साह से इस बात की घोषणा करते हैं कि वे निम्नवर्ग में पैदा हुए हैं, वे अफ़सर होकर भी "अपनी असली जगह" को नहीं भूले हैं। लेकिन मामूली सिपाहियों के साथ ये लोग बहुत निरंकुशता बरतते हैं। अब तो शायद ही इस क़िस्म का कोई आदमी बाक़ी रहा हो और शायद ही कोई अफ़सर इस तरह चिल्लाता हो, "मैं तुम्हारा जार हूँ, मैं तुम्हारा ईश्वर हूँ!" लेकिन इसके बावजूद मैं कह सकता कि क़ैदियों को और ग़रीब लोगों को ऐसी बातों से ज़्यादा और किसी बात से चिढ़ नहीं होती। आत्म-प्रशंसा का यह गुस्ताख तरीक़ा, उनका यह सोचना कि वे निश्चिन्त होकर मनमानी कर सकते हैं—हलीम से हलीम आदमी के दिल में भी नफ़रत पैदा कर देता है और उसके धैर्य को ख़त्म कर देता है। ख़ुशक़िस्मती की बात है कि इस तरह का व्यवहार अब अतीत की एक चीज़ बन गया

है। उस ज़माने में भी अधिकारी लोग ऐसे व्यवहार को सख़्ती से दबा देते थे। मुझे इसकी कई मिसालें मालूम हैं।

और सचमुच हीन स्थिति वाले लोग ऐसी उद्धत लापरवाही से और अपमान के संकेत से व्यथित हो उठते हैं। कुछ लोगों का ख़्याल है कि क़ैदियों को अच्छा खाना देना, उनसे अच्छा सलूक करना और क़ानून की सब ज़रूरतों को पूरा रखना ही काफ़ी है। लेकिन ऐसा सोचना भी एक ग़लती है। हर आदमी, चाहे वह कोई हो और कितना ही हीन क्यों न हो, इस बात की मांग करता—यह मांग शायद स्वाभाविक है, शायद अचेतन है, कि उसे इन्सान समझकर उसके आत्म-सम्मान का आदर किया जाये। क़ैदी ख़ुद भी जानता है कि वह क़ैदी है, समाज से बहिष्कृत है। वह यह भी जानता है कि हाकिम के सामने उसकी क्या हैसियत है, लेकिन जलती सलाख़ें या हथकड़ियाँ उसे यह भूलने को मजबूर नहीं कर सकतीं कि वह एक इन्सान है और सचमुच वह है भी इन्सान और उससे इन्सानों जैसा सलूक होना चाहिए। हे मेरे ईश्वर! मानवीय सलूक से ऐसा आदमी भी इन्सान बन सकता है, जिसमें ईश्वर की छवि कभी की मिट चुकी है। इन 'बदक़िस्मत' लोगों को औरों से ज़्यादा मानवीय सलूक की ज़रूरत है। इसी में उनकी मुक्ति और ख़ुशी है। मैं कई सहृदय और नेक अफ़सरों से मिला हूँ। मैंने देखा है, उन पतित लोगों पर नेकी का क्या असर पड़ा है। नेकी से भरे चंद शब्दों से ही क़ैदियों का नैतिक कायाकल्प हो गया था। वे बच्चों की तरह ख़ुश हो गए थे और बच्चों की तरह ही अपने अफ़सरों को चाहने लगे थे। मैं यहाँ एक और अजब बात का ज़िक्र करूंगा। क़ैदी ख़ुद भी यह पसंद नहीं करते कि उनके अफ़सर उनसे ज़रूरत से ज्यादा अपनापा और नर्मी दिखाएँ। वे अपने हाकिमों की इज्ज़त करते हैं और ज़रूरत से ज्यादा नर्मी दिखाने से उनके मन की इज्ज़त ख़त्म हो जाती है। क़ैदी यह भी पसन्द करते हैं कि उनका अफ़सर अच्छी पोशाक पहने तमग़े लगाकर आए, वह अपने से ऊँचे अफ़सरों का चहेता हो। वे

चाहते हैं कि उनका अफ़सर कठोर, इन्साफ़-पसन्द और बडा आदमी हो, हमेशा अपनी शालीनता को बनाए रखे। वे ऐसे ही अफ़सर को पसन्द करते हैं। जब वे महसूस करते हैं कि वह अपनी शालीनता को क़ायम रखता है, उनका अपमान नहीं करता तो वे आश्वस्त हो जाते हैं कि सब कुछ ठीक है, जैसा होना चाहिये।

+ + +

"इस बात पर तो तुम्हारी खूब आफ़त आई होगी, क्यों?" कोबेलीन ने शान्त स्वर में पूछा।

"हूँ! आफ़त, हां बेटा—ज़रूर आफ़त आई थी। अली, कैंची देना! क्या बात है, आज ये लोग ताश नहीं खेल रहे, क्यों लड़को?"

"इन लोगों ने अपना सारा पैसा शराब में खर्च कर दिया है। अगर ये ऐसा न करते तो ज़रूर ताश खेलते।" वास्या ने कहा।

"अगर! मास्को में इस 'अगर' के लिए तुम्हें सौ रूबल मिल सकते हैं," लूच्का ने कहा।

"और तुम्हें कुल मिलाकर कितनी रक़म मिली लूच्का?" कोबेलीन ने फिर बात शुरू की।

"मेरे प्यारे, मुझे एक सौ पाँच रूबल मिले थे और उन्होंने मुझे क़रीब-क़रीब मार डाला था। साथियो, उन्होंने मुझे वर्दी पहनाकर कोड़े खाने के लिए भेज दिया था। तब तक मैंने कोड़ों की मार नहीं देखी थी। वहाँ बहुत भीड़ थी। पूरा शहर जमा हो गया था। एक डाकू को, हत्यारे को कोड़ों की सज़ा मिलने वाली थी। तुम लोग नहीं जान सकते कि लोग कितने बेवक़ूफ़ होते हैं। जल्लाद ने मेरे कपड़े उतार कर लिटा दिया और ज़ोर से चिल्लाया "खबरदार रहो! मैं तुम्हारी खाल उधेड़ने वाला हूँ।" मैं सोचने लगा, न जाने क्या होगा। पहले कोड़े पर मैं दर्द से चिल्लाना चाहता था। मैंने मुँह खोला, लेकिन गले से आवाज़ न निकल सकी। दूसरे कोड़े के बाद, मैं बेहोश हो गया—तुम्हें यक़ीन नहीं होगा, मैंने उनके मुँह से गिनती तक न सुनी और जब मुझे होश आया

तो मैंने उनके मुँह से 'सतरह' की संख्या सुनी। चार बार उन्होंने मुझे नीचे उतार कर आध घंटे का आराम दिया और मुझ पर पानी छिड़का मैंने आँखें फाड़-फाड़कर उनकी तरफ़ देखा और सोचा, मैं यहीं मर जाऊँगा।"

"तुम मरे नहीं ?" कोबेलीन ने सीधेपन में पूछा। लूच्का ने नफ़रत भरी एक निगाह कोबेलीन पर डाली। बैरक में हँसी सुनाई दी।

"एकदम अहमक़ है।"

"इसका दिमाग़ कुछ गड़बड़ है," लूच्का ने इस तरह कहा जैसे उसे अफ़सोस हो कि उसने इस क़िस्म के आदमी से क्यों बात की थी।

"यह हरामी है" वास्या ने अपनी अंतिम राय देकर इस प्रसंग को ख़त्म किया।

हालाँकि लूच्का ने छः क़त्ल किए थे, फिर भी जेल में कोई उससे नहीं डरता था। शायद उसकी यह तमन्ना थी कि लोग उसे एक ख़ौफ़-नाक आदमी समझें।

ईसे फ़ोमिच—हम्माम—बाक्लूशिन

क्रिसमस नज़दीक आ रही थी। क़ैदी एक क़िस्म की पवित्र गंभीरता से क्रिसमस का इन्तज़ार कर रहे थे, उन्हें देखकर मुझे भी उम्मीद होने लगी कि कोई असाधारण बात होने वाली है। क्रिसमस से चार दिन पहले हमें हम्माम में ले जाया गया। मेरे ज़माने में, ख़ासतौर पर शुरू के बरसों में क़ैदियों को शायद ही कभी हम्माम ले जाया जाता था। सब क़ैदी ख़ुश थे और जाने की तैयारी कर रहे थे। यह तय हुआ था कि खाने के बाद सब वहाँ जाएँगे। दोपहर के वक्त छुट्टी थी। हमारी बैरक में सबसे ज़्यादा ख़ुशी और उत्तेजना ईसे फ़ोमिच बमश्तीन में थी, जो यहूदी था। उसका ज़िक्र मैं चौथे परिच्छेद में कर चुका हूँ। वह भाप से अपने को बेहोश कर लेना पसंद करता था ; और जब भी पिछली स्मृतियों को दुहराते हुए मुझे जेल के स्नानों की याद आती है (वे सचमुच याद करने के क़ाबिल हैं) तब जेल के उस साथी की तस्वीर मेरी आँखों के सामने सबसे पहले घूम जाती है, जिसका चेहरा हमेशा ख़ुशी से दमक उठता था। हे ईश्वर ! वह कितना विलक्षण व्यक्ति था ! मैं पहले ही उसकी शक्ल-सूरत के बारे में बता चुका हूँ। वह पचास बरस का दुबला, मरियल और नाटा आदमी था, उसका शरीर चूज़े की तरह झुर्रियों से भरा था, उसके माथे और गालों पर दाग़ने के निशान थे। उसके चेहरे पर लगातार आत्मविश्वास, संतुष्टि यहाँ तक कि परम सुख झलकता था। लगता था उसे जेल में आने का कोई अफ़सोस नहीं था। वह सुनार था। शहर में कोई सुनार नहीं था, इसलिए वह सारा वक्त शहर के प्रमुख व्यक्तियों और अफ़सरों की बीवियों के लिए ज़ेवर बनाया करता था, इससे उसे कुछ आमदनी होती थी। उसे किसी चीज़ की कमी नहीं थी, वह अमीर भी था, लेकिन वह पैसे जमा करता था और सूद पर क़ैदियों

को कर्ज़ देता था। उसके पास अपना समावार, एक बढ़िया गद्दा, प्याले और खाने के पूरे बर्तन थे। शहर के यहूदी भी उसके परिचित थे और उसे काम देते थे। शनिवार को वह एक संतरी के साथ शहर के यहूदी इबादतघर में जाता था। (क़ानून इस बात की इजाज़त देता है) दरअसल वह मज़े में था और उधर शादी कराने के लिए बड़ी बेचैनी से इस बात का इन्तज़ार कर रहा था कि किसी तरह उसकी बारह साल की सज़ा कट जाए वह सीधेपन, बेवकूफ़ी, चालाकी, गुस्ताख़ी, सद्स्वभाव, भीरुता, डींग और उद्दंडता का हास्यास्पद मिश्रण था। मुझे यह देखकर ताज्जुब होता था, कि क़ैदी कभी उस पर फब्तियाँ नहीं कसते थे, हालाँकि उसको लेकर कभी-कभी मज़ाक कर लिया करते थे। निस्संदेह ईसे फ़ोमिच सबके लिए मनोरंजन और कौतूहल की सामग्री था। "हमारे पास सिर्फ़ यही एक यहूदी है, इसे कुछ मत कहो," वे सोचा करते थे। ईसे फ़ोमिच को अपने इस महत्व पर गर्व था कि उससे सब क़ैदियों का मनोरंजन होता था। उसका जेल में आने का दृश्य भी बेहद हास्यप्रद था (यह घटना मेरे आने से पहले हुई थी लेकिन लोगों से मुझे सारी बातें मालूम हो गई थीं)। एक दिन शाम के क़रीब जब सब को फ़ुर्सत रहती है, अचानक जेल में अफ़वाह फैली कि एक यहूदी को जेल में लाया गया है और गारदघर में उसके बाल काटे जा रहे हैं, जिसके बाद वह फ़ौरन भीतर आएगा। उस वक्त जेल में एक भी यहूदी नहीं था। सब लोग बेचैनी से उसका इन्तज़ार करने लगे और जब वह फाटक के पास पहुँचा तो सबने उसे घेर लिया। सार्जेन्ट उसे सिविलियन बैरक में लाया और सामूहिक चबूतरे पर उसे उसके सोने की जगह दिखाई। ईसे फ़ौमिच के पास एक बोरी थी, जिसमें उसका सारा सामान और जेल की तरफ़ से दी गई चीज़ें थीं। उसने बोरी एक तरफ़ रख दी और चबूतरे पर चढ़ कर पलथी मार कर बैठ गया। उसमें आँखें ऊपर उठाने की हिम्मत भी न थी। सब तरफ़ से हँसी और जेल के मज़ाक सुनाई देने लगे। उसके यहूदीपन पर फ़ब्तियाँ कसी जा रही थीं। सहसा एक नौ-

जवान क़ैदी भीड़ में से आगे आया। उसके हाथ में एक बहुत फटी पुरानी पतलून और जेल की तरफ़ से मिली टांगों पर लपेटने वाली पट्टियाँ थीं। आते ही वह ईसे फ़ोमिच के पास बैठ गया और उसके कंधे पर हाथ मार कर बोला :

"अरे दोस्त, मैं पिछले छः बरसों से तुम्हारा ही इन्तज़ार कर रहा था। देखो, इन चीज़ों पर तुम मुझे कितनी रक़म दे सकोगे ?"

और उसने ईसे फ़ोमिच के सामने चिथड़े फैला दिए।

ईसे फ़ोमिच, जिसने अभी तक भीरुता के कारण मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाला था, विकृत और ख़ौफ़नाक चेहरे वाले क़ैदियों के सामने, जो उसका मज़ाक उड़ा रहे थे, जिसकी आँख उठाने की भी हिम्मत नहीं हुई थी, गिरवीं की इस चीज़ को देखकर फ़ौरन उसकी बाँछें खिल गईं और उसने तेज़ी से चिथड़ों को उलटना-पलटना शुरू किया, यहाँ तक कि वह रोशनी के नज़दीक लाकर उन्हें देखने लगा। सब लोग इन्तज़ार करने लगे कि वह कुछ कहेगा।

'अच्छा, तो तुम मुझे एक चांदी का रूबल भी नहीं दोगे ? इन चीजों पर इतनी रक़म तो ज़रूर मिलनी चाहिए," होने वाले कर्ज़दार ने ईसे फ़ोमिच की तरफ़ देखकर आँख मारी।

"चांदी का रूबल तो नहीं, लेकिन सात कोपेक मिल सकते हैं।"

जेल में ईसे फ़ोमिच के मुँह से निकले ये पहले शब्द थे। सब लोग ज़ोर से हँस पड़े।

"सात ? अच्छा मुझे सात कोपेक ही दो, तुम्हारे लिए यह ख़ुशक़िस्मती है। इन चीजों को सँभालकर रखना, अगर गुम हो गईं तो इनकी क़ीमत तुम्हारी ज़िन्दगी के बराबर ही होगी।"

"तीन कोपेक सूद मिलाकर दस हुए," यहूदी ने कांपती, हचकोले खाती आवाज़ में कहा। सिक्के निकालने के लिए उसने जेब में हाथ डाला और एक भीरु दृष्टि क़ैदियों पर डाली। उसे बेहद डर लग रहा था, लेकिन वह कारोबार भी करना चाहता था।

"तीन कोपेक पूरे साल का सूद है न ?"

"नहीं साल का नहीं, एक महीने का है।"

"तुम बड़े ज़बरदस्त सूदख़ोर हो यहूदी, तुम्हारा नाम क्या है ?"

"ईसे फ़ोमिच।"

"अच्छा, ईसे फ़ोमिच, तुम्हारा यहाँ मज़े में गुज़ारा होगा। गुडबाई !"

ईसे फ़ोमिच ने एक बार फिर उन गिरवीं की चीज़ों को ग़ौर से देखा, फिर उन्हें सँभालकर बोरी में रख दिया। क़ैदी अभी भी हँस रहे थे।

सब लोग उसे पसंद करते थे और कोई भी उससे गुस्ताख़ी से पेश नहीं आता था, हालाँकि सब उसके कर्ज़दार थे। वह ख़ुद भी मुर्ग़ी की तरह द्वेष से मुक्त था, सब लोगों की सद्भावना देखकर वह भी शेख़ी बघारने लगा था। लेकिन इतने सीधे और हास्यास्पद ढंग से कि सब लोग फ़ौरन उसे माफ़ कर देते थे। लूच्का ने ज़िन्दगी में बहुत से यहूदी देखे थे, वह अक्सर ईसे फ़ोमिच से छेड़खानी किया करता था, किसी दुर्भावना के कारण नहीं, बल्कि मनोरंजन के लिए, जैसे लोग कुत्तों तोतों या सिखाए हुए जानवरों से छेड़खानी करते हैं। ईसे फ़ोमिच इस बात को समझ गया था, लेकिन उसे बुरा नहीं लगता था और वह फ़ौरन मुँहतोड़ जवाब देता था।

"अरे यहूदी, मैं तुम्हारी मरम्मत करूंगा।"

"तुम मुझे एक मुक्का मारोगे तो मैं तुम्हें दस मुक्के मारूंगा।" ईसे फ़ोमिच अकड़कर जवाब देता।

"कमीना कहीं का।"

"चलो मैं कमीना ही सही।"

"खुजली का मारा, यहूदी !"

"चलो ऐसा ही सही, मैं भले ही खुजलाता होऊँ लेकिन मैं अमीर हूँ मेरे पास पैसा है।"

"तुमने ईसामसीह को बेच दिया था।"

"मुझे इसकी परवाह नहीं है।"

"शाबाश ईसे फ़ोमिच, ख़ूब कहा! इसे कुछ मत कहो। हमारे पास सिर्फ़ यही एक यहूदी है।" क़ैदी हँसकर चिल्लाने लगते।

"अरे यहूदी, तुम्हें कोड़े पड़ेंगे और साइबेरिया भेज दिये जाओगे।"

"वाह, मैं साइबेरिया में ही तो हूँ।"

"अच्छा तो तुम्हें और आगे भेज दिया जाएगा।"

"वहाँ ईश्वर है या नहीं?"

"मेरे ख़्याल में तो है।"

"तब मुझे कोई एतराज़ नहीं। अगर प्रभु, ईश्वर वहाँ है और वहाँ पैसा है तो मैं हर जगह सुखी रहूँगा।"

"शाबाश ईसे फ़ोमिच, तुम बहुत शानदार आदमी हो, इसमें कोई शक नहीं।" उसके आसपास खड़े क़ैदी चिल्लाने लगते। ईसे फ़ोमिच यह जानते हुए भी कि वे उसका मज़ाक उड़ा रहे हैं, निराश नहीं होता था।

इस तरह की लोकप्रियता से उसे बेहद ख़ुशी मिलती थी और वह "ला-ला-ला" गुनगुनाते हुए सारे जेल में घूमा करता था। यह बड़ी ही हास्यास्पद और बेवक़ूफ़ी से भरी धुन थी—जितने बरस तक वह जेल में रहा, सिर्फ़ यही धुन गुनगुनाता रहा। बाद में जब हमारा परिचय अधिक घनिष्ठ हो गया तो उसने क़सम खाकर मुझे बताया कि छः लाख यहूदी औरतों, मर्दों और बच्चों ने लाल सागर पार करते हुए यही गीत, इसी धुन में गाया था। हर यहूदी को आदेश है कि वह अपनी जीत के मौक़े पर यही गीत गाए।

हर शुक्रवार की शाम को जेल के सब हिस्सों से क़ैदी जान-बूझकर ईसे फ़ोमिच को छुट्टी का दिन मनाते देखने के लिये आया करते थे। उसमें एक सरल अभिमान था और वह अपनी डींग हाँका करता था। लोगों को अपने अन्दर दिलचस्पी लेते देखकर उसे ख़ुशी होती थी।

बड़े पांडित्यपूर्ण ढंग से और पहले से सोची हुई गम्भीरता का उपक्रम करके वह कोने में रखी छोटी मेज़ को ढँक कर अपनी धर्म-पुस्तक खोलता था, दो मोमबत्तियाँ जलाकर, रहस्यमय शब्द बड़बड़ाता हुआ अपना लबादा पहनना शुरू करता था। यह एक रंगीन ऊनी शाल था, जिसे वह सँभाल कर सन्दूक में रखता था। वह दोनों हाथों में तावीज़ बाँध लेता था और पट्टी की मदद से माथे पर एक गोल कमान-सा बांध लेता था। तब लगता था जैसे उसके माथे पर कोई हास्यास्पद सींग उग आया है। इसके बाद प्रार्थना शुरू होती थी। वह गा-गाकर, चिल्ला कर प्रार्थना करता था, ज़मीन पर थूकता था, बड़ी विचित्र और भयंकर मुद्रा में पीछे मुड़कर देखता था और इशारे करता था। निश्चय ही यह उसकी प्रार्थना का हिस्सा था, इसलिए इसमें कोई विलक्षणता नहीं हो सकती थी। हास्यास्पद बात तो यह थी कि ईसे फ़ोमिच जान-बूझकर हमारे सामने अभिनय किया करता था और अपनी धार्मिक रस्म का दिखावा करता था। सहसा वह अपना सिर हाथों में छिपाकर सिसकता हुआ पुस्तक पढ़ने लगता था; फिर सिसकियाँ ऊँची होती जाती थीं। वह जब चीख़-चिल्लाकर थक जाता था तो अपना कमान से सुसज्जित सिर पुस्तक पर रख देता था; लेकिन सहसा सिसकियों के बीच वह ज़ोर से हँसने लगता था और गम्भीर, भावावेश से भग्न और सुख की अनुभूति से क्षीण हुए स्वर में पुस्तक पढ़ने लगता था। क़ैदी कहा करते थे, "क्या यह पागल तो नहीं हो रहा ?" एक बार मैंने उससे पूछा कि आख़िर सिसकने के बाद अचानक गम्भीर और सुखी हो जाने के पीछे क्या अर्थ छिपा है। ईसे फ़ोमिच को मेरे इस क़िस्म के सवाल बहुत अच्छे लगते थे। उसने फ़ौरन मुझे बताया कि जेरूसलम छूटने की स्मृति से रोना और सिसकना आ जाता है। यह यहूदी-धर्म का आदेश है कि जितनी ज़ोर से हो सके रोना चाहिए और छाती पीटनी चाहिए। लेकिन सिसकियों के बीच अचानक, जैसे किसी संयोग से (धर्म का आदेश है कि यह बात अचानक होनी चाहिए) उसे याद

आता है कि एक भविष्यवाणी के अनुसार यहूदी लोग किसी दिन ज़रूर जेरूसलम में लौटेंगे। इस याद से उसे फ़ौरन गीत गाकर, हँसकर अपना आनन्द व्यक्त करना चाहिए। उसे अपनी आवाज़ में यथा-सम्भव ख़ुशी लानी चाहिए और चेहरे पर शालीन भाव लाना चाहिए। धर्मविदित इस आकस्मिक भाव-परिवर्तन से ईसे फ़ोमिच को बेहद ख़ुशी मिलती था; उसे इसमें एक अत्यन्त सूक्ष्म धर्म-विधि दिखाई देती थी। उसने बड़े गर्व से इस कठिन नियम के बारे में बताया। एक बार जब प्रार्थना पूरे ज़ोर-शोर से चल रही थी तो मेजर ड्यूटी पर तैनात अफ़सर और सन्तरियों को लेकर वार्ड में आया। सब क़ैदी चबूतरे के पास क़तार में खड़े हो गए। ईसे फ़ोमिच पहले से ज़्यादा उत्साह से अपनी प्रार्थना करने लगा। वह जानता था कि जेल में प्रार्थना पर कोई पाबन्दी नहीं है, न ही उसमें ख़लल डाला जा सकता है, और निश्चय ही मेजर के सामने चीख़ने-चिल्लाने में उसके लिए कोई ख़तरा नहीं है। मेजर के सामने आत्म-प्रदर्शन करने में और हमारे आगे दिखावा करने में उसे ख़ूब मज़ा आ रहा था। मेजर उससे एक क़दम दूर आकर खड़ा हो गया। ईसे फ़ोमिच ने मेज़ की तरफ पीठ करके पीछे मुड़कर देखा और हाथ हिला-हिलाकर ऐन मेजर के चेहरे पर अपनी गम्भीर भविष्य-वाणी गाने लगा। धर्म के आदेश के अनुसार उसने फ़ौरन अपने चेहरे द्वारा बेहद ख़ुशी और शालीनता व्यक्त करना शुरू कर दिया, उसने बड़े अजब ढंग से अपनी आँखें सिकोड़ लीं और मेजर की तरफ़ देखकर हँसने और सिर हिलाने लगा। मेजर को ताज्जुब हुआ। लेकिन वह ठहाका मारकर हँस पड़ा। उसने ईसे फ़ोमिच के मुँह पर उसे बेवकूफ़ कहा और वहाँ से चला गया। ईसे फ़ोमिच पहले से भी ज़्यादा ऊँची आवाज़ में बोलने लगा। एक घंटे बाद जब वह खाना खा रहा था, मैंने उससे पूछा, "मान लो अगर बेवकूफ़ी से मेजर ग़ुस्से में आगबबूला हो उठता ?"

"कौन-सा मेजर ?"

"कौन-सा मेजर ? वाह तुमने उसे देखा नहीं।"

"नहीं।"

"वाह, वह तो ऐन तुम्हारे सामने एक गज़ की दूरी पर खड़ा था।"

लेकिन ईसे फ़ोमिच ने ईमानदारी से मुझे यक़ीन दिलाया कि उसने मेजर को नहीं देखा था, और प्रार्थना के वक्त वह इतने उन्माद में होता है कि उसे आस-पास की कोई चीज़ दिखाई या सुनाई नहीं देती।

ईसे फ़ोमिच की वह तस्वीर अब मेरे सामने घूम जाती है, जब शनिवार को वह खाली घूमा करता था। धर्म के आदेश का पालन करने के लिए वह खाली रहने की बहुत कोशिश करता था। हर बार यहूदी इबादतख़ाने से लौटकर वह मुझे कितनी अविश्वसनीय किंवदन्तियाँ सुनाया करता था! पीटर्ज़बर्ग की कितनी ढेर खबरें और अफ़वाहें वह मुझे बताया करता था। उसका कहना था कि उसके यहूदी साथियों ने अपने व्यक्तिगत तजुर्बे से ये ख़बरें उसे सुनाई हैं।

लेकिन मैं ईसे फ़ोमिच का ज़रूरत से ज्यादा ज़िक्र कर चुका हूँ।

शहर में सिर्फ़ दो सार्वजनिक हम्माम थे। इनमें से एक में, जिसका मालिक एक यहूदी था, अलग-अलग ग़ुसलख़ाने बने थे। हर ग़ुसलखाने में नहाने की फ़ीस पचास कोपेक थी। यह हम्माम अमीर लोगों के लिए था। दूसरा हम्माम मज़दूरों के लिए था; यह टूटा-फूटा, गन्दा और छोटा था। इसी में हम क़ैदियों को ले जाया जाता था। बाहर धूप चमक रही थी, कुछ-कुछ पाला पड़ रहा था। जेल से निकलकर शहर की सूरत देखने के विचार मात्र से ही क़ैदी बहुत खुश हो रहे थे। रास्ते-भर हँसी-मज़ाक होते रहे। भरी हुई राइफलें लिए पूरी पलटन हमारे साथ चल रही थी, यह दृश्य शहर के लोगों को बहुत पसन्द आया। हम्माम में हमें फ़ौरन दो क़तारों में बाँटा गया। जब पहली क़तार नहाने गई तो दूसरी क़तार को बगल के ठंडे कमरे में रोका गया। यह विभाजन जरूरी था, क्योंकि हम्माम बहुत छोटा था। लेकिन वहाँ इतनी कम जगह थी कि यह कल्पना करना भी कठिन था

कि हममें से आधे लोग भी कैसे वहाँ समा सकेंगे। लेकिन पेत्रोव ने मेरा साथ नहीं छोड़ा। वह अपने आप भागकर मेरे पास आया, यहाँ तक कि उसने मेरा बदन रगड़ने का प्रस्ताव भी किया। एक और क़ैदी मेरी मदद करना चाहता था, जिसका नाम बाक्लूशिन था। वह भी स्पेशल डिवीजन में था। लोगों ने उसका नाम 'नेता' रख छोड़ा था। मैं पहले भी ज़िक्र कर चुका हूँ कि वह सबसे ज़्यादा प्यारा और ज़िन्दादिल आदमी था। मैं पहले से उसे कुछ-कुछ जानता था। पेत्रोव ने कपड़े उतारने में भी मेरी मदद की क्योंकि आदी न होने के कारण मैं बहुत देरी लगा रहा था, कमरा बहुत सर्द था—बाहर की हवा की तरह सर्द।

बातों ही बातों में मैं इतना बता दूँ कि एक क़ैदी के लिए कपड़े उतारना बहुत मुश्किल होता है, जब तक उसे इस कला का अभ्यास नहीं हो जाता। सबसे पहले तो टखनों की बेड़ियों के नीचे की पट्टियों को जल्दी से खोलना पड़ता है। ये चमड़े की पट्टियाँ आठ इंच चौड़ी होती हैं, इन्हें जांघिये के ऊपर से बांधकर टखने पर बंधे छल्ले के नीचे पहना जाता है। इन पट्टियों की क़ीमत साठ कोपेक से कम नहीं होती, फिर भी हर क़ैदी अपने खर्च पर इन्हें मंगवाता है, क्योंकि इसके बग़ैर चलना नामुमकिन होता है। छल्ला टांगों पर ज़्यादा नहीं कसा होता—बीच में उंगली भी डाली जा सकती है। लोहा सीधा चमड़ी से रगड़ खाता है, चमड़े की पट्टी के बग़ैर एक ही दिन में आदमी की टांग रगड़ खा कर लाल हो सकती है। लेकिन इन पट्टियों को उतारना मुश्किल नहीं है। बेड़ियों के नीचे से बनियान और जांघिया उतारना ज़्यादा मुश्किल काम है—यह विशेष प्रकार की कला है। मिसाल के लिए बाँई टांग से जांघिया उतारने के लिए पहले जांघिए को छल्ले में से गुज़ारना पड़ता है, फिर उसे दुबारा टांग और छल्ले के ऊपर चढ़ाना पड़ता है, फिर कपड़े को दांई टांग पर सरकाकर पीछे की तरफ़ सरकाना पड़ता है। नीचे के कपड़े बदलने के लिए हर बार यही करना पड़ता है। नातजुर्बेकार आदमी के लिए यह अनुमान लगाना भी कठिन

है कि यह कैसे किया जाता है। सबसे पहले तोबोल्स्क में मुझे कोरेनेव नाम के क़ैदी ने, जो डाकुओं के गिरोह का सरदार था, और जिसे पाँच बरस तक दीवार के साथ ज़ंजीर में बाँधकर रखा गया था, यह काम सिखाया था। लेकिन क़ैदी इसके आदी हो जाते हैं और बिना किसी दिक़्क़त के यह काम कर लेते हैं।

मैंने पेत्रोव को साबुन और मुट्ठी-भर मूंज लाने के लिए कुछ कोपेक दिए। क़ैदियों को एक-एक टुकड़ा साबुन मिलता तो ज़रूर था, लेकिन वह आधी पेनी के बराबर होता था और पनीर के उन टुकड़ों जितना मोटा होता था, जो मध्य-वर्ग के परिवारों में खाने के शुरू में परसे जाते हैं। हम्माम से साथ वाले कमरे में साबुन, शहद का गर्म, मसालेदार पेय, क्रीमरोल और गर्म पानी बिकता था। जेल वालों ने हम्माम के मालिक से जो ठेका किया था, उसके मुताबिक़ हर क़ैदी को सिर्फ़ एक बाल्टी गर्म पानी मिलता था। जिसको ज़्यादा सफ़ाई की ज़रूरत महसूस होती थी, वह आधे कोपेक में गर्म पानी की एक और बाल्टी ख़रीद सकता था—हम्माम और बग़ल के कमरे के बीच एक खिड़की इसीलिए बनाई गई थी। मेरे कपड़े उतारने के बाद पेत्रोव ने जब देखा कि बेड़ियों की वजह से मुझे चलने में दिक़्क़त हो रही है, तो उसने मेरी बाँह पकड़कर कहा,

"बेड़ियों को ऊपर, पिंडलियों तक चढ़ा लो," वह मुझे इस तरह सहारा दे रहा था, जैसे वह मेरी परिचारिका हो। "अब ज़रा होशियारी से चलना—सामने एक सीढ़ी है।" सच पूछिए तो मुझे शर्म-सी आ गई। मैं पेत्रोव को यक़ीन दिलाना चाहता था कि मैं अकेला चलने में समर्थ हूँ, लेकिन वह हरगिज़ मेरी बात पर यक़ीन नहीं कर सकता था। वह मुझे बिल्कुल एक बच्चा समझता था, जो अकेला अपनी देखभाल नहीं कर सकता, जिसकी मदद सब लोगों को करनी चाहिए। पेत्रोव किसी भी सूरत में नौकर हरगिज़ नहीं था। अगर मैं उसे चोट पहुँचाता तो वह ज़रूर मुझे मज़ा चखाता।

मैंने उसकी मदद के लिए उसे कुछ देने का वादा नहीं किया था, न ही उसने मुझसे पैसा मांगा था। तो फिर वह किसलिए इस तरह मेरी देख-भाल कर रहा था ?

जब हमने गुसलखाने का दरवाज़ा खोला तो मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे हम साक्षात नर्क में दाखिल हो रहे हैं। ज़रा एक ऐसे कमरे की कल्पना कीजिए जो बारह क़दम लंबा और उतना ही चौड़ा है, जिसमें अस्सी या सौ आदमी एक ही बार में ठूंस दिए गए हों, क्योंकि सारे क़ैदियों को दो हिस्सों में बांट दिया गया था और हम लोग दो सौ के क़रीब थे। आँखें भाप, गंदगी और कीचड़ से अंधी हुई जा रही हैं। वहाँ इतनी भीड़ थी कि क़दम रखने तक की जगह नहीं थी। मैं डर कर पीछे हटने लगा, लेकिन फ़ौरन पेत्रोव ने मुझे ढाढस बंधाया। बड़ी मुश्किल से किसी तरह हम दीवार के साथ-साथ रखी बैंचों के नज़दीक पहुँचे। हमें फ़र्श पर बैठे लोगों को सिर झुकाने के लिए विनती करनी पड़ी ताकि हम उनके ऊपर से गुज़र जाएं। लेकिन बैंचों की सारी जगह घिरी हुई थी। पेत्रोव ने मुझे बताया कि बैंच पर बैठने के लिए जगह खरीदनी पड़ती है, उसने फ़ौरन खिड़की के पास बैठे क़ैदी से सौदे-बाज़ी शुरू कर दी। एक कोपेक के बदले में उस आदमी ने अपनी जगह छोड़ दी। पेत्रोव की मुट्ठी में कोपेक पहले से मौजूद था, जिसे वह खुश-क़िस्मती से गुसलखाने में ले आया था। जिस क़ैदी ने मुझे जगह दी थी, वह फ़ौरन मेरे नीचे अंधेरी और गंदी जगह पर आ बैठा, जहाँ गंदगी की दो इंच मोटी परत जमी थी। लेकिन बैंचों के नीचे की जगह भी भरी थी, वहाँ भी लोग ही लोग नज़र आते थे। फ़र्श पर हथेली के बराबर भी ऐसी जगह नहीं थी जंहाँ कोई न कोई क़ैदी बैठ कर बाल्टी में से पानी न उछाल रहा हो। कुछ क़ैदी खड़े होकर बाल्टियों से नहा रहे थे। गंदा पानी नीचे बैठे क़ैदियों के मुँड़े हुए सिरों पर गिर रहा था। गुसलखाने के चबू-तरे पर और सारी सीढ़ियों पर लोग दुबककर किचरपिचर एक साथ बैठे नहा रहे थे, लेकिन वे अपने शरीर की ज्यादा सफ़ाई नहीं कर रहे

थे। किसान वर्ग के लोग साबुन और गर्म पानी के साथ ज़्यादा नहीं नहाते, वे बुरी तरह भाप लेते हैं और फिर अपने ऊपर ठंडा पानी छिड़क लेते हैं। उनकी दृष्टि में यही स्नान है। चबूतरे पर पचास लचीली छड़ियाँ एक साथ ऊपर-नीचे हिल रही थीं। वे अपने को पीट-पीट कर बेहोश कर रहे थे। हर क्षण भाप बढ़ती जा रही थी। यह गर्मी नहीं नर्क था। फ़र्श पर सैकड़ों बेड़ियाँ एक साथ बज उठती थीं, जिनकी लय पर सब जने एक साथ चीख़-चिल्ला रहे थे।······बाहर निकलने की कोशिश में कुछ दूसरों की बेड़ियों में उलझ जाते थे और उनकी बेड़ियों में नीचे खड़े लोगों के सिर उलझ जाते थे। वे गिर जाते थे, गालियाँ बकते थे और जो भी उनकी बेड़ियों में उलझ जाता था उसे अपने साथ घसीटते थे। चारों तरफ़ तरल मैल फैल रही थी। हर आदमी उत्तेजना और नशे की हालत में नज़र आता था। चारों तरफ़ चीख़-पुकार मची हुई थी। बग़ल के कमरे की खिड़की के पास, जहाँ से बाल्टियाँ भीतर आ रही थीं, भीड़-भब्बड़, गाली-गलौज़ और धकापेल हो रही थी। अपनी जगह पर पहुँचने से पहले ही ताज़ा गर्म पानी फ़र्श पर बैठे हुए लोगों के सिर पर गिर रहा था। बीच-बीच में खिड़की में या आधे खुले हुए दरवाज़े में किसी मूँछों वाले सिपाही का चेहरा दिखाई दे जाता था, सिपाही बंदूक लेकर देखता था, भीतर कोई गड़बड़ तो नहीं हो रही। क़ैदियों के मुँडे हुए सिर और लाल जिस्म, जिनमें से भाप निकल रही थी, पहले से भी ज़्यादा बदसूरत दिखाई दे रहे थे। आमतौर पर भाप लगने से क़ैदियों की पीठ पर बने मार या कोड़े के निशान साफ़ नज़र आते हैं, लगता है जैसे वे जख्म ताज़े हों। वे निशान बड़े ही भयंकर थे। उन्हें देखते ही मेरे बदन में कंपकंपी दौड़ गई। वे ग़ुसलखाने की गर्म ईंटों पर और ज़्यादा उबलता हुआ पानी डाल रहे हैं। गर्म भाप से सारा ग़ुसलख़ाना भर जाता है; हँसी और चिल्लाहट सुनाई दे रही है। भाप के बादलों में से आहत पीठें, मुँडे हुए सिर, झुकी हुई बाँहें और टांगें दिखाई दे रही हैं। सबसे ऊँचे चबूतरे पर ईसे फ़ोमिच

हँसकर चिल्ला रहा है। इससे यह तस्वीर संपूर्ण हो जाती है। वह इतनी भाप ले रहा है कि बेहोश होने लगा है, लेकिन ज्यादा से ज्यादा भाप से भी उसे संतोष नहीं हो रहा। एक कोपेक पर उसने एक आदमी किराए पर लिया है, जो उसकी पीठ पर छड़ी मार रहा है—वह आदमी थककर छड़ी फेंक देता है और ठंडे पानी से नहाने के लिए भाग जाता है। ईसे फ़ोमिच हताश नहीं होता, वह एक दूसरा, फिर तीसरा आदमी किराए पर लेता है। ऐसे मौक़े पर उसे खर्च की परवाह नहीं होती और वह बेंत चलाने के लिए पांचवां आदमी भी रख लेता है। नीचे से क़ैदी चिल्लाते हैं: "इसे भाप लेना आता है! शाबाश, ईसे फ़ोमिच!" वह सोचता है कि इस वक्त वह सबसे बड़ा है, उसने सबको मात कर दिया है। उन्मत्त चीखती आवाज में वह 'ला-ला-ला' की धुन गाता है। उसकी आवाज सबसे ज्यादा तेज सुनाई देती है। मुझे लगा कि अगर किसी दिन हम सब लोग नर्क में इकट्ठे हुए तो बिल्कुल ऐसा ही दृश्य होगा। मैं यह विचार पेत्रोव को बताये बग़ैर न रह सका। उसने सिर्फ़ इधर-उधर देखा और कुछ न कहा।

मैं अपने पैसे से उसके लिए भी नहाने की जगह खरीदना चाहता था, लेकिन वह मेरे पैरों के पास बैठ गया और उसने कहा कि वह मजे में है। उधर बाक्लूशिन हम लोगों के लिए पानी ख़रीद कर ला रहा था। पेत्रोव ने कहा कि वह मुझे सिर से लेकर पैर तक नहलाएगा "ताकि तुम साफ़-सुथरे हो जाओ।" उसने मुझसे भाप लेने का आग्रह किया। भाप लेने की मुझमें हिम्मत न हुई। पेत्रोव ने मेरे सारे बदन में साबुन लगाया और कहा, "अब मैं तुम्हारे नन्हें पैरों को धोऊँगा।" मैं कहना चाहता था कि मैं ख़ुद अपने पैरों को धो सकता हूँ, लेकिन मैंने उसकी बात को नहीं काटा और अपने को पूरी तरह उसके हवाले कर दिया। उसने दास्य-भाव के कारण मेरे पैरों को 'नन्हा' नहीं कहा था। दरअसल वह मेरे पैरों को पैर कहने की धृष्टता नहीं कर सकता था। क्योंकि पैर तो हाड़-माँस के बने और लोगों के भी थे, इसलिए मेरे पैर

उसकी नज़रों में 'नन्हें' थे ।

मुझे नहलाने के बाद वह मुझे पहले की तरह औपचारिक ढंग से सहारा देकर साथ वाले कमरे में ले गया । क़दम-क़दम पर वह मुझे इस तरह ख़बरदार रहने की ताकीद कर रहा था, जैसे मैं चीनी मिट्टी की गुड़िया होऊँ । फिर उसने मेरी बनियान, जांघिया पहनने में मदद की और मुझे पूरी तरह से तैयार करने के बाद ख़ुद भाप लेने भीतर ग़ुसलख़ाने में गया ।

घर पहुँच कर मैंने उसे पीने के लिए चाय का एक गिलास पेश किया । उसने इन्कार नहीं किया और चाय पीकर मुझे धन्यवाद दिया । मेरा ख़्याल था कि मैं फ़राख़दिली दिखाऊंगा और उसे वोद्का का एक गिलास पिलाऊंगा । हमारे वार्ड में वोद्का आ रही थी । पेत्रोव बहुत ख़ुश हुआ ; उसने वोद्का पीकर अपना गला साफ़ किया और यह देखकर कि मैंने फिर से उसमें जान डाल दी है वह भागा-भागा बावर्चीख़ाने में गया । लगता था जैसे उसके बग़ैर कोई काम अधूरा पड़ा था । उसकी जगह बाक्लूशिन 'पायनियर' आ गया, जिसे मैंने हम्माम जाने से पहले चाय का निमंत्रण दिया था ।

बाक्लूशिन से ज़्यादा प्यारा आदमी मैंने आज तक नहीं देखा । यह सच था कि वह किसी के आगे नहीं झुक सकता था, और अक्सर झगड़ा भी कर बैठता था । वह नहीं चाहता था कि दूसरे लोग उसके मामलों में दख़ल दें—वह अपनी देखभाल ख़ुद कर सकता था । लेकिन वह ज़्यादा देर तक झगड़ा नहीं करता था, और मेरा ख़्याल है कि हम सभी लोग उसे पसंद करते थे । वह जहाँ भी जाता था लोग उसे ख़ुशी-ख़ुशी मिलते थे । शहर में भी मशहूर था कि बाक्लूशिन बेहद दिलचस्प आदमी है और हमेशा ख़ुश नज़र आता है । वह तीस बरस का लम्बा आदमी था, उसके चेहरे से ख़ुशमिज़ाजी और उत्साह टपकता था । उसके मुँह पर एक मस्सा था, फिर भी उसे ख़ूबसूरत कहा जा सकता था । वह ऐसी शक्लें बना सकता था और लोगों की ऐसी बढ़ियाँ नक़लें उतारता था

कि हँसते-हँसते लोग लोटपोट हो जाते थे। वह भी हँसोड़ लोगों की श्रेणी में से था लेकिन हँसी से चिढ़ने वाले लोगों से वह दबने वाला नहीं था, इसलिए वे उसे 'बेवक़ूफ़ और निकम्मा' नहीं कह सकते थे। वह बड़ा ही ज़िन्दादिल और जोशीला आदमी था। मैं जब जेल में नया-नया आया था, तभी उसने मुझसे वाक़फ़ियत पैदा कर ली थी और मुझे बताया था कि वह कान्तोनिस्त था और बाद में पायनियर्ज़ में भी रह चुका था। कई विख्यात व्यक्तियों का ध्यान उसकी तरफ़ गया था और वह उनका कृपापात्र रह चुका था, इस बात को वह बड़े गर्व से याद करता था। उसने फ़ौरन मुझसे पीटर्ज़बर्ग के बारे में पूछताछ करनी शुरू कर दी थी। वह पढ़-लिख भी सकता था। जब वह चाय पीने आया तो उसने यह बताकर कि सुबह लेफ़्टीनेन्ट 'एस' ने मेजर की कितनी मरम्मत की थी, वार्ड के सारे लोगों का मनोरंजन किया। फिर मेरे पास बैठकर उसने ख़ुश होकर बताया कि अब शायद ड्रामा होने वाला है। जेल में क्रिसमस के लिए ड्रामे की तैयारी हो रही थी। ड्रामे के लिए एक्टर तलाश किये गए थे और धीरे-धीरे सीनरी तैयार हो रही थी। शहर के कुछ लोगों ने ड्रामे के लिए पोशाकें देने का वादा किया था, यहाँ तक कि स्त्री-पात्रों के लिए भी। क़ैदियों को पूरी उम्मीद थी कि एक अर्दली की मदद से वे एक अफ़सर की वर्दी मय सैनिक चिह्नों के प्राप्त कर लेंगे। बस पिछले बरस की तरह कहीं मेजर ड्रामे की मनाही न कर दे। लेकिन पिछली क्रिसमस पर मेजर का मिज़ाज ख़राब था, वह कहीं ताश में हार आया था, इसके अलावा जेल में शरारतें भी हुई थीं; इसलिए ख़ार में आकर मेजर ने ड्रामा रोक दिया था, लेकिन शायद इस बार मेजर ड्रामे में रुकावट न डाले। कहने का मतलब यह कि बावलूशिन बहुत उत्तेजित था। साफ़ ज़ाहिर था कि वह ड्रामे की तैयारी में बहुत सरगर्मी से हिस्सा ले रहा था। मैंने उसी वक्त मन ही मन फ़ैसला किया कि मैं ड्रामा देखने ज़रूर जाऊँगा। ड्रामे की तैयारियाँ ठीक से चल रही थीं,

इस बात पर बाक्लूशिन की खुशी देखकर मुझे बड़ा अच्छा लगा। धीरे-धीरे हम दोनों में बातें होने लगीं। बातचीत के दौरान उसने मुझे बताया कि वह हमेशा पीटर्जबर्ग में नहीं रहा ; पीटर्जबर्ग में उसने कोई बेजा हरक़त की थी और उसे 'र' में तब्दील कर दिया गया था, हालाँकि उसे एक गैरिसन का सार्जेन्ट बनाकर भेजा गया था।

"वहीं से मैं यहाँ भेजा गया था।" बाक्लूशिन ने कहा।

"लेकिन किसलिए ?" मैंने पूछा।

"किसलिए ? आपका क्या ख्याल है, अलेक्जांद्र पेत्रोविच, मुझे यहाँ किसलिए भेजा गया था ? इसलिए क्योंकि मुझे मुहब्बत हो गई थी।"

"अच्छा ! अभी तक तो किसी को मुहब्बत के जुर्म में जेल जाते मैंने नहीं सुना।" मैंने हँसकर उसकी बात का प्रतिवाद किया।

"यह बात सच है, इसी वजह से मैंने अपने पिस्तौल से एक जर्मन को मार डाला था। लेकिन यह बताओ क्या वह जर्मन इस क़ाबिल था कि मैं उसे मार कर सजा भुगतता ?"

"लेकिन यह सब कैसे हुआ। मुझे बताओ। तुम्हारी कहानी दिलचस्प मालूम होती है।"

"यह बड़ी अजब कहानी है अलेक्जांद्र पेत्रोविच।"

"तब तो और भी अच्छा है। सुनाओ।"

"सुनाऊं ? अच्छा तो सुनो।"

मैंने क़त्ल की एक अजब कहानी सुनी जो कि सारी की सारी दिलचस्प नहीं थी।

बाक्लूशिन ने बताना शुरू किया : "बात यूं हुई कि जब मुझे 'र' भेजा गया तो मैंने आकर देखा कि वह काफ़ी बड़ा शहर था— लेकिन वहाँ बहुत से जर्मन थे। कहना न होगा कि उस वक्त मैं एक नौजवान था, अफ़सरों से मेरा मेलजोल था, मैं तिरछी टोपी लगाए

सड़कों पर घूमा करता था और जर्मन लड़कियों को आँखें मारता था। इसी तरह मेरा वक्त कट रहा था। एक जर्मन लड़की लुईज़ी पर मेरा दिल आ गया। लुईज़ी और उसकी मौसी दोनों धोबिनें थीं, लेकिन वे सिर्फ़ बढ़िया कपड़े ही धोती थीं। मौसी खूसट बुढ़िया थी और दोनों पैसे वाली थीं। शुरू में तो मैं उनके मकान की खिड़कियों के बाहर चक्कर काटा करता था, फिर मेरी लुईज़ी से पक्की दोस्ती हो गई। लुईज़ी अच्छी तरह रूसी बोल लेती थी—ज़रा सा तुतलाती थी—वह बहुत प्यारी लड़की थी, मैंने आज तक वैसी लड़की नहीं देखी······ शुरू में मैं मामला आगे बढ़ाना चाहता था, लेकिन उसने कहा, "तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए साशा क्योंकि मैं तुम्हारी नेक पत्नी बनने के लिए अपनी मासूमियत को सुरक्षित रखना चाहती हूँ।" वह सिर्फ़ मुझे प्यार से सहलाया करती थी और खूब हँसती थी, उसकी हँसी घंटियों जैसी थी······और वह इतनी पाक-दामन लड़की थी, कि मैंने वैसी लड़की अपनी ज़िन्दगी में कभी नहीं देखी। उसने खुद मुझ से शादी का प्रस्ताव किया। अब ज़रा बताओ क्या मैं उससे शादी किए बग़ैर रह सकता था? मैंने लेफ़्टीनेन्ट कर्नल से जाकर शादी की इजाज़त मांगने का फ़ैसला किया।······एक रोज लुईज़ी मुझसे मिलने निश्चित स्थान पर नहीं आई। उसने फिर दोबारा, तिबारा ऐसा ही किया। मैंने सोचा आखिर माजरा क्या है? अगर वह बेवफ़ा थी तो बेवफ़ाई का कोई न कोई तरीक़ा ज़रूर निकाल लेती, लेकिन वह मेरे ख़त का जवाब ज़रूर देती और मुझसे मिलने आती। लेकिन उसे झूठ बोलना नहीं आता था, इसलिए उसने रिश्ता तोड़ लिया था। मैंने सोचा ज़रूर यह उसकी मौसी की करतूत है, लेकिन मौसी के यहां जाने की मेरी हिम्मत नहीं थी, हालाँकि मौसी जानती थी कि हम दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं। हम हमेशा छिप-छिप कर मिला करते थे। मैं पागलों की तरह शहर में घूमने लगा। मैंने उसे एक आख़िरी ख़त लिखा, "अगर तुम न आईं तो मैं खुद तुम्हारी मौसी

के यहां पहुँच जाऊंगा।" इस खत से वह डर गई और मुझसे मिलने आ गई। वह रोने लगी और उसने मुझे बताया कि उसका दूर का एक जर्मन रिश्तेदार शुल्त्ज़ उससे शादी करना चाहता है। वह अधेड़ उम्र का घड़ीसाज़ है और अमीर है। वह कहता है, "मैं तुम्हें सुखी बनाने के लिए तुमसे शादी करना चाहता हूँ।" बुढ़ापे में वह बिना बीवी के नहीं रहना चाहता। वह कहता है कि वह मुझसे प्यार करता है, लेकिन यह बात उसने बहुत दिनों से अपने मन में रखी थी और वह यह प्रस्ताव टालता रहा था। लुईजी ने कहा "देखो साशा, वह आदमी पैसे वाला है और यह मेरी खुशक़िस्मती होगी, तुम तो नहीं चाहोगे न कि मैं इस खुशक़िस्मती से वंचित रहूँ?" मैंने उसकी तरफ़ देखा। वह रो-रोकर मुझसे लिपट रही थी······मैंने सोचा, 'लड़की अक्लमंदी की बात कर रही है। सिपाही से शादी करने में क्या फ़ायदा, हालाँकि मैं सार्जेन्ट हूँ?' मैंने कहा, "अच्छा लुईजी, खुदा हाफ़िज। तुम्हारी खुशी में रोड़ा अटकाने का मुझे कोई हक़ नहीं। यह बताओ कि क्या वह जर्मन खूबसूरत है?" उसने जवाब दिया "नहीं, वह बूढ़ा है और उसकी नाक बहुत लम्बी है।" वह खुद हँस पड़ी। मैंने उससे विदा ली और सोचा, 'मेरी क़िस्मत में लुईजी से शादी होना नहीं लिखा था।' अगले दिन सुबह मैं घड़ीसाज़ की दुकान के पास से गुजरा। लुईजी ने मुझे गली का पता बता दिया था। मैंने खिड़की में से झांककर देखा, पैंतालीस बरस का एक जर्मन, जिसकी सुग्गे जैसी नाक थी, और वह घूर कर देखता था। उसने लम्बा कोट और अकड़ा हुआ ऊँचा कॉलर लगा रखा था। देखने में वह संजीदा आदमी था। मैंने उसे मन ही मन गालियां दीं। मेरे जी में आया कि उसकी खिड़की का शीशा तोड़ दूं······लेकिन फिर मैंने सोचा, उसे छूने का कुछ फ़ायदा नहीं, जो हो गया सो हो गया। अंधेरा होने पर मैं बैरक में गया और तुम यक़ीन नहीं करोगे अलेक्जाद्र पेत्रोविच कि बिस्तर पर लेटकर मैंने क्या किया? मैंने फूट-फूट कर रोना शुरू

कर दिया…

"ख़ैर, वह दिन गुज़र गया और इसके बाद दो दिन और गुज़र गए। लुईज़ी मुझे दिखाई नहीं दी। इस बीच मुझे एक मित्र महिला से (जो एक बुढ़िया धोबिन थी, जिसे मिलने लुईज़ी कभी-कभी जाया करती थी) पता चला कि उस जर्मन को मेरे और लुईज़ी के प्यार की बात मालूम थी, इसीलिए उसने फ़ौरन शादी का प्रस्ताव रखने का फ़ैसला किया था, वरना उसे दो या तीन बरस और रुकना पड़ता। मालूम होता था कि उसने लुईज़ी से वचन लिया था कि वह मुझे कभी नहीं मिलेगी; लगता था कि वह लुईज़ी और उसकी मौसी दोनों से धृष्टतापूर्वक पेश आता था, शायद वह यह दिखाना चाहता था कि वह अपना फ़ैसला बदल सकता है, और उसने अभी तक पक्का फ़ैसला नहीं किया। बुढ़िया ने मुझे यह भी बताया कि परसों इतवार को उस घड़ीसाज़ ने लुईज़ी और उसकी मौसी को कॉफ़ी पीने के लिए निमंत्रित किया है, वहाँ एक और बूढ़ा रिश्तेदार भी मौजूद रहेगा जो कभी व्यापारी रह चुका था, लेकिन अब ग़रीब होने की वजह से किसी इमारत के निचले हिस्से की देखभाल का काम करता था। जब मुझे पता चला कि शायद इतवार को सारी बात पक्की हो जाएगी तो मैं गुस्से से पागल हो गया। उस दिन और उससे अगले दिन मैं लगातार यही बात सोचता रहा। मुझे लगा कि मैं उस जर्मन को कच्चा खा सकता हूँ।

"इतवार की सुबह तक मुझे नहीं पता था कि मैं क्या करने वाला हूँ, लेकिन प्रार्थना ख़त्म होते ही मैं उछलकर खड़ा हो गया। मैंने अपना ओवरकोट पहना और जर्मन घड़ीसाज़ के घर के लिए रवाना हो गया। मेरा ख़्याल था कि सब लोग वहाँ मौजूद होंगे, लेकिन मैं वहाँ किसलिए जा रहा हूँ और जाकर क्या कहूंगा, यह मैं ख़ुद भी नहीं जानता था। लेकिन किसी भी परिस्थिति का मुक़ाबला करने के लिए मैंने जेब में एक पिस्तौल रख लिया। मेरे पास एक छोटा-सा

मनहूस पिस्तौल था, जिसका घोड़ा पुराने ढंग का था। बचपन में मैं इस पिस्तौल को चलाया करता था। अब वह इस्तेमाल के क़ाबिल नहीं रहा था, लेकिन मैंने उसमें एक कारतूस भर दिया। मैंने सोचा, अगर उन लोगों ने मुझे बाहर निकालने की कोशिश की या कोई बदतमीज़ी की तो मैं उन्हें डराने के लिए पिस्तौल निकाल लूंगा। मैं वहाँ पहुँचा। दुकान में कोई न था। सब लोग पिछवाड़े के कमरे में बैठे थे। घर के लोगों के सिवा कोई मौजूद न था, कोई नौकर भी नहीं। घड़ीसाज़ के पास एक ही नौकर था, वह था जर्मन रसोइया। मैं दुकान में से गुज़रकर कमरे की तरफ़ बढ़ा। कमरे का दरवाज़ा बंद था, लेकिन दरवाज़ा पुराना था और एक कुंडी से बंद हो जाता था। मेरा दिल धड़कने लगा। मैं चुपचाप खड़ा उनकी बातें सुनने लगा। वे लोग जर्मन भाषा में बातें कर रहे थे। मैंने पूरी ताक़त से दरवाज़े को ठोकर लगाई, दरवाज़ा खुल गया। भीतर मेज़ पर कॉफ़ी का एक बड़ा-सा बर्तन रखा था और एक स्पिरिट लैंप पर कॉफ़ी उबल रही थी। एक तश्तरी में बिस्कुट रखे थे, एक तश्तरी में वोद्का का जग रखा था, एक तश्तरी में मछलियाँ और सुअर का गोश्त था, एक बोतल में किसी और क़िस्म की शराब थी। लुईज़ी और उसकी मौसी अपने सबसे शानदार कपड़े पहने सोफ़े पर बैठी थीं, उनके सामने एक कुर्सी पर लुईज़ी का होने वाला पति बैठा था। उसके बाल सँवरे हुए थे। वह लंबा कोट पहने हुए था और उसका कलफ़दार कॉलर आगे की तरफ़ अकड़ा खड़ा था। एक और कुर्सी पर एक दूसरा जर्मन ख़ामोश बैठा था, जिसके बाल सफ़ेद थे। मुझे देखकर लुईज़ी का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। उसकी मौसी क्षण भर के लिए खड़ी हो गई और फिर बैठ गई। घड़ीसाज़ के चेहरे पर ग़ुस्से से त्यौरियाँ पड़ गईं, वह मुझसे मिलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"तुम क्या चाहते हो ?" उसने पूछा। मैं कुछ सकपका गया, लेकिन मैं उस वक्त ग़ुस्से में था। मैंने जवाब दिया :

"मैं क्या चाहता हूँ ?" कम से कम आपको एक मेहमान का स्वागत करना चाहिए और शराब से उसकी खातिरदारी तो करनी चाहिए। मैं आपसे मिलने आया हूँ।"

जर्मन ने क्षणभर कुछ सोचने के बाद कहा, "बैठो।"

मैं बैठ गया। मैंने कहा, "मुझे थोड़ी वोद्का दो।"

"यह लो, मेहरबानी करके इसे पी लो।"

"मुझे बढ़िया वोद्का चाहिए" मैंने कहा। जानते हो उस वक्त मैं भयंकर ग़ुस्से में था।

"यह बढ़िया वोद्का है।"

"मैंने अपने को अपमानित महसूस किया। वह मुझसे इस तरह पेश आ रहा था जैसे मेरा कोई अस्तित्व ही न हो, और सबसे बड़ी बात यह थी कि लुईजी सारा दृश्य देख रही थी। मैंने वोद्का का गिलास खाली करके कहा :

"तुम इतनी अकड़ किसलिए दिखा रहे हो जर्मन ? तुम्हें मुझसे दोस्ती करनी चाहिए। मैं एक दोस्त की हैसियत से तुम्हारे यहाँ आया हूँ।"

"मैं तुम्हारा दोस्त नहीं बन सकता। तुम एक मामूली सिपाही हो।"

इस पर मेरे ग़ुस्से का पारा चढ़ गया।

मैंने कहा, "अरे ओ खूसट, सुअर का मांस खाने वाले, जानते हो, इस वक्त मैं तुम्हारे साथ जो चाहूँ कर सकता हूँ ? तुम चाहते हो कि मैं पिस्तौल से तुम्हें गोली मार दूँ ?"

मैंने पिस्तौल निकालकर उसके सिर पर तान दिया। औरतों के होशहवास गुम हो गए, डर के मारे वे हिलीं-डुलीं तक नहीं। बूढ़ा पत्ते की तरह काँप रहा था। उसका चेहरा पीला पड़ गया। उसने एक भी शब्द न कहा।

घड़ीसाज़ जर्मन चकित था, लेकिन उसने अपने को सँभाल लिया

श्रौर कहा :

"मैं तुमसे बिल्कुल नहीं डरता, मैं तुम्हें शरीफ़ आदमी समझकर कहता हूँ कि फ़ौरन अपने इस मज़ाक को बंद कर दो। मुझे तुमसे बिल्कुल डर नहीं लगता।"

मैंने कहा, "यह झूठ है। तुम मुझसे डरते हो।" वह बिना हिले-डुले वहाँ बैठा रहा, सिर हिलाने-डुलाने की भी उसमें हिम्मत न थी।

उसने कहा, "नहीं, तुममें इतनी जुर्रत नहीं कि मुझे पिस्तौल से उड़ा सको।"

"जुर्रत क्यों नहीं होगी ?"

"इसलिए क्योंकि तुम फ़ौजियों को इन सब बातों की मनाही है श्रौर तुम्हें सख़्त सजा मिलेगी।"

"वह बेवकूफ़ जर्मन क्या चाहता था, यह तो सिर्फ़ शैतान ही जानता होगा, लेकिन अगर उस वक्त उसने मुझे तंग न किया होता तो वह श्राज भी जिन्दा होता। जो हुश्रा वह हमारे झगड़े का ही नतीजा था।

मैंने कहा, "अच्छा तो तुम्हारे ख्याल में मेरे अन्दर हिम्मत नहीं है ?"

"नहीं है।"

"हिम्मत नहीं है ?"

"मुझसे ऐसा सलूक़ करने की जुर्रत तुममें नहीं है।"

"अच्छा तो यह लो सुअर के गोश्त !" मैंने घोड़ा दबा दिया श्रौर वह अपनी कुर्सी से लुढ़क कर नीचे गिर गया। श्रौरतें चीख़ पड़ीं।

"मैं पिस्तौल जेब में डालकर वहाँ से भाग आया। छावनी में दाख़िल होते वक्त मैंने फाटक के पास की झाड़ियों में पिस्तौल फेंक दिया।

घर लौटकर मैं अपने बिस्तर पर लेट गया श्रौर सोचने लगा, "मुझे फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिया जाएगा।" लेकिन कई घंटे गुज़र गए,

कोई मुझे पकड़ने न आया। अंधेरा होने पर मैं बहुत बेचैन और दुखी हो गया। मैं हर सूरत में लुईज़ी से मिलना चाहता था। मैं घड़ीसाज़ की दुकान के पास से गुज़रा। वहाँ लोगों की भीड़ जमा थी और पुलिस भी मौजूद थी। मैंने अपनी परिचित बुढ़िया से कहा, "लुईज़ी को बुला लाओ।" मैं थोड़ी देर इन्तज़ार करता रहा, फिर मैंने देखा लुईज़ी भागी आ रही है। वह आते ही मेरे गले से लिपट गई और बोली, "सारा क़सूर मेरा है, मैंने अपनी मौसी की बातों पर क्यों ध्यान दिया?" लुईज़ी ने बताया कि सुबह की घटना के बाद उसकी मौसी सीधी घर चली गई थी और डर से बीमार पड़ गई थी। वह बिस्तर पर गुमसुम लेटी है। "मौसी ने सुबह की बात किसी को नहीं बताई और मुझे भी बताने से मना कर दिया है। मौसी डर गई हैं और कहती हैं कि पुलिस जो करना चाहे करे।" लुईज़ी ने कहा, "आज सुबह किसी ने हम लोगों को नहीं देखा।" घड़ीसाज़ ने अपनी नौकरानी को भी कहीं भेज दिया था, अगर उसे पता चल जाता कि घड़ीसाज़ शादी करना चाहता है तो वह नाखूनों से उसकी आँखें नोच लेती। घर में उस वक्त कोई कारीगर भी नहीं था, घड़ीसाज़ ने उन्हें भी बाहर भेज दिया था। उसने अपने हाथों से कॉफ़ी बनाई थी और दोपहर का खाना तैयार किया था। घड़ीसाज़ का रिश्तेदार ज़िन्दगी भर ख़ामोश रहा था, उसने कभी कोई बात नहीं कही थी, सुबह की घटना के बाद सबसे पहले वही अपना हैट उठाकर बाहर चला गया था। "वह आगे भी ख़ामोश रहेगा, इसमें कोई शक नहीं," लुईज़ी ने कहा और सचमुच ऐसा ही हुआ। पन्द्रह दिन तक कोई मुझे गिरफ़्तार करने नहीं आया, किसी को मुझ पर शक नहीं था। तुम्हें यक़ीन नहीं होगा अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच, वह पखवारा मेरी ज़िन्दगी का सबसे अधिक सुखी समय था। हर रोज़ मैं लुईज़ी से मिलता था। मेरे प्रति उसका मन कितना कोमल हो गया था। वह रो-रोकर कहती थी, "तुम्हें जहाँ भी भेजा जाएगा मैं तुम्हारे पीछे आऊंगी,

तुम्हारी ख़ातिर मैं सब कुछ छोड़ दूंगी।" वह मेरे दिल को इतना कचोटती थी कि मुझसे इतनी ख़ुशी बर्दाश्त नहीं होती थी। और पंद्रह दिन बाद वे मुझे पकड़कर ले गए। लुईज़ी की मौसी और बूढ़े में कोई सांठगांठ हुई और उन्होंने पुलिस को मेरे ख़िलाफ़ सूचना दे दी।..."

मैंने उसे बीच में टोककर कहा, "माफ़ करना, इस जुर्म के लिए तुम्हें दस या बारह बरस की सज़ा मिली होगी, ज़्यादा से ज़्यादा तुम्हें सिविल डिवीज़न में भेजा जा सकता था, लेकिन तुम स्पैशल डिवीज़न में हो। यह कैसे हुआ ?"

"ओह, यह दूसरा क़िस्सा है। जब मुझे अदालत में लाया गया तो कैप्टेन ने सबके सामने मुझे भद्दी गालियाँ दीं। मैं अपने ऊपर क़ाबू न रख सका और मैंने उससे कहा, "तुम गालियाँ किसलिए बक रहे हो, बदमाश आदमी, जानते नहीं कि तुम एक अदालत में खड़े हो ?" इससे मामले की शक्ल ही बदल गई। मुझ पर एक नया मुक़दमा चलाया गया और सारे जुर्मों के लिए मुझे चार हज़ार कोड़ों की सज़ा मिली और मुझे स्पैशल डिवीज़न में भेज दिया गया। मेरे साथ-साथ कैप्टन भी वहाँ से निकाला गया। मैं तो 'हरी गली' की सैर करने आ गया और कैप्टेन से उसका ओहदा छीन लिया गया। उसे मामूली अफ़सर बनाकर कॉकेशस भेज दिया गया। गुडबाई, अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच ! हमारे ड्रामे में ज़रूर आना।"

क्रिसमस

आख़िर क्रिसमस की छुट्टियाँ आ पहुँचीं। क्रिसमस ईव पर एक दिन क़ैदियों ने कोई काम न किया। कुछ क़ैदियों को दर्ज़ीख़ानों और वर्कशॉपों में भेजा गया था, बाकियों को अलग-अलग ड्यूटियों पर भेजा गया था, लेकिन वे फ़ौरन अकेले या टोलियाँ बनाकर बैरकों में लौट आए थे, और खाने के बाद सबके सब बैरकों में ही थे। दरअसल सुबह भी अधिकांश क़ैदी जेल के काम से नहीं बल्कि अपने निजी कामों के लिए बाहर गए थे। कुछ वोद्का का इन्तज़ाम करने गए थे, कुछ अपने दोस्तों से मिलने गए थे, जिनमें मर्द और औरतें भी शामिल थीं, कुछ छोटे-मोटे कामों की मजदूरी उगाहने गए थे। बाक्लूशिन और वे क़ैदी जो ड्रामे में हिस्सा ले रहे थे, अपने परिचितों से ख़ासतौर पर अफ़सरों के नौकरों से, ड्रामे की पोशाकें जमा करने के लिए गए थे। कुछ क़ैदी उत्सुक और ज़िम्मेदार ढंग से सिर्फ़ इसलिए घूम रहे थे, क्योंकि और लोग ज़िम्मेदार नज़र आ रहे थे। हालाँकि कुछ क़ैदियों को तो कहीं से भी रक़म मिलने की उम्मीद नहीं थी, लेकिन उनकी शक्लों से मालूम होता था जैसे कहीं से उन्हें कोई रक़म मिलने वाली हो। सब लोग इस उम्मीद से कि कल अपने साथ कोई न कोई नवीनता और परिवर्तन लेकर आयेगा, क्रिसमस का इन्तज़ार कर रहे थे। शाम के वक्त नंबरदार क़ैदियों के लिए बहुत-सी खाने की चीज़ें लेकर आए। उनमें सांड और दूध पीने वाले सुअरों का गोश्त, यहाँ तक कि बत्तख़ें भी थीं। सारे क़ैदी, यहाँ तक कि वे ग़रीब और कंजूस क़ैदी भी जो साल भर कोपेक बचाते रहते थे, ऐसे मौक़े पर दिल खोलकर ख़र्च करते थे और बड़ी धूमधाम से व्रत तोड़ते थे। अगले दिन सचमुच की छुट्टी थी, जिसकी गारंटी क़ानून ने दे रखी थी

और जिसे कोई भी उनसे छीन नहीं सकता था। क्रिसमस के रोज़ किसी भी क़ैदी को काम में नहीं लगाया जा सकता था। सारे सालमें ऐसे सिर्फ़ तीन ही दिन आते थे।

और कौन जानता है, ऐसे दिन पर समाज से बहिष्कृत उन क़ैदियों के दिलों में कैसी-कैसी यादें उठती होंगी। बचपन से ही किसानों के दिलों पर ईसाई त्योहारों का गहरा असर पड़ता है। इन दिनों में कड़ी मेहनत से किसानों को मुक्ति मिलती है और परिवार के सब लोग इकट्ठे होते हैं। जेल में इन दिनों की याद ज़रूर दुखद और दिल को कचोटने वाली होगी। क़ैदियों के दिल में इस पवित्र दिन के लिए श्रद्धा थी और वे इसके पाबंद हो गए थे। इस दिन बहुत कम क़ैदी शराब पीते थे। सब संजीदगी से अपने-अपने कामों में लगे रहते थे, हालाँकि कुछ क़ैदियों के पास कोई भी काम नहीं था; वे या तो शराब पीते थे या निकम्मे बैठे रहते थे, और अपने व्यवहार में शालीनता लाने की कोशिश करते थे'''लगता था जैसे हँसने पर पाबंदी लग गई हो। दरअसल वे ज़रूरत से ज़्यादा संजीदा रहते थे, उनमें चिड़चिड़ापन और असहिष्णुता आ जाती थी, और अगर कोई उनके उस मूड को ग़लती से भी भंग कर बैठता था तो सारे क़ैदियों में चीख़-पुकार मच जाती थी। वे क्रुद्ध होकर इस तरह गाली-गलौज करने लगते थे, जैसे उस आदमी ने त्योहार का अपमान किया हो। क़ैदियों की यह मानसिक स्थिति बड़ी ही मर्मस्पर्शी और शानदार थी। इस महान दिवस के प्रति उनके मन में एक सहज आन्तरिक श्रद्धा तो थी ही, लेकिन उनके अचेतन मन में यह विचार भी रहता था कि क्रिसमस मनाने से वे सारे संसार के संपर्क में आ गए हैं। समाज ने उन्हें पूरी तरह से बहिष्कृत नहीं कर दिया, समाज से उनका संपर्क पूरी तरह नहीं टूटा, न ही वे पूरी तरह से तबाह हुए हैं। वे महसूस करना चाहते थे कि जेल में और बाहर की दुनिया में कोई फ़र्क नहीं है—उनकी ये भावनाएँ साफ़ ज़ाहिर थीं और आसानी से समझी जा सकती थीं।

अकिम अकीमिच ने भी त्योहार के लिए बहुत तैयारी की थी। उसके मन में अपने घर की कोई स्मृतियां नहीं थीं, क्योंकि वह यतीमों की तरह अपरिचितों में पाला गया था और सोलह बरस का होने से पहले ही उसे सैनिक जीवन की कठोर यातनाएँ झेलनी पड़ी थीं। उसके मन में कोई सुखद स्मृति नहीं थी, क्योंकि हमेशा से उसकी जिन्दगी नीरस और नियमित रही थी, निर्धारित सीमा से बाल बराबर भी इधर-उधर हटने में उसे डर लगता था। उसमें धार्मिक वृत्ति भी नहीं थी, क्योंकि कर्तव्यपरायणता ने उसकी अन्य तमाम मानवीय प्रवृत्तियों और गुणों, अच्छी-बुरी आकांक्षाओं और भावनाओं को ख़त्म कर दिया था। इसलिए वह बिना किसी उत्तेजना या बेचैनी के त्योहार की तैयारी कर रहा था। उसके मन में कोई निरर्थक और दुखद स्मृतियाँ नहीं थीं, बल्कि वह एक ख़ामोश निष्ठा से त्योहार का विधिवत् इन्तज़ार कर रहा था, जो उसके कर्त्तव्यों के और धार्मिक कृत्यों के पालन के लिए काफ़ी थी, जो हमेशा के लिए निर्धारित कर दिए गये थे। वह ज्यादा सोचने का क़ायल नहीं था। किसी भी चीज के आन्तरिक अर्थ से अकिम अकीमिच को परेशानी नहीं होती थी। उसके लिए जो नियम एक बार निर्धारित कर दिए जाते थे, उनका वह धार्मिक कट्टरता से पालन करता था। अगर धर्म के विपरीत नियम बना दिये जाते तो वह कल से ही बड़ी सावधानी और भक्तिभाव से उनका भी पालन शुरू कर देता। जिन्दगी में सिर्फ़ एक ही बार उसने अपनी अक़्ल से चलने की कोशिश की थी, जिसके फलस्वरूप उसे क़ैद भुगतनी पड़ रही थी। वह सबक़ बेकार नहीं गया था, हालांकि उसका क़सूर क्या था, इसकी चेतना से भाग्य ने सदा के लिए उसे वंचित कर दिया था। लेकिन उसने अपने इस दुर्भाग्य से एक ही सिद्धान्त निकाला था—चाहे कुछ हो, वह कभी अपनी अक़्ल इस्तेमाल नहीं करेगा, क्योंकि उसके पास 'अक़्ल की बहुतायत नहीं है,' जैसा कि क़ैदी कहा करते थे। उसे क्रिसमस के परम्परागत त्योहार में इतनी अन्धा आस्था थी

कि वह क्रिसमस की दावत के लिए पकने वाले सुअर को भी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उसने खुद अपने हाथों से सुअर में मसाला भरा और अंगारों पर सुअर का गोश्त भूना (उसे खाना-पकाना आता था)। लगता था, वह उस सुअर को मामूली सुअर नहीं समझता था, जिसे किसी भी दिन ख़रीदकर भूना जा सकता था। बल्कि वह उस सुअर को खास, त्योहार की चीज़ समझता था। शायद बचपन से ही वह क्रिसमस के रोज़ खाने की मेज पर सुअर का गोश्त देखने का आदी था, जिससे उसने यह नतीजा निकाला था कि ऐसे मौक़े पर सुअर का होना ज़रूरी है। मुझे यक़ीन है कि अगर एक बार भी क्रिसमस के मौक़े पर वह सुअर चखना चूक जाता तो ज़िन्दगी भर उसकी अन्तरात्मा उसे कचोटती रहती, क्योंकि उसने अपना फ़र्ज़ अदा नहीं किया।

क्रिसमस के दिन तक अकिम अकीमिच अपनी पुरानी जेकेट और पतलून पहने रहा, जो सफ़ाई से पैबन्द लगने के बावजूद भी तार-तार हो रही थी। अब पता चला कि उसने सन्दूक में अपना नया सूट सँभाल कर रखा था, जो उसे चार महीने पहले मिला था। उसने इस सुखद विचार से सूट को अभी तक छुआ भी नहीं था कि वह क्रिसमस के रोज़ कोरा सूट पहनेगा। और उसने ऐसा ही किया। क्रिसमस ईव पर उसने अपना नया सूट निकाला, उसकी तहें खोलीं, उसे ग़ौर से देखा, ब्रश फेरा, उस पर फूँक मारी और सूट पहनकर देखा। सूट उस पर चुस्त बैठता था; हर चीज़ दुरुस्त थी, कॉलर पर कसकर बटन बन्द होता था। ऊँचा कॉलर ठुड्डी के नीचे गत्ते की तरह अकड़ा था। कमर पर सूट बहुत कसा हुआ था, बिल्कुल वर्दी की तरह। अकिम अकीमिच खुशी से मुँह तिरछा करके मुस्करा रहा था। उसने अकड़कर छोटे से शीशे में देखा, जिसके इर्द-गिर्द फ़ुर्सत के वक्त उसने सुनहरी कागज़ का फ्रेम चिपका दिया था। कालर में सिर्फ़ एक ही हुक अपनी जगह पर नहीं मालूम होता था। अकिम अकीमिच ने उस हुक को बदलने का

फ़ैसला किया। उसने हुक को अपनी जगह से हटा दिया, और कोट फिर पहनकर देखा। अब कोट बिल्कुल ठीक था। उसने उसे तह कर फिर सन्दूक में रख दिया। अब वह निश्चित था। वह अपने सिर की हजामत से भी सन्तुष्ट था, लेकिन ग़ौर से शीशे में देखकर उसे लगा कि उसकी चाँद बिल्कुल मुलायम नहीं थी। सिर पर थोड़े से रोएँ उगे थे, जो मुश्किल से नजर आते थे। वह फ़ौरन जेल के क़ायदे के मुताबिक सिर पर उस्तरा फिरवाने 'मेजर' के पास गया। हालाँकि कल अकिम अकीमिच का मुआइना नहीं होने वाला था, लेकिन उसने सिर्फ़ अपनी अन्तरात्मा को शान्त करने के लिए हजामत करवाई, ताकि क्रिसमस से पहले उसका कोई फ़र्ज़ अधूरा न रह जाए। बचपन से ही उसके मन पर सैनिक चिह्नों, बटनों और वर्दी की हर छोटी-छोटी चीज़ का अमिट प्रभाव पड़ा था। उसे लगता था कि यह एक ऐसा फ़र्ज़ है, जिसके औचित्य में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। उसकी दृष्टि में यह किसी भी भद्र व्यक्ति के लिए सौन्दर्य की पराकाष्ठा थी। इसके बाद वार्ड का नम्बरदार होने की हैसियत से उसने सूखा घास मंगवाया और अपनी निगरानी में फ़र्श पर बिछवाया। दूसरे वार्डों में भी ऐसा ही किया गया था। न जाने किसलिए क्रिसमस के मौक़े पर फ़र्शों पर सूखा घास बिछाया जाता था। काम खत्म करने के बाद अकिम अकीमिच ने प्रार्थना की और बिस्तर पर लेटकर बच्चों की तरह मीठी नींद में सो गया, ताकि अगले दिन वह जल्द से जल्द उठ सके। बाक़ी सब क़ैदियों ने भी ऐसा ही किया। सब वार्डों में क़ैदी रोज़ से जल्दी ही सो गए। शाम के वक्त सब लोग जो काम करते थे वह भी आज बन्द हो गया था। किसी को ताश खेलने की होश नहीं थी, सब बेचैनी से क्रिसमस का इन्तज़ार कर रहे थे।

आखिरकार क्रिसमस का दिन भी आ पहुँचा। सूरज निकलने से पहले, सुबह का नगाड़ा बजते ही सब वार्डों के दरवाज़े खोल दिए गए और जो सार्जेन्ट ड्यूटी पर तैनात था, उसने आकर क़ैदियों को गिना और

उन्हें क्रिसमस की शुभकामनाएँ दीं। क़ैदियों ने भी उसी हार्दिकता और सद्भाव से शुभकामनाओं का उत्तर दिया। जल्दी-जल्दी प्रार्थना करने के बाद अकिम अकीमिच और कई क़ैदी बावर्चीख़ाने में यह देखने के लिए गए कि बत्तखों और सुअरों को कैसे भूना जा रहा है और उन्हें कहाँ रखा जा रहा है। जेल की छोटी-छोटी खिड़कियों में से जिनके आगे बर्फ़ जम गई थी, हमें अन्धेरे में से दोनों बावर्चीख़ानों के छहों तन्दूरों में जलती आग दिखाई दे रही थीं, जिन्हें तड़के ही जलाया गया था। क़ैदी अभी से पोस्तीन के कोट पहने या कन्धों पर डाले दालान में घूम रहे थे, और बावर्चीख़ाने में जमा हो रहे थे। कुछ क़ैदी, जिनकी संख्या बहुत कम थी, 'भटियारों' के यहाँ भी हो आए थे, वे सबसे ज़्यादा बेचैन थे। वैसे सारे क़ैदी शालीन, शान्त और औचित्यपूर्ण व्यवहार दिखा रहे थे। रोज़मर्रा के झगड़े और गाली-गलौज नहीं सुनाई दे रही थी। सब लोगों को एहसास था कि आज का दिन महान् और पवित्र त्योहार का दिन है। क़ैदियों में दोस्ती जैसी भावना नज़र आ रही थी। (मैं यहाँ यह बता दूँ कि क़ैदियों में सद्भावना का लेशमात्र भी नहीं था—मेरा मतलब साधारण सद्भावना से नहीं है, जिसका सवाल ही नहीं उठता था, बल्कि एक क़ैदी और दूसरे क़ैदी के बीच के सौहार्द्र की बात कर रहा हूँ। हमारे बीच इस भावना का लेशमात्र भी नहीं था, जो बड़ी असाधारण बात है। बाहर की दुनिया की बात बिल्कुल दूसरी है। हम सब, कुछ लोगों को छोड़कर आपस में बदतमीज़ी और नीरसता से पेश आते थे। बर्ताव का यह ढर्रा ही वहाँ हमेशा चलता था।)

मैं भी वार्ड से निकलकर बाहर आया। अभी-अभी बारिश शुरू हुई थी। तारों की टिमटिमाहट धुंधली पड़ रही थी और एक मद्धिम सर्द कुहरा आसमान में छा रहा था। बावर्चीख़ानों की चिमनियों में से धुएँ के बादल उठ रहे थे। आँगन में कुछ क़ैदियों ने मुझे सद्भावना से क्रिसमस की शुभकामनाएँ दीं। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और जवाब में शुभकामनाएँ दीं। उनमें से कुछ क़ैदी तो उस दिन से पहले मुझसे एक

भी शब्द नहीं बोले थे।

जब मैं बावर्चीखाने के दरवाज़े के नज़दीक पहुँचा, तो सैनिक डिवीज़न का एक क़ैदी मेरे पीछे भागा आया। उसने अपना पोस्तीन का कोट कंधे पर फेंक रखा था। मुझे आंगन में देखते ही वह पीछे से चिल्लाया था, "अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच ! अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच !" वह तेज़ी से बावर्चीख़ाने की तरफ़ भाग रहा था। मैं रुककर उसके आने की राह देखता रहा। वह गोल-मटोल चेहरे वाला एक नौजवान था, उसके चेहरे का भाव कोमल था और वह हरेक से खिचा-खिचा रहता था। जब से मैं जेल में आया था, वह मुझसे एक भी शब्द नहीं बोला था। मुझे उसका नाम तक याद नहीं था। भागते-भागते उसकी साँस फूल गई थी। वह मेरे सामने आकर खड़ा हो गया और शून्य दृष्टि से देखने लगा। लेकिन उसके चेहरे पर आनन्द भरी एक मुस्कान थी।

"क्या बात है ?" मैंने चकित स्वर में पूछा, क्योंकि वह मेरी तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था, लेकिन उसके मुँह से अभी तक एक भी शब्द नहीं निकला था।

"वाह, आज क्रिसमस है न" वह बड़बड़ाया और सहसा उसे एहसास हुआ कि इससे ज़्यादा वह कुछ नहीं कह सकता, वह मुझे छोड़कर बावर्चीखाने में भाग गया।

मैं यहाँ यह भी बता दूं कि हम दोनों का कभी कोई वास्ता नहीं पड़ता था और उस दिन के बाद से लेकर मेरी रिहाई के दिन तक हम दोनों में फिर कोई बात नहीं हुई।

बावर्चीख़ाने में दहकते हुए तंदूरों के आसपास बहुत भीड़ जमा थी, और हंगामा मचा हुआ था। सब अपनी-अपनी चीज़ों की निगरानी कर रहे थे। बावर्ची आज जल्द ही जेल का खाना पका रहे थे। अभी किसी ने खाना शुरू नहीं किया था, हालाँकि कुछ को भूख लग आई थी, लेकिन लोगों के सामने उन्हें अपनी शालीनता का ख्याल था। सब पादरी के आने का इन्तज़ार कर रहे थे, पादरी के आने पर ही व्रत

तोड़ा जा सकता था। अभी दिन पूरा निकला भी न था कि फाटक पर कॉरपोरल की आवाज़ सुनाई दी। उसने सब बावर्चियों को बुलाया। वह लगातार चिल्ला रहा था। क़रीब दो घंटे तक यह चीख़-चिल्लाहट जारी रही। बावर्चियों को ख़ैरात की चीजें उठाने के लिए बुलाया गया था, जो सारे शहर से जेल में आई थीं। ढेरों खाने की बढ़िया चीजें आई थीं, मिसाल के लिए रोल, पनीर की केकें, पेस्ट्रियां, पुए और कम मक्खन के भुरभुरे स्कोन वग़ैरह। मेरा ख्याल है, शहर में कोई भी ऐसी मध्यवर्ग की या ग़रीब औरत नहीं होगी, जिसने त्योहार के लिए पकाई मिठाई में से 'बदक़िस्मतों' और क़ैदियों को बतौर क्रिसमस की शुभकामनाओं के मिठाई न भेजी हो। बहुत बढ़िया आटे की बनी हुई ढेरों शानदार डबलरोटियां भी दान में आई थीं। कुछ ने मामूली और सस्ती चीजें भी भेजी थीं, जैसे आधे कोपेक की क़ीमत का रोल, या खट्टी मलाई से चुपड़ी अनाज की मोटी दो केकें। ये ग़रीब लोगों की सौगातें थीं, जो ग़रीबों को भेजी गई थीं। उनके पास देने के लिए सिर्फ़ यही कुछ था। बढ़िया और मामूली सब सौगातों को देने वालों की हैसियत में भेद-भाव किए बग़ैर कृतज्ञ भाव से स्वीकार किया जाता था। क़ैदियों ने सिर से टोपियां उतारकर विनयपूर्वक सिर झुकाया और ख़ैरात की चीज़ों को बावर्चीख़ाने में ले आए। जब मिठाइयों के ढेर जमा हो गए तो नंबरदारों को बुलाया गया। उन्होंने आकर सब वार्डों के लिए मिठाई के बराबर हिस्से कर दिए। हमारे वार्ड के हिस्से की मिठाइयों को अकिम अकीमिच ने एक दूसरे क़ैदी की मदद से बराबर हिस्सों में बांटा और हर क़ैदी को उसके हिस्से की मिठाई दी। किसी को न ईर्ष्या हुई, न किसी ने चूँ तक की। सब संतुष्ट थे। किसी के मन में यह शक तक नहीं उठा कि मिठाइयों को छिपाया गया है, या बांटने में पक्षपात किया गया है।

अपने हिस्से के गोश्त की निगरानी करने के बाद अकिम अकीमिच अपनी सजधज में लग गया। संजीदा और शालीन भाव से उसने कपड़े

पहने। एक भी हुक खुला नहीं रहने दिया। कपड़े पहनने के बाद उसने असली प्रार्थना शुरू कर दी और बहुत देर तक प्रार्थना करता रहा। बहुत से क़ैदी, जिनमें अधिकांश वृद्ध थे, खड़े होकर प्रार्थना कर रहे थे। नौजवानों ने ज्यादा प्रार्थना नहीं की। त्योहार के मौके पर भी ज्यादा से ज्यादा वे सुबह उठकर अपने शरीर पर क्रास का चिन्ह बना लिया करते थे। प्रार्थना ख़त्म करने के बाद अकिम अकीमिच मेरे पास आया और उसने संजीदगी से क्रिसमस की शुभकामनाएँ दीं। मैंने फ़ौरन उसे चाय पर आने का निमन्त्रण दिया और उसने मुझे सुअर के गोश्त में शिरकत करने की दावत दी। पेत्रोव भी क्रिसमस की शुभकामनाएँ देने भागा-भागा आया। मालूम होता था कि वह शराब पी रहा था, हालांकि वह हाँफ रहा था लेकिन उसने ज्यादा बात नहीं की। वह मेरे सामने कुछ देर इस तरह खड़ा रहा, जैसे किसी चीज़ की उम्मीद कर रहा हो और फिर जल्द ही बावर्चीख़ाने में चला गया। उधर सैनिक वार्ड में पादरी के आने की तैयारियाँ हो रही थीं। उस वार्ड को और वार्डों से अलग ढंग से रखा गया था। सोने के लिए चबूतरे कमरे के बीचों-बीच नहीं बल्कि दीवार के साथ-साथ बनाए गए थे। जेल में सिर्फ़ यही एक ऐसी बैरक थी जिसके बीचों-बीच खुली जगह छोड़ी गई थी। शायद यह इसलिए किया गया था ताकि ज़रूरत पड़ने पर क़ैदियों को जमा किया जा सके। बैरक के बीचों-बीच एक मेज रखी थी, जिस पर एक साफ़ तौलिया बिछाया गया था। मेज़ पर पवित्र मूर्तियाँ और एक लैंप रखा था। पादरी क्रास और पवित्र जल लेकर आ पहुँचा। प्रार्थना दुहराने और पवित्र मूर्ति के सामने गाने के बाद पादरी क़ैदियों की तरफ़ मुँह करके खड़ा हो गया। सच्चे भक्तिभाव से प्रेरित होकर सब क़ैदियों ने आकर क्रॉस को चूमा; फिर पादरी ने सब बैरकों में जाकर पवित्र जल छिड़का। बावर्चीख़ाने में जाकर पादरी ने जेल की बनी डबलरोटी की तारीफ़ की, जो सारे शहर में मशहूर थी। तारीफ़ से ख़ुश होकर क़ैदियों ने फ़ौरन पादरी को दो ताजी डबलरोटियाँ भिजवानी चाहीं। एक

नम्बरदार को डबलरोटी लेने के लिए भेज दिया गया। क़ैदी उसी भक्तिभाव से क्रॉस के पीछे-पीछे गए, जिस भक्तिभाव से उन्होंने क्रॉस का स्वागत किया था। फ़ौरन गवर्नर और मेजर भी जेल में आ गए। हम लोग गवर्नर को पसंद करते थे और उसकी इज्जत भी करते थे। मेजर के साथ-साथ गवर्नर ने सारे वार्डों में चक्कर लगाया और बावर्चीख़ाने में जाकर क़ैदियों के लिए बनाया गया शोरबा चखा। क्रिसमस की ख़ुशी में हर क़ैदी के लिए शोरबे में आध-आध सेर गोश्त डाल [दिया गया था। उबला हुआ बाजरा भी था और मक्खन की इफ़रात थी। गवर्नर को विदा करने के बाद मेजर ने खाना शुरू करने का हुक्म दिया। क़ैदी मेजर की नज़रों से बचने की कोशिश कर रहे थे। अपने चश्मे में से मेजर जिस तरह ईर्ष्यालु दृष्टि से दाएँ-बाएँ घूर रहा था और त्योहार के दिन भी किसी ऐसी चीज़ की तलाश कर रहा था, जिसमें वह दोष निकाल सके या किसी आदमी के मत्थे दोष मढ़ सके, हमें यह बात बिल्कुल पसन्द नहीं आई। अकिम अकीमिच का सुअर बहुत बढ़िया पका था। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं कैसे इसका कारण बताऊं लेकिन मेजर के जाने के पांच मिनटों के बाद ही बहुत से लोग नशे में धुत्त हो गए हालाँकि पांच मिनट पहले सबके होश-हवास दुरुस्त थे। सहसा चारों तरफ़ ख़ुशी से लाल और दमकते चेहरे दिखाई देने लगे और तीन तारों वाले साज़ मंगवाए गए। नाटे पोल को एक पियक्कड़ ने पहले से ही भाड़े पर पूरे दिन के लिए ले रखा था, और वह वायलिन पर नाच की ऊँची धुनें निकाल रहा था। बातचीत प्रतिक्षण ऊँची और उन्मत्त होती जा रही थी। लेकिन क़ैदियों ने ि ना किसी उपद्रव के खाना ख़त्म किया। सबने पेट भर कर खाया था। कई बुज़ुर्ग और आलसी लोग फ़ौरन सो गए। अकिम अकीमिच ने भी ऐसा ही किया। साफ़ ज़ाहिर था कि उसके ख्याल में त्योहार के दिन खाने के बाद सोना ज़रूरी था। स्तारोदुबोव का एक बूढ़ा, जो चर्च से मतभेद रखता था, थोड़ी देर सुस्ताने के बाद चबूतरे पर चढ़कर बैठ गया,

और बहुत देर रात तक लगातार अपनी प्रार्थना-पुस्तक का पाठ करता रहा। उसका कहना था कि क़ैदियों के पियक्कड़पन की बेशर्मी से उसके दिल में चोट लगी थी। सारे सर्केशियन क़ैदी सीढ़ियों पर बैठकर कौतूहल और ग्लानि-भरी दृष्टि से पियक्कड़ों की भीड़ को देख रहे थे। मुझे नूरा मिला। उसने भी धार्मिक रोष से सिर हिलाते हुए कहा, "छिः छिः, बहुत बुरी बात है, अल्लाह नाराज होगा।" ईसे फ़ोमिच ने गुस्ताख और अवज्ञापूर्ण भाव से अपनी मोमबत्ती जलाई। उसके व्यवहार से स्पष्ट था कि वह दिखा देना चाहता था कि उसके लिए क्रिसमस का कोई महत्व नहीं है। कहीं-कहीं ताश की बाज़ियाँ लग रही थीं। खेलने वालों को नंबरदारों का कोई डर नहीं था, हालाँकि उन्होंने सार्जेन्ट के आने के डर से कई लोगों को पहरे पर लगा दिया था। सार्जेन्ट इन सब बातों की तरफ़ कोई ध्यान नहीं देना चाहता था। ड्यूटी पर तैनात अफ़सर ने तीन बार जेल में चक्कर काटे थे, लेकिन वह जब आता था, शराबियों को छिपा दिया जाता था और ताशें भी खिसका दी जाती थीं। इसके बाद अफ़सर ने भी इन छोटी-मोटी हरक़तों पर ध्यान न देने का फ़ैसला कर लिया था। क्रिसमस के रोज़ शराब पीना मामूली जुर्म समझा जाता था। धीरे-धीरे क़ैदियों की हुल्लड़बाज़ी बढ़ती गई। झगड़े शुरू हो गए, फिर भी अधिकांश क़ैदी होश-हवास में थे और नशे में धुत्त लोगों की देखभाल कर रहे थे। लेकिन शराब पीने वाले आज बहुत ज्यादा पी गये थे। गैज़िन अपने को विजेता समझ रहा था। वह चबूतरे के आसपास मटकर हा था, जहाँ उसने बड़ा साहस दिखाकर वोद्का छिपा रखी थी। क्रिसमस तक वोद्का बैरकों के पिछवाड़े बर्फ़ के ढेर में छिपाकर रखी गई थी। शराब के ग्राहकों को अपने पास आते देख कर गैज़िन छिपकर चालाकी से हँस रहा था। वह खुद होश-हवास में था। उसने वोद्का की एक बूँद भी नहीं पी थी। उसने प्रोग्राम बनाया था कि क्रिसमस में बाक़ी क़ैदियों की जेबें खाली करवाने के बाद वह गुल-छर्रे उड़ाएगा। सारे वार्डों में क़ैदी गीत गा रहे थे लेकिन नशा जड़ता की

सीमा तक जा पहुँचा था और गीत गाने वालों की आँखों में आँसू आ गए थे। कुछ क़ैदी कंधों पर पोस्तीनें डाले अकड़ते हुए इधर-उधर घूम रहे थे और अपने साज़ बजा रहे थे। स्पैशल डिवीज़न में आठ गायकों की संगीत-मंडली का आयोजन किया गया था। वे गितारों और तीन तार वाले साज़ों की धुन पर बहुत शानदार गीत गा रहे थे। कुछ गीत ठेठ किसानों के गीत थे। मुझे एक ही गीत याद है जिसे बड़े उत्साह से गाया गया था :

"मैं नौजवान लड़की
शाम को दावत में गई।"

और मैंने एक और गीत का परिवर्तित रूप सुना, जैसा मैंने पहले कभी नहीं सुना था। गीत के अंत में कई कड़ियाँ और जोड़ दी गई थीं :

"मैं नौजवान लड़की हूँ,
मैंने घर को लीप-पोत दिया है,
चम्मच रगड़ कर साफ़ किए हैं।
लकड़ी के तख़्तों को धोया है।
शोरबा पतीले में है,
मटर गर्म हैं।"

अधिकांश गीत ऐसे थे, जिन्हें रूस में 'कारावास के गीत' कहा जाता है। वे बड़े मशहूर गीत थे। उनमें से एक 'बीते दिनों में' एक हास्यपूर्ण गीत था, जिसमें बताया गया था कि कैसे एक आदमी पहले गुलछर्रे उड़ाता था और आवारागर्दी करता था और अब उसे जेल में बंद कर दिया गया है। गीत में बताया गया था कि पहले तो वह "शैम्पेन के साथ खुशबूदार फिरनी" खाया करता था और अब—मुझे खाने के लिए करमकल्ला और पानी मिलता है, मैं उसे मिठाई समझ कर खा जाता हूँ।

एक और घिसा-पिटा गीत जेल में बहुत लोकप्रिय था :

"लड़कपन में मैं आज़ाद था
मेरे पास कुछ पूंजी भी थी
लेकिन जल्द ही लड़का अपने पैसे गँवा बैठा
और सीधे दासता के बंधन में बंध गया।"

गीत में इस तरह की और कई बातें थीं। उदासी भरे गीत भी गाए जाते थे। एक गीत तो ठेठ क़ैदियों का गीत था और मेरे ख्याल में वह एक मशहूर गीत था :

"आकाश में प्रभात की दीप्ति छाई है
जागने का नगाड़ा बज चुका है।
जेलर के लिए फाटक खुलेंगे
रिकार्ड रखने वाला क्लर्क भी आयेगा।
हम इन दीवारों के पीछे बन्द हैं
हमें कोई नहीं देख सकता, कोई हमारी आवाज नहीं सुन सकता
लेकिन आकाश का स्वामी हमारे साथ है
यहाँ भी हमें डरने की जरूरत नहीं..."

एक और करुण गीत था, लेकिन उसके स्वर बहुत शानदार थे, शायद किसी क़ैदी ने ही उस गीत की रचना की थी—गीत के शब्द फीके और अनपढ़ थे, मुझे उस गीत की कुछ पंक्तियाँ याद हैं :

"अब मैं कभी नहीं देखूँगा
अपनी जन्मभूमि को
मैं निर्दोष हूँ फिर भी दुख झेल रहा हूँ
किसी तरह इस धरती पर मुझे जिन्दगी बितानी है।
छत पर जब उल्लू चीखेगा
तो दुख से मेरा हृदय फट जाएगा।
उसकी आवाज़ जंगलों में गूँजेगी
और मैं वहाँ नहीं होऊँगा।"

यह गीत क़ैदी सामूहिक रूप से नहीं, बल्कि अकेले-अकेले गाते थे।

कोई जाकर सीढ़ियों पर बैठ जाता था और अपने गालों पर हाथ रख-कर किसी सोच में डूब जाता था और फिर ऊँची आवाज़ में गाना शुरू कर देता था। इस गीत को सुनकर दिल दुखने लगता था। हममें से कुछ अच्छे गाने वाले थे।

इस बीच अंधेरा हो रहा था। नशे और गुलगपाड़े के बीच उदासी, नैराश्य और जड़ता मुखरित हो उठी थी। जो एक घंटा पहले हँस रहा था, अब वह नशे में सिसक रहा था। कइयों में एक-दो बार झगड़े भी हो चुके थे। कुछ क़ैदी, जिनके चेहरे पीले पड़ गए थे और जिनसे खड़ा भी नहीं हुआ जाता था, दालान में सबसे झगड़ते हुए घूम रहे थे। वे लोग जिनमें शराब झगड़ालूपन नहीं पैदा करती थी दोस्तों की तलाश में थे, जिनके आगे वे अपना दिल खोल सकें और अपने उन्मत्त अवसाद को उंडेल सकें। ये बेचारे उस महान त्यौहार को ख़ुशी से गुज़ारना चाहते थे, आनन्द मनाना चाहते थे। हे ईश्वर! वह दिन हम सब लोगों के लिए कितना नीरस और मनहूस था! सब लोग निराश मालूम होते थे। पेत्रोव फिर मुझसे दो बार मिलने आया। उसने सारा दिन बहुत कम शराब पी थी और वह होश-हवास में था, लेकिन आख़िर तक वह शायद उम्मीद कर रहा था कि कोई-न-कोई असाधारण, दिलचस्प और उल्लास-पूर्ण घटना ज़रूर होगी। हालाँकि उसने इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं की थी, लेकिन यह बात उसकी आँखों में पढ़ी जा सकती थी। [illegible] बिना थके एक वार्ड से दूसरे वार्ड के चक्कर काट रहा था। लेकिन न[illegible] में उन्मत्त, निरर्थक गालियों और शराब में ग़र्क ल[illegible] सिवा उसे को[illegible] असाधारणता नहीं दिखाई दी। सिरोत्कीन भी वार्डों में घूम रहा था। उस रोज़ उसने मल-मल कर अपनी सफ़ाई की थी और लाल कमीज़ में वह ख़ूबसूरत दिखाई दे रहा था। वह भी ख़ामोशी और भोलेपन से किसी घटना का इन्तज़ार कर रहा था। धीरे-धीरे वार्डों का वातावरण घृणित और असह्य हो उठा। इसमें शक नहीं कि कुछ ऐसी ही बातें थीं जिन पर हँसा जा सकता था, लेकिन मेरे मन में उदासी भर गई

थी। मुझे इन सब लोगों पर अफ़सोस हो रहा था। उनके बीच बैठकर मुझे नीरसता अनुभव हो रही थी और मेरा दम घुटा जा रहा था।

दो क़ैदियों में झगड़ा हो रहा था कि कौन किसकी ख़ातिरदारी करे। वे बहुत देर से झगड़ रहे थे। यह उनका पहला झगड़ा नहीं था। एक आदमी को तो ख़ासतौर पर दूसरे के ख़िलाफ़ एक पुरानी शिकायत थी। वह शिकायत कर रहा था और उजड्डपन से बातें कर रहा था। वह यह साबित करने की कोशिश कर रहा था कि दूसरे ने उसके साथ बेइन्साफ़ी की है। पोस्तीन के किसी कोट की चोरी की गई थी, एक बरस पहले कार्निवल के वक्त पर कोई रक़म ग़ायब कर दी गई थी। इसके अलावा और भी कोई बात थी।......वह लंबा, मज़बूत पुट्ठों वाला आदमी था, वह शान्तिप्रिय था और किसी भी लिहाज से बेवक़ूफ़ नहीं था। जब वह नशे में होता था, तो वह हर क़ैदी से दोस्ती करना चाहता था और सबके सामने अपना दिल खोल देता था। वह अपने विरोधी को गालियाँ भी देता जा रहा था, शिकवा-शिकायत भी कर रहा था, ताकि बाद में वह दोस्ती कर सके। दूसरा आदमी नाटा, भर-कम और ठूँठ-जैसा आदमी था जिसका चेहरा गोल था। वह बड़ा ही तेज़-तर्रार और धूर्त आदमी था। उसने अपने साथी से ज्यादा शराब पी थी, लेकिन शायद उसे नशा कम आया था। उसका चरित्र दृढ़ था और उसके बारे में मशहूर था कि वह पैसे वाला है, लेकिन न जाने किस वजह से इस वक्त अपने ख़र्चीले दोस्त को नाराज करना उसके स्वार्थ के विरुद्ध था। वह दोस्त को एक वोद्का बेचने वाले के पास ले गया। उसका [illegible] बार-बार कह रहा था कि उसे दोस्त की ख़ातिर-दारी करनी चाहिए और वह ज़रूर करेगा, "बशर्ते तुम ईमानदार रहो।" 'भटियारे' ने जिसके मन में नाटे आदमी के लिए इज्जत थी और उसके ख़र्चीले दोस्त के लिए नफ़रत थी, क्योंकि वह अपने ख़र्च पर नहीं बल्कि अपने दोस्त के ख़र्च पर गुलछर्रे उड़ा रहा था—थोड़ी-सी वोद्का निकाली और एक प्याला भरा।

"नहीं स्त्योप्का, इस बार तो मुझे शराब पिलाने की तुम्हारी बारी थी ही, यह तो तुम्हें करना ही था।"

"मैं तुमसे बात करके अपना वक्त नहीं बर्बाद करना चाहता।" स्त्योप्का ने कहा।

"नहीं स्त्योप्का यह झूठ है !" दूसरे ने भटियारे के हाथ से शराब का प्याला लेकर प्रोटेस्ट किया, "तुमने मुझसे कर्ज ले रखा है, तुम्हारी कोई अन्तरात्मा भी नहीं है ! तुम्हारी आँखें भी तुम्हारी नहीं बल्कि उधार ली हुई हैं। तुम बदमाश हो स्त्योप्का, पक्के बदमाश, तुम्हें किसी और नाम से नहीं पुकारा जा सकता।"

"तुम किसलिए रो-पीट रहे हो ? तुमने वोद्का कपड़ों पर गिरा दी है, तुम्हारी खातिर की जा रही है, इसलिए तुम्हें क़ायदे से शराब पीनी चाहिए। तुम्हारी खातिर हम लोग कल तक तो यहाँ नहीं खड़े रहेंगे।" भटियारे ने फ़िज़ूलखर्च आदमी से कहा।

"पी तो रहा हूँ—तुम चिल्ला किसलिए रहे हो, तुम्हें क्रिसमस मुबारक हो, स्तीपान दोरोफ़ीच !" हाथ में प्याला लेकर शराबी ने शिष्टतापूर्वक स्त्योप्का को अभिवादन किया, जिसे वह एक मिनट पहले बदमाश कह चुका था। "खुदा करे तुम सौ साल जियो और तन्दुरुस्त रहो, चाहे तुम्हारी कितनी ही उम्र गुज़र गई हो।" उसने शराब का प्याला खाली करके अपना गला साफ़ किया और मुँह पोंछा। "जवानी के दिनों में मैं ढेर सारी वोद्का पी सकता था लड़को, लेकिन अब लगता है कि बुढ़ापा आ रहा है। शुक्रिया स्तीपान दोरोफ़ीच !" उसने संजीदगी और शालीनता से किसी विशेष व्यक्ति को नहीं बल्कि सारी दुनिया को सम्बोधित करते हुए कहा।

"कोई बात नहीं," स्तीपान ने कहा।

"लेकिन मैं हमेशा तुम्हें यही कहता रहूँगा, स्त्योप्का, इसके अलावा तुम मुझसे बदमाशों की तरह पेश आते रहे हो—मैं तुम्हें साफ़-साफ़ बता दूँ।......"

"और मैं भी तुम्हें बता दूँ, पियक्कड़ गँवार कहीं के," स्त्योप्का ने धैर्य खोकर कहा :

"मेरी बात ज़रा ध्यान से सुनो, देखो हम आधी-आधी दुनिया आपस में बाँट लेते हैं—तुम एक हिस्सा ले लो और मैं दूसरा ले लेता हूँ। तुम अपने रास्ते जाओ—मुझे कभी तुम्हारी सूरत न नज़र आए। मैं तुमसे तंग आ गया हूँ।"

"तो फिर तुम मेरी रक़म नहीं चुकाओगे ?"

"कौन-सी रक़म, शराबी बेवक़ूफ़ कहीं के ?"

"आह, अगली दुनिया में तुम मेरी रक़म देने के लिए राज़ी हो जाओगे, लेकिन मैं लूँगा नहीं। हम पैसा पाने के लिए ख़ून-पसीना एक करके मेहनत करते हैं, हमारे हाथों में छाले पड़ जाते हैं। तुम्हें भी अगली दुनिया में दुख झेलने पड़ेंगे क्योंकि तुमने मेरे पाँच कोपेक अदा नहीं किए।"

"जहन्नुम में जाओ तुम !"

"अभी मुझे वहाँ न भेजो, अभी मैं तैयार नहीं हूँ।"

"जाओ जाओ, बातें मत बनाओ।"

"बदमाश !"

"जेल की चिड़िया।"

इसके बाद पहले से भी ज्यादा ज़ोर से गालियों की वर्षा शुरू हो गई।

उधर दो और दोस्त बिस्तर पर अलग-अलग बैठे थे। एक लम्बा, गठीले बदन का मोटा आदमी था, जिसका चेहरा लाल था और जो देखने में बिल्कुल कसाई मालूम होता था। वह भावुकता में आकर रुआँसा हो रहा था। दूसरा एक दुबला नाज़ुक आदमी था, जो देखने में हड्डियों का ढाँचा मालूम होता था, उसकी नाक लंबी थी और हमेशा गीली दिखाई देती थी। उसकी सुअर-जैसी छोटी-छोटी आँखें हमेशा ज़मीन पर गड़ी रहती थीं। वह सुसंस्कृत और व्यक्तित्वशाली आदमी था।

किसी ज़माने में वह क्लर्क रह चुका था और अपने दोस्त से तिरस्कार-पूर्ण व्यवहार करता था, जो उसके दोस्त को नागवार था। दोनों दिन-भर एक साथ बैठे शराब पीते रहते थे।

"इसने फिर मेरे साथ ज़्यादती की है" मोटे आदमी ने अपनी बाईं बाँह से क्लर्क का सिर ज़ोर से झकझोर दिया। उसने अपने दोस्त के गले में बाँहें डाल रखी थीं। 'ज़्यादती' से उसका मतलब था कि उसके दोस्त ने उसे पीटा था। मोटे आदमी को जो फ़ौज में सार्जेन्ट रह चुका था, अपने दुबले दोस्त से मन ही मन ईर्ष्या होती थी, इसलिए दोनों में ज़बानदराज़ी की होड़ चल रही थी।

"मैं तुम्हें बता दूं कि ग़लती तुम्हारी भी है," क्लर्क ने ज़िद्दी ढंग से अपनी बात शुरू की। वह अत्यन्त गंभीर मुद्रा से फ़र्श की तरफ़ देख रहा था। उसने अपने विरोधी की तरफ़ नज़रें तक न उठाई थीं।

'इसने फिर ज़्यादती की है, सुना तुमने ?" पहले वाले ने अपने दोस्त को और भी ज़्यादा ज़ोर से झकझोर कर कहा, "दुनिया में सिर्फ़ तुम्हीं मेरे दोस्त हो। सुना तुमने ? इसीलिए मैंने तुम्हारे सिवा किसी को नहीं बताया कि उसने मेरे साथ ज़्यादती की है।"

"मैं फिर कहता हूँ, मेरे दोस्त, तुम्हारी इस दलील में ज़रा भी दम नहीं है। इससे तुम्हारे ही नाम पर धब्बा लगता है," क्लर्क ने ऊँचे, संयत स्वर में कहा, 'तुम्हें मान लेना चाहिए, मेरे दोस्त कि यह शराब का उन्माद तुम्हारे अपने असंयम की वजह से हुआ है।"

मोटे क़ैदी के क़दम कुछ पीछे की तरफ़ लड़खड़ाए। उसने नशे में झूमती, शून्य आँखों से आत्म-संतुष्ट क्लर्क की तरफ़ देखा और अचानक ही अप्रत्याशित रूप से उसने पूरा ज़ोर लगाकर अपने दोस्त के मुँह पर एक मुक्का जमाया। दिन-भर की दोस्ती का यहीं ख़ात्मा हो गया। उसका प्यारा दोस्त बेहोश होकर चबूतरे के नीचे लुढ़क गया।

मेरा एक दोस्त जो स्पैशल डिवीज़न में था, हमारे वार्ड में आया। वह बहुत ही हँसमुख और अच्छे स्वभाव का था और देखने में निहायत

सीधा लगता था। उसे मजाक करना बहुत अच्छा लगता था लेकिन उसके मन में दुर्भावना नहीं थी। यही वह आदमी था जो मुझे पहले दिन बावर्चीखाने में मिला था, जिसने पूछा था कि धनी किसान कहाँ रहता था, और कहा था कि वह बड़ा स्वाभिमानी है और मेरे साथ चाय पी थी। उसकी उम्र चालीस के क़रीब थी। उसका निचला होंठ असाधारण रूप से मोटा था। उसकी लंबी गुदगुदी नाक पर मुहाँसे निकले हुए थे, उसके हाथ में तीन-तारों वाला साज़ था जिसे वह लापरवाही से टुनटुना रहा था। नाटे क़द का एक क़ैदी, जिसका सिर बहुत बड़ा था, उसके पीछे-पीछे इस तरह घूम रहा था, जैसे किसी तार से बंधा हो। मैंने इससे पहले उसे शायद ही कभी देखा था और जेल में कभी किसी ने उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया था। वह बड़ा ही अजब शक्की तबियत का आदमी था, हमेशा संजीदा और ख़ामोश रहता था। वह दर्ज़ीख़ाने में काम करता था और सब लोगों से अलग रहने की कोशिश करता था। अब नशे की हालत में वह परछाईं की तरह वार्लेमोव के पीछे घूम रहा था। वह उत्तेजित भाव से बार-बार हवा में बाँहें घुमा रहा था और दीवार और बिस्तर पर ज़ोर से मुक्के मार रहा था। उसकी आँखों से आँसू झर रहे थे, वार्लेमोव उसकी तरफ़ बिल्कुल ध्यान नहीं दे रहा था, जैसे कोई उसके साथ हो ही न। मजे की बात तो यह है कि इन दोनों आदमियों का आपस में इससे पहले कभी कोई वास्ता नहीं था। उनके चरित्रों में और शौक़ों में कोई समानता नहीं थी। दोनों अलग-अलग डिवीज़नों के क़ैदी थे और अलग-अलग वार्डों में रहते थे। नाटे क़ैदी का नाम बुल्किन था।

मुझे देखकर वार्लेमोव ने खीसें निपोर दीं। मैं आग के नज़दीक अपने बिस्तर पर बैठा था—वह मुझसे कुछ दूर हटकर मेरे सामने खड़ा था। थोड़ी देर कुछ सोचने के बाद वह एक तरफ़ हटा और लड़खड़ाते हुए क़दमों से मेरी तरफ़ आया, फिर ख़ूब मटक कर उसने हल्की उंगलियों से साज़ के तारों को टुनटुनाया, और अपने बूट से ताल देता हुआ

नपे-तुले स्वर में गाने लगा :

"गोल चेहरा, गोल चेहरा !
चरागाह में उड़ती हुई नीली चिड़िया की तरह मेरी प्रिया की आवाज़ सुनो !
जब वह साटन की पोशाक पहनती है
जिस पर बड़ी ख़ूबसूरत झालर लगी रहती है,
ओह ! तब वह कितनी ख़ूबसूरत दिखाई देती है !"

इस गीत से बुल्किन का रहा-सहा धैर्य भी खत्म हो गया—वह ज़ोर से चिल्लाया और बैरक़ के सब लोगों को संबोधित करते हुए बोला :

"लड़की, यह आदमी झूठ बोल रहा है, यह हमेशा झूठ बोलता रहता है ! इसकी बातों में रत्ती-भर सच्चाई नहीं। सारी की सारी बात झूठी है !"

"बुज़ुर्ग अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच को मेरा सलाम।" वार्लेमोव ने कहा। वह मेरी तरफ़ देखकर चालाकी से मुस्कराया और मुझे चूमते-चूमते रह गया। सारे साइबेरिया में लोग दूसरों के नाम के आगे 'बुज़ुर्ग' शब्द लगाते हैं, यहां तक कि बीस बरस के लड़के के नाम के आगे भी। 'बुज़ुर्ग' शब्द आदर और श्रद्धा का सूचक है जो सुनने में अच्छा लगता है।

"कहो वार्लेमोव, क्या हाल-चाल है ?"

'किसी तरह गाड़ी चल ही रही है। जब इन्सान के दिल में क्रिसमस की ख़ुशी होती है तो उसे जल्द ही शराब का नशा चढ़ जाता है, मुझे माफ़ करना।" वार्लेमोव की आवाज़ धीमी पड़ रही थी।

"यह सब झूठ है, झूठ है !' बुल्किन ने निराश होकर बिस्तर पर मुक्के मारने शुरू कर दिए। लेकिन वार्लेमोव ने तय कर लिया था कि वह बुल्किन की किसी बात पर ध्यान नहीं देगा, सचमुच यह स्थिति बड़ी ही हास्यास्पद थी क्योंकि बिना किसी कारण के तडके से ही बुल्किन वार्लेमोव के पीछे लगा हुआ था, क्योंकि उसका ख़्याल था कि वार्लेमोव 'झूठ' बोल रहा है। वह परछाईं की तरह वार्लेमोव का पीछा

कर रहा था और उसके हर शब्द की नुक्ताचीनी कर रहा था। वह अपने हाथ मलता था, दीवारों पर मुक्के मारता था, जिससे उसके हाथ लहू-लुहान हो गए थे। मालूम होता था कि उसे वार्लेमोव के 'झूठ' से सख्त सदमा पहुँचा था। मेरा ख्याल है कि अगर उसके सिर पर बाल होते तो वह शोकाकुल हो कर ज़रूर उन्हें नोंच डालता। मालूम होता था कि वह वार्लेमोव के व्यवहार के लिए अपने को उत्तरदायी समझता था, मानो वार्लेमोव के सारे गुनाहों का बोझ उसी की अन्तरात्मा पर पड़ गया हो। लेकिन सबसे अधिक हास्यास्पद बात तो यह थी कि वार्लेमोव ने एक बार भी उसकी तरफ़ नहीं देखा था।

बुल्किन चिल्लाया, "यह लगातार झूठ बोल रहा है, झूठ-झूठ !"

"तुम क्यों परेशान हो ?" बहुत से क़ैदियों ने हँसते हुए कहा।

"मैं आपको सूचित करना चाहता हूँ, अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच, कि मैं बहुत ज़्यादा ख़ूबसूरत था और औरतें मुझे बेहद चाहती थीं..." वार्लेमोव ने सहसा कहा।

"झूठ ! इसने फिर झूठ बोला है", बुल्किन ज़ोर से चीख उठा। क़ैदी हँसने लगे।

"और मैं ख़ूब अकड़ कर चलता था, मेरे पास एक लाल कमीज़ और मखमल की ब्रीचिज़ हुआ करती थी, मैं काउन्ट बौटल की तरह ऐश करता था यानी मैं एक स्वीड की तरह जम कर शराब पीता था, जो मन में आता था किया करता था।"

"यह झूठ है !' बुल्किन ने ज़ोर से प्रतिवाद किया।

"और उन दिनों मेरे पास पत्थर का दुमंज़िला मकान था जो कभी मेरे पिता का था। दो बरसों में मैंने दोनों मंज़िलों को ख़त्म कर दिया, सिर्फ़ मकान का फाटक बच गया और फाटक के खम्भे भी न रहे। पैसा तो कबूतरों की तरह है, जो आते ही फुर्र से उड़ जाता है।"

"यह झूठ है" बुल्किन ने पहले से भी ज़्यादा ज़ोरदार आवाज़ में कहा।

"कुछ दिन हुए मैंने रो-रोकर अपने माँ-बाप को एक ख़त लिखा। मेरा ख्याल था कि वे मुझे कुछ भेजेंगे। मुझसे कहा गया है कि मैंने अपने माँ-बाप का विरोध किया है, उनका अनादर किया है। सात वर्ष से मैंने उन्हें ख़त नहीं लिखा था।"

"तुम्हें ख़त का कोई जवाब नहीं मिला ?" मैंने हँसते हुए पूछा।

"नहीं, कोई जवाब नहीं मिला," उसने जवाब दिया और अपनी नाक को मेरे चेहरे के क़रीब ला कर अचानक वह हँस पड़ा, "और यहां मेरी एक माशूक़ रहती है, अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच…"

"क्या सच ? माशूक़ ?"

"उस रोज़ ओनूफ़ीव कह रहा था, "मेरी माशूक़ के चेहरे पर चेचक के दाग़ चाहे हों और वह चाहे ख़ूबसूरत न हो लेकिन उसके पास ढेरों पोशाकें हैं, तुम्हारी माशूक़ चाहे ख़ूबसूरत है लेकिन वह भिखारिन है और कन्धे पर बोरी लादे घूमती है।"

"क्या यह सच है ?"

"हाँ यह सच है कि वह भिखारिन है," वह धीरे से हँसने लगा। दूसरे क़ैदी भी क़हक़हे लगाने लगे। दरअसल सब लोगों को मालूम था कि वार्लेमोव ने एक भिखारिन लड़की से साँठगाँठ कर ली थी और छः महीनों में उसने उस लड़की को सिर्फ़ दस कोपेक ही दिए थे।

मैंने उससे पीछा छुड़ाने की ख़ातिर कहा, 'तो फिर क्या हुआ ?"

उसने भावुक दृष्टि से मेरी तरफ़ देखा और कोमल स्वर में कहा, "मेरी हालत को देखते हुए क्या आप मुझे वोद्का का एक गिलास नहीं पिलाएँगे ? मैं दिन-भर चाय पीता रहा हूँ, अलेक्ज़ांद्र पेत्रोविच।" मैंने उसे कुछ सिक्के दिए, जिन्हें लेते हुए वह हृदयस्पर्शी स्वर में बोला, "चाय पीते-पीते मेरा दम फूल गया है और चाय मेरे पेट में इस तरह गुड़गुड़ा रही है जैसे बोतल के भीतर पानी गुड़गुड़ाता है।"

जब वार्लेमोव मुझसे पैसे ले रहा था, उस वक्त बुल्किन की उत्तेजना सीमा पर पहुँच गई। वह शोकाकुल व्यक्ति की तरह हाथ

हिलाने लगा और रुआँसा हो गया।

"शरीफ़ लोगो !" उसने पागलपन में वार्ड के सारे लोगों को संबोधित करते हुए कहा, "इस आदमी की तरफ़ देखो ! यह लगातार झूठ बोल रहा है। इसकी हर बात झूठी है, झूठ के सिवा कुछ भी नहीं।"

"लेकिन तुम्हें इससे क्या मतलब ?" क़ैदियों ने चिल्लाकर पूछा। उन्हें बुल्किन के पागलपन पर ताज्जुब हो रहा था, "तुम बड़े अजब आदमी हो !"

"मैं इसे झूठ नहीं बोलने दूंगा !" बुल्किन की आँखों से चिंगारियाँ फूट रही थीं; उसने पूरी ताक़त से बिस्तर पर मुक्का मारा। 'मैं नहीं चाहता कि वह झूठ बोले।"

सब लोग हँस पड़े। वार्लेमोव ने पैसा लेकर मुझे सलाम किया और तेज़ी से वार्ड से बाहर चला गया। वह ज़रूर किसी शराब बेचने वाले के पास ही गया था। पहली बार जैसे उसे बुल्किन की मौजूदगी का एहसास हुआ।

"आओ चलें," उसने दरवाज़े में ठिठक कर बुल्किन को इस तरह आवाज़ दी जैसे बुल्किन उसके काम का आदमी हो। फिर वह बुल्किन को रास्ता देने के लिए तिरस्कारपूर्ण भाव से एक तरफ़ हट गया और कहा, "अरे ओ घड़ीनुमा आदमी !" बुल्किन घबराया हुआ दरवाज़े से बाहर निकल गया। वार्लेमोव ने फिर अपना साज टुनटुनाना शुरू कर दिया।

लेकिन इस उपद्रव को बयान करने से क्या फ़ायदा ? उस दुखदायी दिन का अन्त हो गया। क़ैदी तख़्तों पर सो गए और गहरी नींद में ख़ुर्राटे भरने लगे। उस रात वे नींद में पहले से भी ज़्यादा बोलने और बड़बड़ाने लगे—कहीं-कहीं देर तक ताश की बाज़ी चलती रही। क्रिसमस का त्योहार जिसका बहुत दिन से इन्तज़ार हो रहा था, आकर चला गया था। कल से फिर रोज़मर्रा के काम की चक्की में पिसना होगा।

ड्रामा

क्रिसमस के हफ़्ते के तीसरे दिन हमारे ड्रामे का पहला शो हुआ। ड्रामे के आयोजन में बड़ी मेहनत की गई थी, लेकिन एक्टरों ने सारा इन्तज़ाम इस ढंग से किया था कि बाक़ी लोगों को कुछ पता नहीं था कि ड्रामे की तैयारियाँ कैसी चल रही हैं और क्या हो रहा है। हमें ठीक से यह भी नहीं मालूम था कि कौन-सा ड्रामा खेला जाएगा। इन तीन दिनों में एक्टरों ने ड्रामें की पोशाकें जमा करने की बहुत कोशिशें की थीं, जब वे काम करने के लिए बाहर गये थे। जब बाक्लूशिन मुझे मिला तो वह खुशी से अपनी उंगलियाँ चटखाने लगा। यहाँ तक कि मेजर भी इन दिनों शराफ़त की मूड में था, हालांकि हमें यह भी ठीक से मालूम नहीं था कि मेजर को हमारे ड्रामे की ख़बर भी थी या नहीं, अगर उसे मालूम हो जाए तो क्या वह हमें ड्रामा करने की बाज़ाब्ता इजाज़त दे देगा या ख़ामोश रहने का फ़ैसला करेगा और क़ैदियों की स्कीम की बात सुनकर आँख फेर लेगा और कहेगा कि किसी तरह की गड़बड़ नहीं होनी चाहिए ? मेरा ख्याल है कि मेजर को ड्रामे की ख़बर थी और होती भी कैसे न, लेकिन वह किसी मामले में यह सोचकर दख़ल नहीं देना चाहता था कि ड्रामे पर पाबंदी लगाने से स्थिति और भी बिगड़ जाएगी; तब क़ैदी उपद्रव मचाना शुरू कर देंगे और शराब के नशे में धुत्त हो जाएँगे। इससे तो बेहतर होगा कि किसी न किसी बात में उनका ध्यान लगा रहे। मेरा ख्याल है कि मेजर ने अपने मन में यही दलील दी होगी, क्योंकि यही सबसे ज्यादा अक्लमंदी की सही और स्वाभाविक बात थी। यह भी कहा जा सकता है कि अगर क़ैदी क्रिसमस के मौक़े पर ड्रामा या किसी और मनोरंजन का आयोजन न करते तो जेल-अधिकारियों को ख़ुद इसका आयोजन करना चाहिए था। लेकिन चूँकि हमारे

मेजर का मन और इन्सानों की तरह नहीं, बल्कि उनसे उलटा था, इसलिए मुमकिन है कि मेरा यह ख्याल ग़लत हो कि मेजर को ड्रामे की खबर थी और उसने इजाज़त दे दी थी। मेजर की क़िस्म का आदमी हमेशा चाहता है कि किसी न किसी को दबाता रहे, लोगों से कोई न कोई चीज़ छीनता रहे और उन्हें उनके अधिकारों से वंचित करता रहे—कोई न कोई गड़बड़ ज़रूर होती रहे। वह इस बात के लिए सारे शहर में मशहूर था। अगर प्रतिबंधों की वजह से जेल में उपद्रव हो जाता है तो मेजर को क्या परवाह थी? ऐसे उपद्रवों के लिए सरकार ने सज़ाएँ बना रखी थीं (हमारे मेजर जैसे लोगों की यही दलील होती है)। बदमाश क़ैदियों के साथ सख्ती बरतनी चाहिए और क़ानून का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए। क़ानून के ये मूढ़-पालक यह बिल्कुल नहीं समझ सकते, न ही उनमें यह समझने की क्षमता है कि अपनी विवेक-शक्ति को इस्तेमाल किए बग़ैर क़ानून का अक्षरशः पालन करने से फ़ौरन उपद्रव शुरू हो जाते हैं और उपद्रवों के सिवा इसका आज तक कोई नतीजा नहीं निकला। ऐसे लोग हमेशा कहते हैं, "बस यही कानून है, इसके अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता।" अगर उनसे कहा जाए कि उन्हें अपनी विवेक-शक्ति से काम लेना चाहिए और साफ़ दिमाग़ से सोचना चाहिए तो सचमुच उन्हें बड़ा ताज्जुब होता है। अधिकांश लोगों को यह बात अनावश्यक और निरर्थक मालूम होती है जिससे उनका मन ग्लानि से भर जाता है। उन्हें यह बन्धन अखरता है और वे इसे असहिष्णुता समझते हैं।

लेकिन चाहे यह कैसे भी सम्भव हुआ हो, सीनियर सार्जेन्ट ने क़ैदियों के ड्रामे का विरोध नहीं किया था और क़ैदी भी सिर्फ़ यही चाहते थे। मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि क्रिसमस की छुट्टियों के दौरान एक बार भी जेल में गड़बड़ नहीं हुई, उसकी वजह सिर्फ़ यही थी कि उन्हें ड्रामे की इजाज़त मिल गई थी, इसलिए वे कृतज्ञता महसूस कर रहे थे। उस बीच एक भी भयंकर झगड़ा नहीं हुआ, एक भी चोरी

नहीं हुई। मैंने खुद अपनी आँखों से देखा कि क़ैदी अपने साथियों के झगड़ों को शान्त कर रहे थे, उन्हें डर था कि कहीं ड्रामे पर पाबन्दी न लगा दी जाए। सार्जेन्ट ने क़ैदियों से वादा ले लिया था कि सब काम सुव्यवस्थित ढंग से होगा और क़ैदी अनुशासन में रहेंगे। यह देखकर कि जेल-अधिकारी उन पर यक़ीन कर सकते हैं, क़ैदियों ने गर्व का अनुभव किया था। यहाँ वह भी बता दिया जाए कि क़ैदियों के ड्रामे की वजह से जेल-अधिकारियों पर कोई ख़र्च नहीं पड़ा था, न ही उन्हें कोई चन्दा वग़ैरह देना था। स्टेज के लिए किसी ख़ास जगह की ज़रूरत नहीं थी। पन्द्रह मिनट के भीतर ही स्टेज तैयार की जा सकती थी और हटाई भी जा सकती थी। डेढ़ घण्टे का ड्रामा था और अगर अचानक हैडक्वार्टर्स से यह हुक्म आता कि ड्रामा फ़ौरन बन्द कर दिया जाय तो चुटकी बजाते ही सारी चीज़ें हटायी जा सकती थीं। एक्टरों की पोशाकें सन्दूकों में छिपाकर रखी गई थीं। लेकिन ड्रामे के प्रबन्धों और पोशाकों का बयान करने से पहले मुझे प्रोग्राम के बारे में बताना चाहिए।

कोई लिखित प्रोग्राम दर्शकों को नहीं दिया गया था, लेकिन ड्रामे के दूसरे और तीसरे दिन जेल के अफ़सरों और अन्य सम्मानित अतिथियों के लिए जो पहले शो में तशरीफ़ लाए थे, बाक्लूशिन ने हाथ से लिखकर एक प्रोग्राम तैयार किया था। गारद-अफ़सर ऐसे मौक़ों पर अक्सर आता था और एक बार सन्तरियों का कमांडिंग अफ़सर भी आया (एक रोज शाम को इंजीनियरों का अफ़सर भी आया था।) ऐसे मेहमानों के लिए ही प्रोग्राम लिखा गया था। क़ैदियों का ख़्याल था कि ड्रामे की शोहरत सारी जेल में, यहाँ तक कि शहर में भी फैल जाएगी, क्योंकि शहर में कोई थियेटर न था। यह अफ़वाह सुनने में आई थी कि कुछ लोगों ने शौक़िया ही एक ड्रामा सोसायटी क़ायम की है, जिसका 'शो' होने वाला है। लेकिन बात इससे आगे नहीं बढ़ी। क़ैदी बिल्कुल बच्चों की तरह छोटी-छोटी कामयाबियों पर भी खुश हो

जाते थे। वे आपस में बातें करते और सोचते, 'क्या पता ड्रामे की शोहरत बड़े से बड़े अधिकारियों तक भी पहुँचे और वे ड्रामा देखने आएँ। तब उन्हें पता चलेगा कि क़ैदी किस मिट्टी के बने हैं। यह कोई मामूली फ़ौजियों का 'शो' नहीं, जिसमें कठपुतलियों, कश्तियों, भालुओं और बकरियों का नाच दिखाया जाता है। हमारे यहाँ एक्टर हैं, असली एक्टर, जो ऊँचे दर्जे के हास्य-नाटक खेलते हैं। ऐसा नाटक तो शहर में भी नहीं है। सुना है कि जनरल एब्रोसिमोव ने एक ड्रामा किया था और वे एक ड्रामा और करने वाले हैं। लेकिन मैं दावे से कह सकता हूँ कि उनके पास सिर्फ़ पोशाकें ही जरूर भड़कीली होंगी, लेकिन जहाँ तक सम्वादों का ताल्लुक़ है, ख़ुदा ही जानता है, कैसे हों। शायद हमारे ड्रामे की तारीफ़ गवर्नर के कान तक भी पहुँचे और कौन जानता है कि वे खुद भी ड्रामा देखने आएँ। शहर में कोई थियेटर नहीं है'''।" दरअसल क्रिसमस की छुट्टियों में क़ैदियों की कल्पना-शक्ति पहले 'शो' की सफलता के बाद इतनी उर्वर हो गई थी कि वे यह भी सोचने लगे थे कि शायद उन्हें ड्रामे के इनाम बाँटे जाएँगे और उनकी सजाएँ कम कर दी जायेंगी, हालाँकि फौरन उन्हें अपनी इन बातों पर हँसी भी आ जाती थी। वे बच्चे थे, बिल्कुल बच्चे, यद्यपि इनमें से कुछ बच्चों की उम्र चालीस से भी ऊपर थी।

प्रोग्राम मालूम न होने पर भी मुझे पहले से ही 'शो' की रूपरेखा मालूम हो गई थी। पहले नाटक का नाम था, "फिलात्का और मिरोश्का—अथवा प्रतिद्वन्द्वी।" बाक्लूशिन ने एक हफ़्ता पहले ही मुझे शान से बताया था कि वह फिलात्का का पार्ट कर रहा है और ऐसे शानदार ढंग से कर रहा है, जैसा कि पीटर्सबर्ग के थियेटरों में भी नहीं होता होगा। वह सारे वार्डों में बिना किसी संकोच के डींगें हाँकता फिरता था—बिल्कुल सरल भाव से। बीच-बीच में वह 'थियेटर की बातें' यानी अपने पार्ट में से कुछ हिस्सा करके दिखाता था, उसका पार्ट चाहे दिलचस्प रहा हो या न रहा हो, सब लोग हँस पड़ते थे। यह मानना

पड़ेगा कि उस वक्त भी क़ैदी अपने ऊपर संयम रख रहे थे और शालीनता से पेश आ रहे थे। बाक्लूशिन की बातों से वही लोग खुश होते थे जो बिल्कुल नौजवान या नौसिखिया थे, या वे क़ैदी जिनकी प्रतिष्ठा क़ायम हो चुकी थी। इसलिए उन्हें अपनी भावनाओं के प्रदर्शन से कोई डर नहीं लगता था, वे भावनाएँ चाहे कितनी ही सीधी-सादी क्यों न हों। बाक़ी लोग खामोशी से गपशप करते थे या अफ़वाहों को सुनते थे। यह सच है कि वे किसी बात को काटते या उसका विरोध नहीं करते थे ‹ किन उन्होंने ड्रामे के प्रति उदासीन और यहाँ तक कि तिरस्कारपूर्ण रुख़ अख़्तियार करने की पूरी कोशिश की थी। सिर्फ़ ड्रामे से चार दिन पहले, सब लोगों के मन में कौतूहल जागृत होना शुरू हुआ। क्या होने जा रहा है? हमारे लोगों का खेल कैसा रहेगा? मेजर क्या सोचता है? क्या ड्रामा पिछले बरस जैसा कामयाब रहेगा? वग़ैरह-वग़ैरह।

बाक्लूशिन ने मुझे यक़ीन दिलाया कि एक्टरों का चुनाव बहुत शानदार हुआ है। हर आदमी को 'उसके मुताबिक़' पार्ट दिया गया है। यहाँ तक कि स्टेज पर पर्दा भी रहेगा। फ़िलात्का की मंगेतर का पार्ट सिरोत्कीन कर रहा है। "आप देखेंगे, वह औरतों की पोशाक में कैसा जँचेगा," उसने आँखें सिकोड़ कर चटखारे भरे। औरत एक लबादा और झालरदार पोशाक पहनेगी, उसके हाथ में छाता रहेगा। हीरो अफ़सर की वर्दी में आएगा, कंधों पर सैनिक चिह्न भी लगाए जाएंगे। उसके हाथ में एक बेंत होगा।

दूसरे नाटक का नाम था "पेट्र केद्रील", जिसका अन्त बेहद नाटकीय था। इस शीर्षक से मेरा कौतूहल जागृत हुआ, लेकिन पूछ-ताछ के बावजूद भी इस बारे में सिवाय इसके कुछ पता न चल सका कि यह ड्रामा किसी किताब में से नहीं, बल्कि शहर में रहने वाले एक रिटायर्ड सार्जेंट की 'लिखित प्रति' में से लिया गया था। सार्जेंट ने शायद किसी फ़ौजी प्रोग्राम में खेले गए इस नाटक में कभी हिस्सा लिया था। हमारे दूर-दराज़ सूबों और छोटे शहरों में ऐसे नाटक खेले जाते

हैं जो कभी छपते नहीं, बल्कि अपने आप ही स्टेज पर आ जाते हैं, और इसीलिए जो हर 'जन-नाट्यशाला' का ज़रूरी हिस्सा बन गए हैं। अगर कोई नए सिरे से और ध्यान से जनता के इन नाटकों की खोज करे तो कितना अच्छा हो। जनता के ड्रामे सचमुच मौजूद हैं और किसी भी दृष्टि से उनका मूल्य कम नहीं। मैं यह मानने को तैयार नहीं कि जेल के स्टेज पर जो चीज़ें पेश की गयीं, वे ख़ुद क़ैदियों के दिमाग़ की उपज थीं। उनके पीछे एक लम्बी परम्परा और निश्चित नियम और अभिनय की शैली थी, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती आई थी और समय ने जिसे एक गरिमा प्रदान कर दी थी। ऐसे नाटक फ़ौजियों और मज़दूरों में, कारख़ाने वाले शहरों में, यहाँ तक कि छोटे अज्ञात शहरों के मज़दूरों में भी आपको मिल जाएंगे। यह परम्परा ग्राम और प्रान्तीय शहरों के बड़े ज़मींदारों के नौकरों में भी सुरक्षित है। मेरा ख्याल है कि घरेलू दासों के द्वारा सारे रूस में पुराने ढंग के नाटकों की हस्तलिखित प्रतियों का प्रचार हुआ है। कई पुराने जमींदारों और मॉस्को के रईसों ने अपनी निजी नाटक-मंडलियाँ रख छोड़ी थीं, जिनमें उनके नौकर अभिनय किया करते थे। इन्हीं थियेटरों ने हमारी राष्ट्रीय नाट्य-परम्परा की नींव डाली, इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। 'पेट्रू केद्रील' के बारे में मुझे सिर्फ़ इतना ही पता चल सका कि स्टेज पर कुछ दुष्ट आत्माएँ आकर केद्रील को दोज़ख़ में ले जाती हैं। लेकिन केद्रील नाम का क्या अर्थ है, उसे कीरील न कहकर केद्रील क्यों कहा जाता है; यह कहानी रूसी है या विदेश से आई है—इन बातों का पता न चल सका। यह भी बताया गया कि सबसे आख़ीर में संगीत के साथ एक मूक नाटक भी होगा। निश्चय ही ये सारी ख़बरें बड़ी दिलचस्प थीं। कुल मिलाकर पन्द्रह एक्टर ड्रामे में हिस्सा ले रहे थे। सब के सब चुस्त और जोशीले थे। उन्होंने ख़ूब मेहनत से रिहर्सलें की थीं। अक्सर वे जेल के पिछवाड़े चले जाते थे। उन्होंने यह भेद अपने तक ही रखा था। सचमुच वे किसी असाधारण और अप्रत्याशित बात से

हमें आश्चर्य में डालना चाहते थे ।

काम के दिन अंधेरा होते ही बैरकों में ताला लगा दिया जाता था। क्रिसमस के सारे हफ़्ते शाम का नगाड़ा बजने तक बैरकें खुली रहती थीं। सिर्फ़ ड्रामे की वजह से यह सुविधा दी गई थी। पूरा हफ़्ता दोपहर के वक्त क़ैदी संतरियों के अफ़सर से, किसी को भेज कर, यह विनती करते थे कि "मेहरबानी करके ड्रामे की इजाज़त दे दी जाए और बैरकों को ज़रा देर से ताला लगाया जाए ।" वे यह भी कहलवाकर भेजते थे कि कल ऐसा करने से किसी क़िस्म का उपद्रव नहीं हुआ था ; संतरियों का अफ़सर मन ही मन सोचता था, 'सचमुच कल तो कोई गड़बड़ नहीं हुई और अगर क़ैदी वचन दे रहे हैं कि आज भी कोई गड़बड़ नहीं होगी तो सचमुच वे ख़ुद ही इसका इन्तज़ाम कर लेंगे और किसी क़िस्म का ख़तरा नहीं रहेगा। अगर ड्रामे की इजाज़त न दी गई तो क्या पता ये लोग ख़ार में आकर कोई शरारत कर बैठें, जिससे संतरियों पर आफ़त आ जाए। (इन ख़तरनाक क़ैदियों का क्या ठिकाना ?)' इसके अलावा संतरी की ड्यूटी देना वैसे भी मुश्किल काम है—फिर ड्रामा हो रहा है, सिपाहियों का ड्रामा नहीं, बल्कि क़ैदियों का जो बहुत ही दिलचस्प लोग होते हैं—ड्रामा देखने में मज़ा आएगा। संतरियों के अफ़सर को ड्रामे की रिहर्सलें देखने का अधिकार प्राप्त था ।

अगर कोई अफ़सर आकर पूछे "सन्तरियों का अफ़सर कहाँ है ?" तो उसे कह दिया जाएगा "वह भीतर बैरक़ों में क़ैदियों को गिनने गया है और वार्डों में ताला लगा रहा है ।"—कैसा माक़ूल और साफ़ जवाब है । क्रिसमस की छुट्टियों में सन्तरियों के अफ़सर ड्रामे की रिहर्सलें देखा करते थे और शाम के नगाड़े तक बैरकों को ताला नहीं लगाते थे । क़ैदी भी जान गए थे कि अफ़सर उनके काम में रुकावट नहीं डालेंगे, इसलिए वे निश्चिन्त थे ।

क़रीब सात बजे पेत्रोव मुझे लेने आया और हम एक साथ ड्रामा

देखने गए । सिवाय दक़ियानूसी बूढ़े के और पोलिश क़ैदियों के, हमारे वार्ड के क़रीब-क़रीब सभी लोग ड्रामा देखने जाते थे । सिर्फ़ नाटक के आख़िरी दिन, चार जनवरी को पोलिश लोगों ने ड्रामा देखने का फ़ैसला किया, वह भी लोगों के बहुत यक़ीन दिलाने पर कि ड्रामा बहुत अच्छा और दिलचस्प था और उसमें कोई जोखिम नहीं था। पोलिश क़ैदियों के तिरस्कारपूर्ण दृष्टिकोण से क़ैदी ज़रा भी न चिढ़े । चार जनवरी को जब वे ड्रामा देखने गए तो बड़ी शिष्टता से उनका स्वागत किया गया. यहाँ तक कि बैठने के लिए उन्हें सबसे अच्छी जगह दी गई । सर्केशियन लोग ख़ासतौर पर ईसे फ़ोमिच ड्रामे से बेहद ख़ुश था । वह हर बार तीन कोपेक चन्दा देता था । आख़िरी शो पर उसने तश्तरी में दस कोपेक डाले, उसके चेहरे पर परम सन्तोष का भाव था । एक्टरों ने तय किया था कि दर्शक जितना भी देना चाहेंगे, उनसे चन्दा लिया जाएगा, जिससे ड्रामे का ख़र्च निकलेगा और उनकी 'अपनी स्थिति मजबूत' होगी । पेत्रोव ने मुझे यक़ीन दिलाया था कि ड्रामे में चाहे जितनी भीड़ हो, मुझे सबसे अच्छी जगह मिल जाएगी, क्योंकि मैं और क़ैदियों से अधिक सम्पन्न हूँ और शायद चन्दा भी ज्यादा दूँगा और एक्टिंग के बारे में ज्यादा जानता हूँ । सचमुच ऐसा ही हुआ लेकिन सबसे पहले मैं थियेटर के इन्तजामों के बारे में बताऊँगा ।

जिस फ़ौजी वार्ड में स्टेज बनाई गई थी, वह पन्द्रह क़दम लम्बा था । आँगन से वार्ड तक पहुँचने में थोड़ी-सी सीढ़ियाँ पार करनी पड़ती थीं । जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, यह लम्बा वार्ड, और वार्डों से अलग क़िस्म का था । चबूतरे दीवारों के साथ-साथ बने थे, बीच की जगह ख़ाली थी । सीढ़ियों के नजदीक के आधे कमरे में दर्शकों को बैठाया गया था और बाक़ी की आधी जगह में जहाँ से दूसरे वार्ड में लोग आ-जा सकते थे, स्टेज बनाई गई थी । मैं सबसे ज़्यादा जिस चीज़ से प्रभावित हुआ था, वह था स्टेज का पर्दा, जिसकी चौड़ाई दस फ़ुट थी । जेल में पर्दा विलासिता की सामग्री समझा जाता था और सचमुच

वह एक आश्चर्य की चीज़ थी। इससे भी ज़्यादा आश्चर्यजनक चीज़ यह थी कि पर्दे पर तेल के रंगों से वृक्षों, कुंजों, झीलों और सितारों के डिज़ाइन बनाए गए थे। क़ैदियों से नई और पुरानी चद्दरें टाँगों में बाँधने वाली पट्टियाँ और कमीज़ें जमा करके सी ली गई थीं—जहाँ कपड़ा कम हो गया था, वहाँ काग़ज़ लगा दिया गया था। अनेक दफ़्तरों और महक़मों से काग़ज़ का एक-एक पन्ना जमा किया गया था। हमारे पेन्टरों ने मिलकर पर्दे पर चित्र बनाए थे। इनमें 'अ' प्रमुख था, जिसे जेल का 'ब्रूलोव' कहा जाता था। इस पर्दे का सब पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। मनहूस से मनहूस और नकचिढ़े क़ैदी भी इस परिष्कृत कलाकृति से ख़ुश हो गए। जब ड्रामा खेला गया तो वे बाक़ी जोशीले और बेचैन लोगों की तरह, बचकाने ढंग से ड्रामे की तारीफ़ करने लगे। सब बेहद ख़ुश थे और उन्हें ड्रामे पर गर्व था।

स्टेज पर चर्बी की मोमबत्तियों के टुकड़े काटकर रोशनी की गई थी। पर्दे के आगे दो बैंचें बिछी थीं, जिन्हें बावर्चीखाने से लाया गया था और सार्जेन्टों के कमरे से तीन-चार कुर्सियाँ भी लाकर रखी गई थीं। कुर्सियाँ अफ़सरों के लिए थीं और बेंचें सार्जेन्टों, इंजीनियर, क्लर्कों, फ़ोरमैनों और अन्य सरकारी लोगों के लिए थीं, जो अफ़सर नहीं थे। हर शो में जेल से बाहर के लोग भी आते थे। किसी-किसी शाम को ज़्यादा लोग इकट्ठे हो जाते थे, लेकिन आख़िरी शो के दिन तो बैंच पर एक भी जगह ख़ाली नहीं थी। कमरे के पीछे क़ैदी ख़ुद खड़े थे, कमरे में दम घोटने वाली गर्मी थी, फिर भी वे पोस्तीनें या कोट पहने थे और मेहमानों के प्रति आदर दिखाने के लिए हाथों में टोपियाँ लिए खड़े थे। सचमुच क़ैदियों के लिए बहुत कम जगह रखी गई थी। लोग एक-दूसरे पर चढ़कर बैठे थे, ख़ासतौर पर पिछली लाइन में तो बहुत भीड़ थी। सारे चबूतरे और पर्दों के आस-पास की जगहें ठसाठस भरी थीं। कुछ उत्साही दर्शक तो स्टेज के पीछे जाकर दूसरे वार्ड में से नाटक देख रहे थे। पहले वार्ड में इतनी ज़्यादा भीड़ थी, और लोग इस तरह

कुचले जा रहे थे जैसा कि हम्माम में हुआ था। बरामदे का दरवाजा भी खुला था—बरामदे में भी जहाँ शून्य से बीस डिग्री नीचे का शीत था लोगों की भीड़ खड़ी थी। पेत्रोव को और मुझे फ़ौरन आगे, बेंचों के पास जगह मिल गई, जहाँ से हम अच्छी तरह ड्रामा देख सकते थे। क़ैदी कुछ हद तक समझते थे कि मैं कला का पारखी हूँ—जेल आने से पहले मैं अक्सर थियेटर जाया करता था और मैंने ज़िन्दगी में इस ड्रामे से अलग क़िस्म के ड्रामे देखे हैं। उन्होंने इस बीच बाक्लूशिन को लगातार मुझसे मशवरा करते और इज्ज़त से पेश आते देखा था, इसलिए इस मौक़े पर मुझे आगे की सीट देकर मेरी इज्ज़त की गई थी। क़ैदी बेहद ओछे और अहंकारी थे लेकिन सिर्फ़ ऊपर से ही। यह देखकर कि मुझे उनका काम नहीं करना आता, वे मेरा मजाक उड़ा सकते थे। अल्मेज़ोव हम 'कुलीन' लोगों को नफ़रत की निगाह से देख सकता था, और उसे अपने ऊपर इसलिए गर्व हो सकता था, क्योंकि उसे चूना जलाना आता था। लेकिन उनके विरोध और मज़ाक के साथ एक और भावना भी मिली हुई थी। हम लोग कभी कुलीन रह चुके थे; हम उसी वर्ग के थे जिस वर्ग में उनके भूतपूर्व मालिक थे, जिनके लिए उनके मन में कभी सुखद स्मृतियाँ नहीं हो सकती थीं। लेकिन अब ड्रामे में वे मेरे बैठने के लिए जगह खाली कर रहे थे। वे मानते थे कि ड्रामे के मामले में मैं उनसे ज्यादा जानता और समझता हूँ। मैंने उनसे ज्यादा ड्रामे देखे हैं। यहाँ तक कि वे लोग भी, जो मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे (मैं भी इस बात को जानता था) इस वक्त उत्सुक थे कि मैं उनके ड्रामे को पसन्द करूँ। बिना दास्यभाव दिखाए उन्होंने मुझे बैठने के लिए सबसे अच्छी जगह दी। अब उन दिनों की स्मृतियों को मन में ताजा करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ। मुझे अच्छी तरह याद है कि अपनी कला की क़ीमत आँकते वक्त क़ैदियों में दास्यभाव नहीं बल्कि एक प्रकार के स्वाभिमान का भाव था। हमारे देशवासियों का सबसे बड़ा और अद्भुत गुण है न्यायप्रियता और न्याय पाने के लिए उनकी

तत्परता । साधारण लोग हर मौक़े पर और हर क़ीमत पर, इस बात की चिन्ता किए बग़ैर कि वे इस क़ाबिल भी हैं या नहीं, प्रमुखता नहीं प्राप्त करना चाहते । अगर हम उस छिलके को उतार दें जो बाहर से आरोपित किया गया है और भीतर की गिरी को ध्यान से, नज़दीक से और बिना किसी पूर्वाग्रह के देखें तो हम में से कुछ को हमारी जनता में ऐसी चीजें नज़र आएँगी जिनकी हमें कभी उम्मीद नहीं थी । हमारे विद्वानों के पास कोई ऐसी ख़ास चीज़ नहीं, जो वे जनता को सिखा सकें, बल्कि मेरा ख़्याल है कि विद्वानों को जनता से कुछ सीखना चाहिए ।

ड्रामे में जाने से पहले पेत्रोव ने सिधाई में आकर मुझसे कहा कि मुझे इसलिए आगे बैठना चाहिए, क्योंकि मैं ज़्यादा चन्दा दे सकता हूँ । ड्रामा देखने की कोई निश्चित टिकट नहीं थी । सब लोग अपनी इच्छा और सामर्थ्य के अनुसार चन्दा दे रहे थे । जब चन्दे के लिए तश्तरी सामने आई तो सब लोगों ने उसमें कुछ न कुछ डाला, चाहे आधा ही कोपेक डाला हो । लेकिन अगर यह सोचकर मुझे सबसे आगे जगह दी गई थी कि मैं ज़्यादा चन्दा दूँगा तो इस बात में भी उन लोगों का कितना स्वाभिमान झलकता था । "तुम मुझसे ज़्यादा पैसे वाले हो, इस लिए तुम आगे खड़े हो सकते हो, हालांकि हम सब बराबर हैं । फिर भी तुम ज़्यादा चन्दा दोगे; इसलिए तुम्हारी तरह के दर्शक को देखकर एक्टरों को ज़्यादा खुशी होती है । तुम्हें पहले जगह मिलनी चाहिए । क्योंकि हम सब लोग यहाँ पैसे के ख़्याल से इकट्ठे नहीं हुए हैं, बल्कि आदर का प्रदर्शन करने के लिए आए हैं, इसलिए हमें ख़ुद ब ख़ुद ही अपने को छांट लेना चाहिए।" इस भावना में कितना सच्चा और शानदार स्वाभिमान छिपा है ! यह पैसे का आदर नहीं बल्कि स्वयं का आदर है। वैसे जेल में पैसे की ज़्यादा इज्ज़त नहीं थी, ख़ासतौर पर अगर क़ैदियों को बिना किसी भेदभाव के एक समूह और टोली के रूप में देखा जाए । मुझे आज तक याद नहीं कि किसी भी क़ैदी ने संजीदगी से

पैसे की ख़ातिर अपने को नीचे गिराया हो। वहाँ ऐसे लोग ज़रूर थे जो हमेशा दूसरों से पैसा माँगते रहते थे और मुझसे भी माँगते थे, लेकिन यह उनकी शरारत और बदमाशी थी, उसमें मज़ाक और सिधाई का पुट भी था। पता नहीं मेरी बात स्पष्ट रूप से पाठकों की समझ में आती भी है या नहीं। लेकिन मैं ड्रामे की बात भूल रहा हूँ। फिर ड्रामे की तरफ़ चलें।

जब तक पर्दा नहीं उठा था, सारी बैरक में एक विचित्र वातावरण और सजीवता छाई थी। लोग एक-दूसरे से सटकर बैठे थे, चारों तरफ़ से आने-जाने का रास्ता बंद था, लोग धैर्यपूर्ण और प्रसन्न मुद्रा से ड्रामे के शुरू होने का इन्तज़ार कर रहे थे। बहुत से क़ैदी बावर्चीख़ाने से लकड़ी के कुन्दे साथ लाए थे। कुन्दे को दीवार के सहारे टिकाकर एक आदमी उस पर चढ़ जाता था और आगे खड़े हुए आदमी का सहारा लेकर लगातार दो घंटे तक इसी तरह खड़ा रहता था। उसे अपने से और अपने खड़े होने के ढंग से पूरा संतोष था। बाक़ी क़ैदी चबूतरे की निचली सीढ़ी पर पैर रखकर खड़े थे और आगे खड़े लोगों के कंधों पर झुके हुए थे। दीवार के साथ सबसे पिछली कतारों में यही स्थिति थी। पर्दे के आसपास भी लोग, साज़िन्दों के ऊपर भीड़ में चबूतरों पर खड़े थे। यह खड़े होने के लिए अच्छी जगह थी। पाँच जने तो अंगीठी पर चढ़ गए थे और वहाँ से लेटकर ड्रामा देख रहे थे। ज़रूर उस वक़्त उन्हें परम संतोष का अनुभव हो रहा होगा। सामने की दीवार की खिड़कियों में भी लोगों की भीड़ थी, जो या तो देर से आए थे या अच्छी जगह तलाश करने में असमर्थ रहे थे। सब ख़ामोशी और क़ायदे से पेश आ रहे थे। हर क़ैदी शहर के सम्मानित लोगों और अफ़सरों पर अच्छा असर डालना चाहता था। सबके चेहरों पर एक सरल प्रतीक्षा थी। हर चेहरा गर्मी और भीड़ की वजह से लाल हो गया था। झुर्रियों से भरे चेहरे, सलाख़ों से दग़े माथे और गाल एक बाल-सुलभ विचित्र और पवित्र आनन्द से खिल उठे थे, जहाँ अक्सर इन चेहरों से नैराश्य और उत्साह-

हीनता झलका करती थी। सब क़ैदी नंगे सिर थे, सबके सिर दाहिनी तरफ़ से मुंड़े हुए थे।

अचानक स्टेज पर शोरशराबा सुनाई दिया। एक ही मिनट में पर्दा ऊपर उठने वाला था। फिर बैंड बजना शुरू हुआ। यहाँ ख़ास तौर से बैंड का जिक्र करना ज़रूरी है। चबूतरे के एक तरफ़ आठ साज़िन्दे बैठे थे। दो वॉयलिनें (जिनमें से एक जेल की थी और एक किसी से माँगी गई थी, लेकिन दोनों बजाने वाले क़ैदी थे) और तीन तारों वाले तीन साज़ थे, जो हाथ से तैयार किए गए थे। दो गितारें थीं और 'डबल बास' की जगह डफली थी। वॉयलिनें तो चीख़-चहाड़ा मचा रही थीं, गितारों की आवाज़ भी बड़ी मनहूस थी, लेकिन तीन तारों वाले साज़ गज़ब के थे। जिस तेजी से साज़िन्दे तारों को टुनटुना रहे थे, वह सचमुच तारीफ़ के क़ाबिल थीं। वे लोग डान्स की धुनें बजा रहे थे। सबसे मज़ेदार हिस्सा वह था जब साज़िन्दे उँगलियों की पोरों से साज़ों के संदूकों को बजाते थे। साज़ों को पकड़ने और बजाने का अन्दाज़ और लहजा अत्यन्त मौलिक और व्यक्तिगत था। यह क़ैदियों का ख़ास अपना अंदाज था। एक गितारिया भी बड़ी शानदार गितार बजा रहा था। यह वही क़ैदी था, जिसने अपने बाप का क़त्ल किया था। डफली तो बस गज़ब की थी। डफली बजाने वाला बार-बार उंगलियों में डफली नचा रहा था और ऊपर अपना अंगूठा घुमा रहा था। कभी तो हमें तेज एक रस झंकार और टाप सुनाई देती थी, फिर अचानक वह तेज़ स्पष्ट आवाज़ जैसे अनगिनत बेसुरी फुसफुसाहट में बिखर जाती थी। कहीं से दो हाथ से बजाने वाले बाजे भी प्रकट हो गए थे। मैं क़सम से कहता हूँ कि तब तक मैं समझ ही नहीं सका था कि इतने मामूली ग्रामीण साज़ों से भला क्या हो सकता है। लेकिन स्वरों का और सबसे ज्यादा भावनाओं का मेल, धुनों की अदायगी और स्वरूप सचमुच ग़ज़ब का था। मुझे पहली बार इस बात का एहसास हुआ कि रूसी नृत्य-गीतों में कितनी फक्कड़मस्ती, उत्साह और आह्लाद भरा हुआ है।

आख़िर पर्दा उठा। सब लोगों में हलचल मच गई। सब चंचल हो उठे। पीछे वाले लोग पंजों के बल खड़े हो गए, कोई आदमी लकड़ी के कुन्दे से नीचे गिर पड़ा। सब मुँह खोलकर स्टेज की तरफ़ ताकने लगे। चारों तरफ़ एकदम खामोशी छा गई…इसके बाद प्रोग्राम शुरू हुआ।

मेरे पास ही अली, उसके भाई और दूसरे सर्केशियन खड़े थे। वे ड्रामे को देखकर बेहद ख़ुश हुए और बाद में भी हर शाम को वहाँ जाने लगे। मैंने कई बार देखा है कि मुसलमानों, तातारों और दूसरे लोगों को हर क़िस्म के खेल-तमाशों का बहुत शौक था। उन लोगों के साथ ही ईसे फ़ोमिच भी दुबककर खड़ा था। पर्दा उठने के बाद से वह कान लगाए, आँखें फाड़-फाड़ कर ड्रामे को देख रहा था। वह सरलतापूर्वक चमत्कार-पूर्ण और आनन्ददायक घटनाओं की प्रतीक्षा कर रहा था। अली का आकर्षक चेहरा एक ऐसे पवित्र बालसुलभ आनन्द से खिल उठा था कि उसकी तरफ़ देखकर मुझे बेहद ख़ुशी महसूस हो रही थी। मुझे याद है कि जब भी एक्टरों के मुँह से कोई दिलचस्प या मज़ाक की बात निकलती थी, जिससे लोग ठहाका मार कर हँस पड़ते थे तो मैं गर्दन घुमाकर अली के चेहरे की तरफ़ देखे बग़ैर नहीं रह सकता था। उसने मुझे नहीं देखा था—मेरी तरफ़ ध्यान देने की उसे फ़ुर्सत नहीं थी। मेरे बायें हाथ पर मुझसे सटकर एक बूढ़ा क़ैदी खड़ा था, जिसके माथे पर हरदम त्यौरियां पड़ी रहती थीं और जो हमेशा असंतोष से बड़बड़ाता रहता था। उसने भी अली को देखा था। मैंने कई बार बूढ़े को मुस्करा कर अली की तरफ़ देखते हुए देखा था। अली कितना आकर्षक था! न जाने क्यों मैं उसे 'अली सेम्योनिच' कहता था।

प्रोग्राम 'फ़िलात्का और मिरोश्का' से शुरू हुआ। बाक्लूशिन ने फ़िलात्का का पार्ट बहुत शानदार और सही किया था। ज़ाहिर था कि उसने बड़ी मेहनत से हर वाक्य और अदा की तैयारी की थी। वह हर शब्द और इशारे में सार्थकता डालना जानता था जो उसके रोल

के सर्वथा अनुकूल था। उसने बड़ी ईमानदारी और मेहनत से अपने पार्ट का अध्ययन किया था। इसके अलावा बाक्लूशिन का अनुपम आह्लाद, सादगी और स्वाभाविकता भी दर्शनीय थी। अगर आपने बाक्लूशिन को देखा होता तो आप भी कहते कि वह जन्मजात एक्टर था और उसमें सच्ची प्रतिभा थी। मैंने कई बार मॉस्को और पीटर्जबर्ग के थिएटरों में फ़िलात्का का पार्ट देखा था और मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि बाक्लूशिन का अभिनय शहर के एक्टरों से कहीं ज़्यादा बढ़िया था। शहर के एक्टर सचमुच में किसान नहीं थे, वे रूसी किसान की नक़ल उतारने के लिए बहुत बेचैन रहते थे। बाक्लूशिन को प्रतियोगिता से भी उत्तेजना मिली। सबको मालूम था कि दूसरे ड्रामे में केद्रिल का पार्ट पोत्सेयकिन कर रहा है, जिसे किसी अज्ञात कारण से बाक्लूशिन से ज़्यादा प्रतिभाशाली समझा जाता था। इस बात से बाक्लूशिन बच्चों की तरह चिढ़ता था। इन दिनों में न जाने कितनी बार मेरे पास आकर वह अपने मन का ग़ुबार निकाल गया था! ड्रामे से दो घण्टे पहले उत्तेजना से उसका बुरा हाल था। जब भीड़ में से हँसने की और "शाबाश बाक्लूशिन! बहुत बढ़िया।" की आवाज़ें आतीं तो उसका चेहरा ख़ुशी से चमकने लगता। उसकी आँखों में सच्ची प्रेरणा का प्रकाश था। वह दृश्य, जब उसने मिरोश्का को चूमा था और फ़िलात्का ने पहले से चिल्लाकर कहा था, 'जाओ अपनी नाक साफ़ कर लो' और वह ख़ुद अपनी नाक साफ़ करने लगा, बहुत ही मज़ेदार था। हँसते-हँसते लोगों का बुरा हाल हो गया। लेकिन मुझे ड्रामे से भी ज़्यादा दिलचस्प दर्शक लगे। वे ड्रामे में पूरी तरह तल्लीन हो गए थे। वे बिना किसी संकोच के अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे। रह-रह कर तारीफ़ की आवाज़ें सुनाई देती थीं। कोई अपने साथ बैठे आदमी को चुटकी काटता था और तेज़ी से फुसफुसाकर ड्रामे के विषय में अपनी राय देता था—बग़ैर यह देखे हुए कि उसके साथ कौन बैठा है। कोई क़ैदी, दिलचस्प प्रसंग आने पर सारे दर्शकों पर एक सरसरी निगाह डालता

था, और इस तरह से हाथ का इशारा करता था जैसे सब लोगों से हँसने का आग्रह कर रहा हो—फिर उसकी ललचाई नज़रें स्टेज पर लग जाती थीं। कोई अपनी उँगलियों या ज़बान से आवाज़ करता था, एक मिनट भी निश्चल नहीं बैठ सकता था और जगह की कमी के कारण कभी एक टाँग पर तो कभी दूसरी ट ग पर खड़ा हो जाता था। ड्रामा खत्म होने तक लोगों की ख़ुशी अपनी सीमा तक पहुँच गई। मैं कोई अतिशयोक्ति नहीं कर रहा। ज़रा जेल के वातावरण, बेड़ियों और क़ैद की कल्पना कीजिए, आने वाले नीरस वर्षों की। उनके दिन पतझड़ के दिनों में टपटप करती पानी की बूंदों की तरह नीरस थे और अचानक इन अभिशप्त और समाज से बहिष्कृत इन्सानों को विश्राम करने का, ख़ुशी मनाने का, अपने जीवन के शान्तिपूर्ण सपने को भूलने का और थिएटर के निर्माण का, जिसे देखकर सारे शहर को ताज्जुब और गर्व होता है, मौका मिलता है। इस मौक़े पर वे सारे शहर को दिखा सकते हैं "देखो हम क़ैदी कैसे आदमी हैं!" निश्चय ही उन लोगों को हर चीज में दिलचस्पी थी, मिसाल के लिए ड्रामे की पोशाकों में। वे यह देखने के लिए उत्सुक थे कि वान्का ओत्पेती, या नेत्सवेत्येव या बाक्लूशिन ड्रामे की पोशाकों में कैसे दिखाई देते हैं। क़ैदी की पोशाक में तो वे उन्हें कई बरसों से देखते आए थे। "ज़रा देखो तो सही, वह आदमी पहले की तरह अब भी क़ैदी है, उसके बदन पर बेड़ियां झनझना रही हैं, लेकिन उसने लम्बा कोट पहना है, सर पर गोल हैट लगाया है, लबादा ओढ़ा है—वह आम आदमियों की तरह दिखाई देता है; उसने मूँछें और बनावटी बाल भी लगाए हैं! देखो उसने जेब से एक लाल रूमाल निकाला है! रूमाल से वह अपने को हवा कर रहा है। बिल्कुल कुलीन आदमी की तरह—ऐसा लगता है जैसे वह सचमुच में कुलीन हो!" सारे दर्शक हर्षोन्माद में थे। एक "देहाती भद्रपुरुष" एडजुटेन्ट की वर्दी में स्टेज पर आया। वर्दी तो बहुत पुरानी थी, यह सच है, लेकिन कोट पर फ़ौजी चिह्न थे, सिर पर फ़ीते वाला टोप था। उसके

स्टेज पर आते ही असाधारण सनसनी फैल गई। इस पार्ट को दो आदमी लेना चाहते थे, और आपको यक़ीन नहीं होगा कि दोनों छोटे बच्चों की तरह इस बात पर झगड़े थे कि पार्ट किसको मिलना चाहिए। दोनों एडजुटेन्ट की वर्दी पहनकर और कोट में गांठ वाला फीता लगा कर दर्शकों के सामने आना चाहते थे। दूसरे एक्टरों ने इन दोनों में बीच-बचाव करके उन्हें अलग किया और बहुमत से वह पार्ट नेत्सवेत्येव को दे दिया, इसलिए नहीं कि उसकी शक्ल ज्यादा ख़ूबसूरत थी और वह देखने में भद्रपुरुष मालूम होता था, बल्कि इसलिए कि नेत्सवेत्येव ने उन्हें यक़ीन दिलाया था कि वह हाथ में बेंत लेकर स्टेज पर जाएगा और बेंत घुमाकर ज़मीन पर एक भद्रपुरुष की तरह लकीरें खींचेगा और शान से पटकेगा। वान्का ओत्पेती से यह सब नहीं हो सकता था, क्योंकि उसने अपनी ज़िन्दगी में कभी सचमुच का भद्रपुरुष नहीं देखा था। सचमुच जब नेत्सवेत्येव हीरोइन के साथ स्टेज पर आया तो वह लगातार एक पतले बेंत से जमीन पर लकीरें खींच रहा था। न जाने कहां से वह इस बेंत को उठा लाया था। निश्चय ही वह इस बेंत को खानदानी तहज़ीब, फ़ैशन और छैलापन की निशानी समझता था। शायद बचपन में, जब वह किसी के घर नौकर का काम करता था और नंगे पैर घूमा करता था, तो उसने बढ़िया पोशाक वाले किसी भद्रपुरुष को हाथ में बेंत लिए देखा होगा और वह बेंत के करतबों से प्रभावित हुआ होगा और वह प्रभाव उसकी स्मृति में अमिट हो गया होगा। अब तीस बरस की उम्र में भी उसे बचपन की ये सारी बातें याद थीं, और जेल के सारे क़ैदी उसके करतबों को देखकर प्रसन्न और मुग्ध हो रहे थे। नेत्सवेत्येव एक्टिंग में इतना व्यस्त था कि उसने किसी की तरफ़ नहीं देखा, यहाँ तक कि उसने नज़रें ऊपर उठाए बग़ैर ही सारी बात-चीत की और वह बेंत की नोक को देखता रहा था। "देहाती भद्रमहिला भी अपने ढंग की अनोखी पात्र थी। उसने एक मैली और पुरानी मलमल की पोशाक पहन रखी थी, जो देखने में चिथड़े जैसी लगती थी।

उसकी गर्दन और बाँहें नंगी थीं। चेहरे को बुरी तरह पाउडर और सुर्खी से पोता गया था, उसकी ठुड्डी के नीचे रात को पहनने वाली एक टोपी लटक रही थी। एक हाथ में छाता और दूसरे में रंग किया हुआ पंखा हिलाती हुई वह स्टेज पर आई। महिला के आते ही दर्शकों में हँसी का ठहाका लगा—वह महिला खुद कई बार हँसी थी। इवानोव नाम के एक क़ैदी ने यह पार्ट अदा किया था। नौजवान लड़की की पोशाक में सिरोत्कीन बड़ा खूबसूरत दिखाई दे रहा था। कविता की पंक्तियाँ भी बहुत ठीक चल रही थीं। दरअसल ड्रामे से सब लोग पूरी तरह से संतुष्ट थे। कोई टीका-टिप्पणी नहीं हुई, न हो ही सकती थी। आर्केस्ट्रा ने अगले नाटक के शुरू में 'मेरा पोर्च, मेरा नया पोर्च' गीत बजाया और पर्दा फिर उठा। इस नाटक का नाम केद्रोल था, जो डांन जुआन की शैली में लिखा गया था। नाटक के अन्त में मालिक और नौकर को शैतान दोज़ख में ले जाता है। एक्टरों ने नाटक का जितना भी हिस्सा उपलब्ध था, पेश कर दिया था। लेकिन साफ़ ज़ाहिर था कि यह नाटक का एक टुकड़ा था, जिसके आदि और अन्त के हिस्से ग़ायब थे। इस टुकड़े में कोई अर्थ या संगति नहीं थी। घटना-स्थल रूस की एक सराय है। सराय का मालिक एक आदमी को कमरे में लाता है, जिसने एक ओवरकोट और पिचका हुआ हैट पहन रखा है। उसके पीछे उसका नौकर केद्रील एक सन्दूक और नीले काग़ज़ में लिपटा हुआ एक मुर्गा लाता है। केद्रील पोस्तीन का कोट और अर्दली की टोपी पहने है। वही मशहूर पेटू है। केद्रील का पार्ट बाक्लूशिन के प्रतिद्वन्द्वी पोत्सेयकिन ने किया था। मालिक इवानोव बना था, जिसने पहले नाटक में औरत का पार्ट किया था। नेत्सवेत्येव, जो सराय का मालिक बना था, यह चेतावनी देकर कि इस कमरे में प्रेत बसते हैं, चला जाता है। आगन्तुक सज्जन, जो उदास और परेशान नज़र आता है, बड़बड़ाता है कि उसे तो पहले से ही यह बात मालूम थी। वह केद्रील को सामान खोलने और खाने की तैयारी करने का हुक्म देता है। केद्रील डरपोक

और पेट्ट है। प्रेतों का नाम सुनते ही उसका चेहरा पीला पड़ जाता है और वह पत्ते की तरह काँपने लगता है। वह वहाँ से भागना चाहता है लेकिन उसे मालिक का डर है। इसके अलावा उसे भूख लगी है। वह लालची, बेवक़ूफ, डरपोक और अपने ढंग से चालाक भी है। वह हर क़दम पर अपने मालिक को धोखा देता है, फिर भी उससे डरता है। वह एक विलक्षण पात्र है, जिसकी लैपोरेलो से दूर की और अस्पष्ट समानता है। केद्रील का पार्ट बड़े शानदार ढंग से अदा किया गया था। पोतसेयकिन में निश्चय ही प्रतिभा थी और मेरी राय में वह बाक्लूशिन से बेहतर एक्टर था। कहना न होगा कि जब अगले दिन मैं बाक्लूशिन से मिला तो मैंने खुलकर अपनी यह राय नहीं बताई, नहीं तो उसके दिल को बहुत चोट पहुँचती। जिस क़ैदी ने मालिक का पार्ट किया था, उसकी एक्टिंग भी अच्छी थी। उसने बहुत भयंकर बक़वास की, लेकिन उसके बोलने का ढंग अच्छा और जोशीला था और उसकी मुद्राएँ भी सही थीं। जब केद्रील संदूक खोलने लगा तो उसका मालिक किसी विचार में मग्न होकर स्टेज पर चहलक़दमी करने लगा। उसने ऊँचे स्वर में बताया कि आज शाम उसकी यात्राओं का अंत हो गया है। केद्रील ने उत्सुकतापूर्वक मालिक की बातें सुनीं, झुक-झुक कर सलाम किए, अलग से अपनी राय दी और हर शब्द पर श्रोताओं को ख़ूब हँसाया। उसे अपने मालिक पर बिल्कुल भी तरस नहीं आता था, लेकिन उसने शैतान का ज़िक्र सुना था। केद्रील जानना चाहता था कि शैतान क्या होता है, इसलिए वह बोलना शुरू करता है और अपने मालिक से सवाल पूछता है। उसका मालिक उसे बताता है कि कभी मुसीबत पड़ने पर उसने शैतान से मदद माँगी थी। शैतान ने उसकी मदद की थी और उसे मुसीबत से निकाला था, लेकिन शैतान के साथ हुए समझौते के मुताबिक़ शायद आज शाम को ही शैतान आकर उसकी आत्मा को दोज़ख़ में ले जाएगा। घबराहट से केद्रील के हाथ-पैर फूल जाते हैं। लेकिन उसका मालिक उसे ढाढस

बंधाता है और खाना तैयार करने का हुक्म देता है। केद्रील का चेहरा खुशी से खिल उठता है, वह कपड़े में से मुर्ग़ा निकालता है, शराब ले आता है और बीच-बीच में मुर्ग़े का गोश्त चखता है। श्रोता हँस पड़ते हैं। फिर दरवाजा चरमराता है, हवा से सिटकनियाँ हिलने लगती हैं। केद्रील डर से काँपने लगता है और अनचिते ही जल्दी से अपने मुँह में मुर्ग़े के गोश्त का एक बहुत बड़ा टुकड़ा ठूँस लेता है, जो इतना बड़ा है कि उसके मुँह में पूरा नहीं आता। लोग फिर हँस पड़ते हैं। मालिक चहलक़दमी करते हुए पूछता है, "खाना तैयार है ?" केद्रील जवाब देता है "तैयार कर रहा हूँ......अभी लाया जनाब !" केद्रील मेज़ के आगे बैठकर चुपचाप अपने मालिक का खाना चट्ट कर जाता है। श्रोताओं को नौकर की चुस्ती और चालाकी देखकर और यह देखकर कि मालिक को उल्लू बनाया जा रहा है, बहुत खुशी होती है। यह मानना पड़ेगा कि सचमुच पोत्सेयकिन ने कमाल का पार्ट किया था और लोगों ने तारीफ़ में ख़ूब तालियाँ बजाईं। "खाना तैयार हो रहा है, अभी लाया जनाब !" ये शब्द बड़े शानदार ढंग से कहे गए थे। मेज़ पर बैठकर उसने पेटूपन से खाना शुरू किया। मालिक के हर क़दम की आवाज़ सुनकर वह चौंक उठता था। उसे डर था कि कहीं मालिक उसकी करतूत न देख ले। ज्योंही मालिक ने पीछे की तरफ़ गर्दन घुमाई, तो केद्रील मेज़ के नीचे छिप गया और मुर्ग़े को भी अपने साथ घसीटकर ले गया। अब जाकर कहीं उसकी भूख शान्त हुई, और उसे अपने मालिक का ख्याल आया। मालिक ने चिल्लाकर पूछा, "केद्रील, तुम्हें और कितनी देर लगेगी ?" "खाना तैयार है" केद्रील ने झट से जवाब दिया। सहसा उसे एहसास हुआ कि उसके मालिक के लिए तो कुछ भी नहीं बचा। प्लेट में सिर्फ़ मुर्ग़ी की टांग का निचला हिस्सा बच गया था। परेशान और उदास मालिक बिना किसी चीज़ को देखे खाने की मेज़ के आगे बैठ जाता है और केद्रील हाथ में एक नैप्किन लेकर मालिक की कुर्सी के पीछे खड़ा हो जाता है। केद्रील के

हर इशारे और मुँह बिचकाने का, लोगों ने हँसी के क़हक़हों से स्वागत किया। वह अपने बुद्धू मालिक की तरफ़ देखकर आँख मार रहा था। लेकिन ज्योंही मालिक खाना शुरू करता है, शैतान आ जाते हैं। इस जगह आकर नाटक दुरूह हो गया और शैतानों का स्टेज पर दाख़िल होना तो सचमुच बहुत ही हास्यास्पद था, विंग में से एक दरवाज़ा खुला और एक सफ़ेद आकृति स्टेज पर आई जिसके सिर पर लालटेन थी, उसमें मोमबत्ती जल रही थी। एक दूसरे भूत के हाथ में दरांती थी और सिर पर लालटेन थी। लेकिन लालटेनों, दरांती और सफ़ेद कपड़ों का क्या मतलब था, यह किसी की समझ में न आ सका, हालाँकि किसी ने इस समस्या पर ग़ौर नहीं किया। लोगों का ख़्याल था कि सब कुछ सही है। भद्र व्यक्ति ने साहसपूर्वक शैतानों की तरफ़ मुड़कर कहा कि वह उनके साथ चलने के लिए तैयार है। लेकिन केद्रील एक ख़रगोश की तरह सहम जाता है और मेज़ के नीचे छिप जाता है। लेकिन अपने तमाम डर के बावजूद वह शराब की बोतल अपने साथ ले जाना नहीं भूलता। क्षणभर के लिए शैतान ग़ायब हो जाते हैं। केद्रील मेज़ के नीचे से निकल आता है। लेकिन ज्योंही मालिक मुर्ग़ी की टाँग खाना शुरू करता है, तीन शैतान फिर कमरे में आ जाते हैं और मालिक को पीछे से पकड़कर दोज़ख में ले जाते हैं। "केद्रील, मुझे बचाओ", मालिक चिल्लाता है, लेकिन केद्रील को फ़ुर्सत नहीं। इस बार वह बोतल, तश्तरी, यहाँ तक कि रोटी भी अपने साथ लेकर मेज़ के नीचे छिप जाता है। अब वह अकेला है, न शैतान है, न मालिक है। केद्रील क्षणभर के लिए बाहर निकलता है और चारों तरफ़ देखता है। उसका चेहरा मुस्कराहट से खिल उठता है। वह चालाकी से आँख मारता है और अपने मालिक की कुर्सी पर बैठ जाता है और दर्शकों की तरफ़ आँख मारकर फुसफुसा कर कहता है "बहुत ख़ूब! अब मेरा कोई मालिक नहीं!" सब इस बात पर ठहाका मारकर हँस पड़ते हैं। केद्रील फिर दर्शकों की तरफ़ गोपनीय भाव से देखकर फुसफुसाता है और पहले से भी ज़्यादा हँसोड़

ढंग से आँखें मारकर कहता है, "मेरे मालिक को शैतान ले गए हैं !"

"बहुत खूब ! अब मेरा कोई मालिक नहीं !" सब इस बात पर ठहाका मारकर हँस पड़ते हैं। केद्रील फिर दर्शकों की तरफ़ गोपनीय भाव से देखकर फुसफुसाता है और पहले से भी ज्यादा हँसोड़ ढंग से आँखें मारकर कहता है, "मेरे मालिक को शैतान ले गए हैं !"

दर्शकों के हर्षोन्माद का कोई ठिकाना नहीं था ! एक तो केद्रील के मालिक को शैतान ले गए थे, दूसरे यह बात ऐसी चालाकी से, हास्य-पूर्ण, विजेताभाव से मुँह बिचका कर कही गई थी कि कोई भी ताली पीटे बग़ैर न रह सका। लेकिन केद्रील की मौज ज्यादा देर तक नहीं रही। उसने बोतल से शराब ढालकर अभी गिलास ओंठों तक उठाया ही था कि अचानक शैतान वापिस आ गए और पीछे से पंजों के बल उसे बग़ल के नीचे से पकड़ कर ले गए। केद्रील ज़ोर से चिल्लाता है। डर के मारे वह पीछे भी मुड़कर नहीं देख सकता और अपना बचाव भी नहीं कर सकता। उसके एक हाथ में बोतल है और दूसरे हाथ में शराब का गिलास है। वह दोनों में से एक भी चीज़ को नहीं छोड़ सकता। क्षणभर के लिए वह बैठ जाता है, डर के मारे उसका मुँह खुला रह जाता है और वह दर्शकों की तरफ़ ऐसे भीरु और आतंकित भाव से देखता है कि बस जान निकल जाती है। लगता है जैसे वह तस्वीर खिचवाने के लिए बैठा हो। आखिरकार शैतान उसे उठाकर ले जाते हैं। उसके हाथ में अभी तक शराब की बोतल है। वह हाथ-पाँव पटकता है और चिल्लाता है। स्टेज के पीछे से उसकी चीखों की आवाज़ सुनाई देती है, लेकिन पर्दा गिर जाता है और सब लोग हँस पड़ते हैं, सब लोग खुश हैं······ऑर्केस्ट्रा कमेरिन्स्की की धुन बजाता है।

पहले साज़ धीमे बजते हैं, इतने धीमे कि उनकी आवाज़ भी नहीं सुनाई देती, लेकिन गीत ऊँचा और तेज़ होता जाता है। बीच-बीच में साज़ के संदूक पर मसखरेपन से थाप सुनाई पड़ती है। कमेरिन्स्की को उसके समस्त वैभव के साथ पेश किया गया था, और सचमुच अगर जेल

में ग्लिन्का ने इस धुन को सुना होता तो कितना अच्छा रहता। सारा मूक-नाटक संगीत की धुन पर खेला गया। पहले दृश्य में एक ग्रामीण घर का भीतरी हिस्सा दिखाया गया है। स्टेज पर एक पनचक्की का मालिक और उसकी बीवी आते हैं। पनचक्की का मालिक एक कोने में बैठा घोड़े के साज़ की मरम्मत कर रहा है, दूसरे कोने में उसकी बीवी सन कात रही है। बीवी का पार्ट सिरोत्कीन ने किया था और पनचक्की के मालिक का नेत्सवेत्येव ने।

मैं यहाँ यह जिक्र भी कर दूँ कि हमारी सीनरी बहुत रद्दी थी। इस नाटक में और बाक़ी नाटकों में भी सीनरी की कल्पना करनी पड़ती थी। पृष्ठभूमि के नाम पर एक कम्बल या घोड़े को ढँकने वाली झूल टँगी थी। एक तरफ़ एक मनहूस-सा पर्दा था, बाईं तरफ़ तो पर्दा भी नहीं था, हमें चबूतरा तक साफ़ दिखाई दे रहा था, लेकिन दर्शक टीका-टिप्पणी करने की मूड में नहीं थे, नाटक की सारी ख़ामियों को वे अपनी कल्पना से पूरा करने के लिए तैयार थे। और सचमुच क़ैदी अत्यन्त कल्पनाशील होते हैं। "अगर तुम्हें बताया जाए कि यह एक बाग़ है तो तुम्हें उसे बाग़ ही समझना पड़ेगा, अगर कमरा है तो कमरा समझना पड़ेगा, घर है तो घर की कल्पना करनी पड़ेगी—इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता—परेशान होने की कोई जरूरत नहीं।"

सिरोत्कीन नौजवान औरत की पोशाक में बहुत आकर्षक दीख रहा था। दर्शकों में से कई ने दबी ज़बान से उसकी तारीफ़ की। पनचक्की वाला अपना काम ख़त्म करने के बाद अपना हैट और चाबुक उठाता है और इशारे से अपनी बीवी को बताता है कि वह घर से बाहर जा रहा है, लेकिन उसकी अनुपस्थिति में अगर उसकी बीवी ने किसी और मर्द को घर में आने दिया तो······वह अपनी चाबुक दिखाता है, बीवी सिर हिलाती है, शायद वह उस चाबुक से अच्छी तरह परिचित है : जब उस छिनाल का पति कहीं बाहर जाता है तो वह ख़ूब गुलछर्रे उड़ाती है। पति के पीठ मोड़ते ही बीवी मुक्का तानकर उसे मुँह चिढ़ाती है। दरवाजे पर

कोई दस्तक देता है, दरवाज़ा खुलता है और पड़ोस का एक और चक्की वाला भीतर दाखिल होता है। वह दाढ़ी वाला एक किसान है, जिसने लम्बा कोट पहन रखा है। वह औरत के लिए एक लाल रूमाल बतौर तोहफ़े के लाया है। औरत हँसती है, लेकिन ज्योंही पड़ोसी उसे अपने आलिंगन में लेना चाहता है, दरवाज़े पर एक और दस्तक होती है। अब वह आदमी कहाँ छिपे? औरत उसे जल्दी से मेज़ के नीचे छिपा देती है और फिर कातने बैठ जाती है। उसका एक और आशिक़ कमरे में आता है, वह फ़ौज का एक क्लर्क है, जिसने वर्दी पहन रखी है। अभी तक तो मूक नाटक बहुत शानदार चल रहा था, इशारे भी बिल्कुल सही थे। इन एक्टरों को देखकर ताज्जुब होता था, जो बिना खास तैयारी के ड्रामे में हिस्सा ले रहे थे। मन में बरबस यह सवाल उठता था कि रूस में कितनी जन-शक्ति और प्रतिभा अक्सर ग़रीबी और दासता में नष्ट हो जाती है। लेकिन जिस क़ैदी ने क्लर्क का पार्ट किया था, वह शायद कभी किसी प्राइवेट थियेटर कम्पनी में या किसी स्थानीय स्टेज पर काम कर चुका था। उसका ख्याल था कि हमारे किसी एक्टर को एक्टिंग की तमीज़ नहीं थी और वे स्टेज पर ठीक ढंग से नहीं चल-फिर रहे थे। वह स्टेज पर इस तरह चहलक़दमी कर रहा था, जैसे कि कहावत के अनुसार अतीत युग में क्लासिकल ड्रामों के हीरो करते थे। वह एक लम्बा डग भरकर बीच में रुक जाता था, और फिर अपना सिर और सारा शरीर पीछे की तरफ़ फेंककर उद्धत दृष्टि से अपने चारों तरफ़ देखता था और फिर अगला क़दम उठाता था। अगर ऐसी चाल क्लासिकल ड्रामों के लिए हास्यास्पद थी तो फ़ौज के क्लर्क में यह और भी ज्यादा हास्यास्पद हो गई थी। लेकिन हमारे श्रोताओं का ख़्याल था कि शायद वह चाल सही थी, इसलिए उन्होंने बिना किसी टीका-टिप्पणी के उस मरियल क्लर्क की चाल को स्वाभाविक समझ लिया। क्लर्क ने अभी मुश्किल से स्टेज का आधा हिस्सा तय किया होगा कि एक और दस्तक सुनाई दी। औरत फिर घबरा गई। वह क्लर्क को कहाँ छिपाए?

सामने ही एक सन्दूक पड़ा था, जिसका दरवाजा खुला था। क्लर्क कूद कर सन्दूक में चला जाता है और औरत दरवाजा बन्द कर देती है। अब की बार और ही क़िस्म का आशिक़ आया है, यह एक ब्राह्मण है, उसने पोशाक भी वैसी ही पहनी है। दर्शकों में हँसी के ठहाके गूँज उठते हैं। ब्राह्मण का पार्ट कोश्कीन ने बड़े ही शानदार ढङ्ग से अदा किया था। वह सचमुच देखने में ब्राह्मण लगता था। मूक नाटक में वह अपनी भावनाओं की तीव्रता को प्रकट करता है। वह आकाश की तरफ़ हाथ उठाता है और अपना दिल थाम लेता है—लेकिन अभी उसकी भावुकता शुरू ही हुई है कि दरवाज़े पर ज़ोर की दस्तक होती है। आवाज़ से श्रोता समझ जाते हैं कि गृहस्वामी लौट आया है। गृहिणी भयभीत हो जाती है, ब्राह्मण पागलों की तरह इधर-उधर भागता है और औरत से मिन्नत करता है कि वह उसे कहीं छिपा ले। औरत उसे जल्दी से अलमारी के पीछे छिपा देती है और दरवाजे को भूलकर फिर कातने बैठ जाती है। उधर पति ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाये जा रहा है। भयभीत हालत में वह काल्पनिक तकली से काल्पनिक सूत निकालती है, जबकि असली तकली ज़मीन पर रखी है। सिरोत्कीन ने उस औरत के आतंक को बड़ी कुशलता और कामयाबी से दिखाया था। लेकिन पति अपने बूट की ठोकरों से दरवाज़ा तोड़कर भीतर आ जाता है। उसके हाथ में चाबुक है। उसने छिपकर बीवी की सारी करतूतें देखली हैं। वह उँगली के इशारे से बीवी को बताता है कि घर में तीन आदमी छिपे हुए हैं। फिर वह छिपने की जगहों में झाँकता है। सबसे पहले उसे अपना पड़ोसी दिखाई देता है, वह उसे कलाई से पकड़ कर कमरे के बाहर ले आता है। भयभीत क्लर्क भागना चाहता है, इसलिए वह सन्दूक का ढक्कन खोलकर बाहर देखता है और पकड़ा जाता है। पति चाबुक से उसकी खाल उधेड़ता है। इस वक्त आशिक़-मिज़ाज क्लर्क जिस ढङ्ग से उछल-कूद मचाता है, उसे क्लासिकल शैली तो हरगिज़ नहीं कहा जा सकता। अब ब्राह्मण बच रहता है। उसे तलाश करने में पति को कुछ देर लगती

है। ब्राह्मण आलमारी के पीछे कोने में दुबक कर बैठा है, पति शराफ़त से उसे सलाम करता है और दाढ़ी से पकड़ कर स्टेज के बीचों-बीच घसीट लाता है। ब्राह्मण अपना बचाव करने की कोशिश करता है और चिल्लाता है, "अरे ओ पतित ! अरे ओ पतित !" (पूरे ड्रामे में सिर्फ़ यही एक पंक्ति बोली गई थी), लेकिन पति इस बात की परवाह नहीं करता और ब्राह्मण की ख़ूब मरम्मत करता है। बीवी यह देखकर कि अब उसकी बारी आ रही है, सन और तकली फेंककर भाग जाती है। लकड़ी की चौकी उलट जाती है और सब हँस पड़ते हैं। अली मेरी तरफ़ देखे बग़ैर मेरी बाँह को झटका देकर कहता है, "देखिए, ज़रा ब्राह्मण को देखिए !" वह इतना हँस रहा है कि उससे खड़ा भी नहीं हुआ जाता। पर्दा गिरता है। इसके बाद स्टेज पर दूसरा दृश्य आता है।

लेकिन सारे दृश्यों को बयान करने की कोई ज़रूरत नहीं। इसके बाद दो या तीन दृश्य और पेश किए गए थे—सबके सब बेहद दिलचस्प और हँसाने वाले थे। अगर उन्होंने इन नाटकों की ईजाद नहीं की थी तो कम से कम हर एक्टर ने उनमें अपनी तरफ़ से कुछ न कुछ ज़रूर जोड़ा था। तक़रीबन हर एक्टर ने कोई न कोई नई बात जोड़ी थी, जिसका नतीजा यह हुआ कि उनके पार्टों में कुछ फ़र्क़ आ गया। आख़िरी मूक नाटक, जो अत्यन्त विलक्षण था, एक बैले के साथ ख़त्म हुआ। यह दृश्य मातम का था। ब्राह्मण ने अपने बहुत से सहकारियों के साथ ताबूत के ऊपर मन्त्र फूंके, लेकिन कोई फ़ायदा न हुआ, आख़िरकार "डूबते सूरज" के स्वर सुनाई दिए, लाश में जान आ गई और सब ख़ुशी से नाचने लगे। ब्राह्मण उस फिर से ज़िन्दा हुई लाश के साथ ख़ास भारतीय अन्दाज़ में नाच रहा था। अगले दिन शाम को नाटक ख़त्म हो गए। क़ैदी प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर बर्ख़ास्त हुए। उन्होंने एक्टरों की तारीफ़ की और सार्जेन्ट को धन्यवाद दिया। लड़ाई-झगड़े की कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। सब लोग असाधारण रूप से सन्तुष्ट थे, बल्कि यह कहा जा सकता है कि वे सुखी थे; वे शान्तिपूर्वक गहरी नींद में सो गए,

और दिनों की तरह वे नींद में बड़बड़ाए नहीं। लेकिन मन में सवाल उठता है कि ऐसा क्यों हुआ? फिर भी यह मेरी कोरी कल्पना नहीं है। यही सच और हक़ीक़त है। इन लोगों को आज मनमानी करने की आज़ादी दे दी गई थी, ताकि वे इन्सानों की तरह ख़ुशी की दो-चार घड़ियाँ बिता सकें और उन्हें यह एहसास न हो कि वे क़ैदी हैं—उन लोगों में इससे नैतिक परिवर्तन आ गया था, चाहे कुछ मिनटों के लिए ही सही।

आधी रात का वक्त है। मैं चौंककर उठ बैठता हूँ। बूढ़ा अभी भी चबूतरे पर बैठा प्रार्थना कर रहा है और सुबह तक करता रहेगा। अली मेरे नज़दीक खामोशी से सो रहा है। मुझे याद है कि सोने से पहले वह हँस रहा था और अपने भाइयों को ड्रामे के बारे में बता रहा था। अनचेते ही मैंने नज़दीक से उसके शान्त बच्चों जैसे भोले चेहरे की तरफ़ देखा। धीरे-धीरे मुझे सब चीज़ों की याद हो आती है, कल का दिन, छुट्टियाँ, सारा महीना……मैं खौफ़ज़दा होकर सर उठाता हूँ और जेल की मोमबत्ती की मद्धिम टिमटिमाती रोशनी में अपने सोए हुए साथियों के चेहरों की तरफ़ देखता हूँ। मैं उनके दुखी चेहरों, फटेहाल बिस्तरों, ग़रीबी और असहायता की तरफ़ देखता हूँ—और देखता रहता हूँ—शायद मैं अपने को यक़ीन दिलाना चाहता हूँ कि मैं एक कुरूप सपना नहीं बल्कि सच्चाई देख रहा हूँ।

लेकिन यह सच है: मुझे किसी के कराहने की आवाज़ सुनाई देती है। किसी क़ैदी की बाँह ज़ोर से हिल पड़ती है और बेड़ियाँ झनझना उठती हैं। कोई नींद में चौंककर बड़बड़ाने लगता है। चबूतरे पर बैठा बूढ़ा क़ैदी सब "नेक ईसाइयों" के लिए प्रार्थना कर रहा है, मुझे उसका कोमल लयपूर्ण, विलम्बित स्वर सुनाई दे रहा है, "प्रभु जीसस क्राइस्ट, हमारे ऊपर दया करो।"

"जो भी हो, मैं यहाँ हमेशा के लिए नहीं बल्कि कुछ बरसों के लिए ही रहने आया हूँ," यह सोचकर मैं फिर तकिए पर सिर रख लेता हूँ।

हस्पताल — १

क्रिसमस की छुट्टियों के फ़ौरन बाद मैं बीमार पड़ गया और फ़ौजी हस्पताल में दाख़िल हो गया। हस्पताल की इमारत लम्बी और एक मंजिल की थी, उस पर पीला रंग किया गया था, गर्मियों के मौसम में जब सारी इमारतों की मरम्मत और सफ़ेदी होती थी, इस इमारत पर ढेरों पीली मिट्टी पोती जाती थी। उसके विशाल दालान के इर्द-गिर्द दफ़्तर, डाक्टरों के मकान और दूसरी इमारतें थीं। बड़ी इमारत में सिर्फ़ मरीज़ों के वार्ड थे, जिनमें से सिर्फ़ दो वार्ड क़ैदियों के लिए थे। इन वार्डों में हमेशा, ख़ास तौर पर गर्मियों में इतनी भीड़ रहती थी, कि मरीज़ों की चारपाइयाँ सरका कर पास-पास करनी पड़ती थीं। हमारे वार्ड में हर क़िस्म के "बदक़िस्मत लोग" थे। हमारी जेल के क़ैदी, फ़ौजी जिन पर मुकदमा चल रहा था, जिन्हें सजाएँ मिलने वाली थीं या मिल चुकी थीं, दूसरे जेलख़ानों में जाने वाले क़ैदी, सब इलाज के लिए इसी वार्ड में आते थे। डिसिप्लिनरी बटालियन से भी कुछ क़ैदी आये थे—क़सूरवार या अविश्वसनीय क़ैदियों को सुधारने के लिए डिसिप्लिनरी बटालियन में भेजा जाता था, जो कि बड़ा ही अजब क़ायदा था। कई बरस बाद वे इस बटालियन से पक्के बदमाश बनकर निकलते थे। जो क़ैदी जेल में बीमार पड़ जाते थे वे सुबह के वक्त सार्जेन्ट को अपनी हालत की ख़बर कर देते थे। उनके नाम फ़ौरन एक कॉपी में दर्ज कर लिए जाते थे और क़ैदियों को उस कॉपी के साथ एक संतरी के पहरे में हस्पताल भेज दिया जाता था। वहाँ डॉक्टर सब फ़ौजी डिवीज़नों के क़ैदियों की प्रारंभिक डाक्टरी जाँच करता था और जो सच-मुच बीमार समझे जाते थे उन्हें हस्पताल में दाख़िल कर लिया जाता था। मेरा नाम भी कॉपी में दर्ज कर लिया गया और दोपहर को

एक और दो बजे के बीच, जब सारे क़ैदी खाने के बाद काम पर चले जाते हैं, मैं हस्पताल गया। बीमार क़ैदी अक्सर अपने साथ थोड़ी रोटी और जितना भी पैसा इकट्ठा कर सकता था ले जाता था—क्योंकि उस रोज़ उसे हस्पताल से राशन मिलने की कोई उम्मीद नहीं होती थी। वह एक छोटा-सा पाइप, तम्बाकू की थैली और आग सुलगाने के लिए एक चकमक पत्थर भी साथ में रख लेता था। इन चीज़ों को बड़ी साव-धानी से जूतों के भीतर छिपाकर रखना पड़ता था। जब मैं हस्पताल की सीमा में दाखिल हुआ तो जेल की ज़िन्दगी के इस नये पहलू के प्रति मेरा मन जिज्ञासा से भर गया था।

बड़ा गर्म, नीरस और अवसादपूर्ण दिन था, ऐसे दिनों में हस्पताल जैसी जगह ख़ास तौर से हृदयहीन, नैराश्यपूर्ण और कटु दिखाई देने लगती है। मैं संतरी के साथ वेटिंग-रूम में पहुँचा जहाँ ताँबे के बने दो टब थे। वेटिंग-रूम में दो मरीज़ अपने संतरियों के साथ बैठे थे। वे क़ैदी नहीं थे, अभी हवालात में ही थे। हस्पताल के एक असिस्टेन्ट ने आकर एक रौबीली, आलस्यपूर्ण नज़र हम लोगों पर डाली और फिर और भी अलसाई चाल से डाक्टर को ख़बर करने चला गया। डाक्टर वहाँ फ़ौरन आ पहुँचा। उसने हमारी जाँच की और बड़ी मेहरबानी से हमारे साथ पेश आया। उसने हम दोनों को एक-एक चार्ट दिया, जिस पर हमारे नाम लिखे हुए थे। हमारी बीमारी का ब्यौरा, दवाई और ख़ूराक की बातें क़ैदियों के वार्ड के डाक्टर पर छोड़ दी गईं। मैंने पहले से सुन रखा था कि क़ैदी डाक्टरों की तारीफ़ें करते नहीं थकते। जब मैंने हस्प-ताल जाने से पहले अपने साथियों से डाक्टरों के बारे में पूछताछ की तो उन्होंने जवाब दिया, "डाक्टर लोग हमारे साथ ऐसा सलूक करते हैं जैसा कोई पिता अपने बच्चों के साथ करता है।" हमसे जेल की वर्दी ले ली गई थी और पहनने के लिए लम्बे मोज़े, स्लीपर, टोपियाँ और गहरे ब्राउन रंग के मोटे कपड़े के ड्रेसिंग गाउन दिए गए थे, जिनके भीतर का कपड़ा टाट से भी ज़्यादा खुरदरा था, और क्या पता वह

स्टिकिंग प्लास्टर ही हो । दरअसल ड्रेसिंग गाउन बेहद गन्दा था, इसका एहसास मुझे काफ़ी देर बाद जाकर हुआ। फिर वे हमें क़ैदियों के वार्डों की तरफ़ ले गए, जो एक बहुत लम्बे, और विशाल साफ़-सुथरे बरामदे के आख़िरी कोने पर था । वहाँ की सफ़ाई संतोषजनक थी, जहाँ भी नज़र जाती थी, हर चीज़ चमकती हुई नजर आती थी—हो सकता है, जेल के मुक़ाबले में मुझे सब चीज़ें साफ़ नज़र आती हों । हवालात वाले क़ैदी बाईं तरफ़ के वार्ड में चले गए और मैं दाईं तरफ़ चला गया । दरवाज़े पर लोहे की सिटकनी लगी थी और एक संतरी बन्दूक लिए पहरा दे रहा था; उसके साथ ही ड्यूटी बदलने के लिए छोटा संतरी खड़ा था । जूनियर सार्जेन्ट ने (हस्पताल के) ऑर्डर दिया कि मुझे वार्ड में दाख़िल कर लिया जाए । मैंने अपने को एक लम्बे, तंग कमरे में पाया जिसमें दोनों दीवारों के साथ-साथ चारपाइयों की क़तारें लगी थीं, वहाँ कुल मिलाकर बाईस चारपाइयाँ थीं, जिनमें से तीन या चार खाली थीं । चारपाइयों पर हरा रंग किया गया था—ऐसी चारपाइयाँ रूस में आम देखने को मिलती हैं और बदक़िस्मती से वे कभी भी खटमलों से मुक्त नहीं होतीं । मुझे एक कोने में खिड़कियों के पास जगह मिली ।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, हमारी जेल के कुछ क़ैदी भी यहाँ मरीज़ थे, इनमें से कुछ पहले से ही मेरे वाकिफ़ थे, या उन्होंने मुझे देखा था, लेकिन अधिकांश क़ैदी हवालात से या डिसिप्लिनरी बटालियनों से आए थे । ऐसे बहुत कम थे जो बीमारी की वजह से उठ नहीं सकते थे । बाक़ियों को मामूली बीमारियों की शिकायतें थीं या वे बीमारी के बाद तन्दुरुस्त हो रहे थे । ऐसे लोग या तो अपनी चारपाइयों पर बैठे थे या वार्ड में टहल रहे थे । चारपाइयों की क़तार के बीच में वर्जिश और टहलने के लिए काफ़ी जगह थी । वार्ड में दवाइयों की बू से दम घुटा जा रहा था । हवा में दवाइयों की और कई क़िस्म की गंध शामिल थीं हालांकि कोने की अंगीठी में दिनभर आग जलती रहती थी। मेरी चारपाई पर लकीरदार रज़ाई थी, मैंने उसे उतार दिया, उसके

नीचे कपड़े का एक कम्बल था, जिसके भीतर टाट लगा था। खुरदरी चादरें और तकिये भी थे, जो बेहद गन्दे थे। चारपाई के नजदीक एक छोटी मेज़ थी, जिस पर एक जग और टीन का प्याला रखा था, इसे क़ायदे से एक छोटे तौलिए से ढाँप कर रखा गया था। मेज़ के नीचे एक ख़ाना था, जिसमें मरीज़ क्वास का गिलास या पीने की और चीज़ रखते थे, चाय पीने वाले वहाँ अपनी चायदानी रखते थे लेकिन बहुत कम मरीज़ चाय पीते थे। पाईप और तम्बाकू की थैलियां जो सब मरीज़ों के पास थीं, यहाँ तक कि तपेदिक़ के मरीज़ों के पास भी, गद्दों के नीचे छिपाकर रखी गई थीं; डाक्टर और हस्पताल के दूसरे कर्मचारी शायद ही कभी बिस्तरों को खोल कर देखते थे। वे कभी किसी क़ैदी को तम्बाकू पीते देखते थे तो अनदेखा कर देते थे। लेकिन क़ैदी हमेशा सतर्क रहते थे और अंगीठी के पास जाकर ही तम्बाकू पीते थे, सिर्फ़ रात को ही कभी वे बिस्तर में लेटकर तम्बाकू पीते थे; क्योंकि रात को शायद हस्पताल के गारद अफ़सर के सिवा कोई भी वार्डों में नहीं आता था।

इससे पहले मैं कभी हस्पताल में मरीज़ बनकर नहीं रहा था, इसलिए मुझे आसपास की सभी चीज़ें नई मालूम होती थीं। मैंने देखा कि मुझे देखकर लोगों के मन में कौतूहल हो रहा था, उन्होंने पहले से ही मेरे बारे में सुन रखा था और वे धृष्टता से, यहाँ तक कि तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से मेरी तरफ़ देख रहे थे, जैसे स्कूल में किसी नए विद्यार्थी को या सरकारी दफ्तर में किसी प्रार्थी को देखा जाता है। मेरे दाएँ तरफ़ हवालात से आए एक क्लर्क की चारपाई थी, जो एक कैप्टेन का अवैध बेटा था। जाली सिक्के बनाने के जुर्म में उस पर मुक़दमा चलाया जा रहा था। उसे हस्पताल में आए पूरा एक बरस हो गया था लेकिन उसे कोई बीमारी नहीं मालूम होती थी, हालांकि उसने डाक्टरों को यक़ीन दिला रखा था कि उसका दिल बढ़ गया है। बहानेबाजी से उसका मक़सद पूरा हो गया था और वह उम्र-क़ैद और मार से बच गया था। एक

बरस बाद उसे 'त-क' के हस्पताल में भेज दिया गया था। वह अट्ठाईस बरस का हृष्ट-पुष्ट आदमी था, बेहद बदमाश और तेज़-तर्रार। उसे क़ानून की पूरी जानकारी थी। उसमें बेहद आत्म-विश्वास था और व्यवहार में उच्छृङ्खलता थी। उसका अहंकार रोग की सीमा तक पहुँच गया था और उसने सचमुच अपने को यक़ीन दिला दिया था कि वह दुनिया का सबसे सच्चा और शरीफ़ आदमी है, उसने कोई जुर्म नहीं किया। उसका यह विश्वास अन्त तक बना रहा। उसने ख़ुद अपने आप मुझसे बात की। उसने बड़े कौतूहल से मुझसे पूछताछ की और जेल की दिनचर्या और कायदों की रूपरेखा बताई। कहना न होगा कि सबसे पहले उसने मुझे यह बताया कि वह एक कप्तान का बेटा है। वह अपने को कुलीन या कम से कम 'अच्छे ख़ानदान' का बताने के लिए बहुत उत्सुक था।

इसके बाद डिसिप्लिनरी बटालियन का एक मरीज़ मेरे पास आया। उसने मुझे यक़ीन दिलाया कि वह बहुत से 'कुलीन' प्रवासियों को जानता है, उसने उन प्रवासियों का नाम लेकर उनका ज़िक्र किया। वह सफ़ेद बालों वाला सिपाही था, उसके चेहरे से ही ज़ाहिर हो जाता था कि वह गप्प हाँक रहा था। शायद उसे शक हो गया था कि मेरे पास पैसे हैं। उस क़ैदी का नाम चेकुनोव था। यह देखकर कि मेरे पास एक पुलिन्दे में चाय और चीनी है, उसने फ़ौरन चायदानी लाने और चाय बनाने की ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ले ली। 'म' ने वादा किया था कि वह अगले दिन एक क़ैदी के हाथ, जो हस्पताल में काम करने आता था, मुझे चायदानी भेजेगा, लेकिन चेकुनोव ने सारा इन्तज़ाम कर लिया। वह कहीं से लोहे का बर्तन, यहाँ तक कि एक प्याला भी ले आया। पानी उबाल कर उसने चाय बनाई और असाधारण उत्साह से मुझे चाय पिलाने लगा। उसके इस जोश को देखकर मेरे सामने की चारपाई पर लेटे एक मरीज़ ने उस पर दुर्भावनापूर्ण फ़ब्तियाँ कसनी शुरू कर दीं। इस आदमी का नाम उस्त्यान्त्सेव था। वह एक सिपाही था, कोड़ों की मार के डर से

उसने वोद्का में नसवार मिलाकर पी ली थी, जिससे उसे तपेदिक हो गया था। मैं पहले भी उसका ज़िक्र कर चुका हूँ। अभी तक वह खामोशी से लेटा था। उसे साँस लेने में दिक्क़त हो रही थी। वह मेरी तरफ़ ग़ौर से और संजीदा नज़रों से और चेकुनोव की तरफ़ गुस्से से देख रहा था। उसकी असाधारण रूप से तीव्र कटुता ने उसके गुस्से को हास्यास्पद बना दिया था। आख़िरकार उससे न रहा गया।

"छि: चपरासी कहीं का! आखिर इसे कोई न कोई मालिक तो मिल गया न!" उत्स्यान्त्सेव हांफ रहा था। भावावेश से उसकी आवाज फट रही थी, वह अब इस दुनिया में कुछ ही दिनों का मेहमान था।

चेकुनोव ने तिरस्कारपूर्ण नज़रों से उसे देखकर कहा—

"कौन चपरासी है?"

"तुम चपरासी हो" उत्स्यान्त्सेव ने साहसपूर्वक कहा, लगता था कि चेकुनोव को जलील करने की ज़िम्मेदारी उसे सौंपी गई है।

"मैं, चपरासी हूँ?"

"बिल्कुल चपरासी हो। सुना लोगो, इसे यक़ीन ही नहीं होता, इसे ताज्जुब हो रहा है!"

"मैं अगर चपरासी हूँ तो तुम्हें क्या? देखते नहीं, ये सज्जन यहाँ पर असहाय हैं। ये बिना नौकर के रहने के आदी नहीं, मैं क्यों न इनका काम करूँ? अबे ओ टेढ़े मुँह वाले!"

"किसका मुँह टेढ़ा है?"

"तुम्हारा मुँह टेढ़ा है।"

"मेरा मुँह टेढ़ा है?"

"हाँ।"

"और तुम ख़ूबसूरत हो? अगर मेरा मुँह टेढ़ा है तो तुम्हारा मुँह कौए के अण्डे जैसा है……"

"तुम्हारा मुँह तो टेढ़ा है ही—ज़रा इस आदमी को देखो, ख़ुदा ने इसे तपेदिक की बीमारी दी है, अगर चाहे तो यह खामोशी और चैन से

मर सकता है। लेकिन नहीं, यह लोगों के मामलों में अपनी टाँग जरूर अड़ाएगा ! तुम किसलिए मेरे काम में दखल दे रहे हो जी ?"

"क्यों ? मैं किसी कुत्ते के बजाय जूते के आगे सिर झुकाना ज्यादा पसन्द करता हूँ। मेरे बाप ने किसी के आगे घुटने नहीं टेके और वह मुझे कह गया था। मैं......मैं..."

वह आगे भी कुछ कहता, लेकिन उसे ज़ोर से खाँसी का दौरा पड़ा जो कुछ मिनटों तक जारी रहा, वह खून थूकने लगा। फ़ौरन थकान से उसके तंग माथे पर ठंडे पसीने की बूँदें चमकने लगीं। अगर उसे खाँसी न आती तो वह लगातार बोलता रहता, उसकी आँखों से यह मालूम होता था कि वह डाँटने-फटकारने के लिए कितना बेचैन है। लेकिन वह असहाय भाव से अपना हाथ हिला रहा था। आखिर चेकुनोव उसे भूल कर अपने काम में लग गया।

मुझे ऐसा महसूस हुआ, जैसे उस तपेदिक के मरीज़ का गुस्सा चेकुनोव पर नहीं, बल्कि मुझ पर था। चेकुनोव से कोई सिर्फ़ इसीलिए नाराज़ नहीं हो सकता था, क्योंकि वह मेरी सेवा करने के लिए उत्सुक था जिससे उसे दो चार पैसे मिलने की उम्मीद थी। सब लोग जानते थे कि वह सिर्फ़ फ़ायदे के लिए ही ऐसा कर रहा है। किसान इन मामलों की ज्यादा परवाह नहीं करते और इन फ़र्कों को समझते थे। उत्स्यान्त्सेव को चिढ़ तो मुझ से थी, मेरी चाय से थी, क़ैद में रहकर भी मैं 'मालिक' था और ऐसा मालूम होता था कि नौकर के बगैर मेरा गुजारा नहीं हो सकता, हालांकि मैंने न किसी नौकर की माँग की थी न ही मुझे नौकर रखने की ख्वाहिश थी। मैं हमेशा की तरह अपना काम खुद करना पसन्द करता था, और मैं नहीं चाहता था कि मैं बिगड़ा और काहिल नजर आऊँ, न ही मैंने अपनी कुलीनता का प्रदर्शन करने की कोशिश की थी। इस सिलसिले में मैं इतना जरूर मानूँगा कि कुछ हद तक इसमें मेरे अहंकार का भी सवाल था लेकिन—सचमुच मैं यह नहीं जानता कि क्यों जहाँ भी मैं जाता था हर क़िस्म के नौकर और मददगार

जबरदस्ती अपने को मुझ पर लाद देते थे और आखिरकार मुझ पर पूरी तरह कब्जा जमा लेते थे । नतीजा यह होता था कि वे लोग मेरे मालिक बन जाते थे और मैं उनका नौकर, हालांकि देखने में यही लगता था कि मैं पक्का 'भद्रपुरुष' हूँ और इस बात का प्रदर्शन करता हूँ और नौकरों के बग़ैर मेरा एक घड़ी भी गुजारा नहीं हो सकता । इस बात से मुझे बड़ी कोफ़्त होती थी । लेकिन उत्स्यान्त्सेव तपेदिक़ का मरीज़ और चिड़चिड़ा आदमी था । दूसरे मरीज इस मामले में उदासीनता दिखा रहे थे, हालांकि उनके व्यवहार में भी तिरस्कार की भावना थी । मुझे याद है, वे लोग किसी ख़ास बात में व्यस्त थे : उनकी बातचीत से पता चला कि एक ऐसा क़ैदी शाम को जेल में आ रहा है जिसे बेंतों की मार की सजा मिली है । मरीज़ बड़ी दिलचस्पी से उसका इन्तज़ार कर रहे थे, लेकिन उनका कहना था कि उसकी सज़ा हल्की थी—सिर्फ़ पांच सौ बेंत ।

धीरे-धीरे मैं नए वातावरण का अभ्यस्त हो गया । जहाँ तक मैंने देखा, जो लोग सचमुच बीमार थे, उनके शरीर पर या तो चकत्ते पड़ जाते थे या आँखों की कोई बीमारी होती थी—उस इलाक़े में ये दो रोग बहुत आम थे । हमारे वार्ड में ऐसे बहुत से मरीज़ थे । और सच-मुच के बीमारों को बुख़ार, चर्मरोग या तपेदिक़ था—हमारा वार्ड और लोगों से अलग था—यहाँ हर क़िस्म के मरीज़ों को एक साथ रखा जाता था, यहाँ तक कि गुप्त रोगों के मरीज़ों को भी उसी वार्ड में रखा जाता था । "सचमुच के बीमारों" का ज़िक्र मैं इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि यहाँ ऐसे लोग भी थे जो बिना किसी बीमारी के सिर्फ़ "आराम करने" वहाँ आए थे । हमदर्दी की वजह से डाक्टर ख़ुशी-ख़ुशी ऐसे झूठमूठ के बीमारों को भी हस्पताल में भर्ती कर लेते थे, ख़ास तौर पर जब बहुत सी चारपाइयाँ ख़ाली रहती थीं ; हस्पताल के मुक़ाबले में हवालातों और जेलों में रहना कहीं बदतर था, इसलिए लोग वहाँ आना पसन्द करते थे, चाहे वार्ड के बाहर हमेशा ताला लगा रहता था और अन्दर

हवा गंदी थी। और सचमुच कुछ ऐसे लोग भी थे, खास तौर पर डिसिप्लिनरी बटालियन के लोग, जिन्हें बिस्तर में लेटना बहुत पसन्द था और वे हस्पताल की ज़िन्दगी से बहुत खुश थे। मैं अपने नये वाकिफ़ों में बहुत दिलचस्पी ले रहा था। मुझे अच्छी तरह याद है कि हमारी जेल से आए एक तपेदिक़ के मरीज़ में मुझे ख़ास दिलचस्पी थी। उसकी चारपाई क़रीब-क़रीब मेरे सामने ही थी, बीच में सिर्फ़ उस्त्यान्त्सेव की चारपाई पड़ती थी। इस आदमी का नाम मिहाईलोव था ; पन्द्रह दिन पहले मैंने उसे जेल में देखा था, वह बहुत दिनों से बीमार था और उसे पहले ही डाक्टर के पास जाना चाहिए था, लेकिन ज़िद और अनावश्यक धैर्य से उसने अपने ऊपर क़ाबू पा लिया था और किसी तरह वह ज़िन्दा बचा हुआ था। क्रिसमस के रोज़ वह आकर हस्पताल में दाखिल हुआ और तीन हफ़्ते बाद ही वह तपेदिक़ से मर गया। यह रोग आग की तरह भीतर ही भीतर उसे जला रहा था। इस बार उसके चेहरे में भयंकर परिवर्तन हो गया था, जिसे देखकर मैं पहली बार ही चौंक उठा था। न जाने क्यों जेल में आते ही मेरा ध्यान उसके चेहरे की तरफ़ खिंच गया था। उसके पास डिसिप्लिनरी बटालियन के एक बूढ़े क़ैदी की चारपाई थी, उसकी आदतें बहुत ज़्यादा गंदी थीं, जिन्हें देखकर मन में ग्लानि होती थी'''ख़ैर, मैं सारे क़ैदियों का ज़िक्र यहाँ नहीं कर सकता। मैंने इस बूढ़े का ज़िक्र सिर्फ़ इसलिए किया है, क्योंकि उस वक्त उसने मेरे दिल पर असर डाला था और एक ही मिनट में उसने हमारे वार्ड की सारी विशेषताएँ बता दी थीं। मुझे याद है, उस वक्त उस बूढ़े को सख़्त ज़ुकाम लगा हुआ था, वह लगातार छींक रहा था और सारा हफ़्ता छींकता रहा था, यहाँ तक कि नींद में भी उसे छींकें आती थीं। एक ही बार में उसे पाँच-छः छींकें आ जाती थीं और हर बार वह कहता था, "या ख़ुदा क्या मुसीबत है।" उस वक्त वह चारपाई पर बैठा एक पुड़िया से नसवार निकाल कर अपनी नाक में ठूँस रहा था, ताकि उसे ज़ोर से और पूरी तरह छींकें आ जाएँ—

उसके पास एक चार खाने वाला सूती रूमाल था, जिसे वह सौ बार धो चुका था और जो तार-तार हो गया था। छींकते वक्त वह खास अन्दाज़ से अपनी नाक सिकोड़ लेता था, जिससे नाक में अनगिनत झुर्रियाँ पड़ जाती थीं और उसके लार टपकते हुए लाल जबड़ों के बीच से उसके पुराने काले दाँतों के अवशेष दिखाई देने लगते थे। फिर वह अपना रूमाल खोलकर उसमें लगे बलग़म को देखता था और रूमाल को हस्पताल के ब्राउन ड्रेसिंग गाउन से पोंछ लेता था, जिसकी वजह से उसका रूमाल कुछ ज़्यादा साफ़ रहता था। हफ़्ते-भर वह यही करता रहा। हस्पताल के ड्रेसिंग गाउन को बिगाड़ कर कंजूसों की तरह अपना रूमाल साफ़ रखने की लगातार कोशिशों को देखकर भी बाक़ी मरीज़ों ने कोई प्रोटेस्ट नहीं किया, हालांकि बाद में शायद वह ड्रेसिंग गाउन उन्हीं में से एक को पहनना पड़ता। लेकिन हमारे किसान ज़्यादा नकचिढ़े नहीं हैं, न ही उन्हें सफ़ाई का ज़्यादा ध्यान रहता है। मेरा दिल नफ़रत से सिकुड़ गया और मैंने ग्लानि-भरी जिज्ञासा से अपने ड्रेसिंग गाउन की तरफ़ देखा। अब मुझे एहसास हुआ कि बहुत दिनों से उसमें से तेज़ बदबू आ रही थी जिसने मेरा ध्यान खींचा था। मेरे शरीर की गर्मी से उसमें से आती हुई दवाइयों और प्लास्टरों की बू और भी ज़्यादा तेज़ हो गई थी। मुझे लगा जैसे भीतर कोई चीज़ सड़ रही थी। इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं थी, क्योंकि न जाने कितने बरसों से अनगिनत मरीज़ उस ड्रेसिंग गाउन को पहनते आए थे, शायद उसके अंदर का हिस्सा कभी धुला हो, लेकिन मुझे ठीक से पता नहीं। लेकिन इस वक्त वह तरह-तरह के स्रावों, लोशनों, फोड़ों की पीप से भरा हुआ था। इसके अलावा बेंतों की सज़ा पाने के बाद क़ैदी लगातार ज़ख़्मों से भरी पीठें लेकर हस्पताल के वार्ड में आते रहते थे। पट्टी बाँधकर फ़ौरन गीली कमीज़ के ऊपर ड्रेसिंग गाउन पहना दिया जाता था, और वह बिना गंदा हुए नहीं रह सकता था, उसके ऊपर जो भी चीज़ें गिरती थीं ज्यों की त्यों चिपकी रहती थीं।

मैं जितने बरस भी जेल में रहा, मुझे जब भी हस्पताल में जाना पड़ता था, (और अक्सर जाना पड़ता था) तो हस्पताल के ड्रेसिंग गाउन को पहनते वक्त मेरा दिल ख़ौफ़ और अविश्वास से भर जाता था। ख़ासतौर पर जब कभी मुझे बड़ी और मोटी जुएँ नजर आती थीं तो मुझे और भी ज्यादा कोफ़्त होती थी। जुओं को मारने में क़ैदियों को बहुत मज़ा आता था। जब कोई जूँ क़ैदी के मोटे फूहड़ नाख़ून तले कुचली जाती थी तो शिकारी के चेहरे पर संतोष की झलक आ जाती थी। हम लोगों को खटमलों से भी नफ़रत थी और कभी-कभी जाड़ों की लम्बी नीरस शाम को सारे वार्ड के लोग मिलकर खटमल मारा करते थे। हालांकि बू के बावजूद वार्ड की हर चीज़ ऊपर से साफ़-सुथरी नज़र आती थी, लेकिन भीतर की सफ़ाई का हस्पताल वालों को बिल्कुल ख्याल नहीं आता था। मरीज़ भी गन्दगी के आदी हो गए थे और उसे स्वाभाविक समझते थे। दरअसल हस्पताल का इन्तजाम ही ऐसा था कि उसमें ज्यादा सफ़ाई नहीं रह सकती थी, लेकिन मैं बाद में इन इन्तज़ामों का ज़िक्र करूँगा।

ज्योंही चेकुनोव ने मेरी चाय बनाई (मैं यह भी बता दूँ कि चौबीस घण्टों में सिर्फ़ एक बार वार्ड में पानी लाया जाता था जो वहाँ के दूषित वातावरण में जल्द ही गन्दा हो जाता था) उसी वक्त शोर के बीच दरवाज़ा खुला और एक सिपाही को भीतर लाया गया, जिसे अभी सज़ा मिली थी। मैंने पहली बार किसी आदमी को कोड़े खाने के बाद देखा था। उसके बाद तो अक्सर ऐसे क़ैदी हमारे वार्ड में आते रहते थे, उनमें से कुछ को तो इतनी गहरी चोटें आती थीं कि उन्हें स्ट्रेचर पर लिटा कर लाया जाता था। मरीज़ हमेशा ऐसे क़ैदियों में दिलचस्पी लेते थे, और उनके चेहरों पर अतिरंजित कठोरता और बनावटी गम्भीरता का भाव आ जाता था, लेकिन जुर्म की संगीनी के मुताबिक़ क़ैदियों का स्वागत किया जाता था, जुर्म की संगीनी का अंदाज़ कोड़ों की संख्या से मालूम हो जाता था। जिसे बेरहमी से मार पड़ी हो और मुजरिम की

हैसियत से जिसकी ज़्यादा शोहरत हो उसे वार्ड में ज़्यादा इज्ज़त और लिहाज़ मिलता था। फ़ौजी भगोड़ों को हिकारत की नज़र से देखा जाता था। जो क़ैदी अभी वार्ड में लाया गया था, वह भी भगोड़ा रंगरूट था। लेकिन किसी भी हालत में दया-प्रदर्शन नहीं किया जाता था न व्यंग्य-भरी टिप्पणियां ही की जाती थीं। अगर ज़ख्मी को तीमारदारी की ज़रूरत होती थी तो वे ख़ामोशी से उसकी तीमारदारी करते थे। सबसे पहले वे लगातार उसकी कमीज़ या चादर को पानी में गीला करके ज़ख्मी की पीठ पर लगाते थे। लेकिन मरीज़ अगर बहुत ज़्यादा कम-ज़ोर होता था, तभी उसकी मदद की जाती थी। अक्सर छड़ी के टूट जाने से पीठ में जो लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े रह जाते थे, उन्हें भी होशियारी से निकालना बड़ा ज़रूरी हो जाता था, इससे ज़ख्मी को बहुत ज़्यादा पीड़ा होती थी, लेकिन जिस संयम और निस्पृहता से ज़ख्मी दर्द को बर्दाश्त करते थे, उसे देखकर मुझे ताज्जुब होता था। मैंने ऐसे अनेक क़ैदियों को देखा है जिन्हें बुरी तरह मार पड़ी थी लेकिन उनमें से किसी के कराहने तक की आवाज़ सुनाई नहीं दी थी। सिर्फ़ उनके चेहरे दर्द से सिकुड़कर सफ़ेद पड़ जाते थे, उनकी आँखें दहकने लगती थीं। वे बेचैन और खोए-खोए से नज़र आते थे, उनके ओंठ काँपने लगते थे। बेचारे अक्सर अपने ओठों को काट लेते थे, जिससे ख़ून निकल आता था।

जिस क़ैदी को आज वार्ड में लाया गया था, वह तेईस बरस का साँवला, लंबा, ख़ूबसूरत और तगड़ा जवान था। उसे बुरी तरह से पीटा गया था, वह कमर तक नंगा था, उसके कंधों पर एक गीली चादर रखी थी, जिसकी वजह से उसका सारा बदन इस तरह काँप रहा था, जैसे उसे तेज़ बुख़ार हो। डेढ़ घण्टे तक वह वार्ड में चहलकदमी करता रहा था। मैंने उसके चेहरे की तरफ़ देखा, मुझे लगा कि उस वक्त वह कुछ नहीं सोच रहा था। वह फटी उन्मत्त आँखों से चारों तरफ़ देख रहा था। अपनी नज़र को किसी चीज़ पर केन्द्रित करने में उसे बहुत कोशिश करनी पड़ रही थी। मुझे लगा कि वह ग़ौर से मेरी चाय की तरफ़ देख

रहा था। चाय बहुत गर्म थी। उसमें से भाप निकल रही थी। वह बेचारा ठिठुर रहा था और उसके दांत बज रहे थे। मैंने उसे पीने के लिए चाय दी। उसने हठात्, खामोशी से मेरी तरफ़ देखा और बिना चीनी डाले, जल्दी से एक ही साँस में खड़े-खड़े सारा प्याला पी गया। लगता था वह जानबूझकर मेरी तरफ़ नहीं देखना चाहता था। चाय पीकर उसने चुपचाप प्याला नीचे रख दिया और मेरी तरफ़ सिर हिलाये बग़ैर फिर वार्ड में चहलक़दमी करने लगा। उससे बोला या सिर तक भी नहीं हिलाया जाता था। जहाँ तक क़ैदियों का ताल्लुक है, न जाने क्यों वे भी उससे बोलना नहीं चाहते थे, हालाँकि शुरू में उन्होंने उसकी तीमारदारी की थी, लेकिन बाद में वे जानबूझकर उसकी तरफ़ कोई ध्यान नहीं द रहे थे। शायद उन्होंने सोचा होगा कि उसे जहाँ तक मुमकिन हो सके अकेला ही छोड़ देना चाहिए। सवाल पूछकर या 'हमदर्दी' दिखाकर परेशान नहीं करना चाहिए। और वह नौजवान भी इस बात से संतुष्ट था कि उसे कुछ न कहा जाए।

इस बीच अँधेरा हो गया था और लैंप जलाया गया था। कुछ क़ैदियों के पास अपनी मोमबत्तियां थीं, हालाँकि ऐसे क़ैदियों की संख्या बहुत कम थी। शाम को डाक्टर के मुआयने के बाद गारद के सार्जेन्ट ने आकर मरीज़ों को गिना और वार्ड में ताला लगा दिया। ताला लगाने से पहले वहाँ एक टब लाकर रखा गया। मुझे यह सुनकर ताज्जुब हुआ कि रातभर वह टब वार्ड में ही रखा रहता था, हालाँकि दो क़दमों की दूरी पर बरामदे में काफ़ी जगह थी, जहाँ टब रखा जा सकता था। लेकिन क़ायदों के मुताबिक क़ैदी रात को किसी भी बहाने से वार्ड से नहीं निकल सकते थे। दिन के वक्त भी उन्हें शौचादि के लिए सिर्फ़ थोड़ी देर के लिए बाहर जाने दिया जाता था। हस्पताल में क़ैदियों के वार्ड के अलग क़ायदे थे, क़ैदी को बीमारी की हालत में भी सज़ा भुगतनी पड़ती थी।

मैं नहीं जानता, सबसे पहले यह क़ायदा किसने बनाया होगा,

लेकिन मैं सिर्फ़ इतना जानता हूँ, कि इस क़ायदे की कोई ज़रूरत नहीं थी। सरकारी औपचारिकता कितनी व्यर्थ होती है, इसका इससे बेहतर नमूना कहीं नहीं मिल सकता था। निश्चय ही डाक्टर इसके लिए जिम्मेदार नहीं थे। मैं फिर कहता हूँ कि क़ैदी तो डाक्टरों की तारीफ़ें करते नहीं थकते थे। वे डाक्टरों को पिता-तुल्य समझते थे और उनकी इज्ज़त करते थे। सब क़ैदियों से अच्छा सलूक किया जाता था। डाक्टरों के मुँह से हमदर्दी का एक शब्द सुनकर क़ैदियों को, जिन्हें सारे समाज ने त्याग दिया था, बहुत खुशी होती थी, क्योंकि वे इन सद्भावनापूर्ण शब्दों और दयालु व्यवहार के पीछे छिपी हार्दिकता और ईमानदारी को देख सकते थे। अगर डाक्टर क़ैदियों से कठोर और अमानुषिक व्यवहार भी करते तो कोई उन्हें कुछ नहीं कह सकता था, इसलिए वे सच्ची मानवीय समवेदना से प्रेरित होकर ही इतनी नेकी दिखाते थे। डाक्टर जानते थे कि बीमार को, चाहे वह क़ैदी ही क्यों न हो, उतनी ही ताज़ी हवा चाहिए जितनी कि दूसरे मरीजों को, चाहे वे कितने ही अभिजात वर्ग के क्यों न हों। दूसरे वार्डों में बीमारी के बाद मरीज़ आज़ादी से बरामदों में घूम-फिर सकते थे, वर्जिश कर सकते थे और ज्यादा ताज़ी हवा में साँस ले सकते थे। वार्ड की हवा हमेशा गंदी रहती थी और उसमें दम घोंटने वाली बदबूएँ रहती थीं, अब यह सोच कर मेरा मन आतंक और ग्लानि से भर जाता है कि रात को जब टब लाकर हमारे गर्म कमरे में रखा जाता था, जहाँ पेचिश और ऐसी ही कई बीमारियों के मरीज़ थे, तो हमारे वार्ड की हवा कितनी गंदी और बदबूदार हो जाती होगी।

जब मैंने कहा था कि बीमारी की हालत में भी क़ैदी को सज़ा भुगतनी पड़ती थी तो मेरा मतलब यह हरगिज नहीं था कि यह नियम भी सजा के एक हिस्से की शक्ल में बनाया गया था। बीमार आदमी को सज़ा देने का कोई फ़ायदा नहीं; इसीलिए शायद किसी कठोर अवश्यम्भावी ज़रूरत से मजबूर होकर अधिकारियों ने

यह क़ायदा बनाया था, जिसके नतीजे इतने विनाशकारी थे। लेकिन वह ज़रूरत कौन-सी थी? सबसे ज्यादा क्षोभ तो इस बात का है कि इस पद्धति की सफ़ाई नहीं दी जा सकती, और कई क़ायदे तो इतने दुरूह हैं कि उन्हें समझाया भी नहीं जा सकता। भला इस अनावश्यक ज़ुल्म को कैसे समझाया जा सकता था? क्या इस सिद्धान्त की आड़ लेकर कि क़ैदी जानबूझ कर बीमारी का बहाना करके हस्पताल में दाखिल हो जाएँगे, वहाँ डाक्टरों को धोखा देंगे और अगर रात को उन्हें शौच के लिए वार्ड से बाहर जाने दिया तो वे अँधेरे में भाग निकलेंगे? इस विचार पर ध्यान देना भी असम्भव है। क़ैदी भागकर कहाँ जा सकता था? वह कैसे भाग सकता था? कौन-सी पोशाक पहनकर भाग सकता था? दिन के वक्त क़ैदियों को बारी-बारी से बाहर जाने की इजाज़त मिल सकती थी तो वे रात को क्यों नहीं बाहर जा सकते थे? वार्ड के दरवाज़े पर भरी बन्दूक लिए एक सन्तरी खड़ा रहता था। हालांकि पाखाना सिर्फ़ वार्ड से दो क़दमों की दूरी पर है, फिर भी संतरी हमेशा क़ैदी के साथ जाता है। वार्ड में एक ही खिड़की थी, जो दुहरी थी, जिसके बाहर सलाखें लगी थीं, सलाखों और दुहरी चौखट को तोड़कर ही कोई खिड़की से बाहर निकल सकता था। लेकिन ऐसा हो कैसे सकता था? मान लीजिए कि क़ैदी संतरी को चिल्लाने या शोर मचाने तक का मौक़ा दिए बग़ैर उसे जान से मार डालता, हालांकि ऐसी बात सोचना वाहियात है, फिर भी क़ैदी को सलाखें और खिड़की की चौखट तो तोड़नी ही पड़ेगी। यह भी ध्यान रखें कि संतरी के नज़दीक ही वार्ड के कर्मचारी सोते हैं और दस क़दम पर एक और बन्दूकधारी संतरी और एक पहरेदार दूसरे वार्ड के आगे खड़े रहते हैं। उनके अलावा और लोग भी मौजूद रहते हैं। जाड़ों के मौसम में कोई आदमी मोज़े, स्लीपर, हस्पताल का ड्रेसिंग गाउन और नाइटकैप पहनकर भला भागेगा भी कहाँ? जब ऐसी हालत हो और क़ैदी के भागने का बहुत कम ख़तरा हो (यानी कोई ख़तरा न हो) तो फिर

मरणासन्न मरीज़ों के लिए, जिन्हें तन्दुरुस्त लोगों से भी ज़्यादा ताज़ी हवा चाहिए क्यों ऐसा कठोर नियम बनाया गया है ? किसलिए ? मैं कभी इस बात को नहीं समझ सका।

चूँकि एक बार मन में सवाल उठा है, इसलिए मैं एक और बात बताए बग़ैर नहीं रह सकता, जो कई बरसों तक मुझे असमंजस में डालती रही और जिसका समाधान मैं कभी नहीं पा सका। इसे बयान करने से पहले मैं कुछ शब्द ज़रूर कहना चाहूँगा। मैं उन बेड़ियों के बारे में सोच रहा हूँ जो कभी क़ैदी के जिस्म से नहीं उतारी जातीं, चाहे उसे कोई भी बीमारी हो। मैंने अपनी आँखों के सामने तपेदिक़ के कई मरीज़ों को देखा है, जिनके जिस्म पर मरने के वक्त भी बेड़ियाँ थीं, सब लोग बेड़ियाँ पहनने के आदी हो गए थे, और इसे एक स्थापित नियम समझते थे, जो एक बार लागू होने के बाद बदला नहीं जा सकता। मेरा ख़याल है कि किसी ने इस बारे में सोचा भी नहीं होगा, क्योंकि जितने वर्ष तक मैं जेल में रहा, उस बीच किसी डाक्टर को भी यह ख्याल नहीं आया कि वे अधिकारियों से अपील करें कि जिन मरीज़ों की हालत ख़तरनाक है, विशेषकर तपेदिक़ के मरीज़ों को तो बेड़ियाँ खोलने की इजाज़त होनी चाहिए। वैसे बेड़ियों का वज़न ज़्यादा नहीं था। वे आठ या बारह पाउण्ड की थीं और एक तन्दुरुस्त आदमी के लिए इतना वज़न उठाना कोई मुश्किल बात नहीं है। मुझे बताया गया कि लगातार बेड़ियाँ पहनने के फलस्वरूप कई वर्ष के बाद क़ैदियों की टांगें गलनी शुरू हो जाती हैं। यह सच है या नहीं, मैं नहीं जानता, हालाँकि यह बात सम्भव हो सकती है। थोड़ा-सा वज़न भी, चाहे वह दस पाउण्ड का ही क्यों न हो, शरीर के अङ्गों को असाधारण रूप से भरकम बना देता है। कुछ समय बाद उसका नुक़सान भी हो सकता है, मान लिया कि एक तन्दुरुस्त आदमी के लिए यह वज़न ज़्यादा नहीं, लेकिन क्या बीमार आदमी के लिए भी यही बात कही जा सकती है ? चलिए हम यह भी मान लेते हैं कि मामूली मरीज़ बेड़ियों

का वज़न सँभाल सकता है, लेकिन क्या ऐसे मरीज़ों के लिए, जिनकी हालत खतरनाक है, जिन्हें तपेदिक़ हो गयी है, जिनकी टाँगें और बाँहें हर हालत में सूख जाती हैं, जिनके लिए एक तिनके का बोझ सँभालना भी बहुत मुश्किल हो जाता है—क्या उन पर भी यही क़ायदा लागू होना चाहिए ? और सचमुच अगर डाक्टर लोग सिर्फ़ तपेदिक़ के मरीज़ों को ही बेड़ियों से मुक्ति दिला दें तो यह बहुत नेकी का काम होगा। शायद कोई कहेगा कि क़ैदी दुष्ट होते हैं, वे इस क़ाबिल नहीं कि उनके साथ रियायत की जाए, लेकिन जिसे ख़ुद ख़ुदा ने सजा दी है, उसकी तकलीफ़ों को दुगुना किस लिए किया जाए ?

इस बात पर यक़ीन नहीं होता कि सिर्फ़ सजा देने के लिए ऐसा किया जाता है। कानून के लिहाज से भी तपेदिक़ के मरीज़ को शारीरिक यातना देना मना है। इसलिए ऐसे मरीज़ को भी बेड़ियाँ पहनाना हमें सावधानी का एक अत्यन्त रहस्यमय ढंग मालूम होता है। लेकिन इसका कारण मेरी समझ में नहीं आता। तपेदिक़ का मरीज़ भागकर नहीं जा सकता है, इसका कोई डर नहीं हो सकता। भला कौन, खासकर तपेदिक़ की हालत में भागने की बात सोचेगा ? तपेदिक़ का बहाना बनाकर भागने के लिए डाक्टरों को धोखा दे पाना नामुमकिन है। तपेदिक़ ऐसी बीमारी है, जिसका स्वांग नहीं रचा जा सकता—तपेदिक़ के लक्षण बिल्कुल साफ़ होते हैं। और मैं वैसे कहता हूँ, क्या क़ैदियों को बेड़ियों में सिर्फ़ इसलिए डाला जाता है, ताकि वे भाग ही न सकें या भागना उनके लिए मुश्किल हो जाए ? बिल्कुल नहीं। बेड़ियाँ तो क़ैदी की दासता का अपमानजनक रूप हैं, क़ैदी के लिए एक शारीरिक और नैतिक बोझ हैं और उन्हें बनाया भी इसीलिए गया है। बेड़ियाँ किसी क़ैदी के भागने में रुकावट नहीं डाल सकतीं। बेवक़ूफ़ से बेवक़ूफ़ और नौसिखिया क़ैदी भी उन्हें रेती से काट सकता है या पत्थर मारकर रिपिट को तोड़ सकता है। बेड़ियों से क़ैदी को काम करने में कोई अड़चन नहीं होती, अगर क़ैदी को सिर्फ़ सजा देने के लिए बेड़िया पह-

नाई जाती हैं तो मैं फिर पूछता हूँ, क्या किसी मरणासन्न आदमी को इस तरह सज़ा देना ठीक है ?

इन पंक्तियों को लिखते वक्त मुझे तपेदिक़ के मरीज़ मिहाईलोव की याद आ रही है, जिसकी चारपाई मेरे सामने थी, और उत्स्यान्त्सेव के क़रीब थी । मुझे याद है, मेरे आने के चार दिन बाद ही उसकी मौत हो गई थी । शायद उसकी मौत को देख कर मेरे मन में जो विचार आये उन्हीं की स्मृति से मैंने तपेदिक़ के मरीजों का यहाँ ज़िक्र किया है । वैसे मैं मिहाईलोव के बारे में ज़्यादा नहीं जानता था । उसकी उम्र ज़्यादा नहीं थी, यही पच्चीस के क़रीब होगी । वह लम्बा, दुबला और अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व का नौजवान था । वह 'स्पैशल डिवीजन' में था और उसकी ख़ामोशी भी अजब थी । उस पर हमेशा एक ख़ामोशी भरी उदासी छाई रहती थी । और क़ैदियों का कहना था कि वह जेल में "भीतर ही भीतर सूख रहा था ।" वह अपने पीछे अनेक सुखद स्मृतियाँ छोड़ गया था । मुझे सिर्फ़ इतना ही याद है कि उसकी आँखें बहुत शानदार थीं, न जाने क्यों उसकी याद मेरे मन में इतनी साफ़ है । एक दिन जब पाला पड़ रहा था और धूप चमक रही थी, दोपहर के तीन बजे मिहाईलोव चल बसा । मुझे याद है, धूप की जलती हुई तिरछी किरणें हमारी खिड़कियों के बर्फ़ से जमे हुए हरे शीशों को भेद रही थीं । मरणासन्न मिहाईलोव के चेहरे पर धूप तेज़ी से चमक रही थी । वह बेहोश था और कई घण्टों तक मौत की यन्त्रणा से छटपटाता रहा था । तड़के जो लोग उससे मिलने आये थे, वह उन्हें पहचान नहीं पा रहा था । उसकी तकलीफ़ देखकर मरीज़ उसकी कोई सेवा करना चाहते थे । उसके सांस लेने में आवाज़ निकल रही थी और उसके गले से घर्र-घर्र की आवाज़ आ रही थी, उसकी छाती इस तरह हिल रही थी जैसे उसे हवा न मिल रही हो । उसने अपनी रज़ाई और कपड़े उतार कर एक तरफ़ पटक दिए और अपनी कमीज़ को नोचने लगा, मालूम होता था कि कमीज़ का बोझ भी उससे बर्दाश्त नहीं हो रहा

था। दूसरे मरीज़ों ने जाकर उसकी मदद की और उसकी कमीज़ उतार दी। उसके लम्बे, बहुत लम्बे जिस्म, बाँहों और टाँगों, जिनकी हड्डियाँ निकल आई थीं, पिचके हुए पेट और ठठरी की तरह निकली हुई पसलियों को देखकर मन में आतंक भर जाता था। लकड़ी के एक क्रास और एक छोटी थैली के सिवा, जिसमें कोई निशानी रखी थी, उसके शरीर पर और कुछ नहीं था, उसकी टाँगें सूख गई थीं, लगता था कि बेड़ियाँ सरककर उसकी टाँगों में से निकल जायेंगी। उसकी मौत के आध घण्टे पहले सारे वार्ड में ख़ामोशी छा गई और हम लोग फुसफुसाकर बातें करने लगे। सब लोग बिना आहट किये चल रहे थे। मरीज़ों ने ज़्यादा इधर-उधर की बातें नहीं कीं, रह-रह कर उनकी नज़रें उस मरणासन्न व्यक्ति पर जा टिकती थीं जो और भी बुरी तरह से हाँफ रहा था। आख़िर में काँपते हुए हाथों से उसने अपने सीने पर लटका क्रास टटोला और उसे नोचने लगा। मालूम होता था कि क्रास का वज़न भी उससे सँभाला नहीं जा रहा था। मरीज़ों ने आकर क्रास भी हटा दिया। दस मिनट बाद उसकी मौत हो गई। मरीज़ों ने दरवाज़ा खटखटाया और संतरी को बुलाकर ख़बर दी। जेल के एक जमादार ने आकर भावशून्य दृष्टि से लाश की तरफ़ देखा और डाक्टर को बुलाने के लिए चला गया। डाक्टर अच्छे स्वभाव का एक नौजवान था, जिसे अपने बनाव-सिंगार का ज़रूरत से ज़्यादा ख्याल रहता था और जो देखने में आकर्षक था। वह जल्द ही हमारे वार्ड में आया। वह तेज़ कदमों से ख़ामोश वातावरण में आवाज़ पैदा करता हुआ लाश के पास गया। इस मौक़े पर उसने ख़ासतौर पर अपने व्यवहार में उदासीनता पैदा की थी। उसने मृतक की कलाई पकड़ कर उसकी नब्ज़ टटोली और हाथ हिलाकर वहाँ से चला आया। सार्जेन्ट को ख़बर भिजवा दी गई। मिहाईलोव मशहूर क़ैदी था, इसलिए बिना सरकारी ख़ानापूरी मुकम्मल किए उसको मृत करार नहीं दिया जा सकता था। जब हम सार्जेन्ट का इन्तज़ार कर रहे थे तो क़ैदियों में से एक ने धीमी

आवाज़ में कहा कि मृतक की आँखें बन्द कर देनी चाहिएँ। दूसरे आदमी ने ध्यान से इस बात को सुना और चुपचाप जा कर मिहाईलोव की आँखें बन्द करदीं। तकिये पर पड़े क्रास को उठाकर उसने देखा और मिहाईलोव के गले में पहना दिया। फिर उसने अपने ऊपर क्रास का चिह्न बनाया। इस बीच मृतक का चेहरा सख्त हो रहा था, उसके ऊपर धूप फैल रही थी। उसका मुँह आधा खुला आ था, सफ़ेद जबान, दांतों की दो क़तारें पतले, खेसू ओंठों में से चमक रही थीं।

आखिर सार्जेन्ट लोहे का टोप पहने और तलवार हाथ में लिए वहाँ पहुँचा। उसके पीछे-पीछे दो संतरी थे। नजदीक आकर उसकी चाल धीमी पड़ गई। असमंजस भरी आँखों से उसने खामोश क़ैदियों की तरफ़ देखा, जो चारों तरफ़ से संजीदा होकर उसकी तरफ़ देख रहे थे। लाश के क़रीब आकर जैसे उसके पैरों को लक़वा मार गया, लगता था जैसे उसे डर लग रहा हो। नंगे और ठठरीनुमा शरीर को देखकर, जिस-पर बेड़ियों के सिवा कुछ नह था, उसका दिल द्रवित हो उठा। उसने अचानक अपनी तलवार की पेटी खोल दी, टोप उतार दिया, हालांकि ऐसा करने की कोई ज़रूरत नहीं थी। फिर उसने गम्भीरता से अपने ऊपर क्रॉस का चिह्न बनाया। जेल की नौकरी करते-करते सार्जेन्ट के बाल सफ़ेद हो गए थे और उसकी मुद्रा गम्भीर थी। मुझे याद है कि उस वक्त चेकुनोव भी सार्जेन्ट के पास खड़ा था। चेकुनोव के बाल भी सफ़ेद थे। वह सारा वक्त खामोशा और एकाग्रता से सार्जेन्ट के चेहरे और हर गति-विधि को देख रहा था। जब उनकी आँखें आपस में टक-राईं तो चेकुनोव का निचला ओंठ काँपने लगा, उसने ओंठ सिकोड़ कर खीस नीपोर ली और अनायास लाश की तरफ़ देखकर सिर हिलाया। उसने सार्जेन्ट से कहा, "यह भी किसी माँ का जाया था।" यह कहकर वह वहाँ से चला गया। मुझे याद है इन शब्दों को सुनकर मुझे ऐसा लगा था जैसे किसी ने मेरे दिल में छुरा भोंक दिया हो। उसने किस-लिए ये शब्द कहे थे? ये शब्द उसके दिमाग़ में कैसे आए थे? उन्होंने

लाश को चारपाई समेत उठाना शुरू किया। पुआल चुरमुर करने लगी। वार्ड की खामोशी में बेड़ियाँ झनझना उठीं······बेड़ियों को उठा लिया गया, लाश वार्ड से बाहर लेजाई गई। अचानक सब क़ैदियों ने ऊँची आवाज़ में बातें शुरू कर दीं। बरामदे में से सार्जेन्ट की आवाज़ सुनाई दे रही थी। वह किसी को भेजकर लुहार बुलवा रहा था। लाश पर से बेड़ियाँ हटाई जाने वाली थीं······लेकिन मैं फिर बहकने लगा हूँ।

हस्पताल—२

डाक्टर सुबह वार्डों में आकर मरीज़ों का मुआयना करते थे। दस और ग्यारह बजे के बीच सारे डाक्टर एक साथ हमारे वार्ड में आते थे। बड़ा डाक्टर सबसे आगे रहता था। उनके आने से डेढ़ घंटा पहले हमारे वार्ड का स्पैशल डाक्टर आता था। हमारे वार्ड का डाक्टर एक भला नौजवान था और बहुत अच्छा इलाज करता था। क़ैदी उसे बहुत चाहते थे, लेकिन उसमें उन्हें एक ही बुराई नजर आती थी। वह 'ज़रूरत से ज्यादा नर्म था'। दरअसल वह ज्यादा बातूनी नहीं था और हमारी मौजूदगी में उसे सकपकाहट महसूस होती थी। मरीज़ के पहली बार कहने पर ही वह ख़ूराक बदल देता था, मरीज़ों से बातें करते वक्त उसका चेहरा लाल हो जाता था। मेरा ख्याल है कि अगर क़ैदी अपनी मर्ज़ी के मुताबिक उससे दवाएँ माँगते तो वह नुस्खे भी लिख देता। लेकिन वह बड़ा ही शानदार नौजवान था।

यह कहा जा सकता है कि रूस में बहुत से डाक्टरों को किसानों का प्यार और आदर प्राप्त है। मैं अपने तजुर्बे से कह सकता हूँ कि यह बात सच है। मैं जानता हूँ कि इस बात में आपको विरोधाभास दिखाई देगा, जब आप यह सोचेंगे कि रूस में साधारण जनता चिकित्सा और ख़ासतौर पर विदेशी दवाइयों को कितने अविश्वास से देखती है। किसान चाहे कितना ही बीमार क्यों न हो, वह लगातार बरसों तक किसी सयानी औरत से सलाह लेता रहेगा या घर में बनी दवाइयों का ही इस्तेमाल करता रहेगा। (ये दवाइयाँ बिल्कुल बेकार हों, ऐसी बात नहीं है।) लेकिन वह किसी डाक्टर के पास या हस्पताल में नहीं जाएगा। इस भावना में एक बहुत महत्वपूर्ण बात छिपी है, जिसका इलाज से कोई ताल्लुक नहीं है। बात यह है कि हर सरकारी चीज़ को किसान

अविश्वास की नजरों से देखते हैं, इसके अलावा किसानों के मन में, तरह-तरह की खौफ़नाक कहानियाँ सुनकर, हस्पतालों के प्रति डर और पूर्वाग्रह पैदा हो जाता है। अक्सर ये बातें झूठी और हास्यास्पद होती हैं, लेकिन कई बार उनकी बुनियाद भी होती है। इसके अलावा किसानों को सबसे ज्यादा हस्पताल के जर्मन अनुशासन और दिनचर्या से डर लगता है, जहाँ उन्हें दिन-भर अजनबियों के बीच रहना पड़ता है, खाने-पीने के मामले में सख्ती बरती जाती है। डाक्टरों और दूसरे कर्मचारियों की सख्ती की, लाशों की चीरफाड़ की कहानियाँ उन्हें खौफ़जदा कर देती हैं। इसके अलावा आम लोग कहते हैं कि हस्पतालों में 'भद्र-लोग' उनका इलाज करेंगे, चाहे कुछ हो डाक्टर हैं तो भद्रलोग ही लेकिन बाद में डाक्टरों के संपर्क में आते ही ये सारे डर दूर हो जाते हैं। (आमतौर पर ऐसा होता है—अपवाद तो हर जगह होते ही हैं।) मेरा ख्याल है कि इसमें सारा श्रेय डाक्टरों को मिलना चाहिए, जिनमें ज्यादा-तर नौजवान लोग हैं। अधिकांश डाक्टर जानते हैं कि उन्हें जनता का प्यार और इज्जत कैसे मिल सकती है। खैर, मैं तो अपनी आँखों देखी और तजुर्बे की बातें लिख रहा हूँ—मैंने बहुत बार, बहुत जगहों पर यही बात देखी है और मेरे ख्याल में दूसरी जगहों पर भी स्थिति इससे भिन्न नहीं हो सकती। कहीं-कहीं जरूर ऐसे डाक्टर होते हैं तो रिश्वतें लेते हैं, हस्पतालों से मुनाफ़ा कमाते हैं और अपने मरीज़ों की बिल्कुल परवाह नहीं करते, उन्हें अपनी सारी डाक्टरी भूल जाती है। ऐसे डाक्टर अभी भी मिल सकते हैं, लेकिन मैं तो अधिकांश डाक्टरों की या उस प्रवृत्ति और भावना की बात कर रहा हूँ, जो हमारे ज़माने में डाक्टरी पेशे को सजीवता और उत्साह प्रदान करती है। डाक्टरी पेशे के उन भेड़ियों और भगोड़ों के पक्ष में चाहे जो कुछ कहा जाए, उनकी खामियों की चाहे कोई वजह बताई जाए, मिसाल के लिए 'वातावरण' को, जिसके वे भी शिकार हैं, लेकिन कसूर हमेशा उन डाक्टरों का ही रहेगा, खास तौर पर अगर डाक्टर इन्सानियत नहीं दिखाते। कई बार दवाइयों की

बजाय इन्सानियत, दयालुता और भ्रातृ-भाव की हमदर्दी, मरीज़ों के लिए ज्यादा फ़ायदे की चीज़ होती है। बहुत दिनों से हम झूठमूठ यह शिकायत करते आ रहे हैं कि हमारा सामाजिक वातावरण ही हमें भ्रष्टाचार सिखाता है। यह सच है कि वातावरण हमारी बहुत-सी चीज़ों को तबाह कर देता है लेकिन हर चीज़ को तबाह नहीं कर सकता। अक्सर चालाक, होशियार और लंपट व्यक्ति, ख़ासतौर पर अगर वह अच्छा वक्ता या लेखक है, अपनी कमज़ोरी पर नहीं बल्कि सचमुच की नीचता पर भी यह कहकर पर्दा डालेगा कि यह 'वातावरण' का असर है।

लेकिन मैं फिर अपने विषय को छोड़कर इधर-उधर की बातों में पड़ गया। मेरे कहने का मतलब सिर्फ़ इतना था कि किसानों के अविश्वास और शत्रुता का केन्द्र मेडिकल इन्तज़ाम है न कि डाक्टर। जब किसानों को डाक्टरों का असली रूप मालूम हो जाता है तो उनके बहुत से पूर्वाग्रह भी जल्द ही ख़त्म हो जाते हैं। हमारे हस्पतालों का इन्तज़ाम अभी भी हमारी राष्ट्रीय चेतना से सामंजस्य नहीं खाता। हस्पताल के क़ायदे अभी तक लोगों की आदतों को बर्दाश्त नहीं करते, न ही ऐसे हैं कि लोगों का पूरा विश्वास और आदर प्राप्त कर सकें। कम-से-कम अपने व्यक्तिगत अनुभवों से तो मुझे ऐसा ही लगता है।

हमारे वार्ड का डाक्टर आमतौर पर हर मरीज़ के आगे रुकता था, बड़ी संजीदगी और ध्यान से उसे देखता था, सवाल पूछता था, उसकी दवाई और ख़ूराक बताता था। कई बार यह देखकर भी कि क़ैदी को कोई तक़लीफ़ नहीं है, बल्कि वह काम से छुट्टी पाकर आराम करने आया है, नंगे तख़्तों की बजाय गद्दों पर लेटना चाहता है, हवालात की सीली बैरक की बजाय, जहाँ पीले और सूखे क़ैदियों की भीड़ को रखा जाता है, हस्पताल के गर्म कमरे में रहना चाहता है, (रूस भर में हवालात के क़ैदी पीले पड़ जाते हैं और उनके जिस्म सूख जाते हैं—यह इस बात की निशानी है कि वे शारीरिक और आध्यात्मिक दृष्टि से जेल के क़ैदियों से बदतर हैं,) डॉक्टर चुपचाप रजिस्टर में लिख देता था

कि उन्हें "बिगड़ा जुक़ाम" है, और कभी-कभी तो डाक्टर उन्हें पूरे हफ़्ते तक हस्पताल में रहने देता था। हम सब इस "बिगड़े जुक़ाम" पर हँसा करते थे। हम अच्छी तरह जानते थे कि यह बहानेबाज़ी का एक तरीक़ा है, जिसके लिए डाक्टर और मरीज़ दोनों में एक मौन समझौता हुआ है। क़ैदी इसे "मनचाहा तीखा दर्द" कहा करते थे। कई बार तो मरीज़ डाक्टर की नर्म-दिली का फ़ायदा उठाकर हस्पताल से जाने का नाम ही न लेते थे और उन्हें ज़बरदस्ती निकाला जाता था। उस वक्त हमारे डाक्टर की मुद्रा देखने के क़ाबिल होती थी। उसे मरीज़ को सीधा कहने में संकोच होता था कि वह जल्दी से ठीक होकर हस्पताल से चला जाए, हालाँकि डाक्टर को पूरा अधिकार था कि वह मरीज़ के चार्ट पर लिख दे, "ठीक है" और बिना मरीज़ से कुछ कहे-सुने उसे हस्पताल से छुट्टी दे दे। पहले तो वह मरीज़ को इशारे से समझाता था, और फिर उससे जाने का आग्रह करता था, "तुम्हें अब यहाँ से चले जाना चाहिए, जानते हो तुम अब क़रीब-क़रीब ठीक हो गए हो, और वार्ड में जगह नहीं है," वग़ैरह-वग़ैरह। धीरे-धीरे मरीज़ को ख़ुद शर्म आने लगती थी और वह हस्पताल से जाने की छुट्टी माँगता था। बड़ा डाक्टर हमदर्द और ईमानदार होते हुए भी (क़ैदी उसे भी बहुत चाहते थे), हमारे वार्ड के डाक्टर से ज़्यादा सख्त और दृढ़ निश्चय वाला आदमी था। मौक़ा आने पर वह सख़्ती भी दिखा सकता था, इसीलिए हम लोग विशेष रूप से उसका आदर करते थे। बड़ा डाक्टर आकर हर मरीज़ को अलग से देखता था। पीछे-पीछे उसका सारा स्टाफ रहता था। जिन मरीज़ों की बीमारी ज़्यादा नाज़ुक होती थी, डाक्टर उनके पास ज़्यादा देर तक रुकता था और हमेशा उनसे हमदर्दी और प्रोत्साहन के दो शब्द कहता था, जिनमें सच्ची हार्दिकता रहती थी। कुल मिलाकर बड़े डाक्टर का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। जो क़ैदी "तेज़ दर्द" का बहाना बनाकर उसके पास आते थे, डाक्टर उन्हें न हस्पताल से निकालता था, न ही उसकी विनती को अस्वीकार करता था। लेकिन अगर क़ैदी ज़्यादा दिन रुकने की

ज़िद करता था तो डाक्टर सीधा उसे हस्पताल से छुट्टी दे देता था और कहता था, "भाई तुम्हें यहाँ आये बहुत दिन हो चुके। तुम्हें काफ़ी आराम मिल चुका है। अब तुम जा सकते हो, जितने दिन तक हम तुम्हें रख सकते थे हमने रखा, अब तुम्हें ज़्यादा देर टिकने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।" हस्पताल में रहने की ज़िद आलसी और कामचोर क़ैदी करते थे—ख़ासतौर पर गर्मी के मौसम में, जब काम के घंटे ज़्यादा होते थे—या वे क़ैदी जिन्हें कोड़ों की सज़ा मिलती थी। मुझे याद है, ऐसे एक क़ैदी को हस्पताल से निकालने के लिए कितनी सख़्ती और निर्दयता इस्तेमाल की गई थी। वह क़ैदी आँखों की बीमारी लेकर आया था। उसकी आँखें लाल थीं। वह कहता था कि उसकी आँखों में बहुत ज़ोर से दर्द होता है। उसे जोंकें लगाई गईं, तेज दवाइयाँ डालीं गईं लेकिन उसकी शिकायत ज्यों की त्यों बनी रही। धीरे-धीरे डाक्टरों ने अन्दाज़ा लगा लिया कि क़ैदी बीमारी का बहाना कर रहा है। उसकी आँखों में लगातार सूजन रहती थी जो न ठीक होती थी न बढ़ती थी। हमेशा एक ही सी रहती थी। डाक्टरों को मरीज़ पर शक हो गया। क़ैदी तो बहुत पहले से जानते थे कि वह बहानेबाज़ी करके हस्पताल वालों को धोखा दे रहा है, हालाँकि उसने यह बात कभी क़बूल नहीं की थी। वह ख़ूबसूरत जवान था फिर भी सब लोग उसे नापसन्द करते थे। वह हमेशा लोगों से अलग-अलग रहता था, वह शक्की, ख़ूँख़ार-मिज़ाज का आदमी था और हमेशा उसके माथे पर त्यौरियाँ चढ़ी रहती थीं। मुझे याद है, कुछ लोगों का तो यहाँ तक ख़्याल हो गया था कि शायद वह कोई ख़ूंख़ार काम न कर बैठे। वह पहले फ़ौज में सिपाही था और बड़े पैमाने पर चोरी करता हुआ पकड़ा गया था। उसे सौ कोड़ों की सजा देकर क़ैदियों की बटालियन में भेजा गया था, जैसा कि मैं पहले भी बता चुका हूँ। सज़ा से बचने के लिए कभी-कभी क़ैदी बहुत भयंकर काम कर बैठते थे। किसी अफ़सर को या किसी क़ैदी को छुरा मार देने से नया मुक़दमा चलने लगता था और क़रीब दो महीने के लिए कोड़ों की सज़ा

टल जाती थी—यही तो वे चाहते थे। दो महीने बाद सज़ा चाहे दुगुनी या तिगुनी भी हो जाती तो उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी। वे तो हर क़ीमत पर सज़ा की घड़ी को स्थगित करना चाहते थे। कई बार इन बेचारे क़ैदियों की आत्मा सचमुच इतनी शिथिल हो जाती है।

कुछ क़ैदी आपस में कानाफूँसी करने लगे कि हमें इस आदमी से बचना चाहिए। क्या पता वह रात के वक़्त किसी का क़त्ल ही न कर बैठे। लेकिन जो क़ैदी उसकी बगल में सोते थे, उन्होंने भी आत्म-रक्षा का कोई उपाय नहीं किया। रात को देखा गया कि वह आदमी दीवार से चूना उखेड़कर और किसी और चीज़ से अपनी आँखें मला करता था, ताकि सुबह के वक़्त उसकी आँखें लाल रहें। आख़िरकार बड़े डाक्टर ने उसे धमकाया कि अब उसे बत्ती लगाई जाएगी। जब आँखों के हर इलाज के बावजूद भी कोई मरीज़ ठीक नहीं होता तो डाक्टर इस कष्ट-दायक तरीक़े का इस्तेमाल करते हैं। जिस तरह घोड़े को बत्ती लगाई जाती है इसी तरह मरीज़ को भी बत्ती दी जा सकती है।

लेकिन फिर भी वह आदमी तन्दुरुस्त होने के लिए तैयार न हुआ। या तो वह बहुत ज़िद्दी था, या बेहद डरपोक। उसकी नज़र में बेंत की मार की बजाय बत्ती शायद कम तकलीफ़देह थी। लेकिन बत्ती लगाने से भी बहुत ज्यादा तक़लीफ़ होती है। गर्दन के पीछे क़ैदी की चमड़ी को मुट्ठी में लेकर चाकू से लम्बा और गहरा ज़ख्म कर दिया जाता है, इस ज़ख्म में एक अंगुल चौड़ी कपड़े की रस्सी डाल दी जाती है। इसके बाद हर रोज़ निश्चित समय पर इस रस्सी को ज़ख्म से निकालकर दोबारा डाला जाता है, ताकि ज़ख्म ज्यों का त्यों बना रहे और भर न सके। इसके बावजूद भी वह बेचारा कई दिनों तक यह यन्त्रणा सहता रहा। उसे बहुत ज्यादा तक़लीफ़ झेलनी पड़ी और आख़िरकार वह हस्पताल से छुट्टी लेने के लिए तैयार हो गया। एक दिन में ही उसकी आँखें बिल्कुल चंगी हो गईं और गर्दन का ज़ख्म भरते ही वह हवालात में चला गया, जहाँ अगले दिन उसे एक हज़ार बेंतों की सज़ा मिलने वाली थी।

सज़ा से पहले का क्षण बहुत भयंकर होता है। इससे पैदा होने वाले आतंक को मुझे भीरुता और आत्मा का शैथिल्य नहीं कहना चाहिए। जब कोई एक बार की सज़ा से बचने के लिए दो या तीन बार सजा भुगतने को तैयार हो जाता है, तो ज़रूर उस सज़ा की यन्त्रणा असह्य होती होगी। लेकिन मैं पहले भी बता चुका हूँ कि कई क़ैदी पहली मार के बाद पीठ के ज़ख्म भरने से पहले ही, बाक़ी सजा भुगतने के लिए हस्पताल से छुट्टी माँगते हैं। जेल की बजाय हवालात की ज़िन्दगी कहीं ज़्यादा बदतर थी। स्वभावों की भिन्नता के अलावा कुछ क़ैदियों का साहस और निर्भीकता इस बात पर निर्भर करती है कि उन्होंने कितने बरस तक लाठियाँ और सज़ाएँ झेली हैं। जिन क़ैदियों को अक्सर मार पड़ती है, उनके दिल और पीठें जैसे सख्त हो जाती हैं, और यह नौबत आ जाती है कि वे सजा को बहुत मामूली सी असुविधा समझने लगते हैं। और उन्हें सज़ा से बिलकुल डर नहीं लगता। आमतौर पर यह बात सच होती है। स्पैशल डिवीज़न में कालमुक नाम का एक क़ैदी था जिसे अलेक्जेन्डर या अलेक्जेन्ड्रा नाम से पुकारा जाता था। वह बड़ा ही विलक्षण, चालाक, निर्भीक और हँसमुख आदमी था। उसने मुझे बताया कि किस तरह उसने चार हज़ार बेंतों का मुक़ाबला किया था। उसने हँसते और मज़ाक करते हुए अपनी सजा के बारे में बताया और संजीदगी से क़सम खाकर कहा कि अगर बचपन के शुरू से ही जब से वह ख़ानाबदोशों के साथ रहता था, उसे बेंत न पड़ते तो वह कभी इस सज़ा को बर्दाश्त नहीं कर सकता था, और उसकी पीठ के ज़ख्म कभी भरने में नहीं आते। वह अपनी इस आदत को वरदान समझता था।

एक दिन शाम को बत्तियाँ जलने से पहले उसने मेरे बिस्तर पर बैठकर मुझ से कहा, "अलेक्जान्द्र पेत्रोविच, मुझे हर क़िस्म के जुर्म के लिए बेंत पड़ चुके हैं, चाहे मेरा क़सूर रहा हो या न रहा हो। जब से मैंने होश सँभाला है, मुझे मार पड़ती रही है, सो भी दिन में कई-कई

बार। जिसके मन में आता था वही मुझे पीटता था, इस तरह मुझे मार सहने की आदत पड़ गई।"

वह सिपाही कैसे बना यह मैं नहीं जानता। शायद उसने मुझे यह बताया भी था लेकिन मुझे कुछ याद नहीं। वह पक्का आवारागर्द और भगोड़ा था। मुझे सिर्फ़ इतना ही याद है कि उसने मुझे बताया था कि अपने अफ़सर के क़त्ल के जुर्म में जब उसे चार हज़ार बेंतों की सज़ा मिली थी, तो वह कितना घबराया था।

"मैं जानता था कि मुझे सख्त सज़ा मिलनी चाहिए और मेरा ख्याल था कि शायद मैं ज़िन्दा नहीं बचूँगा, हालाँकि मैं पिटाई का आदी था। लेकिन चार हज़ार बेंत खाना कोई हँसी-मजाक नहीं है, इसके अलावा सारे अफ़सर मुझसे सख्त नाराज थे। मैं अच्छी तरह जानता था कि इतनी मार मुझ से बर्दाश्त नहीं होगी, उसके बाद मैं ज़िन्दा नहीं बच सकूँगा। पहले तो मैंने ईसाई बनने की कोशिश की, मेरा ख्याल था कि शायद मुझे माफ़ी मिल जायगी। मेरे साथियों ने मुझे समझाया कि मज़हब तब्दील करने से कोई फ़ायदा नहीं होगा। मैंने सोचा कि कोशिश करने में कोई हर्ज नहीं। जो भी हो एक ईसाई के लिए उनके मन में ज़्यादा हमदर्दी होगी। खैर, मैं ईसाई बन गया और उन्होंने मेरा नाम अलेक्ज़ेन्डर रख दिया। लेकिन बेंतों की सज़ा ज्यों की त्यों बहाल रही, उसमें एक भी बेंत की कमी न हुई। मुझे बहुत बुरा लगा, मैंने सोचा, 'जरा ठहरो, मैं अकेला ही सबका मुक़ाबला करूँगा।' आप यकीन करेंगे अलेक्जान्द्र पेत्रोविच, कि मैंने उन सबको खूब छकाया! मैं मरने की एक्टिंग में माहिर था, सचमुच मरने में नहीं बल्कि यह दिखाने में कि फ़ौरन मेरे प्राण निकलने वाले हैं। मुझे सज़ा के लिए जेल से बाहर ले जाया गया। सब क़ैदी क़तार बाँधे खड़े थे। पहले हज़ार बेंतों से मुझे सख्त जलन हुई। मैं चीखने लगा। मुझे अगली बार जब फिर सज़ा के लिए ले जाया गया तो मैंने सोचा कि मेरा अन्त निकट आ गया है। मार-मार कर उन्होंने मेरी जान निकाल दी है। मेरी टाँगें लड़खड़ा रही

थीं, मैं ज़मीन पर गिर पड़ा, मेरी आँखें निर्जीव हो गईं, चेहरा नीला पड़ गया। मैंने साँस लेनी बन्द कर दी और मेरे मुँह में झाग आ गई। डाक्टर ने आकर कहा, 'यह फ़ौरन मर जाएगा' मुझे हस्पताल में ले जाया गया, जहाँ फ़ौरन मुझे होश आ गया। मुझे फिर दो बार सज़ा के लिए बुलाया गया। जेल के अफ़सर मुझसे सख्त नाराज़ थे। मैंने उन्हें फिर दोबारा धोखा दिया। दूसरी बार एक हज़ार बेंतों के बाद मैं बिल्कुल लाश-सा दिखाई देने लगा। जब चौथे हज़ार की बारी आई तो हर बेंत छुरे की तरह मेरे कलेजे में चुभने लगा। हर बेंत तीन बेंतों के बराबर था। उन लोगों के सिर पर वहशत सवार हो गई थी। वे कम्बख्त आख़िरी एक हज़ार बेंत, पहले तीन हज़ार से भी ज्यादा ख़ौफ़नाक थे। मगर सज़ा ख़त्म होने से कुछ पहले (दो सौ बेंत बाक़ी रह गए थे) मेरी मुर्दे की सी हालत न हो जाती तो वे ज़रूर बेंतों से ही मुझे ख़त्म कर देते। लेकिन मैंने अपना बचाव खुद किया। मैंने फिर मौत का बहाना किया और उन्हें धोखा दिया। वे फिर धोखे में आ गए। कैसे न आते? डाक्टर को यक़ीन हो गया कि मैं मर गया हूँ। इसलिए उन्होंने पूरी ताक़त से मुझ पर आख़िरी दो सौ वार किए। वे दो सौ बेंत दो हज़ार से भी बदतर थे। फिर भी वे मुझे ख़त्म न कर सके, डरने की कोई बात न थी! वे मुझे क्यों ख़त्म नहीं कर सके? इसलिए कि बचपन से ही मेरी पिटाई होती रही थी। इसी वजह से आज मैं जिन्दा नज़र आ रहा हूँ। आह, मुझे ज़िन्दगी में कितनी मार पड़ी है!" कहानी के अन्त में उसने करुण, स्वप्निल ढंग से कहा। लगता था, वह यह गिनने की कोशिश कर रहा है कि उसे कितनी मर्तबा मार पड़ चुकी है। क्षणभर की ख़ामोशी के बाद उसने कहा, "नहीं गिनने से कोई फ़ायदा नहीं। मुझे अनगिनत बार मार पड़ चुकी है।" मेरी तरफ देख कर वह हँस पड़ा। उसकी हँसी इतनी प्यारी थी कि मैं भी मुस्कराए बग़ैर न रह सका। "जानते हैं अलेक्ज़ान्द्र पेत्रोविच, अब रात को भी मुझे सपनों में यही दिखाई देता है कि मेरी पिटाई हो रही है। इसके अलावा मुझे कोई

सपना नहीं दिखाई देता।" वह अक़सर रात को इतनी ज़ोर से चिल्ला उठता था कि दूसरे क़ैदी उसे कोंच कर कहते थे, "किसलिए इतना चिल्ला रहे हो शैतान कहीं के।" वह पैंतालिस वर्ष का नाटा और मज़बूत देह का आदमी था। उसका स्वभाव बहुत अच्छा था और वह हर वक्त बेचैन रहता था। उसकी हर क़ैदी से पटती थी, हालांकि उसे चोरी का मर्ज़ था। अक्सर चोरी की वजह से उसकी पिटाई होती थी। खैर, चोरी तो सभी करते थे और सभी की पिटाई भी होती थी।

एक और बात यहाँ कहूँगा। मुझे हमेशा इस बात पर हैरानी होती थी की क़ैदी अपनी पिटाई और पीटने वाले की बात कितने हँसमुख और सहजभाव से करते थे, उनकी बात में बदले की भावना ज़रा भी नहीं रहती थी। उनकी कहानी में नफ़रत या प्रतिहिंसा की बू भी नहीं होती थी। इन कहानियों को सुनकर मेरा कलेजा छलनी हो जाता था और दिल की धड़कन बढ़ जाती थी, लेकिन वे लोग कहानी कहते जाते थे और हँसते जाते थे।

मिसाल के लिए 'म' ने मुझे अपनी सज़ा की कहानी सुनाई। वह कुलीन वर्ग का नहीं था। उसे पाँच सौ बेंतों की सज़ा मिली थी। मैंने औरों से भी यह बात सुन रखी थी, और मैंने खुद उससे पूछा कि यह बात सच थी या नहीं और यह सब कैसे हुआ। उसने बड़े संक्षेप में यह बात सुनाई, जैसे उसके दिल में कोई टीस उठ रही हो। वह मुझ से नज़रे नहीं मिला रहा था। उसका चेहरा लाल हो गया था। आधे मिनट बाद उसने मेरी तरफ़ देखा। उसकी आँखों में नफ़रत की चिंगारियाँ फूट रही थीं और उसके ओंठ क्षोभ से फड़क रहे थे। मुझे महसूस हुआ कि वह अतीत के इस पृष्ठ को कभी नहीं भूल पाएगा।

लेकिन क़रीब-क़रीब सारे क़ैदियों का दृष्टिकोण इससे अलग था। (अपवाद न हों, इसकी गारन्टी मैं नहीं दे सकता)। मैं कई बार सोचता था कि ऐसा हरगिज़ नहीं हो सकता कि उन्हें यह एहसास हो कि वे क़सूरवार हैं और उन्हें सज़ा मिलनी चाहिए, जबकि उन्होंने अपने वर्ग

के किसी आदमी को नहीं, बल्कि किसी अफ़सर को नुक़सान पहुँचाया है। अधिकांश क़ैदी अपने को बिल्कुल क़सूरवार नहीं समझते थे। मैं पहले भी कह चुका हूँ कि जब वे अपने वर्ग के किसी आदमी को नुक्सान पहुँचाते थे तब भी मैंने उनमें से किसी को पश्चाताप करते नहीं देखा। जहाँ तक अफ़सरों को नुक़सान पहुँचाने का सवाल था, उन जुर्मों को तो क़ैदी किसी गिनती में ही नहीं रखते थे। कई बार मुझे ऐसा महसूस होता था कि दूसरी क़िस्म के जुर्मों के प्रति उनका एक विचित्र व्यावहारिक और संकोचहीन दृष्टिकोण था। वे इनके लिए क़िस्मत को दोषी ठहराते थे और सोचते थे कि जो होना होता है होकर ही रहता है। यह दृष्टिकोण जान-बूझ कर नहीं, बल्कि अनचेते में ही बन गया था। इसने एक आस्था का रूप धारण कर लिया था। अफ़सरों के ख़िलाफ़ किसी भी जुर्म को आमतौर पर क़ैदी सही समझते हैं, यहाँ तक कि उनके मन में इस बारे में कोई शंका भी नहीं पैदा होती, हालाँकि व्यवहार में वे जानते हैं कि जेल के अधिकारी उनके जुर्मों के प्रति और ही क़िस्म का दृष्टिकोण रखते हैं, इसलिए उन्हें सज़ा मिलनी चाहिए, उसके बाद सारा हिसाब साफ़ हो जाता। इसमें पारस्परिक संघर्ष चलता है। मुजरिम जानता है, और उसे पक्का यक़ीन होता है कि उसके वर्ग के लोग उसे जुर्म से बरी कर देंगे, उसे पूरी तरह से दोषी नहीं ठहरायेंगे, बशर्ते कि जुर्म उसके बराबरी के लोगों, भाइयों और साथी किसानों के ख़िलाफ़ न हो। उसकी अन्तरात्मा साफ़ रहती है, इसलिए उसका नैतिक साहस बना रहता है जो कि सबसे ज़रूरी चीज़ होती है। उसे लगता है कि उसका कोई सहारा है, इसलिए उसे नफ़रत नहीं महसूस होती, बल्कि वह जुर्म को होनहार की बात समझता है। उसका ख्याल है कि इस जुर्म की शुरुआत उससे नहीं हुई, न ही यह आख़िरी जुर्म है। यह तो अनन्तकाल से चलते आए संघर्ष का एक हिस्सा है। कोई फ़ौजी व्यक्तिगत रूप से किसी तुर्क को नफ़रत नहीं करता, फिर भी तुर्क उसे छुरा मारता है, उस पर गोली चलाता है, उसकी धज्जियाँ उड़ाता है।

लेकिन मैंने जितने क़ैदियों से उनके जुर्म की कहानियाँ सुनीं, सबका दृष्टिकोण इतना सर्द और उदासीन नहीं था। मिसाल के लिए वे क्षोभ-पूर्ण लहजे में लेफ़्टीनेन्ट ज़ेरेव्यात्नीकोव का ज़िक्र किया करते थे, हालाँकि उनका क्षोभ बहुत मामूली था। जब मैं पहली बार हस्पताल में गया था, तो लेफ़्टीनेन्ट ज़ेरेव्यात्नीकोव से मेरा परिचय हुआ था— व्यक्तिगत तौर पर नहीं बल्कि क़ैदियों की कहानियों के ज़रिये से। बाद में जब जेल में उसकी ड्यूटी लगी तो मैंने अपनी आँखों से उसे देखा। वह तीस बरस का लंबा हट्टा-कट्टा आदमी था। उसके गाल लाल और फूले हुए थे। उसके दाँत सफ़ेद थे और हँसी नोज़द्रियोव[1] जैसी थी। उसके चेहरे से साफ़ ज़ाहिर था कि वह भावशून्य और पत्थर दिल आदमी है। जब सज़ा पर उसकी ड्यूटी होती थी तो वह बड़े चाव से क़ैदियों को कोड़ों और बेंतों से पिटवाता था। मैं यहाँ यह भी बता दूँ कि मैं उस आदमी को राक्षस समझता था। सारे क़ैदियों की भी यही राय थी। उस ज़माने में, जिसे गुज़रे अभी बहुत वक्त नहीं हुआ 'जिसकी परम्परा अभी तक ताज़ी है', यकीन नहीं होता ऐसे और भी अफ़सर थे जो बड़ी ईमानदारी और तत्परता से अपना फ़र्ज़ अदा करते थे। आमतौर पर उन्हें सज़ा देने में आनन्द नहीं मिलता था। लेकिन लेफ़्टीनेन्ट ज़ेरेव्यात्नीकोव को सज़ा देने में हार्दिक तृप्ति होती थी। उसे सज़ा की कला से प्रेम था और वह सज़ा को एक ललित कला समझता था। रोमन साम्राज्य के घिसे-पिटे अभिजात वर्ग के दुराचारियों की तरह अपनी जड़ आत्मा को उत्तेजित करने के लिए वह तरह-तरह के सूक्ष्म तरीके और अप्राकृतिक चालें ईजाद किया करता था।

मान लीजिए किसी क़ैदी को सज़ा के लिए लाया जाता है। ज़ेरे-व्यात्नीकोव कमान्डिग अफ़सर है। हाथ में मोटे बेंत लिए लोगों की क़तारों को देखने मात्र से ही लेफ़्टीनेन्ट के हृदय को स्फूर्ति मिलती है।

---

१. गोगोल की रचना 'मृत आत्माएँ' का एक पात्र।

वह प्रसन्नभाव से सिपाहियों के बीच घूमता है और बार-बार ज़ोर दे कर कहता है कि हर आदमी को पूरी तरह ईमानदारी से अपना फ़र्ज़ अदा करना होगा, वरना…लेकिन सिपाहियों को यह बताने की जरूरत नहीं कि 'वरना' का क्या अर्थ है। फिर क़ैदी को सामने लाया जाता है, अगर उसे लेफ़्टीनेन्ट के बारे में कुछ भी पता नहीं है तो लेफ़्टीनेन्ट एक नई चाल खेलता है—उसे ऐसी सैकड़ों चालें आती हैं, इन चालों को ईजाद करने में उसका दिमाग़ नहीं थकता। जिस वक्त क़ैदी की पीठ नंगी की जाती है और उसके हाथ बंदूक की हत्थियों से बांध दिए जाते हैं और सार्जेन्ट उसे "हरी गली" में से घसीट कर ले जाते हैं तो आम-तौर पर क़ैदी बड़े करुण, अश्रुपूर्ण स्वर में कमान्डिग अफ़सर से याचना करता है कि वह तरस खाकर उसकी सज़ा हल्की कर दे और अना-वश्यक कठोरता बरत कर सजा बढ़ाए नहीं। बेचारा बदनसीब चिल्ला कर कहता है, "योर ऑनर, मुझ पर तरस खाइए! मुझे अपना बच्चा समझिए! योर ऑनर, मैं जिन्दगी भर आपके लिए दुआ माँगता रहूँगा। मुझे तबाह मत कीजिए। मुझ पर तरस खाइए।"

लेफ़्टीनेण्ट यही तो चाहता था। कुछ देर रुककर वह भावुक स्वर में क़ैदी से कहने लगता,

"लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ, मेरे दोस्त? मैं नहीं बल्कि क़ानून तुम्हें सजा दे रहा है।"

"योर ऑनर! सब कुछ आपके हाथ में है। मुझ पर तरस खाइए!"

"तुम्हारा ख्याल है कि मुझे तुमसे हमदर्दी नहीं? तुम सोचते हो कि तुम्हें पिटते देखकर मुझे खुशी होगी? मैं भी इन्सान हूँ। क्यों तुम्हारा क्या ख्याल है, मैं इन्सान हूँ या नहीं?"

"योर ऑनर, हम सब जानते हैं कि आप हमारे पिता हैं और हम आपके बच्चे हैं। मेरे साथ पिता बनकर सलूक कीजिये!" क़ैदी के मन में उम्मीद जागती है और वह करुण स्वर में याचना करता है।

"लेकिन तुम खुद ही फ़ैसला करो, मेरे दोस्त—तुम अक्लमन्द आदमी हो। मैं जानता हूँ कि इन्सानियत के नाते मुझे तुम पर तरस खाना चाहिए और तुम्हारे जैसे गुनाहगार का भी लिहाज़ करना चाहिए।"

"योर ऑनर, आपकी ज़बान से पवित्र सत्य निकल रहा है।"

" हाँ, चाहे तुम कितने ही गुनाहगार क्यों न हो, मुझे तरस दिखाना चाहिए। लेकिन यह सब मैं नहीं, क़ानून कर रहा है। ज़रा सोच कर देखो! मुझे अपने देश और ईश्वर के प्रति भी अपना फ़र्ज़ निभाना है! अगर मैं क़ानून की सख्ती कम कर दूँ तो मेरे सिर पर कितना बड़ा गुनाह चढ़ेगा, ज़रा यह तो सोचो!"

"योर ऑनर!"

"लेकिन हाँ, तुम्हारी खातिर मैं क़ानून की सख्ती कम कर दूँगा। जानता हूँ कि यह ग़लत काम है, लेकिन ऐसा ही सही······इस बार मैं तुम पर तरस दिखाऊँगा। तुम्हारी थोड़ी पिटाई करके ही छोड़ दूँगा। लेकिन मानलो, अगर इससे तुम्हें नुक़सान हुआ? अगर इस बार तुम पर तरस खाकर मैंने तुम्हें छोड़ दिया, तो तुम फिर मुझमें तरस जगाने की उम्मीद से कोई और जुर्म कर बैठोगे, फिर? इस बात से मेरी अन्तरात्मा को तकलीफ़ होगी।"

"योर ऑनर! मैं अब किसी दोस्त या दुश्मन को हाथ नहीं लगाऊँगा। मैं उस पवित्र पिता के सिंहासन के सामने क़सम···"

"ठीक है, ठीक है! लेकिन तुम क़सम खाते हो कि आगे से ऐसा कोई काम नहीं करोगे?"

"अगर करूँ तो मुझे जान से मर डालिएगा। अगले जहान में मुझे कभी···"

"क़समें मत खाओ। यह भी एक गुनाह है। मैं तुम्हारी बात पर यक़ीन करता हूँ। तुम मुझे वचन देते हो?"

"योर ऑनर!"

"अच्छा, तो मैं तुम्हें इसलिए बख्शता हूँ क्योंकि तुम यतीम हो और आँसू बहा रहे हो। यतीम हो न !"

"योर ऑनर, मैं दुनिया में अकेला हूँ। माँ-बाप कोई नहीं..."

"खैर तुम्हारे यतीम आँसुओं की खातिर तुम्हें बख्श दूँगा, लेकिन याद रखो यह आखिरी मौका है...इसे ले जाओ" लेफ़्टीनेन्ट ऐसी नर्म आवाज़ में हुक्म देता है कि क़ैदी की समझ में नहीं आता कि वह ऐसे मेहरबान आदमी के लिए कैसे दुआ माँगे।

लेकिन खौफ़नाक जलूस आगे चलता है। क़ैदी को आगे ले जाया जाता है; नगाड़ा ज़ोर से बजने लगता है; बेंत तड़ातड़ बरसने लगते हैं।

"इसे मज़ा चखाओ !" ज़ेरेब्यात्नीकोव ज़ोर से चिल्लाकर हुक्म देता है, "चिथड़े उड़ा दो। इसकी चमड़ी उधेड़ दो ! जला दो ! ख़ूब ज़ोर से मारो ! और ज़ोर से ! यतीम ! और ज़ोर से ! बदमाश कहीं का !"

सिपाही पूरी ताक़त से क़ैदी को पीटते हैं। बेचारा बदनसीब चीख़ उठता है। उसकी आँखों के आगे चिन्गारियाँ दिखाई देने लगती हैं। लेफ़्टीनेन्ट क़ैदी के पीछे-पीछे भागता है, हँसी के मारे उसका पेट फटने लगता है, उससे खड़ा भी नहीं हुआ जाता। बेचारे क़ैदी पर तरस आने लगता है। लेफ़्टीनेन्ट खुश है। उसका मनोरंजन हो रहा है। हँसी के ठहाकों के बीच उसकी आवाज सुनाई देती है।

"इसे भून डालो ! जला दो ! बदमाश ! यतीम है !......"

या लेफ़्टीनेन्ट एक नई चाल ईजाद करता था। क़ैदी जब फिर रिरियाने लगे तो लेफ़्टीनेन्ट मुँह सिकोड़े या नाटक रचे बग़ैर स्पष्टवादिता पर आ जाता था।

"भले आदमी, मैं तुम्हें क़ायदे से सज़ा दूँगा, क्योंकि तुम्हें सज़ा मिलनी चाहिए। मैं तुम्हारे लिए एक बात कर सकता हूँ। तुम्हें बंदूक के कुंदों से नहीं बाँधा जाएगा। तुम अकेले ही जाओ, लेकिन नये ढंग से। जितनी तेज़ी से भाग सकते हो सिपाहियों की क़तारों से निकल

कर भागो। तुम्हारी पीठ पर हर बेंत पड़ता जाएगा, लेकिन तुम जल्द ही अपनी सज़ा ख़त्म कर लोगे। क्यों तुम्हारा क्या ख्याल है ? आजमा कर देखोगे ?"

क़ैदी विस्मित और संदिग्ध भाव से लेफ़्टीनेन्ट की बातें सुनता है और हिचकिचाता है। फिर वह मन ही मन सोचता है, 'क्या पता हो सकता है मुझे कम दर्द महसूस हो। मैं पूरी ताक़त से भागूंगा। इस तरह से मेरा दर्द एक चौथाई रह जाएगा और मुमकिन है कि सारे बेंत मुझे लगें भी न।' वह कहता है :

"मुझे मंज़ूर है, योर ऑनर।"

"मुझे भी मंज़ूर है। भागना शुरू करो ! होशियार ! जल्दी !" लेफ़्टीनेन्ट सिपाहियों को हुक्म देता है, हालांकि वह पहले से जानता है, कि उस गुनाहगार की पीठ पर एक भी बेंत नहीं चूकेगा; हर सिपाही अच्छी तरह जानता है कि अगर उसका वार चूक गया तो उसका क्या हश्र होगा।

क़ैदी पूरी ताक़त से "हरी गली" की तरफ़ भागता है, लेकिन वह अभी पन्द्रहवें सिपाही तक भी नहीं पहुँचता कि उसकी पीठ पर बिजली की तेज़ी से तड़ातड़ बेंत पड़ने लगते हैं, लगता है ज़ोर से नगाड़ा बज रहा हो। बेचारा क़ैदी चीख़कर गिर पड़ता है, जैसे किसी ने उसे तलवार से काट दिया हो, या गोली मार दी हो।

"नहीं योर ऑनर ! मुझे पहले जैसी सज़ा ज़्यादा पसन्द है," क़ैदी आहिस्ता से उठ खड़ा होता है। उसका चेहरा भय से पीला पड़ जाता है।

ज़ेरेब्यात्नीकोव, जो पहले से ही जानता है कि उसकी चाल का क्या नतीजा निकलेगा ठहाका मारकर हँसने लगता है। लेकिन लेफ़्टीनेन्ट के मनोरंजन के सारे साधनों और उसके बारे में लोग क्या कहते थे, उन सारी बातों को यहाँ बताने की कोई ज़रूरत नहीं है।

लेफ़्टीनेन्ट स्मेकेलोव के बारे में, जो मेजर के आने से पहले हमारी

जेल का कमांडिंग अफ़सर था, और ही क़िस्म की कहानियाँ मशहूर थीं, हालांकि क़ैदी ज़ेरेब्यात्नीकोव की बातें बिना उदासीन भाव से सुनाते थे, फिर भी उसकी हरकतें उन्हें नापसन्द थीं, वे ज़ेरेब्यात्नीकोव से दुखी रहते थे। लेकिन लेफ़्टीनेन्ट स्मेकेलोव को ख़ुशी से याद किया जाता था। उसे सज़ा देना ख़ास पसन्द नहीं था। उसमें ज़ेरेब्यात्नीकोव की सी कोई बात नहीं थी, लेकिन इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि वह क़ैदियों को बेंत मारने के ख़िलाफ़ था। मगर हक़ीक़त यह है कि उसके बेंतों को भी क़ैदी प्यार और संतोष से याद करते थे। लेफ़्टीनेन्ट ने क़ैदियों को इतना ख़ुश कर लिया था, लेकिन कैसे? वह इतना लोकप्रिय कैसे हो गया था? क्या यह सच है कि तमाम रूसी जनता की तरह क़ैदी भी हमदर्दी और दयालुता के एक शब्द को सुनकर पिछली सारी यंत्रणाएँ भूल जाते हैं? मैं तो हक़ीक़त बयान कर रहा हूँ। अपनी तरफ से मैंने कोई टिप्पणी नहीं जोड़ी। क़ैदियों को ख़ुश करना और उनमें लोकप्रियता प्राप्त करना कोई मुश्किल काम नहीं था। लेकिन लेफ़्टीनेन्ट स्मेकेलोव ने एक ख़ास क़िस्म की लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी। यहाँ तक कि उसके सज़ा देने के ढंग को भी क़ैदी स्नेहपूर्वक याद किया करते थे। "हमें किसी पिता की ज़रूरत नहीं थी" क़ैदी ठंडी सांस लेकर कहते, और पुराने कमांडिंग अफ़सर स्मेकेलोव की तुलना मेजर से करते हुए कहते, "वह बड़ा नेक और ख़ुशमिज़ाज आदमी था।"

स्मेकेलोव शायद सचमुच अपने ढंग का नेक और अच्छे स्वभाव का आदमी था। लेकिन कई बार ऐसा भी होता है कि नेक और सहृदय अफ़सर को सब नापसन्द करते हैं और उसकी हँसी उड़ाते हैं। स्मेकेलोव तमीज़ से पेश आता था, इसलिए क़ैदी उससे अपनापा महसूस करते थे तमीज़ से पेश आना भी एक महान कला है या सही ढंग से कहा जाए तो एक सहज वृत्ति है, जिसे तमीज़ वाला आदमी ख़ुद भी नहीं जानता। अजब बात तो यह है कि ऐसे कुछ लोग कतई भले नहीं होते फिर भी कभी-कभी उन्हें बहुत लोकप्रियता मिल जाती है। वे अपने

शासित लोगों से न नफ़रत करते हैं न उन्हें हिकारत की नज़र से देखते हैं—मेरे ख्याल में यही उनकी लोकप्रियता का रहस्य है। इन लोगों के व्यवहार में आभिजात्य या अहंकार की बू नहीं होती, उनके चरित्र में किसानपन की पुट रहती है। और अपनी क़सम! आम लोग इस बात को कितनी जल्दी सूँघ लेते हैं? इसे पाने के लिए वे कौन सी क़ीमत अदा नहीं कर सकते? वे दयालु से दयालु आदमी की बजाय सख्त आदमी को ज़्यादा पसन्द करते हैं, बशर्ते सख्त आदमी में उन्हीं जैसा ग्रामीण-सुलभ सीधापन हो। और अगर सचमुच ऐसे आदमी का स्वभाव अच्छा हुआ, चाहे अपने ढंग से ही सही, तब तो उसे बेशकीमती हीरा ही समझिए।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ लेफ़्टीनेन्ट स्मेकेलोव कभी-कभी बहुत सख्ती से सज़ा देता था, लेकिन उसे सख्ती बरतना भी आता था। इस बात पर लोगों के मन में क्षोभ होना तो दूर रहा वे ऐसे मौक़ों पर किए उसके मज़ाक बड़ी ख़ुशी और हँसी से याद किया करते थे; मेरे ज़माने में भी, जबकि उन बातों को बीते बहुत अरसा हो चुका था। लेफ़्टीनेन्ट ज़्यादा मज़ाक नहीं करता था, उसमें कलात्मक कल्पना की कमी थी। दरअसल उसे सिर्फ़ एक ही मज़ाक आता था, जो पूरे एक वर्ष तक उसे लोकप्रिय बनाये रखता था। शायद उस मज़ाक का आकर्षण उसके अनूठेपन में था। उसके मज़ाक में सादगी रहती थी। मान लीजिए, क़ैदी को कोड़ों की सज़ा के लिए लेफ़्टीनेन्ट के सामने लाया जाता है। स्मेकेलोव हँसता हुआ आता है और क़ैदी से मज़ाक करता है। वह क़ैदी से इधर-उधर के व्यक्तिगत सवाल पूछता है, किसी ख़ास उद्देश्य से नहीं, उससे दोस्ती करने के लिए नहीं। बल्कि इसलिए कि उसे क़ैदी की ज़िंदगी में सचमुच की दिलचस्पी है। स्मेकेलोव के लिए एक कुर्सी और भोजपत्र के बेंत लाए जाते हैं। वह बैठकर अपना पाइप सुलगाता है—उसके पास बहुत लम्बा पाइप था। क़ैदी मिन्नत करता है……। स्मेकेलोव कहता है, "नहीं भाई लेट जाओ……इन बातों का कोई फ़ायदा

नहीं ।" क़ैदी ठंडी सांस लेकर लेट जाता है । "आओ मेरे दोस्त—तुम्हें यह प्रार्थना क्या मुँहज़बानी याद है ?"

"क्यों नहीं याद होगी, योर ऑनर ! हम ईसाई हैं, बचपन में ही यह प्रार्थना सीखी थी ।"

"अच्छा तो इस प्रार्थना को दुहराओ ।"

अब क़ैदी समझ जाता है कि उसे क्या कहना चाहिए । वह पहले से ही जानता है कि उसके जवाब का क्या नतीजा होगा, क्योंकि यह चाल पूरे तीस दफ़ा दूसरे क़ैदियों के साथ खेली जा चुकी है । ख़ुद स्मेकेलोव भी जानता है कि क़ैदी को सब कुछ मालूम है । वह यह भी जानता है कि हाथ में बेंत लेकर खड़े हुए सिपाहियों ने भी यह मज़ाक कभी का सुन रखा है, फिर भी लेफ़्टीनेन्ट इस मज़ाक को दुहराता है—यह मज़ाक उसके दिमाग़ में घर कर गया है । शायद इसकी वजह सिर्फ़ यही है कि ख़ुद उसी ने मज़ाक की ईजाद की थी । यह एक सृष्टा का अहंकार था ।

क़ैदी प्रार्थना करने लगता है, सिपाही हाथ में बत लेकर हुक्म की इन्तज़ार में खड़े हो जाते हैं । स्मेकेलोव आगे की तरफ़ झुकता है, अपना हाथ ऊपर उठाता है, सिगरेट फेंक देता है और प्रार्थना के चिरपरिचित शब्द की इन्तज़ार करता है । जब मशहूर प्रार्थना की यह पंक्तियाँ आतीं हैं, "हे ईश्वर तुम्हारे साम्राज्य का आना''''''", तो लेफ़्टीनेन्ट ज़ोर से चिल्लाकर कहता है "ठहरो!" और हर्षोन्माद से एक सिपाही को इशारा करके कहता है, 'अब तुम इसे मज़ा चखाना !"

हँसते-हँसते लेफ़्टीनेन्ट का बुरा हाल हो जाता है । आस-पास खड़े लोग भी मुस्करा देते हैं । जो आदमी बेंतों से पीटता है वह भी मुस्करा देता है । यहाँ तक कि क़ैदी को भी इन शब्दों को सुनकर हँसी आ जाती है । सड़सड़ाती हुई बेंत उस्तरे की धार की तरह क़ैदी की पीठ में काटती है । स्मेकेलोव को ख़ुशी हो रही है, सिर्फ़ इसलिए क्योंकि उसने 'आना' के साथ 'चखाना' की तुकबन्दी जोड़ ली है ।

स्मेकेलोव सन्तुष्ट भाव से वहाँ से चला जाता है । जिस आदमी की

पिटाई हुई है वह भी अपने से और स्मेकेलोव से सन्तुष्ट है, आध घण्टे बाद वह हँस-हँस कर जेल में अपने साथियों को बताएगा कि स्मेकेलोव ने आज इकत्तीसवीं बार अपने मजाक को दुहराया है, बड़ा ही खुश-मिज़ाज आदमी है ! उसे मजाक बहुत पसन्द है !

यहाँ तक कि खुशमिज़ाज लेफ़्टीनेन्ट की बातें करते-करते क़ैदी मूर्खतापूर्ण भावुकता का प्रदर्शन कर बैठते थे ।

कोई क़ैदी मुस्कराकर पुरानी बातों को याद करते हुए कहता, "कभी-कभी जब हम उसके घर के नज़दीक से गुज़रते थे तो लेफ़्टीनेन्ट खिड़की के पास बैठा नजर आता था, ड्रेसिंग गाउन में चाय और सिगरेट पीते हुए । मैं टोपी उतार कर सलाम करता तो वह पूछता "कहाँ जा रहे हो अक्स्योनोव ?" "काम पर मिहाईल वेसीलिच । सबसे पहले मुझे वर्करूम में जाना है ।" वह हँस पड़ता । बड़ा ही खुश-मिज़ाज था, हँसमुख !

"वैसा आदमी अब जेल में कभी नहीं नजर आएगा ।" श्रोताओं में से कोई कहता ।

हस्पताल[1]–३

अभी मैंने कोड़ों की सज़ा का और उन अफ़सरों का ज़िक्र किया जिनकी देखरेख में पिटाई होती थी। हस्पताल में आकर ही मुझे नज़दीक से उन बातों का पता चला, जिन्हें पहले मैंने औरों की ज़बानी ही सुना था। हमारे शहर के और आसपास के इलाक़ों की डिसिप्लिनरी और दूसरी बटालियनों के क़ैदी, जिन्हें "बेंतो" की सज़ा मिलती थी हमारे हस्पताल के दो वार्डों में लाए जाते थे। शुरू-शुरू में, जब मैं आसपास की हर चीज़ को ग़ौर से देखता था, उन क़ैदियों को देखकर जिन्हें सज़ा मिल चुकी थी या मिलने वाली थी, मुझ पर बड़ा गहरा असर पड़ता था। मुझे बड़ी उत्तेजना महसूस हुई, ये बातें मेरे दिल पर छा गईं और मैं खौफ़ज़दा हो गया। मुझे याद है, उस वक्त मैं अधीर भाव से इन नये तथ्यों का निरीक्षण करता था, इस विषय पर क़ैदियों की बातचीत और कहानियाँ सुनता था, उनसे सवाल पूछता था और नतीजे निकालने की कोशिश करता था। और बातों के अलावा सज़ाओं की मियाद, सख्ती और तरीक़ों के बारे में, और सज़ा के प्रति क़ैदियों का दृष्टिकोण जानने की मेरे मन में बहुत इच्छा थी। कोड़ों की सज़ा से पहले क़ैदी की मनोवैज्ञानिक स्थिति की मैं कल्पना किया करता था। मैं पहले भी बता चुका हूँ कि सज़ा से पहले हर क़ैदी में, चाहे वह कितनी ही बार और कितनी ही सख्त सज़ा क्यों न भुगत चुका हो, हठात् एक दुर्दमनीय आतंक पैदा हो जाता है, जो उसकी सारी नैतिकता पर छा जाता है। इसके बाद के कई बरसों में भी मैंने ऐसे क़ैदियों को देखा

---

१. यहाँ कोड़ों की सज़ा के बारे में मैं जो बातें लिख रहा हूँ वे मेरे ज़माने में सच थीं। अब कहा जाता है कि जेलों की हालत बदल गई है और दिनों-दिन बदल रही है।

जिनकी पीठों के ज़ख्म अभी पूरी तरह भरते भी नहीं थे कि अगले ही दिन उन्हें फिर बेंत खाने के लिए जाना पड़ता था। सजा को दो हिस्सों में बाँटने का फ़ैसला डाक्टर करता है, जो सजा के वक्त मौजूद रहता है। अगर कोड़ों की या बेंतों की संख्या इतनी ज्यादा होती है कि क़ैदी एक ही बार में बर्दाश्त नहीं कर सकता तो सज़ा को दो या तीन हिस्सों में बाँट दिया जाता है। क़ैदी की ज़िन्दगी को ख़तरा होगा या नहीं इसका फ़ैसला डाक्टर ही करता है। आम तौर पर क़ैदी एक बार में पाँच सौ, हज़ार यहाँ तक की पन्द्रह सौ कोड़े और बेंत बर्दाश्त कर सकता है,लेकिन अगर उसे दो या तीन हज़ार कोड़ों की सज़ा मिली हो तो सज़ा को दो या तीन हिस्सों में बाँटना ज़रूरी हो जाता है। जो क़ैदी पीठ के ज़ख्मों के भरने के बाद सज़ा का दूसरा हिस्सा भुगतने जाते थे वे उदास और क्षुब्ध नज़र आते थे। हस्पताल से जाने के दिन और सज़ा से एक दिन पहले वे किसी से बातचीत नहीं करते थे। उनकी अक्ल मंद हो जाती थी और वे खोए-खोए रहते थे। ऐसी हालत में इन्सान बातचीत नहीं करना चाहता और ज्यादातर खामोश रहता है। क़ैदी खुद भी उससे बातचीत नहीं करते और सज़ा का ज़िक्र करने की कोशिश नहीं करते। न फ़िज़ूल की कोई बात होती है न ही तसल्ली देने की कोशिश की जाती थी; क़ैदी के लिए यही बेहतर रहता था।

कुछ अपवाद भी होते हैं। मिसाल के लिए ओर्लोव दूसरे ही क़िस्म का आदमी था, जिसकी कहानी मैं पहले ही सुना चुका हूँ। सज़ा के आधे बेंत खाने के बाद उसे सिर्फ़ यही शिकायत रहती थी कि उसकी पीठ के ज़ख्म भरने में नहीं आ रहे और उसे हस्पताल से छुट्टी नहीं मिल रही। वह जल्द से जल्द सज़ा का दूसरा हिस्सा भी भुगत लेना चाहता था और चाहता था कि उसे निर्वासितों की बस्ती में भेज दिया जाए, ताकि वहाँ पहुँचने से पहले वह रास्ते में ही भाग निकले। लेकिन इस आदमी के उद्देश्य ने उसके साहस को क़ायम रखा था, ईश्वर जाने उसके मन में क्या बात थी। वह बड़ा ही प्राणवान और ओजस्वी आदमी था। वह इस वक्त

खुश और उत्तेजित था, हालाँकि वह अपनी भावनाओं को छिपाने की कोशिश कर रहा था। सजा का पहला हिस्सा भुगतने से पहले उसे लगा था कि जेल वाले उसे ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे, और वह बेंत खाते-खाते दम तोड़ देगा। जब उसका मुक़दमा चल रहा था तब भी उसके कानों में अफ़वाहें पड़ी थीं कि उसके साथ सख़्ती बरती जाएगी। वह मरने के लिए तैयार हो गया था। लेकिन सजा का पहला हिस्सा भुगतने के बाद उसकी चेतना फिर लौट आई थी। उसे अधमरी हालत में हस्पताल लाया गया था। मैंने अपनी ज़िन्दगी में किसी को इतना ज़ख़्मी नहीं देखा था, लेकिन वह अपने दिल में यह खुशी और उम्मीद लेकर आया था कि वह ज़िन्दा रहेगा और वे सारी अफ़वाहें झूठी साबित होंगी। बेंतों की मार से ज़िन्दा बचने के बाद अब लम्बी क़ैद के बाद वह खुली सड़क, आज़ादी, मैदानों और जंगलों के सपने देखने लगा था। उसे उम्मीद थी कि वह ज़रूर भाग निकलेगा। हस्पताल से छुट्टी पाने के दो दिन बाद जब वह सज़ा का दूसरा हिस्सा भुगतने गया तो हस्पताल के बिस्तर में ही उसकी मौत हो गई। ख़ैर, यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ।

लेकिन वही क़ैदी जो सजा के ख़ौफ़ से दिन-रात उदास रहते थे बड़ी बहादुरी से अपनी सजा झेल लेते थे। सजा पाने के बाद पहली रात भी मैंने किसी की चीख़ नहीं सुनी, चाहे उसी कितनी बेरहमी से ही क्यों न पीटा गया हो; आमतौर पर लोगों को दर्द बर्दाश्त करना आता है। मैंने उन लोगों से दर्द के बारे में बहुत से सवाल पूछे थे। मैं निश्चित रूप से जानना चाहता था कि उन्हें कितनी तक़लीफ होती है और वह दर्द कैसा होता है। मैं नहीं जानता कि यह जिज्ञासा किसलिए मेरे मन में उठी थी लेकिन एक बात मुझे याद है कि यह निकम्मा कौतूहल नहीं था। मैं फिर कहूँगा कि मैं परेशान और दुखी था। लेकिन मुझे किसी से संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता था। सब सिर्फ़ इतना ही बताते थे कि चमड़ी जलती है, आग की तरह जलन महसूस होती है। बस इतना ही। क़ैद के शुरू के दिनों में जब 'म' से मेरा परिचय अधिक गहरा हो गया तो

मैंने उससे भी यही सवाल किया। उसने कहा, "पीठ पर जैसे आग जलती है और लगता है जैसे भट्टी के आगे पीठ को भूना जा रहा हो।" दरअसल सभी क़ैदी यही कहते थे। लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है, उस वक्त मैंने एक अजब चीज़ देखी थी। वह सही थी या नहीं, इसकी क़सम खाने के लिए मैं तैयार नहीं, हालांकि उस वक्त सारे क़ैदियों की जो राय थी वह तो इस बात की पुष्टि ही करती है। क़ैदियों का कहना था कि भोजवृक्ष की छड़ी से बदतर सज़ा रूस-भर में नहीं मिल सकती। सरसरी निगाह से देखने पर शायद यह बात हास्यास्पद और नामुमकिन मालूम होगी। पाँच सौ, यहाँ तक कि चार सौ सोटियाँ खाने के बाद इन्सान मर जाता है, पाँच सौ से ज्यादा की सज़ा हो तब तो उसकी मौत क़रीब-क़रीब निश्चित ही है। सख्त से सख्त आदमी भी हज़ार के बाद ज़िन्दा नहीं रह सकता। लेकिन मामूली बेंतों के पाँच सौ वारों के बाद भी ज़िन्दगी पर आँच नहीं आती। तन्दुरुस्त और साधारण ताक़त वाले आदमी को दो सौ बेंत भी नहीं खत्म कर सकते। सब क़ैदी यही कहते थे कि भोजपत्र की छड़ी बेंतों से कहीं बदतर है। उन्होंने बताया, "भोजपत्र खाल को छील देता है, इससे ज्यादा यन्त्रणा होती है।" इसमें कोई शक नहीं कि भोजपत्र की टहनी की मार बेंतों की मार से ज्यादा दर्दनाक होती है। उनसे स्नायुविक उत्तेजना भी बढ़ जाती है, दर्द बर्दाश्त नहीं होता। अब जेलों की कैसी हालत है, यह मैं नहीं जानता। लेकिन आज से कुछ ही बरस पहले ऐसे लोग मौजूद थे, जिन्हें कोड़े मार कर उतनी ही खुशी होती थी जितनी कि मारक्विज़ द' स्लेद और मारक्विज़ द' ब्रिनविलियर्ज़ को होती थी। मेरा ख्याल है कि इस संवेदन में एक मधुर और व्यथापूर्ण सुरसुरी रहती होगी, जिससे ऐसे सज्जन पुलकित हो जाते होंगे। दुनिया में ऐसे लोग भी होते हैं जो शेरों की तरह खून के प्यासे रहते हैं। अगर किसी को एक बार भी किसी दूसरे आदमी के शरीर और आत्मा पर हकूमत करने का तजुर्बा हुआ है—अपने किसी साथी इन्सान पर जो उसी की तरह हाड़-मांस का बना है और ईसा के

उपदेश के अनुसार सगे भाई की तरह है; एक बार अगर किसी को ख़ुदा के साँचे में ढले हुए दूसरे इन्सान को बेइज्ज़त करने का चस्का लग जाता है, तो उसे ज़रूर अनजाने में ही अपने संवेदनों पर भी क़ाबू नहीं रहता। जुल्म एक आदत है। आख़िर में यह आदत एक मानसिक रोग का रूप धारण कर सकती है और कर लेती है। मेरा ख्याल है कि अच्छे से अच्छा आदमी भी इस आदत से वहशी और हृदयहीन बन सकता है। ख़ून और ताक़त का अपना एक नशा होता है। वहशत और दुराचार धीरे-धीरे पनपते हैं। इन्सान का दिल और दिमाग़ बहुत-सी असाधारण और पैशाचिक चीज़ों को बर्दाश्त कर सकता है, धीरे-धीरे उन्हीं बातों में रस मिलने लगता है। इन्सान और नागरिक सदा के लिए निष्ठुर और क्रूर हो जाता है। उसके लिए मानवीय शालीनता, पश्चाताप और नए नैतिक पुनर्जन्म की तरफ़ लौटना नामुमकिन हो जाता है। इसके अलावा ऐसे जुल्म की मिसाल और सम्भावना सारे समाज की चेतना को कलुषित और विकृत बना देती है। ऐसी ताक़त दूसरों के लिए एक प्रलोभन बन जाती है। हमारा समाज ऐसी घटनाओं के प्रति उदासीनता दिखाता है। उसकी जड़ें तो पहले से ही दूषित हैं। एक इन्सान को यह हक़ हो कि वह दूसरे इन्सान को जिस्मानी सज़ा दे यह हमारे सामाजिक जीवन का सबसे विषाक्त फोड़ा है; यही वह पाशविक शक्ति है जो समाज में नागरिकता की चेतना के हर बीजाणु को नष्ट कर देती है, सामाजिकता की भावना को अन्त में तबाह कर देती है।

पेशेवर ज़ालिम से समाज को ग्लानि होती है, लेकिन अगर ज़ालिम कुलीन वर्ग का हो तो ऐसी भावना नहीं उठती। हाल ही में इसके विपरीत एक नये सिद्धान्त ने जन्म लिया है, लेकिन उसका अस्तित्व अभी किताबों में ही है। इस सिद्धान्त को व्यक्त करने वाले लोग भी अपने भीतर सत्ता पाने की लालसा को नहीं दबा पाए। हर कारख़ानेदार और पूँजीपति जब यह सोचता है कि उसके मज़दूर और उनके परिवार आजीविका के लिए उसी पर निर्भर करते हैं तो उसे एक सुखद अनुभूति

होती होगी। यह सच है, कोई भी पीढ़ी अतीत से विरासत में मिले संस्कारों को जल्दी से नहीं छोड़ सकती। जो चीज़ ख़ून में हो यानी जो भावना उसे माँ के दूध के साथ ही मिली है, उसे जल्दी नहीं भूला जा सकता, न ही कभी इतनी आकस्मिक तब्दीलियाँ आ सकती हैं। अपने क़सूरों को और अपने पूर्वजों के गुनाहों को क़बूल करना तो मामूली बात है, बहुत मामूली। लेकिन उन गुनाहों की आदत को जड़ से उखाड़ देना चाहिए, यह काम इतना आसान नहीं है।

मैंने ज़ालिम का ज़िक्र किया है। हर आधुनिक आदमी में ज़ालिम ज़ुल्म की प्रवृत्ति बीजरूप में मौजूद है। लेकिन उसकी पाशविक वृत्तियाँ एक साथ नहीं उभरतीं, अगर उभरकर वे उसके और गुणों पर छा जाती हैं तो वह एक घृणित और ख़ौफ़नाक जीव बन जाता है। ज़ालिम भी दो क़िस्म के होते हैं। कुछ जान-बूझकर दूसरों को सताते हैं और कुछ ज़रूरत से लाचार होकर अनजाने में। जान-बूझकर किसी को सताने वाला आदमी ज्यादा नीच और पतित होता है हालाँकि दूसरे क़िस्म के ज़ालिम से लोग नफ़रत करते हैं और न जाने क्यों एक रहस्यमय आतंक से ग्रस्त हो जाते हैं। एक ज़ालिम से इतना आतंक वह भी अन्धविश्वास-पूर्ण आतंक और दूसरे ज़ालिम के प्रति उदासीनता, यहाँ तक कि समर्थन दिखाया जाता है, ऐसा क्यों?

इसकी बड़ी अजीबोग़रीब मिसालें हैं। मैंने कई ऐसे शरीफ़ और ईमानदार लोगों को देखा है जिनकी समाज में प्रतिष्ठा है, लेकिन वे लोगों को बेरहमी से कोड़े लगाते थे और जब तक अभागा मिन्नत न करे, उसे छोड़ा नहीं जाता था। सजा पाने वाले आदमी का यह फ़र्ज़ समझा जाता है कि वह रोये-चिल्लाये और रहम के लिए मिन्नत करे। यह एक प्रचलित व्यवहार था। इसे ज़रूरी और माक़ूल समझा जाता था। एक बार जब एक क़ैदी चीख़ने में असमर्थ रहा तो अफ़सर ने, जिसे मैं व्यक्तिगत रूप से जानता था और जो हर माने में एक शरीफ़ आदमी कहा जा सकता था, इसे अपना अपमान समझा। पहले तो अफ़सर ने सोचा

था कि वह क़ैदी का लिहाज करेगा, लेकिन क़ैदी के मुँह से ये शब्द न सुनकर, "योर आनर ! प्यारे पिता ! रहम करो ! मैं जिन्दगी-भर आपके लिए दुआ माँगता रहूँगा," वग़ैरह—अफ़सर को गुस्सा चढ़ा और उसने पचास बेंत और लगवाए। वह क़ैदी की चीख़-पुकार और मिन्नतें सुनना चाहता था—उसे अपने उद्देश्य में सफलता मिली। अफ़सर ने बड़ी संजीदगी से मुझे बताया, "मैं क्या करता, वह क़ैदी बड़ा बदतमीज़ था !"

जहाँ तक जल्लाद का ताल्लुक़ है वह अपनी मर्ज़ी से लोगों को कोड़े नहीं लगाता, बल्कि मजबूरी से यह काम करता है। सब जानते हैं कि वह ख़ुद सज़ा पाया हुआ क़ैदी होता है और जल्लाद बनकर अपनी सज़ा की सख़्ती से छुटकारा पाता है। पहले तो वह किसी दूसरे जल्लाद से काम सीखता है, जब वह सिद्धहस्त हो जाता है तो उसे जेल का स्थायी कर्मचारी बना दिया जाता है। वह क़ैदियों से अलग एक ख़ास कमरे में रहता है, अपने लिए अलग से खाना पकवाता है,हालाँकि उस पर करीब-क़रीब हमेशा सन्तरी निगरानी रखते हैं। निश्चय ही एक जिन्दा इन्सान मशीन नहीं है। कोड़े लगाना उसका पेशा है, लेकिन कई बार उसे अपने पेशे में आनन्द मिलने लगता है। लेकिन उसे पिटाई करने में चाहे कितना ही संतोष क्यों न मिले उसे क़ैदियों से व्यक्तिगत नफ़रत नहीं होती। वह अपनी कला में दक्ष और पारंगत है। वह अपने साथियों और साधारण जनता के सामने अपनी कला का प्रदर्शन करना चाहता है, इससे उसके अहंकार को तुष्टि मिलती है। वह कला की ख़ातिर इतनी तवालत उठाता है। साथ ही वह यह भी अच्छी तरह जानता है कि वह समाज से बहिष्कृत प्राणी है, वह जहाँ भी जाता है लोग आतंक से काँप उठते हैं। कौन कह सकता है कि इस नफ़रत का असर उसके ऊपर नहीं पड़ता होगा और इससे उसकी पैशाचिक वृत्तियों और क्रूरता को प्रोत्साहन नहीं मिलता होगा। बच्चा-बच्चा जानता है कि जल्लाद "अपने माँ-बाप का भी सगा नहीं होता।" एक अजब बात है कि मैंने आज तक जितने भी

जल्लाद देखे हैं वे सब पढ़े-लिखे अक्लमन्द और समझदार आदमी थे। उनमें अहंकार और गर्व की मात्रा ज़रूरत से ज्यादा थी। यह अहंकार उनसे की जाने वाली नफ़रत के प्रत्युत्तर के रूप में पैदा हुआ या उसे देखकर क़ैदी में जो आतंक उठता है और जल्लाद के मन से स्वामित्व और ताक़त का एहसास, उससे पैदा हुआ, यह मैं नहीं जानता। शायद जिन नाटकीय परिस्थितियों और टीम-टाम के साथ जल्लाद जनता के सामने टिकटी पर आते हैं उसी से उनमें उद्दण्डता और अहंकार पैदा होता हो। मुझे याद है, एक बार मुझे एक जल्लाद से मिलने का और नज़दीक से उसका अध्ययन करने का मौका मिला था। वह चालीस बरस का दुबला आदमी था। उसके पुट्ठे खूब मज़बूत थे, क़द साधारण था बाल घुंघराले थे और चेहरे से समझदारी टपकती थी। वह असाधारण रूप से ख़ामोश और शालीन व्यक्ति था। हमेशा शराफ़त से पेश आता था, दोस्ताने अन्दाज़ में अक्लमन्दी से संक्षिप्त उत्तर देता था। लेकिन उसके दोस्ताने ढंग में भी गुस्ताख़ी थी. ऐसा लगता था कि वह अपने को मुझसे ज्यादा ऊँचा समझता था। ड्यूटी पर तैनात अफ़सर अक्सर उससे बातचीत करते थे और इज्ज़त से पेश आते थे। उसे इस बात का पूरा एहसास था इसलिए अपने अफ़सरों के सामने वह पहले से दुगनी हलीमी, ख़ामोशी और व्यक्तिगत शालीनता का प्रदर्शन करता था। जो अफ़सर उससे ज्यादा दोस्ती दिखाता था, उसके सामने वह उतनी ही दृढ़ता से पेश आता था, हालाँकि वह अपने सुसंस्कृत शिष्टाचार को कभी नहीं छोड़ता था। मुझे पूरा यक़ीन है कि वह अपने को उस अफ़सर से ज्यादा ऊँचा समझता था। उसके चेहरे से ही यह बात साफ़ थी। कई बार गर्मी के दिनों में उसे एक लम्बा पतला बांस थमाकर संतरियों के पहरे में कुत्ते मारने के लिए शहर में भेजा जाता था। शहर में आवारा कुत्तों की तादाद दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी। गर्मी के मौसम में ये कुत्ते ख़तर-नाक हो जाते थे। अधिकारियों के हुक्म पर जल्लाद को शहर में भेजा जाता था। लेकिन इतने नीच काम के बावजूद भी उसकी शालीनता में

कोई फ़र्क नहीं आता था। जिस शान से वह शहर में थके हुए संतरी को साथ लेकर चक्कर लगाता था, वह देखने के काबिल होती थी। औरतें और बच्चे उसकी सूरत से ही डर जाते थे। वह हर किसी को खामोश और हिक़ारत-भरी नज़रों से देखता था।

लेकिन जल्लाद मज़े में रहते हैं। उनके पास रुपये-पैसे भी खूब रहते हैं—खाने-पीने को खूब मिलता है और पीने के लिए वोद्का दी जाती है। उन्हें खूब रिश्वत मिलती है। कोड़ों की सज़ा पाने वाला हर ग़ैर-फ़ौजी क़ैदी जल्लाद को सज़ा से पहले कोई न कोई तोहफ़ा ज़रूर देता है, चाहे उसे अपनी आख़िरी कौड़ी क्यों न अदा करनी पड़े। लेकिन पैसे वाले क़ैदियों से जल्लाद काफ़ी तगड़ी रक़म माँगता है, चाहे उनकी हैसियत इतनी बड़ी हो या न हो। तीस रूबल और कभी-कभी इससे भी ज़्यादा रक़म की माँग की जाती है। जल्लाद पैसे वाले क़ैदियों से भयंकर सौदेबाज़ी करते हैं। लेकिन जल्लाद बहुत हल्के हाथों से कोड़े नहीं मार सकता, वरना उसकी अपनी पीठ पर कोड़े पड़ सकते हैं। लेकिन एक ख़ास रक़म के बदले वह क़ैदी से यह वादा कर सकता है कि वह बहुत ज़्यादा सख़्ती नहीं करेगा। क़ैदी हमेशा नर्मी की क़ीमत अदा करने के लिए राज़ी हो जाते हैं, अगर न करें तो जल्लाद और भी ज़्यादा वहशत से पेश आ सकता है। सब कुछ उसी के हाथों में तो होता है। कई बार ऐसा भी होता है कि जल्लाद किसी ग़रीब क़ैदी से बड़ी रक़म का तकाज़ा करता है। क़ैदी के रिश्तेदार आकर उससे सौदेबाज़ी करते हैं और उसे सलाम करते हैं—अगर वे जल्लाद के तकाज़ों को पूरा न करें तो उनकी शामत आ जाती है। ऐसी हालत में जल्लाद का रौबदाब और ख़ौफ़ बहुत काम आता है। जल्लादों के बारे में कैसी-कैसी भयंकर कहानियाँ मशहूर हैं। ख़ुद क़ैदियों ने मुझे बताया है कि अगर जल्लाद चाहे तो एक ही वार में क़ैदी की जान ले सकता है। लेकिन क्या कभी ऐसा हुआ भी है? हो तो सकता है। क़ैदियों को इस बात का पूरा यक़ीन होता है। ख़ुद जल्लाद ने मुझे बताया कि वह ऐसा कर सकता है। क़ैदियों ने मुझे

यह भी बताया कि जल्लाद बाँह उठाकर क़ैदी की पीठ पर इस तरह कोड़ा लगा सकता है कि क़ैदी को जरा भी दर्द न हो और पीठ पर जरा खराश तक न आये। इन सारी चालाकियों और चालों के क़िस्से मैं पहले ही बता चुका हूँ।

लेकिन जल्लाद रिश्वत लेने के बाद भी पहला वार पूरी ताक़त से करता है, यह उसकी कभी न बदलने वाली आदत है। अगर उसे रक़म मिल चुकी है तो बाद में वह नर्मी दिखाता है। लेकिन पहला वार तो जल्लाद की अपनी मर्ज़ी पर ही होता है। न जाने, जल्लादों में यह प्रथा क्यों है—शायद क़ैदी को आने वाले वारों के लिए तैयार करना या यह कि अगर पहला वार सख़्त हो तो बाद के वार कम तकलीफ़देह मालूम होते हैं, या सिर्फ़ क़ैदी के आगे अपनी ताक़त का प्रदर्शन करने के लिए, उसके मन में आतंक पैदा करने के लिए, उसकी आत्मा को कुचलने के लिए ताकि वह जान ले कि उसे कैसे आदमी से पाला पड़ा है, ऐसा किया जाता है। दरअसल इसके पीछे आत्मप्रदर्शन की ही भावना रहती है। हर सूरत में अपना काम शुरू करने से पहले जल्लाद उत्तेजित रहता है, उसे अपनी ताक़त और प्रभुता का एहसास रहता है। ऐसे क्षण में वह एक एक्टर की तरह होता है, जनता चकित और शंकित नज़रों से उसकी तरफ़ देखती है। पहले वार के बाद उसे चिल्ला कर यह कहना बहुत अच्छा लगता है, "तैयार हो जाओ! मैं तुम्हारी खाल उधेड़ लूँगा।—" ऐसे मौक़ों पर यही घातक और घिसी-पिटी बात कही जाती है। किसी इन्सान का स्वभाव कितना विकृत हो सकता है, इसकी कल्पना करना मुश्किल है।

जब मैं शुरू-शुरू में हस्पताल आया था तो बड़ी दिलचस्पी से क़ैदियों की इन कहानियों को सुना करता था। दिन-भर हस्पताल के पलंगों पर लेटा रहना बड़ा ही नीरस होता है। रोज़ एक ही जैसी दिन-चर्या रहती थी। सुबह के वक़्त दो ही दिलचस्प घटनाएँ होती थीं—एक तो डॉक्टरों का आना और फिर दोपहर का खाना। उस नीरस

जिन्दगी में खाना एक अत्यन्त मनोरंजक घटना थी। हर मरीज़ के लिए डॉक्टर खाने की अलग-अलग चीज़ें बताया करते थे। कुछ मरीज थोड़ा अनाज डालकर शोरवा खाते थे, कुछ सिर्फ़ दलिया। कुछ मरीजों को सिर्फ़ सूजी का हलवा खाने के लिए कहा गया था। इस ख़ूराक के हमेशा बहुत से उम्मीदवार रहते थे। बिस्तर में बहुत दिनों से लेटकर क़ैदी ऐशपरस्त हो गए थे और उन्हें बढ़िया खाने की चीज़ें अच्छी लगती थीं। बीमारी से उठने वाले मरीजों को उबले हुए गोश्त का एक टुकड़ा दिया जाता था, जिसे वे 'सांड' कहते थे। स्कर्वी के मरीज़ों को सबसे बढ़िया खाना मिलता था। उन्हें गोश्त के साथ प्याज़, मूली और कभी-कभी वोद्का का एक गिलास भी दिया जाता था। पावरोटी की भी अलग-अलग क़िस्में थीं, काली पावरोटी और बढ़िया सिकी हुई सफ़ेद पावरोटी। जिस औपचारिक ढंग से मरीज़ों को ख़ूराक बताई जाती थी, वह ढंग भी ख़ूब मज़ेदार था। कुछ मरीज़ों को खाने से अरुचि होती थी। लेकिन जिन्हें भूख लगती थी वे मनचाही चीज़ें खा सकते थे। कुछ मरीज अपनी खाने की चीज़ें बदल लेते थे, जो चीज एक बीमारी वाले के लिए बताई जाती थी उसे दूसरी बीमारी वाला आदमी खा लेता था। जिन्हें हल्की ख़ूराक दी जाती थी, वे गोश्त खरीद कर खाते थे या स्कर्वी के मरीज़ों की ख़ूराक खाते थे। वे दूसरे मरीज़ों से क्वास या हस्पताल की बीयर ख़रीदकर पिया करते थे। कुछ लोग तो दो-दो जनों का राशन खा जाते थे। खाने की प्लेटें पैसों के बदले बेंची जाती थीं। गोश्त की क़ीमत कुछ ज्यादा थी; पांच कोपेक। अगर हमारे वार्ड में गोश्त कम पड़ जाता था तो हम हस्पताल के कर्मचारियों को दूसरे क़ैदी-वार्ड में, या फ़ौजी वार्ड में (जिसे हम ख़ैराती वार्ड कहते थे) भेजकर मँगवा लेते थे। हमेशा गोश्त बेचने वाले मरीज मिल जाते थे। वे सूखी पावरोटी से काम चला लेते थे, लेकिन इस तरह उनकी कुछ आमदनी हो जाती थी। ग़रीब तो वहाँ सभी थे, लेकिन जिनके पास पैसे होते थे वे बाज़ार से क्रीमरोल और दूसरे क़िस्म की मिठाइयाँ मंगवाते थे। हमारे वार्ड के

कर्मचारी बिन आनाकानी किये ये सारे काम कर दिया करते थे।

खाने के बाद का वक्त सबसे ज्यादा नीरस होता था; हममें से कुछ को जो काम न रहने की वजह से उकता जाया करते थे, नींद आ जाती थी। कुछ झगड़ने लगते थे, गपशप करते थे या कहानियाँ सुनाते थे। अगर वार्ड में कोई नया मरीज़ नहीं दाखिल होता था तो वातावरण और भी नीरस हो जाता था। नए मरीज़ के आने से, खासतौर पर अगर वह अजनबी हो तो, सारे वार्ड में हलचल मच जाती थी। सब उसे ग़ौर से देखते थे और यह जानने की कोशिश करते थे कि वह कौन है, कहाँ से आया है, किस जुर्म में आया है और उसका पेशा क्या था। दूसरी जेलों से तब्दील होकर आने वालों में मरीज़ बहुत दिलचस्पी लेते थे। ऐसे लोग आम तौर पर बड़े दिलचस्प क़िस्से सुनाया करते थे, लेकिन अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी के बारे में नहीं। अगर वे अपने बारे में कुछ नहीं बताना चाहते थे तो उनसे कभी सवाल भी नहीं किया जाता था। सिर्फ़ यही पूछा जाता था कि वे कहाँ से आये हैं? किसके साथ आए? सफ़र कैसा रहा? अब वे कहाँ जा रहे हैं, वग़ैरह वग़ैरह। उनकी बातों से कुछ लोगों को अपने अतीत की कोई घटना याद आ जाती थी और वे अपनी यात्राओं, टोलियों और अफ़सरों का जिक्र छेड़ बैठते थे।

कोड़ों की सजा के बाद क़ैदियों को शाम के वक्त जेल में लाया जाता था, जैसा कि मैं पहले भी बता चुका हूँ। उनके वार्ड में आने से सनसनी फैल जाती थी, लेकिन ऐसे क़ैदी रोज़ नहीं आते थे। जिस रोज़ कोई नहीं आता था, नीरसता छा जाती थी। वार्ड के सभी मरीज़ एक-दूसरे से बुरी तरह ऊबे रहते थे, और उनमें झगड़ा भी शुरू हो जाता था। हमें पागलों को देखकर भी खुशी होती थी, जिन्हें हस्पताल में भर्ती किया जाता था। अक्सर कोड़ों की सज़ा से बचने के लिए क़ैदी पागलपन का बहाना किया करते थे। कुछ की मक्कारी फ़ौरन पकड़ी जाती थी, या वे अपनी चाल बदल लेते थे। दो तीन दिन ऊधम मचाने के बाद वे शान्त हो जाते थे और उदास स्वर में हस्पताल से छुट्टी माँगते

थे। क़ैदियों और डाक्टरों में से कोई भी उन्हें उनकी मक्कारी की याद दिलाकर शर्मिन्दा नहीं करता था। उन्हें चुपचाप छुट्टी दे दी जाती थी। दो या तीन दिन बाद, कोड़ों से ज़ख्मी होकर वे फिर वार्ड में दाख़िल होते थे। लेकिन वैसे देखा जाए तो ऐसी बहानेबाजी बहुत कम होती थी।

सचमुच के पागल तो सारे वार्ड को परेशान कर डालते थे। कुछ इतने ज़िन्दादिल थ कि हर वक्त चिल्लाते रहते थे, गाते और नाचते रहते थे। शुरू में तो क़ैदी बड़े जोश से उनका स्वागत करते थे। किसी नए पागल की उछलकूद देखकर वे कहते थे, "अब मज़ा रहेगा!" लेकिन उन अभागों को देखकर मेरे मन में बड़ी तकलीफ़ और उदासी पैदा होती थी। मैं जब भी किसी पागल को देखता हूँ, तो मुझे तक़लीफ़ होती है।

लेकिन उस पागल की उछलकूद और हुल्लड़बाज़ी से जल्द ही हम सब तंग आ गए और एक दो दिन में ही सब लोगों का धैर्य ख़त्म हो गया। एक पागल तीन हफ़्तों तक हमारे वार्ड में रखा गया था। वार्ड से भाग जाने की तबियत होती थी। इससे भी बड़ी मुसीबत यह हुई कि उसी वक्त एक और पागल वहाँ लाया गया, जिसे देखकर मेरे मन पर बहुत गहरा असर पड़ा। यह मेरे जेल में आने के तीन बरस बाद की बात है। जेल में अभी आये मुझे कुछ महीने ही हुए थे कि बहार के मौसम में मैं डेढ़ मील दूर ईंटें लाकर अंगीठी बनाने वाले मज़दूरों को दिया करता था। वे लोग ईंटों के भट्टों की मरम्मत कर रहे थे, ताकि गर्मी में ईंटें तैयार हो सकें। उस दिन सुबह 'म' और 'ब' ने भट्टे के ओवसियर सार्जेन्ट ओस्त्रोज्की से मेरा परिचय करवाया। वह जाति का पोलिश था और साठ बरस का लम्बा, दुबला शालीन आदमी था—उसका व्यक्तित्व बड़ा शानदार और रौबीला था। वह एक किसान घर में पैदा हुआ था। बहुत बरसों तक फ़ौज में काम करने के बाद वह १८३०[1]

---

१. १८३० में पोलिश विद्रोह हुआ था।

के बाद मामूली सिपाही बनकर साइबेरिया आया था। 'म' और 'ब' उसे प्यार करते थे और उसकी इज़्ज़त करते थे। वह हर वक्त कैथोलिक बाईबल पढ़ा करता था। मैंने उससे कई बार बातचीत की। वह बड़ी अक्लमन्दी और दोस्ताने ढंग से बातें करता था। उसकी बातें बहुत दिलचस्प होती थीं। वह बड़ा ईमानदार और खुशमिजाज़ आदमी मालूम होता था। उसके बाद दो बरस तक मैंने उसे नहीं देखा। मैंने सिर्फ़ इतना ही सुना कि किसी वजह से उस पर मुसीबत आ गई है। अचानक वह पागल हो गया और उसे हमारे वार्ड में लाया गया। वह ज़ोर से चीख़ रहा था और हँस रहा था। उसने भद्दे और अश्लील इशारे करते हुए सारे वार्ड में नाचना शुरू किया। हमारे वार्ड के क़ैदियों को बहुत मज़ा आया, लेकिन मैं बहुत उदास हो गया। तीन दिन बाद सब लोग परेशान हो गए कि उससे कैसे छुटकारा पाया जाए। वह सबसे मार-पीट और झगड़ा करता था, ज़ोर से चीख़ता था और रात को भी गाने गाता था। लगातार उसने ऐसी हरकतें कीं कि सब लोग तंग आ गए। उसे किसी से डर नहीं लगता था। उसे एक तंग जेकेट पहना दी गई तो उसने और भी मुसीबत कर दी, हालाँकि उससे पहले भी उसने वार्ड में सबसे झगड़े और मार-पीट की थी। कई बार वार्ड के सारे मरीज़ों ने एक साथ बड़े डाक्टर से मिन्नत की थी कि वे इस मुसीबत को किसी और वार्ड में भेज दें। लेकिन एक दो-दिन बाद ही दूसरे वार्ड रीज़ों ने भी डाक्टर से मिन्नत की कि उसे वापिस हमारे वार्ड में भेज दिया जाए। दोनों वार्डों में दो पागल थे और दोनों उत्पाती थे, इसलिए बारी-बारी से उन्हें आपस में तब्दील किया जाता था, लेकिन दोनों एक दूसरे से बदतर थे। जब उन्हें जेल से ले जाया गया तो हम लोगों ने चैन की साँस ली।

मुझे एक दूसरे विलक्षण आदमी की याद है। एक बार गर्मी के मौसम में एक क़ैदी को हवालात से हमारे यहाँ लाया गया। वह पैंतालीस बरस का हट्टा-कट्टा, फूहड़ आदमी था। उसके चेहरे पर चेचक के दाग़

थे। छोटी-छोटी लाल आँखें चर्बी से फूले गालों में छिप गई थीं। उसके चेहरे पर बेहद गुस्ताख़ी थी। उसे मेरी बग़ल वाला पलंग दिया गया था। शुरू में तो वह बहुत ही खामोश नजर आया। उसने किसी से बातचीत नहीं की और बिस्तर पर बैठकर जैसे किसी सोच में डूब गया, जब अंधेरा होने लगा तो उसने मेरी तरफ़ मुड़कर राज भरे अन्दाज में कहा कि उसे दो हज़ार कोड़ों की सज़ा मिली है, लेकिन अब उसे कोई फ़िक्र नहीं, क्योंकि किसी कर्नल की बेटी ने उसकी सिफ़ारिश की है। मैंने संदिग्ध नजरों से उसकी तरफ़ देखकर कहा कि मेरे ख़्याल में तो कर्नल की बेटी इस मामले में कुछ नहीं कर सकती। उसकी तकलीफ़ के बारे में मैं कुछ नहीं जानता था, क्योंकि वह मामूली मरीज़ की हैसियत से हमारे वार्ड में लाया गया था। जब मैंने उससे उसकी बीमारी के बारे में पूछा तो उसने कहा कि वह खुद भी नहीं जानता। वह बिल्कुल तन्दुरुस्त था, फिर भी उसे किसी ख़ास वजह से हस्पताल में भेजा गया था। उसका कहना था कि कर्नल की बेटी को उससे मुहब्बत हो गई है। दो हफ़्ते पहले कर्नल की बेटी गाड़ी में बैठकर गारदघर के सामने से गुजर रही थी और वह अपनी कोठरी की सलाखों वाली खिड़की से बाहर देख रहा था। कर्नल की बेटी को पहली नज़र में ही उससे प्यार हो गया था। तब से वह कई बहाने बनाकर तीन बार गारदघर में आ चुकी थी। पहली बार वह अपने बाप के साथ अपने भाई से मिलने आई थी, जिसकी उस दिन गारदघर में ड्यूटी लगी थी। दूसरी बार वह अपनी माँ के साथ क़ैदियों में खैरात बांटने का बहाना करके आई थी, उसने उस क़ैदी के नज़दीक से गुज़रते हुए फुसफुसा कर कहा था कि वह उसे प्यार करती है और उसे बचा लेगी। उस आदमी के मुँह से ऐसी सविस्तार बकवास सुनकर मुझे बड़ा अजब-सा लगा। निश्चय ही यह उसके विकृत दिमाग़ की उपज थी, लेकिन उसे पूरा यक़ीन था कि इस तरीके से वह ज़रूर सजा से बच जाएगा। उसने बड़े आत्म-विश्वास और शान्ति से बताया कि कर्नल की बेटी उसे कितना चाहती है। कहानी तो मनगढ़न्त थी ही,

पचास बरस के बदसूरत, हताश चेहरे वाले उस आदमी के मुँह से किसी नौजवान लड़की के प्यार की व्याकुलता की बात सुनना और भी अजब मालूम होता था। उसकी भीरु आत्मा पर खौफ़ का क्या असर हुआ था, यह देखकर मन में एक अजब भावना उठती थी। शायद उसने सचमुच खिड़की में से कोई चीज़ देखी थी, और डर से पैदा हुए उसके पागलपन को अभिव्यक्ति का एक माध्यम मिल गया था। इस अभागे दुखी सिपाही ने, जिसने ज़िन्दगी में कभी नौजवान लड़कियों के बारे में नहीं सोचा था, अचानक एक रोमान्स की कल्पना करली थी; यह डूबते हुए आदमी के लिए एक तिनके के समान था। मैंने बिना टीका-टिप्पणी किए उसकी कहानी सुनी और दूसरे क़ैदियों को भी सुनाई। लेकिन जब दूसरे लोगों के मन में जिज्ञासा पैदा हुई और उन्होंने खोद-खोदकर बातें पूछनी शुरू कीं तो वह आदमी शर्म से ख़ामोश हो गया। डाक्टर ने अगले दिन उसकी बीमारी के बारे में पूछताछ की तो उसने कहा कि उसे कोई शिकायत नहीं। डाक्टरी जाँच के बाद भी यही बात साबित हुई, इसलिए उसे हस्पताल से छुट्टी दे दी गई। डाक्टरों के जाने के बाद ही हमें मालूम हुआ कि उसके कार्ड पर 'तन्दुरुस्त' शब्द लिखा हुआ है इसलिए हम सारी बात नहीं समझा सके। उसके अलावा हमें पूरी तरह इस बात का भी पता न चल सका कि उस आदमी को क्या बीमारी थी। यह सारी गड़बड़ हवालात के इन्चार्ज से हुई थी, जिसने बिना किसी कारण के ही उस आदमी को मरीज़ों के वार्ड में भेज दिया था। यह सब लापरवाही की वजह से हुआ था। हो सकता है कि जिन्होंने उसे हस्पताल में भेजा था उन्हें शक हुआ हो कि वह पागल है और वे इस बात की तसदीक़ करवाना चाहते हों। ख़ैर, जो भी हो दो दिन बाद उसे कोड़ों की सज़ा मिली। उस पर जड़ता छा गई थी और आख़िरी वक़्त तक उसे यक़ीन ही नहीं होता था कि उसे सज़ा मिलेगी। जब उसे सचमुच सिपाहियों की कतार में ले जाया गया तो वह मदद के लिए चिल्लाने लगा। चूंकि हमारे वार्ड में कोई जगह खाली नहीं थी, इसलिए

उसे दूसरे वार्ड में रखा गया। मैंने उसके बारे में पूछताछ की तो मालूम हुआ कि वह पूरा हफ़्ता खामोश रहा था, उदास और खोया-खोया नज़र आता था। जब उसकी पीठ का ज़ख्म ठीक हो गया तो उसे हस्पताल से छुट्टी मिल गई। उसके बाद मैंने न उसे देखा न उसकी कोई खबर ही मुझे मिली।

जहाँ तक हमारे इलाज का ताल्लुक था, जिन मरीज़ों को मामूली बीमारी थी, वे न डाक्टर का कहना मानते थे न दवाई की गोलियाँ ही खाते थे। कम से कम मैंने तो यही देखा था। लेकिन जो सचमुच बीमार थे वे अपने इलाज में बहुत दिलचस्पी लेते थे और डाक्टर के कहने के मुताबिक़ दवाई लिया करते थे। खाने की दवाइयों की बजाय लगाने की दवाइयाँ ज़्यादा पसंद की जाती थीं। आम जनता पुल्टिसों, जोंकों, नसों में से खून निकालने के तरीक़ों से बहुत प्रभावित होती है। ऐसे इलाजों को क़ैदी अपनी मर्ज़ी से और यहाँ तक कि खुशी-खुशी क़बूल करते थे। ताज्जुब की बात यह है कि जो क़ैदी बेंतों और कोड़ों की मार के आगे धीरज दिखाते थे, जब उनका खून निकाला जाता था तो वे बुरी तरह से चीखते-चिल्लाते और शिक़ायत करते थे। इसका कारण या तो यह था कि लोग हस्पताल में आकर सुकुमार हो जाते थे या झूठमूठ ठिठोली किया करते थे। यह सच है कि हस्पताल में खास ढंग से खून निकाला जाता था। हस्पताल का नश्तर मुद्दत से या तो टूट चुका था या गुम हो गया था, इसलिए खून निकालने के लिए छुरी का इस्तेमाल किया जाता था। हर प्याले के लिए बारह बार छुरी लगाई जाती थी। अगर सही औज़ारों का इस्तेमाल किया जाए तो नसों से खून निकालने में तक़लीफ नहीं होती। बारह नन्हीं सुइया एक साथ चुभो दी जाती हैं, और फ़ौरन खून निकल आता है। लेकिन छुरी से घाव करने में देर लगती है, इसलिए दर्द भी महसूस होता है। चूंकि एक बार के इलाज के लिए एक सौ बीस बार छुरी चुभोई जाती थी, इसलिए समग्र रूप से अगर देखा जाए तो इलाज बहुत तक़लीफ़-देह था। मैंने खुद इलाज

करवाया था, तक़लीफ़ तो ज़रूर हुई थी लेकिन इतनी ज़्यादा नहीं कि आदमी चीखे-चिल्लाए। कई बार तो किसी हट्टे-कट्टे आदमी को चीखते-चिल्लाते देखकर हँसी भी आ जाती थी। यह तो बिल्कुल वैसी ही बात है, जैसे कि कोई आदमी संजीदा मामलों में तो अपने दिल पर क़ाबू रखे और सख़्ती से पेश आए लेकिन घर में अगर उसके पास कोई काम न हो तो वह बेहद चिड़चिड़ा हो जाता है और अकारण ही गुस्सा करने लगता है। वह खाने की चीज़ों में मीन-मेख निकालता है, सब लोगों से झगड़ता है। उसे सब बदतमीज मालूम होते हैं, संक्षेप में उसके 'दिमाग पर चर्बी चढ़ जाती है।" आम लोगों पर भी, ख़ास तौर पर अधिकांश क़ैदियों पर यह बात लागू होती है। अक्सर तो ऐसे झगड़ालु क़ैदी के वार्ड के साथी भी उसका मज़ाक उड़ाते हैं या उसे गालियाँ देते हैं। तब लड़ैता एकदम अपनी हरक़तें बन्द कर देता है, जैसे वह इसी बात की इन्तज़ार में था कि कोई उसे डांट-फटकार कर चुप कराए। उत्स्यान्त्सेव को ख़ास तौर पर ऐसे लोग नापसंद थे और वह उनसे झगड़ने का कोई भी मौक़ा हाथ से नहीं जाने देता था। दरअसल वह किसी से भी झगड़ने का मौक़ा हाथ से नहीं जाने देता था। उसके लिए यह ज़रूरी था और उसे इसमें ख़ुशी मिलती थी, क्योंकि वह बीमार था, साथ ही जड़बुद्धि भी। पहले वह संजीदगी से अपने शिकार की तरफ़ देखता था और फिर शान्त, आत्मविश्वास-भरे स्वर में उसे एक लम्बा-चौड़ा लैक्चर देता था। मालूम होता था कि उसने हम लोगों के अनुशासन और नैतिक आचरण का ठेका ले रखा था। वह इसे अपना फ़र्ज़ समझकर हर वक्त इन्हीं बातों में व्यस्त रहता था।

"यह आदमी हर बात में दखल देता है।" क़ैदी हँसकर कहते। उन्हें उस पर तरस आता था, लेकिन वे उससे लड़ाई-झगड़ा करने के बजाय सिर्फ़ उसका मज़ाक उड़ाया करते थे।

"यह हर वक्त भिनभिनाता रहता है। क्यों ठीक है न?"

"क्या मतलब? मैं किसलिए किसी बेवकूफ़ के आगे टोपी उतार

कर सम्मान जतलाऊँ ? लेकिन मैं पूछता हूँ कि ग्राखिर ज़रा-सी छुरी को देखकर चीखने-चिल्लाने की क्या बात है ? लोग मुश्किलें बर्दाश्त करना क्यों नहीं सीखते ?"

"लेकिन इन बातों से तुम्हें क्या मतलब ?"

"मैं बताता हूँ, क्या मतलब है। भाइयो, खून निकालना तो बहुत मामूली बात है। मैंने खुद इस बात को ग्राजमा कर देखा है। लेकिन ग्रगर कोई कान खींचे तो सचमुच बहुत बुरा लगता है।" एक मरीज़ ने बीच में टोककर कहा।

सब हँस पड़े।

"क्या किसी ने तुम्हारे कान खींचे थे ?"

"खींचे क्यों नहीं थे ? तुम क्या सोचते हो ?"

"इसीलिए तुम्हारे कान बाहर निकले हुए हैं।"

इस क़ैदी का नाम शाप्किन था। उसके कान लम्बे ग्रौर बाहर निकले हुए थे। किसी ज़माने में वह ग्रावारागर्द रह चुका था, ग्रब वह खामोश ग्रक्लमन्द ग्रादमी था, ग्रौर ग्रभी तक नौजवान दिखाई देता था। वह खुले दिल से मज़ाक करता था, जिसकी वजह से उसकी कुछ कहानियाँ खास तौर पर दिलचस्प ग्रौर व्यंग्यपूर्ण बन जाती थीं।

"तुम्हारे कान खींचे गए हैं या नहीं, इसके पचड़े में मैं क्यों पड़ूँ ? ग्रौर यह बात मेरे दिमाग़ में ग्राये ही क्यों, ग्ररे ग्रो मोटी ग्रक़्ल वाले !" उत्स्यान्त्सेव ने फिर क्रुद्ध स्वर में कहा, हालाँकि शाप्किन ने यह बात सिर्फ़ उसी से नहीं बल्कि हम सब लोगों से कही थी। लेकिन शाप्किन ने उसकी तरफ़ देखा तक भी नहीं।

"ग्रौर तुम्हारे कान किसने खींचे थे ?" किसी ने पूछा।

"वाह, एक पुलिस ग्रफ़सर ने खींचे थे, ग्रौर कौन खींचता ? उस वक्त मैं सड़क पर जा रहा था। हम दो जने 'क' पहुँचे, यानी मैं ग्रौर एक घुमक्कड़, जिसका नाम येफ़ीम था। बस येफ़ीम, ग्रौर कुछ नहीं। रास्ते में तोलमिनिया में हम लोगों ने एक किसान के घर से काफ़ी कमाई

की थी। तोलमिनिया छोटा-सा क़स्बा है। ख़ैर, वहाँ पहुँच कर हमने चारों तरफ़ देखा और सोचा कि इस जगह से कुछ ले-लिवा कर हम जा सकते हैं या नहीं, क्योंकि इन्सान को जो आज़ादी खेत में होती है वह शहर में नहीं होती। सबसे पहले हम एक शराब की दुकान में गए। एक आदमी हमारे पास आकर बड़ी हलीमी से बातें करने लगा। जब हम लोग कुछ बातें कर चुके तो उसने कहा, "तुम्हारे पास पासपोर्ट[1] तो होगा ही, क्यों ?" हम लोगों ने कहा, 'नहीं हमारे पास कोई काग़ज़ात नहीं हैं।" उसने कहा, "मेरे पास भी पासपोर्ट नहीं। मेरे दो दोस्त हैं जो जनरल कूकू[2] के मातहत काम करते हैं। हम तीनों ने ख़ूब गुलछर्रे उड़ाये जिसकी वजह से हमारे पास पैसे कम पड़ गये हैं। क्या तुम मुझे आधा पेग शराब पिला सकते हो ?" "ख़ुशी से," हम लोगों ने जवाब दिया। इसके बाद हम लोगों ने एक साथ बैठकर शराब पी। उस आदमी ने हमारी मनपसंद का एक काम बताया। क़स्बे के कोने पर किसी व्यापारी का मकान था, जिसमें बहुत सी शानदार चीज़ें थीं। हमने उस मकान में जाने का फ़ैसला किया, लेकिन उसी रात व्यापारी के मकान में हम पाँचों जनों को गिरफ़्तार कर लिया गया। हमें पहले थाने ले जाया गया, फिर पुलिस के बड़े अफ़सर के सामने पेश किया गया। "मैं इन लोगों से सवाल पूछूंगा।" पुलिस अफ़सर ने कहा। उसके मुँह में एक बड़ा-सा पाइप था और नौकर उसके लिए चाय ला रहे थे। वह मूँछों वाला, भीमकाय और तगड़ा आदमी था। हम लोगों के अलावा वहाँ वे तीन और ख़ाना-बदोश घुमक्कड़ भी थे। घुमक्कड़ भी अजब इन्सान होता है भाइयो। जहाँ तक उसका बस चलता है, उसे कुछ याद नहीं रहता। सबसे पहले अफ़सर ने मुझसे सवाल पूछा "तुम कौन हो ?" अफ़सर ख़ाली कनस्तर की तरह भड़भड़ाया। मैंने हमेशा की तरह जवाब दिया, "मुझे कुछ याद

१. हर नागरिक को अपने पास पासपोर्ट रखना पड़ता था।
२. यानी आवारागर्द हैं।

नहीं, योर ऑनर ! मैं सब कुछ भूल गया हूँ ।" "अच्छा तो ठहरो । मैं बाद में तुमसे बात करूँगा । मेरा ख्याल है कि मैंने तुम्हारी थूथनी कहीं देखी है ।" और वह लगातार मेरी तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा । मुझे पूरा यक़ीन था कि मैंने कभी उसे नहीं देखा था । इसके बाद उसने दूसरे आदमी से उसका नाम पूछा "दुम दबाकर भागने वाला, योर ऑनर," दूसरे आदमी ने जवाब दिया । 'क्या यह तुम्हारा नाम है?" अफ़सर ने पूछा । "जी हाँ, योर ऑनर, यही मेरा नाम है ।" "अच्छा और तुम ?"...अफ़सर ने अगले आदमी से पूछा । "मैं भी इसी के साथ हूँ योर ऑनर ।" "मैं पूछता हूँ तुम्हारा नाम क्या है ?" "यही तो मेरा नाम है, योर ऑनर ।" "यह नाम तुम्हें किसने दिया, बदमाश !" "कुछ नेक लोगों ने, योर ऑनर! इस दुनिया में कुछ नेक लोग भी बसते हैं ।" "और वे नेक लोग कौन थे ?" "मुझे याद नहीं है, योर ऑनर ! मेहरबानी करके मुझे माफ कर दीजिए ।" "क्या तुम कहना चाहते हो कि तुम्हें किसी की याद नहीं?" "नहीं किसी की भी नहीं, योर ऑनर ।" "शायद तुम अपने मां-बाप को भी भूल गये हो ! क्या कभी तुम्हारे माँ-बाप थे ?" "मेरे ख्याल में थे तो ज़रूर । लेकिन मुझे पूरी तरह यक़ीन नहीं ।" "तुम अभी तक कहाँ रहते थे ?" "जंगलों में, योर ऑनर ।" "सारा वक्त ?" "हाँ ।" 'जाड़ों में कहाँ रहते थे ?" "मैंने जाड़ों को नहीं देखा, योर ऑनर ।" "अच्छा तो तुम्हारा नाम क्या है ?" अफ़सर ने अगले आदमी से पूछा । "कुल्हाड़ी, योर ऑनर ।" "और तुम्हारा ?" "जल्दी तेज करो, योर ऑनर ।" "और तुम्हारा ? " "जल्दी से तोड़ डालो, डरो मत, योर ऑनर ।"

"तुम लोगों को कुछ भी याद नहीं ?"

"बिल्कुल नहीं, योर ऑनर ।" अफ़सर वहाँ खड़ा हँसता रहा और हम भी मुस्कराते रहे । अगर वह चाहता तो हमारे मुँह पर मुक्का मार कर हमारे जबड़े तोड़ सकता था । वह तमाम पुलिस अफ़सरों की तरह लम्बा-चौड़ा आदमी था । "इन्हें बन्द कर दो, मैं बाद में इनसे समझूँगा,

लेकिन तुम ज़रा यहीं ठहरो।" उसका मतलब मुझसे था।

कमरे में एक मेज थी जिस पर काग़ज़ और क़लम थी। मैंने मन ही मन सोचा,'यह आदमी क्या करने वाला है?' उसने मेरा कान पकड़ कर कहा, "उस कुर्सी पर बैठ जाओ और हाथ में क़लम लेकर लिखना शुरू करो। मैं आँखें फाड़कर उसकी तरफ़ देखने लगा। मैंने कहा "मुझे लिखना नहीं आता, योर ऑनर।" "मैं कहता हूँ, लिखो!" 'योर ऑनर, मुझ पर तरस खाइये," मैंने फिर कहा। इस पर उसने मेरे कान को ऐसा मरोड़ा कि मुझे तारे नज़र आने लगे। मैंने सोचा, 'इससे तो अगर मुझे तीन सौ बेंतों की मार पड़े तो कहीं बेहतर होगा। मैं कैसे लिखता ?'

"क्या वह अफ़सर पागल था ?"

"नहीं वह पागल बिल्कुल नहीं था, तोबोल्स्क में एक क्लर्क था जिस ने सरकारी रक़म का ग़बन किया था और वहाँ से चलता बना था। उसके कान भी मेरी तरह बाहर निकले हुए थे। पुलिस ने उसके हुलिये की खबर चारों तरफ़ कर दी थी और संयोग से मेरी शक्ल उस हुलिये से हू-ब-हू मिलती थी, इसलिए पुलिस अफ़सर यह जानने की कोशिश कर रहा था कि मैं लिख सकता हूँ या नहीं।"

'ज़रा उसकी हिम्मत तो देखो! क्या तुम्हें बहुत दर्द हुआ था ?"

"हुआ तो था।"

इस पर सब हँस पड़े।

"तुमने कुछ लिखा ?"

"मैं कैसे लिखता ? मैंने कलम इधर-उधर घुमाई फिर वहीं मेज़ पर रख दी। उसने क़रीब दस बार मेरे सिर पर मारा और फिर मुझे छोड़ दिया, मेरा मतलब है मुझे हवालात में भेज दिया।"

"लेकिन तुम्हें तो लिखना नहीं आता, क्यों ?"

"किसी ज़माने में आता था, लेकिन जब से लोगों ने क़लमों से लिखना शुरू किया, मैं सब कुछ भूल गया।"

इस तरह की बातचीत से हम अपने नीरस क्षण गुज़ारा करते थे।

हे ईश्वर, उन लम्बे, दम घोंटने वाले दिनों में मैं कितना ऊब जाता था, सब दिन एक ही से नीरस थे। काश मेरे पास कोई किताब ही होती! फिर भी, ख़ासतौर पर शुरू-शुरू में तो मैं अक्सर ही हस्पताल जाया करता था। कई बार तो बीमारी की वजह से और कई बार सिर्फ़ जेल के नीरस वातावरण से मुक्ति पाने के लिए। जेल का वातावरण नैतिक दृष्टि से हस्पताल से भी बदतर था। दुर्भावनाएँ, दुश्मनियाँ, तिकड़में, ईर्ष्या, हम कुलीन क़ैदियों का लगातार मजाक, ख़ौफ़नाक, ईर्ष्यालु मुद्रायें यही वहाँ की जिन्दगी थी। हस्पताल में कम-से-कम हमारी हैसियत तो एक-सी थी और आपस में ज़्यादा दोस्ती के सम्बन्ध थे। सबसे उदास घड़ियाँ वे होती थीं जब शाम को मोमबत्तियाँ जलाई जाती थीं और सुबह मोमबत्तियाँ बुझाने के बाद भी उदासी छाई रहती थी। हम लोग शाम को जल्द ही सो जाया करते थे। दरवाज़े के पास एक क्षीण-सी बत्ती जलती रहती थी, लेकिन बैरक में हमारा कोना अँधेरा रहता था, रात के वक्त हवा बदबूदार रहती थी और साँस लेना भी मुश्किल हो जाता था। जब किसी मरीज़ को नींद नहीं आती थी तो वह उठकर एक या दो घण्टे के लिए अपने बिस्तर पर बैठ जाता था। उसके झुके हुए सिर को देखकर ऐसा लगता था कि जैसे वह किसी गहरे सोच में डूबा है। किसी तरह वक्त गुज़ारने के लिए मैं पूरे घण्टे तक उसे देखता रहता था और यह अनुमान लगाने की कोशिश किया करता था कि वह क्या सोच रहा है। या मैं अतीत की स्मृतियों को अपने मन में ताज़ा किया करता था और मेरे मानस-पटल पर अतीत के चित्र साफ़ उभर आते थे। छोटी-छोटी बातें याद आती थीं, जिन्हें शायद मैं किसी और वक्त इतनी तीव्रता से न महसूस करता। कभी-कभी मैं बैठकर भविष्य के बारे में सोचा करता था। जब मेरी रिहाई होगी तो कैसा लगेगा? मैं कहाँ जाऊँगा? और मैं कब छूटूंगा? क्या कभी घर पहुँचूँगा भी! मैं इसी सोच में डूबा रहता था और मेरे मन में आशा की किरण चमक उठती थी। कभी-कभी मैं गिनना शुरू करता था, "एक, दो, तीन" ताकि

मुझे जल्द ही नींद आ जाए। कई बार तो तीन हज़ार तक गिनने के बावजूद भी मुझे नींद नहीं आती थी। फिर कोई अपने बिस्तर पर बेचैनी से करवटें लेने लगता था। उत्स्यान्त्सेव की रुग्ण खाँसी शुरू हो जाती थी। वह क्षीण स्वर में कराहता था और हर बार कहता था "हे ईश्वर! मैं गुनहगार हूँ।" उस निस्तब्धता में उसकी रुग्ण कराहट बड़ी विचित्र मालूम होती थी। कई बार कोई मरीज़ जिसे नींद नहीं आती थी, अपने पड़ोसी से बातें करना शुरू कर देता था। वह अपने सुदूर अतीत की, अपनी घुमक्कड़ ज़िन्दगी की, अपने बीवी-बच्चों की बातें किया करता था—बीते दिनों में उसकी ज़िन्दगी कैसी थी। उसकी फुसफुसाहट के ढंग से ही मैं भाँप जाता था कि वह जिन दिनों का ज़िक्र कर रहा है वे कभी लौटकर नहीं आयेंगे और वक्ता ख़ुद ज़िन्दगी की धारा से हमेशा के लिए कटकर अलग हो गया है। और वह दूर पानी के झरने की कल-कल की तरह एकरस स्वर में फुसफुसाए चला जाता था। जाड़ों की एक लम्बी रात में मैंने एक कहानी सुनी थी, वह मुझे अच्छी तरह याद है। शुरू में तो मुझे वह प्रलाप-भरा सपना मालूम हुआ था—मुझे लगा था कि मेरा शरीर बुख़ार में जल रहा है और मैं इन सारी बातों की कल्पना कर रहा हूँ।

अमाल्का का पति

(एक कहानी)

रात के बारह बज चुके थे। बहुत देर हो गई थी। मेरी आँख लग गई थी, लेकिन सहसा मेरी नींद खुल गई। लैम्प की मद्धिम रोशनी से अँधेरे में कोई फ़र्क नहीं पड़ता था। वार्ड में सब सो रहे थे, यहाँ तक कि निस्तब्धता में उत्स्यान्त्सेव भी सोया हुआ मालूम हो रहा था और उसकी स.स की आवाज़ आ रही थी। दूर बरामदे में अचानक पहरेदार के भारी क़दमों की आवाज़ गूंज उठी। फ़र्श पर राइफ़ल का कुन्दा ज़ोर से गिर पड़ा। दरवाज़ा खुला और कारपोरल ने सतर्कता से सब मरीज़ों को गिना। इसके बाद वार्ड में ताला लगा दिया गया। नये पहरेदार अपनी ड्यूटी पर आ गए और फिर ख़ामोशी छा गई। उसी वक्त मैंने देखा, मेरी बाईं तरफ़ दो आदमी आपस में फुसफुसा कर बातें कर रहे थे। हस्पताल में कई बार ऐसा भी होता था कि दो आदमी जो महीनों तक आपस में बात नहीं करते थे, अचानक रात के आवरण में आपस में बातें करने लगते थे और उनमें से एक अपना सारा अतीत दूसरे के सामने खोलकर रख देता था। साफ़ ज़ाहिर था कि ये दोनों जने बहुत देर से आपस में बातें कर रहे थे। कहानी के शुरू का हिस्सा मुझे सुनाई नहीं दिया था और अब भी कुछ शब्द मुझे साफ़ नहीं सुनाई दे रहे थे। लेकिन धीरे-धीरे मैंने कान लगाकर आवाज़ सुनने की कोशिश की। नींद तो मुझे वैसे भी नहीं आ रही थी, इसलिए उन लोगों की बातचीत सुनने के अलावा मेरे पास और कोई काम नहीं था। उनमें से एक भावावेश में आकर बात कर रहा था। वह कुहनियाँ टेके, गर्दन उठाकरअपने साथी की तरफ़ देख रहा था। वह ज़रूर उत्तेजित, और अपनी कहानी

सुनाने के लिए आतुर रहा होगा। उसका श्रोता, उदासीन और हताश भाव से बैठा था और बीच-बीच में हमदर्दी का एकाध शब्द बड़बड़ा देता था, लेकिन उसे कहानी में कोई दिलचस्पी नहीं थी, वह केवल शिष्टतावश ऐसा कर रहा था और रह-रहकर डिबिया में से नसवार निकालकर नाक में डालता जाता था। श्रोता का नाम चेरेवीन था और वह स्पेशल बटालियन का सिपाही था। वह पचास वर्ष का गुस्सैल विद्वत्ता बघारने वाला आदमी था। वह हर वक्त दूसरों को नसीहतें देता रहता था और उसे अपने बारे में बहुत सी ग़लतफ़हमियाँ थीं। कहानी कहने वाला एक नौजवान था, जिसकी उम्र अभी तीस वर्ष की भी नहीं हुई थी। वह सिविल सैक्शन में था और दर्ज़ीखाने में काम करता था। मैंने इस आदमी की तरफ़ पहले कभी ध्यान नहीं दिया था, और न जाने क्यों बाद में भी मुझे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं पैदा हुई। वह एक सिरफिरा, बेवक़ूफ़ आदमी था। कई बार हफ़्तों तक वह ख़ामोश बैठकर कुढ़ता रहता था, और किसी से बात नही करता था, फिर अचानक ही उसकी किसी न किसी आदमी से ठन जाती थी, वह उसकी निन्दा करने लगता था, छोटी-छोटी बातों में उत्तेजित हो उठता था, हर बैरक में घूम-घूमकर निन्दा-चुगली करता फिरता था और बदतमीजी दिखाता था। फिर कोई उसकी मरम्मत कर देता था और उसकी आदतें फिर पहले जैसी हो जाती थीं। वह डरपोक और नीरस प्रकृति का आदमी था, जिसकी तरफ़ कोई भी ध्यान नहीं देता था। उसका बदन इकहरा था और कई बार जब वह किसी गहरे सोच में डूब जाता था, तो उसकी आँखें फटी-फटी सी रह जाती थीं। वह अपनी हर कहानी उत्तेजित भाव से हाथ हिला-हिलाकर शुरू करता था, फिर बीच ही में किसी बेसिर-पैर की बात में भटक जाता था। वह भूल जाता था कि दरअसल वह क्या कहना चाहता है। वह अक्सर दूसरे क़ैदियों से झगड़ता था और अत्यन्त उत्तेजित भाव से आँखों में आँसू लाकर अपने विरोधी को कोसने लगता था। वह बालालायका अच्छी तरह बजा लेता था और उसे बजाने का

शौक़ भी था। छुट्टी के दिन अगर कोई उसे नाचने के लिए कहता था तो वह नाचता भी था, उसे नाचना भी आता था। उससे कोई भी काम करवाना आसान था। वह बहुत आज्ञाकारी हो, यह बात नहीं, लेकिन वह हर वक्त लोगों से दोस्ती करता था और उनके काम किया करता था।

बहुत देर तक तो मुझे उसकी बात का सिर-पैर ही पता न चला। हमेशा की तरह इस वक्त भी वह अपनी असली कहानी छोड़कर इधर-उधर की बातें कर रहा था। उसने चेरेवीन की उदासीनता ज़रूर भाँप ली होगी और मन ही मन कल्पना कर रहा होगा कि उसका श्रोता बड़ी तन्मयता से उसकी बातें सुन रहा होगा। अगर वह अपने आपको इस भुलावे में न रखता तो सचमुच उसके दिल को बहुत तक़लीफ़ पहुँचती।

वह कह रहा था, "जब वह बाज़ार गया तो सब लोगों ने अपने हैट उतारकर उसके आगे सिर नवाया। कहने का मतलब यह है कि वह अमीर आदमी था।"

"तुमने कहा था कि उसकी अपनी दूकान थी?"

"हाँ, उसकी दो दुकानें थीं। हमारे यहाँ के लोग बहुत ग़रीब थे, समझ लो भिखारी थे। हमारे यहाँ की औरतों को गोभी की क्यारियाँ सींचने के लिए दूर नदी से पानी लाना पड़ता था। मेहनत करके उन बेचारियों की हड्डियाँ निकल आती थीं, और पतझड़ के मौसम में उनके पास शोरबा बनाने के लिए भी गोभी नहीं होती थी। उनकी हालत बुरी और खस्ता थी। उसके पास काफ़ी खेत थे और तीन मेहनती थे। वह शहद की मक्खियाँ भी पालता था और जानवर और शहद बेचता था। संक्षेप में वह हमारे यहाँ का बड़ा और शक्तिशाली आदमी था। वह बहुत बूढ़ा था। कम से कम सत्तर बरस का तो होगा ही। वह जब अपना ओवरकोट पहनकर, जिसके भीतर लोमड़ियों की पोस्तीन का अस्तर था, बाज़ार जाता था तो सब उसे सलाम करते थे, इज्ज़त से

पेश आते थे। "सलाम अन्कुदीम त्रोफ़ीमिच !" वह सलाम का जवाब देता। वह इतना घमण्डी नहीं था कि लोगों से बात ही न करता। वह लोगों से पूछता, "कैसा हाल है ?" "जिस तरह कालिख सफेद नहीं हो सकती, उसी तरह हमारा हाल भी बुरा ही रहेगा। और आपका क्या हाल है, जनाब ?" "किसी तरह गुज़ारा कर रहा हूँ। गुनहगार जो ठहरा।"

"आपकी लम्बी उम्र हो और आप फले-फूलें, अन्कुदीम त्रोफ़ीमिच।" वह घमण्डी नहीं था। उसका हर शब्द रूबल की तरह क़ीमती था। वह सच्चा विद्वान था और हर वक्त धार्मिक पुस्तकें पढ़ता रहता था। वह अपनी बीवी को सामने बिठाकर कहता था, "सुनो बीवी, और समझने की कोशिश करो।" और वह अपनी बीवी को किताबों की बातें समझाता था। खैर, उसकी बीवी बूढ़ी नहीं थी। वह त्रोफ़ीमिच की दूसरी बीवी थी। उसने इसलिए दूसरी शादी की थी, क्योंकि पहली बीवी से उसके कोई औलाद नहीं थी। लेकिन दूसरी बीवी मारया स्तेपानोव्ना के दो बच्चे पैदा हुए थे। उस वक्त वे छोटे-छोटे थे। नन्हा लड़का वास्या तब पैदा हुआ था जब अन्कुदीम साठ वर्ष का था। लेकिन उस वक्त तक उसकी सबसे बड़ी बेटी अकुल्का अठारह वर्ष की हो चुकी थी।

"क्या वह तुम्हारी बीवी थी ?"

"ज़रा ठहरो। पहले तो फ़िल्का मोरोज़ोव ने बक़वास शुरू की। फ़िल्का ने अन्कुदीम से कहा, 'आओ जायदाद का बँटवारा कर लें। मुझे मेरे चार सौ रूबल दे दो। मैं तुम्हारे कारोबार में हिस्सा नहीं रखना चाहता; न तुम्हारी गुलामी करना चाहता हूँ, न ही तुम्हारी बेटी अकुल्का से शादी करना चाहता हूँ। मैं अभी पैसे से मज़े उड़ाना चाहता हूँ। मेरे माँ-बाप मर चुके हैं, इसलिए मैं सारी रक़म शराब में खत्म करके फ़ौज में भर्ती हो जाऊँगा और दस वर्ष बाद फ़ील्ड मार्शल बनकर लौटूँगा।' अन्कुदीम ने उसकी रक़म दे दी और हमेशा के लिए उससे छुट्टी पा ली। जानते हो फ़िल्का का बाप उसका साझीदार था। बूढ़े ने उससे कहा

"तुम तबाह हो जाओगे ।" "तबाह होऊँगा या नहीं, लेकिन अरे ओ सफेद दाढ़ी वाले ! अगर मैं तुम्हारे साथ रहूँगा तो मुझे काँटे से खाने के लिए सिर्फ़ दूध मिलेगा । तुम हर कोपेक को जमा करना चाहते हो, और दलिए में डालने के लिए हर क़िस्म की खुराफ़ात जमा करते हो । लेकिन अब मैं तौबा करता हूँ । तुम पैसा जमा करते-करते क़ब्र में पहुँच जाओगे । मैं खुद चरित्र वाला आदमी हूँ । ख़ैर कुछ भी हो, मैं तुम्हारी अकुल्का से शादी नहीं करूँगा, क्योंकि मैं पहले ही उसके साथ सो चुका हूँ ।" अन्कुदीम चिल्लाया "तुम्हारी इतनी हिम्मत ! तुम एक ईमानदार बाप और ईमानदार बेटी को ज़लील करना चाहते हो ? तुम उसके साथ कब सोए थे, गन्दे साँप ? ज़रा बताओ तो सही, कब, मछली जैसे मुँह वाले ?" फ़िल्का ने मुझे बताया कि बूढ़ा गुस्से से काँप रहा था । फ़िल्का ने कहा "मैं तुम्हारी बेटी से शादी नहीं करूँगा, न ही कोई दूसरा शादी करेगा । निकिता ग्रिगोरिच भी उसे क़बूल नहीं करेगा, क्योंकि वह अपनी इज्ज़त गँवा बैठी है । पिछले पतझड़ के मौसम से हमारा गुप्त प्रेम-सम्बन्ध चल रहा है । अब तो मेरे लिए उसकी क़ीमत सौ केंकड़ों के बराबर भी नहीं । अगर तुम मुझे इसी क्षण सौ केंकड़े पेश करो, तब भी मैं तुम्हारी बेटी को नहीं छू सकता ।"

"फ़िल्का ने ख़ूब गुलछर्रे उड़ाए । सारे शहर में धूम मच गई । उसके कई जिगरी दोस्त थे और तीन महीने तक उसने ख़ूब मज़े उड़ाये —जब तक उसका पैसा ख़त्म न हुआ । वह कहा करता था, "जब मेरा पैसा ख़त्म हो जाएगा तो मैं अपना मकान बेचकर फ़ौज में भर्ती हो जाऊँगा या घुमक्कड़ बन जाऊँगा । वह सुबह से लेकर रात तक दो घोड़ों के गले में घंटियाँ बांधकर घूमता रहता था । लड़कियाँ उसके पीछे दीवानी हो रही थीं । वह बालालायका भी बहुत अच्छा बजाता था ।"

"अच्छा तो अकुल्का के साथ क्या सचमुच उसका प्रेम-सम्बन्ध हुआ था ?"

"ज़रा ठहरो । मैंने अपने बाप को तभी दफ़नाया था और माँ

अन्कुदीम की दुकान के लिए जो डबलरोटी तैयार करती थी, उसी से हमारा गुज़ारा होता था। लेकिन बड़ी मुश्किल से। हमारे पास जंगल के पार थोड़ी ज़मीन भी थी, जिसमें हम राई बोया करते थे। लेकिन मेरे बाप की मौत के बाद वह खेती भी तबाह हो गई, क्योंकि उन दिनों मैं भी गुलछर्रे उड़ा रहा था। मैं माँ को धमकाकर पैसे वसूल कर लिया करता था।"

"यह तो बहुत बुरी बात है। तुमने गुनाह किया था।"

"मैं सुबह से लेकर रात तक नशे में चूर रहता था, मेरे भाई। हमारा मकान पुराना और सड़ा-गला ज़रूर था, लेकिन इतना बुरा नहीं था। मकान एकदम ख़ाली था, अगर वहाँ कोई ख़रगोश आ जाता तो आप उसका पीछा कर सकते थे। हम लोग इतने ग़रीब थे कि सिवा अपने अंगूठे चूसने के, हमारे पास खाने को कुछ नहीं रहता था। माँ हर वक्त मुझे कोसती रहती थी, लेकिन उससे क्या फ़ायदा हो सकता था? मैं सुबह से लेकर रात तक हर वक्त फ़िल्का मोरोज़ोव के साथ रहता था। फ़िल्का कहता था, "अपनी गिटार बजाओ और नाचो, मैं तुम्हें उसके लिए पैसा दूंगा। तुम जानते हो कि मैं यहाँ का सबसे ज्यादा अमीर आदमी हूँ।" और वह कैसी-कैसी हरकतें किया करता था! लेकिन जो भी हो वह चोरी का माल नहीं क़बूल करता था। वह कहता था, "मैं चोर नहीं हूँ।" एक बार उसने कहा, "चलो अकुल्का के घर के फाटक को कोलतार से रंग दें। मैंने तय कर लिया है कि मैं निकिता ग्रिगोरिच से उसकी शादी नहीं होने दूंगा।" बूढ़ा बहुत दिनों से अपनी बेटी की शादी निकिता ग्रिगोरिच से करना चाहता था। निकिता एक बूढ़ा विधुर था और आँखों पर चश्मा लगाता था। वह भी व्यापारी था। लेकिन जब उसने अकुल्का के बारे में अफ़वाहें सुनीं तो वह अपने वादे से मुकर गया। उसने कहा, "मेरी सख्त बदनामी होगी। इसके अलावा मैं बूढ़ा हो चुका हूँ, मुझे शादी की कोई ज़रूरत नहीं।" हम लोगों ने अकुल्का के घर के दरवाज़ों पर कालिख पोत दी, जिसकी वजह से

अकुल्का को खूब मार पड़ी। मारया स्तेपानोव्ना चिल्लाई, "मैं इस लड़की को मार डालूंगी, देख लेना।" बूढ़े ने कहा, "अगर पुराना ज़माना होता, जब पेट्रियार्क जिन्दा थे तो मैं इसके टुकड़े-टुकड़े करके जिन्दा जला देता, लेकिन अब दुनिया में अन्धेरा छा गया है और लोगों का पतन हो गया है।" गली में आसपड़ोस के सब लोगों को अकुल्का की चीखें सुनाई देती थीं। दिनभर बेचारी को मार पड़ती रहती थी। फ़िल्का सारे बाजार में कहता फिरता था, "अकुल्का बढ़िया लड़की है। ऐसी ही लड़की के साथ वोदका पीने का मज़ा आता है। अच्छे कपड़े पहनती है, शराब पीती है। बहुत अच्छी माशूका है! मैंने उस खानदान को अपनी एक निशानी दे दी है, वे लोग उम्र-भर मुझे याद रखेंगे," तभी अकुल्का से मेरी मुलाक़ात हुई। वह हाथों में दो बाल्टियाँ उठाकर जा रही थी। मैंने कहा, "गुड मॉर्निंग अकुलीना कुदीमोवा, बन्दा सलाम करता है। तुम्हारे पास इतने बढ़िया कपड़े कहाँ से आते हैं मेरी हसीना!" उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी तरफ़ देखा। वह सूखकर काँटा हो गई थी। उसकी माँ पोर्च पर खड़ी थी, वह चिल्लाई, "तुम इस आदमी से क्यों घुल-घुल कर बातें कर रही हो, क्या तुम्हें ज़रा भी शर्म नहीं है?" और उसी दिन अकुलीना की फिर पिटाई हुई। कई बार तो पूरे घंटे तक उसे मार पड़ती थी। उसकी माँ कहा करती थी, "अब मैं कोड़ों से इसकी खाल उघेड़ दूँगी। यह मेरी बेटी नहीं…"

"तो क्या सचमुच अकुलीना छिनाल थी?"

"मेरी बात तो सुन लो दोस्त। फ़िल्का और मैं शराब में गर्क रहते थे। एक बार जब मैं बिस्तर में लेटा था, तो मेरी माँ आकर हमेशा की तरह मुझे डांटने लगी, "अच्छा तो तुम बिस्तर में आराम कर रहे हो……निठल्ले कहीं के! अकुलीना से तुम क्यों नहीं शादी कर लेते? उसके माँ-बाप तुम्हारे जैसे आवारागर्द से भी अपनी बेटी की शादी करने को तैयार हैं और साथ ही में तुम्हें तीन-सौ रूबल भी मिलेंगे।" मैंने कहा, "लेकिन वह तो बदनाम हो चुकी है।" "तुम बेवक़ूफ़

हो । शादी से सब बदनामियाँ छिप जाती हैं । इसके अलावा अगर कुछ गड़बड़ हुई तो हमेशा वह तुम्हारे रौब तले रहेगी । उनके पैसे से हमारी हालत सुधर जाएगी । मैंने मारया स्तेपानोव्ना से बातें की हैं और उसने खुशी-खुशी मेरी बातें सुनीं ।" मैंने कहा : "बीस रूबल नक़द लाओ, तब मैं उससे शादी कर लूँगा ।" उसके बाद शादी की रस्म तक मैं नशे में बेख़बर रहा । फ़िल्का मोरोज़ोव ने लगातार मुझे धमकियाँ दीं, "अकुल्का के शौहर, मैं तुम्हारी हर हड्डी-पसली तोड़ दूँगा और अगर चाहूँगा तो हर रात तुम्हारी बीवी के साथ सोऊँगा ।" "तुम झूठ बोलते हो, कमीने कुत्ते !" फिर उसने सरेआम मेरी बेइज्ज़ती की, मैं भागा हुआ घर पहुँचा और मैंने कहा, "अगर वे मुझे फ़ौरन पचास रूबल नहीं देते तो मैं अकुल्का से शादी नहीं कर सकता ।"

"क्या वे तुमसे अकुल्का की शादी के लिए राज़ी हो गए थे ?"

"राज़ी क्यों न होते ? हमारी हैसियत उनसे कम तो नहीं थी । मेरे बाप की मौत से पहले हमारी दुकान में आग लग गई थी, जिससे हम बर्बाद हो गए थे । हम उन लोगों से भी ज्यादा अमीर हुआ करते थे । अन्कुदीम ने मुझ से कहा, "तुम तो भिखमंगे हो ।" मैंने फ़ौरन उसे जवाब दिया, "और तुम्हारे दरवाज़ों पर जो कालिख पोती गई है सो ?" "वक्त से पहले ही डींग मत हाँको, पहले यह साबित करो कि सचमुच वह अपनी इज्ज़त गँवा बैठी है । लोगों की बकवास से कुछ नहीं होता । वह सामने ईसा की मूर्ति है और यह दरवाज़ा है । या तो अकुलीना को क़बूल करो, वरना हमारा पैसा लौटा दो ।" मैं जानता था मैं फ़िल्का को मज़ा चखाऊँगा । मैंने दिमित्री बायकोव के हाथ उसे सन्देश भेजा कि मैं सारे शहर के सामने उसकी बेइज्ज़ती करूँगा । शादी के मौक़े तक मैं नशे में रहा और जब गिर्जाघर जाने का वक्त आया, तब कहीं जाकर मुझे होश आया । जब हम गिर्जे से वापस लौटे तो अकुल्का के चचा मीत्रोफ़ान स्तीपानिच ने कहा, "इस शादी में ईमानदारी नहीं बरती गई, लेकिन शायद किसी तरह मियाँ-बीवी की

पट ही जाएगी ।" बूढ़े ने भी शराब पी रखी थी और वह रो रहा था —उसकी दाढ़ी आँसुओं से भीग रही थी । मैं अपने साथ एक कोड़ा ले गया था अकुल्का के साथ छेड़छाड़ करने के लिए । मैंने मन ही मन सोचा, 'मैं ज़रा उसे धोखे से शादी करने का मज़ा चखाऊँगा । मैं लोगों को दिखा दूँगा कि मैंने बेवकूफ़ी में आकर अकुल्का से शादी नहीं की ।'

"तुमने बिल्कुल ठीक किया । तुम शुरू से ही उसे उसकी हैसियत समझाना चाहते थे ।"

"तुम बकवास करने के बजाय ज़रा मेरी बात तो सुनो । हमारे यहाँ शादी होते ही दूल्हा-दुल्हिन को एक कमरे में अकेला छोड़ दिया जाता है और मेहमान बाहर बैठ कर शराब पीते हैं । मुझे अकुल्का के साथ कमरे में छोड़ दिया गया । उसका चेहरा पीला पड़ गया था, उसमें ख़ून का एक क़तरा भी नहीं रहा था । वह ज़रूर ख़ौफ़ज़दा रही होगी । उसके बाल भी पीले थे, मेरा मतलब है, सुनहरी रंग के थे । उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं और वह ख़ामोश बैठी थी, जैसी गूंगी हो । वह बड़ी अजब लड़की थी । मैंने अपना कोड़ा पलंग के पास रख दिया, और तुम यक़ीन करोगे कि वह बिल्कुल मासूम कुँआरी साबित हुई ।"

"क्या सच ?"

"हाँ, बिल्कुल मासूम । फिर उसे इतनी मार-पीट किसलिए बर्दाश्त करनी पड़ी ? फ़िल्का मोरोज़ोव ने सारे शहर के सामने क्यों उसकी बेइज़्ज़ती की ?"

"हाँ, किसलिए की ?"

"मैं घुटनों के बल बैठ गया और मैंने अपने सीने पर हाथ रखकर कहा, "मेरी प्यारी, मुझे माफ़ कर दो, मैंने बहुत बेवकूफ़ी की । मैं वहशी हूँ, मुझे माफ़ कर दो ।" और वह पलंग पर बैठकर मुझे ताकती रही । फिर उसने मेरे कन्धों पर हाथ रखकर हँसना शुरू किया और उसके गालों

पर आँसू बहने लगे। उसे एक साथ हँसी और रोना आ रहा था। फिर बाहर निकल कर मैंने मेहमानों के सामने कहा, "अगर मुझे फ़िल्का मोरोज़ोव मिला तो मैं उसे क़त्ल कर दूँगा।" अब बूढ़ों की समझ में न आया कि किसे धन्यवाद दें। अकुल्का की माँ रोती-चिल्लाती हुई बेटी के क़दमों पर गिर पड़ी और उसके बाप ने कहा, "काश हमें इस बात का पहले पता चल जाता तो प्यारी बेटी, हम तुम्हारे लिए कैसा शानदार पति तलाश करते!" जब मैं पहले इतवार को गिर्जाघर गया तो मैंने अस्त्राखान की टोपी, बढ़िया कपड़े का चोग़ा और मखमल की पतलून पहनी थी। अकुल्का ने खरगोश के चमड़े की नई वास्कट और रेशमी रूमाल पहना था। मेरे कहने का मतलब यह है कि मैं उसके क़ाबिल था। काश तुम हमारी जोड़ी देख सकते! मैं सच कहता हूँ, सब लोग हमारी तारीफ़ करते थे, यानी मेरी और अकुल्का की। मैं यह नहीं कहता कि वह दुनिया में सबसे ज्यादा हसीन थी, लेकिन वह ख़ूबसूरती में किसी से कम भी नहीं थी।"

"तो आख़िर में सारा मामला ठीक हो गया?"

"तुम सुनो तो सही। शादी के अगले ही दिन मैं मेहमानों को छोड़ कर आ गया, हालाँकि मैं नशे में था। मैं ज़ोर से चिल्लाया, "ज़रा उस आवारा फ़िल्का मोरोज़ोव को मेरे सामने लाओ! फ़ौरन लाओ उस बदमाश को!" मेरी आवाज़ दूर-दूर तक पहुँच रही थी। यह बताने की जरूरत नहीं कि मैं नशे में था, तीन आदमी मुझे व्लासोव के फाटक पर से पकड़कर ज़बरदस्ती घर ले आए। इस घटना के बाद शहर में बहुत चर्चा हुई। बाजार में औरतें कहती थीं, 'लड़कियो, तुमने सुना कि अकुल्का शरीफ़ साबित हुई?" लेकिन कुछ दिनों बाद फ़िल्का ने लोगों के सामने मुझसे कहा, 'तुम अपनी बीवी को बेचकर शराब क्यों नहीं पीते? हमारे सिपाही याश्का ने तो इसीलिए शादी की थी। वह कभी अपनी बीवी के साथ नहीं सोया लेकिन शादी के बाद तीन वर्ष तक वह शराब पीता रहा।" मैंने कहा, "कमीने बदज़ात!" उसने कहा, 'तुम

बड़े बेवकूफ़ हो। शादी के वक्त लोगों ने तुम्हें शराब पिला दी थी। नशे की हालत में ऐसी बातों को परखने की किसे तमीज़ रह जाती है।" मैंने घर आकर माँ से कहा, "तुमने नशे की हालत में मेरी शादी कर दी!" माँ यह सुनकर बहुत बिगड़ी। मैंने कहा, "सुनो माँ, सोने से तुम्हारे कान बन्द हो गए हैं, इसलिए तुम्हें लोगों की बातें सुनाई नहीं देतीं। अकुल्का कहाँ है?" मैंने दो घण्टे तक अकुल्का की खूब पिटाई की। थकान के मारे मुझसे खड़ा भी नहीं हुआ जाता था। अकुल्का तीन हफ़्ते तक बिस्तर पर पड़ी रही।"

चेरेवीन ने अलसाई आवाज़ में कहा, "अगर औरतों की पिटाई न की जाए तो वे···लेकिन क्या तुमने उसे किसी आशिक़ के साथ पकड़ा था?"

"नहीं" शिश्कोव ने थोड़ी देर खामोश रहने के बाद कोशिश करके कहा, "लेकिन यह बात मुझे चुभी थी। लोग मेरी हँसी उड़ाते थे और फ़िल्का ने तो हद ही कर दी थी, 'तुम्हारी बीवी सब के लाड़ की चीज है!' एक बार उसने हम सब लोगों को अपने घर बुलाया और फिर यह फ़ब्ती कसी, 'इसकी बीवी बड़ी ही नेक और शरीफ़ औरत है, सही माने में जिसे शरीफ़ औरत कहते हैं, लेकिन वह अब शरीफ़ है। क्यों बे, तू भूल गया है कि तूने उसके दरवाजों पर कालिख पोती थी?' मैं उस वक्त नशे में था, इसलिए उसने मेरे बाल पकड़ कर मुझे झकझोरना शुरू किया, 'नाचो, अकुल्का के शौहर, नाचो! मैं तुम्हारे बाल पकड़े रहूँगा!' मैं चिल्लाया 'कमीने कहीं के!' उसने कहा, 'किसी दिन मैं सब दोस्तों को लेकर तुम्हारे घर आऊँगा और तुम्हारी बीवी को मनमाने कोड़े लगाऊँगा।' तुम चाहे यक़ीन करो या न करो, इसके बाद पूरे एक महीने तक घर से बाहर क़दम रखने की मेरी हिम्मत न हुई। मुझे डर था कि कहीं मेरी ग़ैर मौजूदगी में वह मेरे घर न आ जाए। और सिर्फ़ इसी वजह से मैंने अकुलीना को फिर पीटना शुरू कर दिया।"

"लेकिन किस लिए? हर आदमी की ज़बान पर तो ताला नहीं

लगाया जा सकता ! बीवी को हर वक्त पीटना भी बुरा है। उसे सजा देनी चाहिए, उसे सबक़ सिखाना चाहिए, लेकिन उसके बाद नर्मी से पेश आना चाहिए। इसीलिए तो बीवियाँ बनाई गई हैं।"

शिश्कोव कुछ क्षण तक ख़ामोश रहा। फिर उसने कहना शुरू किया, "इस तरह मुझे अकुल्का को पीटने की आदत पड़ गई। किसी-किसी दिन तो मैं उसे सुबह से लेकर रात तक पीटता रहता था, क्योंकि उसका हर काम ग़लत मालूम होता था। जब मैं उसे नहीं पीटता था तो मेरा मन ऊब जाता था। अकुल्का दिनभर रोती रहती थी और खिड़की के बाहर झाँकती रहती थी। मुझे उस पर तरस आता था। फिर भी मैं उसे पीटता था। अकुल्का के कारण मेरी माँ मुझे कितने ताने देती थी। वह कहती थी, 'अरे ओ क़फ़न के टुकड़े !' मैं जोर से चिल्लाता था, 'ख़बरदार जो किसी ने मुझसे कुछ कहा। क्या मेरी शादी धोखे से नहीं की गई ?' शुरू में अकुल्का के बाप ने अपनी बेटी की तरफ़दारी करने की कोशिश की और वह हमारे पास आया। मैंने उससे कहा, 'तुम अपने को जितना बड़ा आदमी समझते हो, उतने बड़े तुम नहीं हो। मैं तुम्हारे खिलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई करूँगा।' लेकिन बाद में बूढ़े ने सारी कोशिशें बन्द कर दीं और मारया स्तेपानोव्ना ने भी अपना अंदाज बदल लिया। एक दिन आँखों में आँसू भरकर वह मेरे आगे गिड़गिड़ाई, "मैं तुमसे कुछ माँगने आई हूँ, ईवान सेम्योनिच। बात बहुत मामूली है, लेकिन अगर तुम मान लो तो बड़ी मेहरबानी होगी।" वह मेरे क़दमों में झुक गई। "उस पर तरस खाओ। उसे माफ़ कर दो। बुरे लोगों ने उसे बदनाम कर दिया, लेकिन तुम ख़ुद जानते हो कि जब तुमने उससे शादी की, उस वक्त वह मासूम थी।" वह रोती हुई जमीन पर झुक गई। मुझे लगा जैसे अब मैं सबका मालिक हूँ।

मैंने कहा, "मैं तुम्हारी बात तक नहीं सुनूँगा, और अपनी मर्जी के मुताबिक़ तुम सब लोगों से सलूक़ करूँगा। क्या पता गुस्से में आकर मैं क्या कर बैठूँ ? रही फ़िल्का मोरोजोव की बात। वह मेरा जिगरी दोस्त

ग्रौर साथी है।"

"तुम्हारे कहने का मतलब है कि तुमने फिर उसके साथ बैठकर शराब पी थी ?"

"नहीं मैंने नहीं पी थी। ऐसे वक्त में जब वह नशे में डूबा हो कोई उसके पास भी नहीं फटक सकता। जब अपनी सारी जमा-पूंजी खत्म कर दी तो उसने कहा कि वह एक ग्रादमी के सबसे बड़े बेटे की जगह ले लेगा जिसे फ़ौज में जबरन भर्ती किया गया था। हमारे यहाँ जब कोई ऐसा काम करता था तो उसे मनमानी करने का मौक़ा मिल जाता था। उसे पूरी रक़म तभी मिलती थी, जब वह फ़ौज में जाकर हाज़िरी देता था। लेकिन जब तक उसकी बारी नहीं ग्राती थी तब तक वह घर के लोगों से कैसा सलूक करता था! कभी-कभी तो वह छः महीने तक उत्पात मचाता रहता था। उनकी शर्मनाक हरक़तों को सुनकर तो मन में ग्राता है कि सारी पवित्र मूर्तियाँ घर से निकाल दी जाएँ। चूंकि वह एक परिवार पर एहसान कर रहा है, इसलिए परिवार के लोगों को उसकी इज्ज़त करनी पड़ती है। ग्रगर वे ऐसा नहीं करते तो मुमकिन है कि वह ग्रादमी ग्रपने वादे से मुकर जाए। सो फ़िल्का ने सारे घर में उपद्रव मचा दिया। लड़की के साथ बलात्कार किया। हर रोज़ वह बाप की दाढ़ी खींचा करता था ग्रौर मनमानी करता था। वह रोज ग़ुसल तैयार करता था ग्रौर टब में पानी की जगह वोद्का डालता था ग्रौर घर की ग्रौरतों को इस बात के लिए मजबूर करता था कि वे उसे गोद में उठाकर टब तक ले जाएँ। कभी-कभी वह शराब पीकर लौटता था तो घर के बाहर खड़ा होकर चिल्लाता था, 'मैं फाटक के रास्ते भीतर नहीं ग्राना चाहता। दीवार को गिरा दो!' बेचारे घर के लोग दीवार का थोड़ा-सा हिस्सा गिरा देते थे। ग्राख़िर उसका फ़ौज में जाने का वक्त ग्रा पहुँचा ग्रौर उसे फ़ौज में हाज़िरी देने के लिए ले जाया गया।

उसका नशा हिरन हो गया। लोगों की भीड़ उसे देखने के लिए सड़क पर जमा हो गई। "देखो! फ़िल्का मोरोजोव को फ़ौज में भर्ती

कराने के लिए ले जाया जा रहा है !" और फ़िल्का वहाँ खड़ा होकर सबको सलाम करता रहा। इसी वक्त अकुल्का अपने घर के पिछवाड़े के बगीचे से निकल कर बाहर आ रही थी।

"रुक जाओ !" फ़िल्का ने चिल्लाकर गाड़ी के ड्राइवर से कहा और गाड़ी से कूद कर नीचे आ गया। उसने अकुल्का के क़दमों में सिर झुका कर कहा, "मेरी प्यारी ! मैं दो बरसों तक तुम से प्यार करता रहा, अब मुझे सिपाही बनाकर ले जाया जा रहा है। तुम मासूम हो, मेरी ग़लतियों के लिए मुझे माफ़ कर दो," उसने फिर झुककर अकुल्का को सलाम किया। अकुल्का पहले तो आतंकित भाव से खड़ी रही, फिर उसने सिर झुका कर कहा, "अलविदा, नौजवान ! मुझे तुम से कोई शिक़ायत नहीं।"

इसके बाद मैं अकुल्का के पीछे घर में आया। मैंने उससे कहा, "तुमने उससे ऐसी बात क्यों कही, कुतिया ?" तुम चाहे यक़ीन करो या न करो, उसने जवाब दिया, "क्योंकि मैं उसे दुनिया में सबसे ज्यादा चाहती हूँ।"

"क्या सच ?"

"उसके बाद मैंने दिनभर उससे कुछ न कहा। जब शाम होने को आई तो मैंने कहा, "अकुल्का, इस बात पर मैं तुम्हें मार डालूंगा।" उस रात मुझे बिल्कुल नींद नहीं आई। मैं क्वास पीने के लिए बाहर बरामदे में चला गया। पौ फटने वाली थी। वापस लौटकर मैंने कहा, "बाहर चलने के लिए तैयार हो जाओ। हम जरा अपने खेत तक जाएँगे।" मैं पहले से खेत पर जाने की बात सोच रहा था और माँ को भी यह बात मालूम थी। उसने कहा, "यह बहुत अच्छी बात है, फसल की कटाई शुरू हो गई है, हमें एक क्षण भी बर्बाद नहीं करना चाहिए। मुझे खबर मिली है कि हमारा मेहनती पिछले तीन दिन से पेट-दर्द की वजह से बीमार पड़ा है।"

मैंने घोड़ा तैयार किया और कुछ न कहा। हमें खेत तक पहुँचने के

लिए ग्यारह मील जंगल में होकर जाना पड़ता था। जंगल में ढाई मील चलने के बाद मैंने घोड़ा रोक दिया और कहा, "नीचे उतरो अकुल्का। तुम्हारी आखिरी घड़ी आ पहुँची है।" अकुल्का ने भयभीत नज़रों से मेरी तरफ़ देखा और खामोश रही। मैंने कहा, "मैं तुम से तंग आ गया हूँ। अब प्रार्थना कर लो।" मैंने उसकी चोटियों को हाथ में लपेट लिया—उसकी चोटियाँ लम्बी और घनी थीं—उसका सिर पीछे की तरफ़ झुकाकर मैंने चाकू निकाला और उसका गला काट दिया। वह कैसे चिल्लाई थी! खून का फ़व्वारा बह निकला। मैंने चाकू फेंक दिया और उसके गले में बाँहें डालकर रोता और चिल्लाता हुआ ज़मीन पर गिर पड़ा। वह भी चीख रही थी और मेरी बाँहों से मुक्ति पाने के लिए छटपटा रही थी। मेरे कपड़े खून से तर हो गए थे—मेरे चेहरे और हाथों पर खून टपक रहा था। मैं उससे अलग हो गया। मैं बेहद डर गया था। मैंने घोड़ा वहीं छोड़ दिया और टेढ़े-मेढ़े रास्तों से भागता हुआ अपने घर के गुसलखाने में पहुँचा। हमारे घर में एक पुराना गुसलखाना था, जिसे हम कभी इस्तेमाल नहीं करते थे। मैं अँधेरा होने तक वहीं बेंच के नीचे छिपा रहा।"

"और अकुल्का का क्या हुआ?"

"मेरे वहाँ से आने के बाद वह ज़रूर उठ खड़ी हुई होगी, क्योंकि लोगों ने उसकी लाश को उस जगह से सौ क़दमों की दूरी पर बरामद किया था।"

"तो तुमने उसका गला पूरी तरह से नहीं काटा था?"

"नहीं···" कहकर शिश्लोव रुक गया।

चेरेवीन ने कहा, "गले में एक नस होती है, अगर उसे पहले ही वार में न काटा जाए तो चाहे कितना ही खून क्यों न निकले आदमी मरेगा नहीं, वह सिर्फ़ छटपटाता रहेगा।"

"लेकिन वह मर गई थी। उसी रात लोगों को उसकी लाश मिल गई थी। उन्होंने पुलिस को खबर दे दी और मेरी तलाश की। मुझे

ग़ुसलखाने में पकड़ लिया गया। इसीलिए पिछले सात बरसों से मैं यहाँ हूँ।"

"हूँ! अगर बीवियों को पीटा न जाये तो अच्छा नतीजा नहीं निकलता" चेरेवीन ने अपनी नसवार की डिबिया टटोलते हुए भावशून्य स्वर में कहा। वह ज़ोर से नसवार सूँघने लगा और फिर बोला, "लेकिन सोचो तो सही लड़के! मैं तुम्हें बिल्कुल बेवक़ूफ़ ही कहूँगा। एक बार मैंने अपनी बीवी को इसी तरह उसके एक आशिक़ के साथ पकड़ा था। मैं उसे शेड में ले गया और रस्सी बटकर मैंने सड़ासड़ उसकी पिटाई की और पूछा, 'तुमने शादी के वक्त किसका हुक्म मानने की क़सम खाई थी?' मैं उसे डेढ़ घण्टे तक पीटता रहा। आख़िरकार उसने कहा, 'आइन्दा से मैं तुम्हारे पैर धोकर पिया करूँगी। उसका नाम अवदोत्या था।"

ग्रीष्म काल

अप्रैल का शुरू था और पवित्र सप्ताह नजदीक आ रहा था। धीरे-धीरे गर्मी का काम शुरू हुआ। दिन-ब-दिन धूप में चमक और गर्मी आती गई। हवा में बहार की ख़ुशबू बस गई थी, जिससे क़ैदियों के दिल भी बेचैन हो उठे थे और उनके दिलों में घर की याद की टीसें उठने लगी थीं। जाड़ों और पतझड़ के नीरस दिनों की अपेक्षा इन्सान चमकती हुई धूप के दिनों में आजादी के लिए ज्यादा तड़पता है। यह बेचैनी हर क़ैदी में नज़र आती थी। अच्छे मौसम से वे ख़ुश थे, लेकिन वे पहले से ज्यादा बेचैन और क्षुब्ध हो उठे थे। मैंने तो यहाँ तक देखा कि बहार के मौसम में लोगों में लड़ाई-झगड़े ज्यादा होते हैं। शोर-शराबा भी बढ़ जाता है। फिर भी काम करते हुए लोगों की आँखों में मुझे एक उदासी नजर आती थी, उनकी नजरें इर्तिश नदी के पार के नीले विस्तार में खो जाती थीं, जहाँ किरग़ीज़िया के मैदान क़ालीन की तरह बारह सौ मील की दूरी तक फैले हैं। कभी-कभी किसी क़ैदी की ठंडी आह सुनाई दे जाती थी तो लगता था कि दूर प्रदेश की आज़ाद हवा में एक साँस लेने के लिए उसकी आहत आत्मा तड़प रही है, और फिर वह क्षुब्ध और बेचैन होकर अपना फावड़ा उठा लेता था या ईंटें उठाने के लिए झुक जाता था, लगता था वह अपने सपनों को झकझोर कर फेंक रहा है। उसके मुँह से अनायास ही निकल जाता था, 'क्या फ़ायदा !' क्षणभर में वह अपने दिल की टीस को भूल कर अपनी मूड के मुताबिक बाक़ी साथियों के साथ हँसने या गाली-गलौज करने लगता था। या वह अनायास ही उत्साह से काम में जुट जाता था, जैसे वह अपने भीतर उमड़ते हुए किसी आवेग को रोकने की कोशिश कर रहा हो, किसी ऐसी चीज़ को जो उसका दिल फाड़ कर बाहर आना चाहती हो। वहाँ सब नौजवान और तंदुरुस्त लोग

थे—ऐसे में बेड़ियां बहुत भारी हो जाती हैं! मैं कविता करने की कोशिश नहीं कर रहा बल्कि मुझे इस बात की सच्चाई में पूरा विश्वास है। बहार के दिनों में जब चमकदार धूप निकलती है और क़ुदरत की अनन्त शक्ति जागती है, तब क़ैद, पहरेदार और किसी पराये की इच्छा पर चलना एक क्रूर व्यंग्य मालूम होने लगता है। और इस मौसम में सारे रूस में और सारे साइबेरिया में तड़के ही आवारागर्द और घुमक्कड़ नज़र आने लगते हैं। ख़ुदा के बंदे जेलों से भागकर जंगलों में शरण लेते हैं। जेल की सीली कोठरियों की बदबूदार सीली हवा, अदालतों की कभी न ख़त्म होने वाली श्रृंखलाओं, बेड़ियों और बेंतों की मार के बाद वे अपनी ख़ुशी से जहाँ चाहते हैं, घूमते हैं। धरती उन्हें ख़ूबसूरत दिखाई देती है और वे अपने को परिन्दों की तरह आज़ाद महसूस करते हैं। उन्हें ख़ुदा जो देता है, वही खा-पी कर संतोष से रात पड़ने पर खुले खेत में या जंगल में सो जाते हैं, जहाँ सिर्फ़ ख़ुदा ही उनको देख सकता है और सिर्फ़ तारे ही रात को उन्हें नमस्कार करते हैं। इसमें शक नहीं कि यह बड़ी सख़्त, भूख और थकान की ज़िन्दगी है, जिसे घुमक्कड़ लोग जनरल कुकू की नौकरी कहते हैं। अक्सर लगातार कई दिनों तक उन्हें रोटी का टुकड़ा तक नसीब नहीं होता, अक्सर दुनिया के लोगों को छोड़ कर भागना पड़ता है, कई बार चोरी, लूटमार और यहाँ तक कि हत्या भी करनी पड़ती है। साइबेरिया की बस्तियों में बसने वाले भूतपूर्व क़ैदियों के लिए कहा जाता है कि वे बच्चों की तरह हर चीज़ के प्रति आकर्षित होते हैं। निर्वासित और समाज द्वारा परित्यक्त व्यक्तियों पर तो यह बात ख़ास तौर पर लागू होती है। ऐसे घुमक्कड़ों की संख्या बहुत कम होती है जो चोर और डाकू न हों, लेकिन वे किसी प्रवृत्ति के कारण नहीं, बल्कि मजबूरी के कारण ऐसा करते हैं। कुछ लोग पैदाइशी आवारागर्द होते हैं, वे सज़ा ख़त्म होने के बाद भी बस्ती से भाग निकलते हैं।

शायद आप सोचेंगे कि जेल से बाहर निकल कर उन्हें ख़ुशी और सुरक्षा महसूस होती है; लेकिन नहीं, उन्हें कोई अज्ञात शक्ति अपनी तरफ़

खींचती रहती है। जंगल की ज़िन्दगी चाहे कितनी खौफ़नाक और ग़रीबी की ज़िन्दगी क्यों न हो लेकिन एक बार अगर किसी को इस ज़िन्दगी का लुत्फ़ मिल जाता है तो वह बार-बार इसी के प्रति आकर्षित होता है। क्योंकि इसमें मुफ़्त में काम चल जाता है और इसमें साहस और जोखिम का रोमांच रहता है। और अचानक ही बड़े मेहनती और शरीफ़ आदमी भी, जिनसे उम्मीद की जा सकती है कि वे अच्छे किसान बनकर बस्ती में बस जाएँगे, जंगलों में भाग जाते हैं। कई बार तो बीवी-बच्चों वाले आदमी भी, पाँच-पाँच वर्ष एक जगह रहने के बाद घुमक्कड़ बन जाते हैं। अचानक वे अपने बीवी-बच्चों को छोड़कर चल देते हैं और बस्ती के लोगों के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। जेल में मुझे ऐसा एक भगोड़ा दिखाया गया था। उसने कोई ख़ास जुर्म तो नहीं किया था, कम से कम मैंने उसके बारे में ऐसी कोई बात नहीं सुनी थी। लेकिन जब कभी उसे मौक़ा मिलता था, वह भाग निकलता था। वह रूस के दक्षिण के दूर-दूर के हिस्सों में, डैन्यूब के पार, किरगीज स्तेपीज़ में, पूर्वी साइबेरिया में, काकेशस में और बाक़ी सारे प्रदेशों में हो आया था। उसे सफ़र का इतना शौक़ था कि अगर उसकी परिस्थितियाँ दूसरी होतीं तो वह रोबिन्सन क्रूसो की तरह विख्यात हो जाता। लेकिन इन बातों का पता मुझे उससे नहीं बल्कि औरों से चला। वह पचास वर्ष का नाटा किसान था। उसके चेहरे पर असाधारण संतोष और शान्ति थी जो मूर्खता की सीमा तक पहुँच गई थी। वह बहुत कम बोलता था। गर्मी के दिनों में वह धूप में बैठकर इतनी धीमी आवाज़ में गीत गुनगुनाता था कि पास बैठे आदमी के कान तक भी आवाज़ नहीं पहुँचती थी। उसके नैन-नक्श बिलकुल भावशून्य थे। वह बहुत कम खाता था—ज्यादातर वह रोटी पर ही रहता था। उसने कभी सफेद रोटी या वोद्का की एक बूंद तक नहीं खरीदी थी और उसको गिनती भी आती थी, या उसके पास कभी पैसा रहा हो, इसमें भी संदेह है। वह हर चीज़ को परम सन्तोष की दृष्टि से देखता था। वह जेल के कुत्ते को कभी-कभी रोटी डाला करता था। यह

काम और किसी क़ैदी ने कभी नहीं किया। आम लोग सोचते हैं कि किसी कुत्ते को खाना खिलाना बिल्कुल व्यर्थ है। कहा जाता था कि वह शादीशुदा था, उसकी दो या तीन शादियाँ हुई थीं और शायद कहीं उसके बच्चे भी थे। न जाने वह किस जुर्म में जेल आया था। सब लोगों का ख्याल था कि वह जल्द से जल्द भाग निकलेगा, लेकिन वह अभी तक रुका हुआ था। शायद भागने का उचित मौका नहीं आया था, या वह दिन-ब दिन बूढ़ा होता जा रहा था। ख़ैर, जो भी हो, वह ख़ामोशी से अपने दिन काट रहा था और जेल के वातावरण को सहृदयतापूर्वक देखता था। लेकिन भागकर उसे क्या फ़ायदा हो सकता था? यह नहीं भूलना चाहिए कि कुल मिलाकर जंगल की ज़िन्दगी जेल के मुक़ाबले में स्वर्ग है। दरअसल इनका कोई मुक़ाबला ही नहीं किया जा सकता। जंगल की ज़िन्दगी चाहे कितनी कठिन क्यों न हो, लेकिन आज़ादी तो आज़ादी ही है और हर रूसी क़ैदी चाहे वह कहीं हो, बहार के मौसम में सूरज की पहली गरम किरणों के साथ ही बेचैन हो उठता है। हर क़ैदी भागने के मन्सूबे नहीं बनाता। भागने में जितना खतरा और जोखिम है उसे देख कर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सौ में से सिर्फ़ एक आदमी ही सचमुच भागने का निश्चय करेगा, जब कि बाक़ी निन्यान्वे आदमी दिवास्वप्न ही देखते रहेंगे कि वे किस तरह और कहाँ भागकर जाएँ। जाने के मौक़ों के बारे में सोचकर ही वे अपने दिल का बोझ हल्का कर लेंगे। या वे कभी किस तरह भागे थे, उसी की याद करके संतोष प्राप्त कर लेते हैं। मैं उन क़ैदियों की बात कर रहा हूँ, जो सज़ाएँ भुगत रहे थे न कि उनकी जिन पर मुक़दमा चल रहा था, इसलिए जो अक़्सर भागने की हिम्मत भी कर सकते थे। अगर किसी को भागना ही होता है तो वह शुरू के दिनों में ही भाग जाता है। सज़ा के दो-तीन साल भुगतने के बाद क़ैदी उन सालों को क़ीमती समझने लगता है और सोचता है कि उसकी सज़ा में से दो-तीन साल कम हो गए और धीरे-धीरे वह इस विचार का आदी हो जाता है कि भागते हुए पकड़े जाने

की बनिस्बत शराफ़त से अपनी सजा काटना और उसके बाद आज़ादी से किसी बस्ती में बस ज़ाना ज़्यादा बेहतर है। और भागने में पकड़े जाने की सम्भावना काफ़ी थी। दस क़ैदियों में से सिर्फ़ एक ही अपनी 'क़िस्मत बदलने' में सफल होता है। जिन क़ैदियों को लम्बी सजा मिलती है, वे ही भागने का फ़ैसला करते हैं। पन्द्रह या बीस बरस का अरसा उन्हें अनन्तकाल मालूम होता है। ऐसे क़ैदी दस बरस की सज़ा भुगतने के बाद भी अपनी 'क़िस्मत बदलने' के सपने देखते हैं। और फिर लोहे की छड़ों के दाग भी क़ैदियों के भागने में बाधा डालते थे। 'क़िस्मत बदलना' तो सरकारी भाषा का शब्द बन गया है। अगर कोई क़ैदी भागते हुए पकड़ा जाता है तो वह अदालत के सामने क़बूल करता है कि वह अपनी 'क़िस्मत बदलने' की कोशिश कर रहा था। यह शब्द विचित्र होते हुए भी स्थिति के बिल्कुल अनुकूल है। भागने का इरादा रखने वाला क़ैदी आज़ादी पाने के लिए इतना लालायित नहीं रहता, क्योंकि वह जानता है कि यह नामुमकिन है, बल्कि किसी दूसरी जेल, या बस्ती में जाने के लिए वह अपने घुमक्कड़ दिनों में कोई न कोई नया जुर्म कर बैठता है और उस पर नए सिरे से मुक़दमा चलाया जाता है। वह जेल से सख्त नफ़रत करता है और किसी भी दूसरी जगह को ज्यादा पसंद करता है। अगर गर्मियों में इन भगोड़ों को जाड़े गुज़ारने के लिए कोई अच्छी जगह नहीं मिलती और कोई उन्हें आश्रय देने में अपनी भलाई नहीं देखता, या उन्हें किसी दूसरे आदमी का पासपोर्ट नहीं मिलता, (कभी-कभी वे पासपोर्ट की ख़ातिर क़त्ल तक कर डालते हैं) तो वे फिर पतझड़ में अपने आप ही शहरों और जेलों में वापस आ जाते हैं और इस उम्मीद से जेल में सर्दियाँ काटते हैं कि अगले वर्ष तो उन्हें भागने का मौक़ा मिल ही जाएगा।

बहार ने मुझ पर भी असर किया। मुझे याद है कि मैं भूखी नज़रों से दीवार की दरारों के बीच में से या बाड़ पर अपना सिर टिका कर अतृप्त और हठीले भाव से फ़सील पर उगी हुई हरी घास की तरफ़ या नीले आकाश की तरफ़ देखता रहता था, जिसकी नीलिमा गहरी होती

जाती थी। दिन-ब-दिन मेरे मन की ऊब और बेचैनी बढ़ती गई और जेल पहले से भी ज्यादा घृणित मालूम होने लगी। जेल के प्रारम्भिक दिनों में मुझे जिस नफ़रत का सामना करना पड़ा था, वह अब मेरे लिए असह्य हो उठी थी। इस नफ़रत ने मेरी जिन्दगी को एकदम जहरीला बना दिया था। मैं बिना किसी बीमारी के सिर्फ़ जेल के ज़हरीले वातावरण और क़ैदियों की नफ़रत से, जो लेशमात्र भी कम नहीं होती थी, बचने के लिए हस्पताल चला जाता था। क़ैदी हम लोगों से कहा करते थे, 'तुम लोहे की चोंचों वाले ही हमें नोच कर मार डालोगे।' जेल में आने वाले मामूली क़ैदियों से मुझे बहुत ईर्ष्या होती थी। उन्हें फ़ौरन दोस्त मिल जाते थे। इसीलिए बहार का मौसम, क़ुदरत में छाई ख़ुशी और इस खुशी से पैदा होने वाला आज़ादी का प्रेत मेरे मन में बेचैनी और उदासी पैदा कर रहा था।

लेंत[1] के आख़िर में यानी छठे हफ़्ते में मुझे कम्युनियन की तैयारी करनी थी। पहले हफ़्ते से ही सीनियर अफ़सर ने सारे क़ैदियों को तीस-तीस की टोलियों में बाँट दिया था, हर टोली को पूरे हफ़्ते तक समारोह मनाने की इजाज़त मिली थी। मुझे उपवास का सप्ताह बहुत अच्छा लगा था। उन दिनों हमें काम पर नहीं भेजा जाता था। हम दिन में दो या तीन बार गिर्जाघर में जाते थे जो जेल के क़रीब ही था। मैं बहुत दिनों से गिर्जाघर नहीं गया था। लेंत की प्रार्थनाओं ने, जिन्हें मैं बचपन से ही देखता आया था मेरे हृदय में मेरे बीते बचपन की स्मृतियाँ जगा दी थीं। मुझे याद है, तड़के उठकर गिर्जाघर जाना कितना अच्छा मालूम होता था जब कि सड़कों पर रात की बर्फ़ जमी रहती थी। हमारे सन्तरी हमारे साथ गिर्जाघर के भीतर नहीं आते थे। हम लोग एक साथ गिर्जा-घर के पिछले दरवाज़े के पास जमा हो जाते थे, ताकि हमें सिर्फ़ पादरी की ऊँची आवाज़ सुनाई दे सके। बीच-बीच में हमें पादरी के काले चोगे

१. लेंत—ईस्टर से लेकर क्रिसमस तक का समय।

और गंजे सिर की झलक दिखाई दे जाती थी । मुझे याद आता था कि बचपन में मैं किस तरह गिर्जाघर के दरवाज़े पर जमा जनता की भीड़ को देखा करता था, किस तरह वे सैनिक-चिह्नों से सुशोभित व्यक्तियों, मोटे-ताज़े ज़मीदारों या ज़रूरत से ज्यादा भड़कीले और ज़्यादा कपड़े पहने हुए किसी धार्मिक वृत्ति वाली महिला को देख कर एक तरफ़ हट जाते थे । गिर्जाघर में सबसे अच्छी जगह पाने के लिए सम्पन्न व्यक्तियों में होड़ लग जाती थी । तब मैं सोचा करता था कि दरवाज़े के पास खड़े लोग शायद हमारे ढंग से प्रार्थना भी नहीं करते । वे अत्यन्त धार्मिक और दीन-भाव से कमर झुकाकर प्रार्थना करते थे । मालूम होता था कि उन्हें अपनी दीनता का पूरा एहसास था ।

और अब खुद मुझे ही दरवाजे के पास खड़ा होना पड़ा था, और मेरी हालत उन लोगों से भी गई-गुजरी थी । हमारे बदन पर बेड़ियाँ थीं और हम अभिशप्त थे । हमें देखते ही लोग सिकुड़ कर पीछे हट जाते थे या हमें खैरात देते थे । लेकिन मुझे याद है कि मुझे इसमें भी एक विचित्र और सूक्ष्म आनन्द का अनुभव होता था, 'जो खुदा की मर्जी है, वही होगा ।' क़ैदी उत्साह से प्रार्थना कर रहे थे, हर क़ैदी मोमबत्ती खरीदने के लिए या गिर्जाघर की तश्तरी में डालने के लिए अपना-अपना कोपेक लाया था और ऐसा करते हुए सोच रहा था,'आख़िर मैं भी एक इन्सान हूँ । ख़ुदा की नज़रों में सब बराबर हैं ।' हम लोग पहले ही सेक्रामेन्ट ले चुके थे और जब पादरी ने हाथ में पवित्र पात्र लेकर कहा 'हे प्रभु, मैं अगर चोर भी होऊँ तो भी मुझे शरण देना', तो हम सब घुटने टेककर बैठ गए । हमारी बेड़ियाँ झनझना उठीं । हमें लगा कि ये शब्द खासतौर पर हमीं से कहे गए थे ।

फिर ईस्टर का त्यौहार आया । जेल की तरफ़ से हर क़ैदी को एक रंगा हुआ अण्डा और मीठी रोटी का एक-एक टुकड़ा दिया गया । शहर के लोगों ने फिर ख़ैरात का ढेर लगा दिया और फिर पादरी क्रॉस लेकर

जेल में आया। गवर्नर साहब भी तशरीफ़ लाए। हमारे लिए गोभी के शोरबे में गोश्त भी डाला गया। बहुत से क़ैदियों ने शराब पी और वे नशे में लड़खड़ाते हुए घूमने लगे—ऐन क्रिसमस के दिन की तरह। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना था कि अब हमारे लिए आँगन में घूमना और धूप सेंकना भी सम्भव हो गया था। जाड़ों की बजाय अब ज्यादा रोशनी और खुली जगह नज़र आने लगी थी, लेकिन दिलों की उदासी भी बढ़ गई थी। छुट्टियों में गर्मियों के लम्बे दिन काटे न कटते थे। बाक़ी के दिनों में काम की वजह से दिन कुछ छोटा मालूम होता था।

जाड़ों की बजाय गर्मी का काम भी भारी मालूम होने लगा। ज्यादातर काम इमारत बनाने का था। क़ैदियों ने नींवें खोदीं और ईंटें लगाईं। बाकियों को ताले बनाने, बढ़ईगीरी या सरकारी इमारतों की मरम्मत और सफ़ेदी में लगा दिया गया। कई क़ैदियों को ईंटें तैयार करने के लिए भट्टों पर भेज दिया गया था। इस काम को सबसे ज्यादा सख्त समझा जाता था। भट्टे जेल से दो-ढाई मील दूर थे और गर्मियों में हर रोज क़रीब पचास क़ैदियों की एक टुकड़ी सुबह छः बजे ही ईंटें पाथने के लिए चल पड़ती थी। सिर्फ़ ऐसे ही लोग इस काम के लिए चुने जाते थे, जिन्हें और कोई काम नहीं आता था। वे अपने साथ पाव रोटी ले जाते थे, क्योंकि दूरी की वजह से खाने के लिए जेल में लौटना उनके लिए मुमकिन नहीं था—लौटने का मतलब था पाँच-छः मील और ज्यादा चलना। शाम को जेल लौटने पर ही उन्हें राशन मिलता था। इन लोगों के पास इतना ज्यादा काम रहता था कि पूरे दिन की मेहनत के बाद भी यह काम खत्म नहीं होता था। उन्हें पहले मिट्टी खोद कर लानी पड़ती थी, फिर पानी लाकर मिट्टी गूंथ कर ईंटें पाथनी पड़ती थीं। हर आदमी को दो सौ या ढाई-सौ ईंटें पाथनी पड़ती थीं। मैं सिर्फ़ दो बार ही भट्टे पर काम करने गया था। ईंटें तैयार करने वाले क़ैदी शाम को थके-माँदे जेल लौटते थे और गर्मी भर वे सब लोगों से यही शिकायत करते रहते थे कि सिर्फ़ उन्हीं को सबसे ज्यादा मेहनत करनी

पड़ती है । इस शिकवा-शिकायत से शायद उन्हें कोई तसल्ली मिलती थी । लेकिन कुछ ऐसे भी क़ैदी थे जो बड़े उत्साह से भट्टों पर काम करने जाते थे । सबसे बड़ी बात तो यह थी कि भट्टे शहर से बाहर इर्तिश नदी के किनारे एक खुली जगह पर थे और उन्हें जेल की नीरस दीवारों के अलावा और दृश्य देखने का मौक़ा भी मिल जाता था । वहाँ वे आराम से तम्बाकू पी सकते थे और आध घंटे के लिए लेट भी सकते थे । जहाँ तक मेरा ताल्लुक़ था, मुझे अभी भी पत्थर के भट्टों में या इमारतों में ईंटें ढोने के काम पर भेजा जाता था । एक बार मुझे इर्तिश के किनारे पर बनी फ़मील से एक बैरक में ईंटें लानी पड़ी थीं—क़रीब १६० गज़ का फ़ासला था । दो महीने तक यह काम चलता रहा । मुझे यह काम पसन्द भी आने लगा, हालाँकि जिस रस्से से मैं ईंटें उठाता था, वह बुरी तरह से मेरे कन्धों में चुभता था । मुझे ख़ुशी इस बात की थी कि काम से मेरे शरीर में ताक़त बढ़ गई थी । शुरू में मैं एक बार में आठ से ज़्यादा ईंटें नहीं उठा सकता था, (हर ईंट का वज़न बारह पौंड था) लेकिन बाद में मैं एक बार में बारह, यहाँ तक कि पन्द्रह ईंटें उठाने लगा । इससे मुझे बहुत संतोष मिला । उस अभिशप्त जीवन को सहन करने के लिए नैतिक साहस की तरह शारीरिक शक्ति की भी ज़रूरत है ।

मुझे उम्मीद थी कि जेल से छूटने के बाद मेरी ज़िन्दगी का ढांचा ज़रूर बदलेगा ।

मुझे ईंटें ढोना अच्छा लगता था । इसकी वजह सिर्फ़ यह नहीं थी कि काम से मेरे शरीर को ताक़त मिलती थी, बल्कि इसलिए भी क्योंकि उसकी वजह से मुझे इर्तिश के किनारे जाने का मौक़ा मिल जाता था । मैं इसका ज़िक्र इतनी बार इसलिए कर चुका हूँ, क्योंकि सिर्फ़ इसी जगह से ईश्वर की बनाई धरती नज़र आ सकती थी । वहाँ से चमकदार, दूर-दूर तक फैले मैदानों का अछूता विस्तार और आज़ाद एकान्तपूर्ण स्तेपीज़ दिखाई देते थे, जिनके निर्जन सूनेपन का मेरे मन पर बहुत

विचित्र असर पड़ा था। सारे शहर में सिर्फ़ नदी का किनारा ही ऐसा स्थान था, जहाँ से मैं जेलखाने की तरफ़ पीठ कर सकता था, बाक़ी के सारे स्थान, जहाँ क़ैदी काम के लिए भेजे जाते थे जेल के भीतर या जेल के क़रीब ही थे। मुझे जेलखाने की इमारत से तो पहले ही दिन नफ़रत हो गई थी, और कुछ इमारतें ऐसी थीं, जिनसे मुझे खास तौर पर चिढ़ थी। हमारे मेजर का मकान बहुत घृणित था। हर बार जब मैं उस मकान के नजदीक से गुजरता था तो मेरे लिए अपनी नफ़रत पर क़ाबू पाना मुश्किल हो जाता था। लेकिन नदी के किनारे पहुँचकर मैं अपने आप को भूल सकता था। मैं आँखें फाड़-फाड़ कर खुले एकान्त मैदानों की तरफ़ इस तरह देखता था जैसे कोई क़ैदी अपनी मीनार में से झाँक कर देखता हो। बाहर की हर चीज बहुत प्यारी और खूबसूरत मालूम होती थी; गहरे, नीले आकाश में चमकता हुआ सूरज या दूर नदी के किनारे से आते हुए किसी किरग़ीज़ गीत का स्वर। मैं लगातार देखता रहता था, फिर मुझे किसी बेगुश का फटा-पुराना धुएँ से काला तम्बू, तम्बू के पास से निकलता हुआ धुआँ और एक किरगीज़ औरत दिखाई पड़ती थी जो अपनी दो बकरियों की देखभाल करती थी। ग़रीब और असभ्य होते हुए भी वे लोग आज़ाद थे। फिर मेरी नज़रें पारदर्शी नीले आकाश में किसी पक्षी को देखकर उसका पीछा करती थीं। कभी पक्षी नदी के ऊपर मंडराता था, कभी नीले आकाश में खो जाता था और फिर थोड़ी देर बाद एक बिन्दु-सा दिखाई देने लगता था। किसी दरार में उगा सूखा फूल भी मेरा ध्यान व्यथापूर्ण ढंग से अपनी तरफ़ आकर्षित करता था। क़ैद के पहले साल की व्यथा ने मुझे चिड़चिड़ा और कटु स्वभाव का बना दिया। आसपास की कई चीजों की तरफ़ मेरा ध्यान न जा सका। मैंने अपनी आँखें जैसे मूंद लीं और अपने आसपास देखने से इन्कार कर दिया। दुष्ट और शत्रुतापूर्ण लोगों के बीच मैं भले लोगों को जो अपने बाह्य घृणित आवरण के बावजूद सोचने में समर्थ थे, न पहचान सका। उनके व्यंग्य में छिपे दयालुता और स्नेह

के शब्दों की तरफ़ मेरा ध्यान नहीं गया था। ये शब्द और भी ज़्यादा क़ीमती थे, क्योंकि वे सच्चे दिलों से और अक्सर ऐसे दिलों से निकलते थे, जिन्होंने मुझ से कहीं ज़्यादा पीड़ा झेली थी।

लेकिन मैं अपनी कहानी से भटक रहा हूँ। दिनभर की मेहनत के बाद शाम को जब मैं थक जाता था तो मुझे बहुत ख़ुशी होती थी। मैं सोचता था, शायद मुझे नींद आ जाएगी। जाड़ों के बजाय गर्मी के दिनों में सोने की कोशिश करना बहुत कठिन काम था। यह सच है कि कभी-कभी शामें बहुत ख़ुशगवार हो जाती थीं। दिनभर आँगन को तपाने के बाद सूरज ठंडा हो जाता था, हवा में भी ठंडक आ जाती थी और रातें ठंडी होती थीं, जैसी कि स्तेपीज के मैदानों में होती हैं। दरवाज़ा बन्द होने के वक्त के इन्तज़ार में क़ैदी टोलियाँ बनाकर सहन में चहल-क़दमी करते थे, हालाँकि अधिकांश क़ैदी उस बैरक में जमा होते थे जहाँ हमारा खाना पकता था और जहाँ हमेशा किसी न किसी महत्वपूर्ण सवाल पर बहस होती रहती थी। कई बार कोई अफ़वाह गर्म रहती थी, जो एकदम झूठी और हास्यास्पद होती थी। फिर भी इन्सानों की दुनिया से दूर बसे इन लोगों को अफ़वाहों में बड़ी दिलचस्पी रहती थी। अचानक हमें ख़बर मिलती थी कि मेजर का तबादला होने वाला है। क़ैदी बच्चों की तरह भोले थे और हर खबर पर यक़ीन कर लेते थे। हालाँकि वे अच्छी तरह से जानते थे कि यह ख़बर बेबुनियाद है और इस ख़बर को लाने वाला क़ैदी क्वासोव पक्का गप्पी है—सब लोगों ने बहुत पहले से तय किया था कि वे इस झक्की आदमी की किसी बात पर यक़ीन नहीं करेंगे, क्योंकि उसने आज तक एक बार भी सच नहीं बोला था—लेकिन वे इस ख़बर पर लपक पड़े—हर तरफ़ से उन्होंने इस पर बहस की। नाउम्मीदी के बावजूद भी उनके मन में उम्मीद पैदा हो गई। बाद में उन्हें अपने ऊपर गुस्सा और शर्म आई कि उन्होंने क्यों दोबारा उस गप्पी की बात पर यक़ीन किया।

"मेजर को भला कौन निकाल सकता है?" बीच में कोई बोल

उठता। "उसकी गर्दन इतनी मजबूत है कि वह कुछ भी बर्दाश्त कर सकता है।"

"लेकिन दुनिया में मेजर से भी बड़े लोग हैं," एक दूसरा चालाक, तजुर्बेकार और ज़बानदराज आदमी कह उठता।

"एक ही थैली के चट्टे-बट्टे कभी भी एक-दूसरे को चोंच नहीं मारते।" एक तीसरे आदमी ने संजीदा ढंग ने कहा। उसके बाल सफ़ेद हो चले थे और वह एक कोने में बैठा गोभी का शोरबा खा रहा था।

तीसरे ने तीन तारों वाले बाजे के तारों को टुनटुनाते हुए कहा, "बड़े अफ़सर तो ज़रूर आकर तुम्हारी ही राय लेंगे!"

"क्यों नहीं" ज़बानदराज आदमी ने कहा, "उन्हें हमारी राय तो ज़रूर लेनी चाहिए। जब वे पूछें तो सबको बोलना चाहिए। वैसे तो हमारी ज़बान कैंची की तरह चलती है, लेकिन जब काम की बात होती है तो हमें साँप सूँघ जाता है।"

"तुम हमसे क्या चाहते हो?" बाजे वाले ने कहा, "आख़िर जेल तो जेल ही है।"

ज़बानदराज़ आदमी गुस्से में बोला, "अभी उस दिन ज़रा-सा आटा बच गया था। बचा-खुचा आटा जमा करके बेचने के लिए भेज दिया गया, लेकिन बावर्चीख़ाने के आदमी ने मेजर से शिकायत की और उसने आटा वापस मँगा लिया। वह इसे 'कमख़र्ची' कहता है। क्या यह अच्छी बात थी?"

"लेकिन तुम किससे शिकायत करोगे?"

"इन्स्पेक्टर से।"

"इन्स्पेक्टर से—क्या, क्या मतलब?"

"यह ठीक है, दोस्तो। इन्स्पेक्टर आने ही वाला है।" एक ज़िन्दादिल नौजवान ने कहा, जो पढ़-लिख लेता था। किसी ज़माने में वह क्लर्क था और उसने सचमुच 'वालियर की डचेज़' या ऐसी ही कोई किताब पढ़ी थी। गप्पी होते हुए भी उसे दुनिया की समझ थी, इस

वजह से उसकी इज़्ज़त की जाती थी। लोगों की जिज्ञासा की परवाह न करते हुए वह बावर्चीख़ाने की 'नौकरानी' के पास जाकर कलेजी का टुकड़ा माँगने लगा। हमारे बावर्ची अक्सर ऐसी चीजें बेचते थे। वे कलेजी ख़रीद कर तल लेते थे और उसके टुकड़े क़ैदियों में बेचते थे।

"एक कोपेक का टुकड़ा चाहिए या आधे कोपेक का ?"

"एक कोपेक का। मैं चाहता हूँ, सब मुझसे रश्क़ करें।" नौजवान ने कहा। "दोस्तो, एक जनरल आ रहा है—पीटर्जबर्ग से। वह सारे साइबेरिया का मुआइना करेगा। यह एकदम सच्ची ख़बर है। कमाण्डेन्ट के यहाँ इस बात का ज़िक्र हो रहा था।"

इस ख़बर का लोगों ने बड़े उत्साह से स्वागत किया। आध घंटे तक इस बारे में बातें होती रहीं। जेल में कौन आ रहा था? वह किस क़िस्म का जनरल था? उसका ओहदा क्या था? क्या वह पहले वाले जनरल से ज्यादा ऊँची हैसियत का आदमी था? क़ैदियों को अफ़सरों और ओहदों की बातें करने का बहुत शौक़ था—किसका ओहदा ज़्यादा बड़ा है, कौन किस पर रौब जमा सकता है, वग़ैरह-वग़ैरह। इन बातों में उन्हें बेहद दिलचस्पी थी। ऐसी बहसों में मारपीट की नौबत भी आ सकती थी। आप पूछेंगे कि आख़िर इन बातों से क़ैदियों का क्या बनता-बिगड़ता था? लेकिन हक़ीक़त यह थी कि जेल में आने से पहले किसी आदमी की दुनियादारी, चतुराई और सामाजिक हैसियत को जानने का यही मापदण्ड था कि वह फ़ौजी जनरलों और दूसरे आला अफ़सरों के बारे में कितनी जानकारी रखता है। अधिकारियों की चर्चा अत्यन्त महत्वपूर्ण और सुसंस्कृत विषय समझा जाता था।

"अच्छा तो, मेजर को सचमुच निकाल दिया जायेगा," क्वासोव ने कहा, जो नाटे क़द और लाल चेहरे वाला आदमी था। उसकी बुद्धि मंद थी, लेकिन मिजाज़ बहुत तेज़ था। वही सबसे पहले मेजर के जाने की ख़बर लाया था।

"मेजर रिश्वत देकर सब ठीक कर लेगा," सफ़ेद बालों वाले क़ैदी

ने अचानक कहा। वह अपना शोरबा खत्म कर चुका था।

"हाँ, वह जरूर ऐसा करेगा," एक और आदमी ने कहा, "मुझे पूरा यक़ीन है कि उसने बहुत-सा पैसा जमा कर रखा है। सुनते हैं कि यहाँ आने से पहले वह बटालियन कमान्डर था। अभी उसी दिन की तो बात है कि उसने पादरी की बेटी से शादी का प्रस्ताव किया था।"

"लेकिन उन लोगों ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। भला यह आदमी कैसा पति साबित होगा? इसके अलावा उसके पास कुछ नहीं है। ईस्टर पर वह अपने सारे पैसे जुए में हार गया था। फ़ेद्का ने मुझे बताया है।"

"हाँ, ज्योंही उसे पैसा मिलता है त्योंही वह उसे खर्च कर डालता है।"

"आह, मेरे दोस्त, मैं भी शादीशुदा रह चुका हूँ।" स्कुरातोव ने बिना किसी प्रसंग के ही कहा। "ग़रीब आदमी के लिए शादी बुरी चीज़ है। ग़रीब दूल्हे के लिए तो रात भी छोटी हो जाती है।"

"अच्छा तो तुम ऐसी ही बातों के लिए बेचैन हो रहे थे।" भूतपूर्व क्लर्क ने उसे डांटा। "रही तुम्हारी बात क्वासोव, सो मैं तुम्हें बता दूं कि तुम अहमक़ हो। क्या तुम्हारा सचमुच यह ख्याल है कि हमारा मेजर इतने बड़े जनरल को रिश्वत दे सकता है? क्या इतना बड़ा जनरल किसी मेजर का मुआइना करने की ख़ातिर इतनी दूर सेंट पीटर्ज़-बर्ग से आएगा? मुझसे पूछो तो तुम्हारे दिमाग़ में ज्यादा अक्ल नहीं है।"

"क्यों, क्या जनरल होने की वजह से वह रिश्वत नहीं लेगा? उसे काहे का डर!" भीड़ में से एक ने अविश्वास जतलाया।

"वह रिश्वत नहीं लेगा। और अगर लेगा तो बहुत बड़ी रक़म लेगा।"

"क्यों नहीं, रक़म उसकी हैसियत के मुताबिक होनी चाहिए।"

"कोई जनरल कभी रिश्वत लेने से इन्कार नहीं कर सकता।"

क्यासोव ने साहस बांध कर कहा।

"क्या तुमने कभी किसी जनरल को रिश्वत देने की कोशिश की है ? मेरा ख्याल है कि तुमने आज तक किसी जनरल को देखा भी नहीं होगा।"

"देखा है।"

"झूठ !"

"झूठे तो तुम हो।"

"सुनो दोस्तो, अगर सचमुच इसने किसी जनरल को देखा है तो यह हम सबके सामने आकर बताए कि वह कौन-सा जनरल था। बोलो ! मैं सारे जनरलों को जानता हूँ।"

"मैंने जनरल ज़िबर्त को देखा था" क्वासोव ने संदिग्ध भाव से जवाब दिया।

"ज़िबर्त ? इस नाम का अभी तक कोई जनरल नहीं हुआ। शायद उसने तुम्हें पीछे से देखा होगा और तुम्हारी सिट्टी-पिट्टी इतनी गुम हो गई कि तुमने उसे जनरल समझ लिया जब कि वह सिर्फ़ लेफ़्टीनेन्ट कर्नल था।"

"नहीं, मेरी बात तो सुनो ! आखिर मैं एक शादीशुदा आदमी हूँ।" स्कूरातोव चिल्लाया।

"मास्को में ज़िबर्त नाम का एक जनरल था। उसका नाम तो जर्मन था, लेकिन वह था रूसी। वह हर साल एक बार एज़म्पशन[1] के उत्सव पर एक रूसी पादरी के पास आकर कन्फ़ेशन करता था। वह बत्तख की तरह पानी पीता था। वह हर रोज़ मोस्क्वा नदी के पानी के चालिस गिलास पेट में उँडेलता था। सुनते हैं, उसे कोई बीमारी थी। उसके नौकर ने मुझे बताया था।"

"ज़रूर इतने पानी से उसके पेट में मेंढक के बच्चे पैदा हो गए होंगे,

१. ईसा की माँ मरियम के सशरीर स्वर्ग में जाने को एज़म्पशन कहते हैं।

बाजे वाले ने कहा।

"बको मत। हम संजीदा बातें कर रहे हैं। अच्छा तो दोस्तो, वह इन्स्पेक्टर कौन है ?" मारत्यनोव ने आतुर स्वर में पूछा, जो बेचैन स्वभाव का आदमी था और कभी घुड़सवारों के दस्ते में रह चुका था।

"ज़रा इन लोगों की गप्पें तो सुनो !" एक शक्की-मिज़ाज आदमी ने कहा, "इन्हें ऐसी मनगढंत बातें कहाँ से सूझती हैं ? और ऐसी सड़ी बातें ?"

"नहीं ये सड़ी बातें नहीं हैं।" कुलीकोव ने हठीले स्वर में कहा। अभी तक उसने एक शालीन चुप्पी अख्तियार कर रखी थी। वह क़रीब पचास बरस का था, उसके नैन-नक्श तीखे थे और उसके मिज़ाज में एक शानदार गुस्ताखी थी। उसका लोगों पर काफ़ी असर था और उसे इस बात पर काफ़ी घमंड था। एक तरह से वह पेशे से जानवरों का डाक्टर था और शहर में घोड़ों के इलाज से उसे कुछ कमाई हो जाती थी। जेल के भीतर वह वोद्का का व्यापार करता था। वह सूझ-बूझ का आदमी था और उसे दुनिया का तजुर्बा था। वह धीरे से बात करता था और हर शब्द का इस तरह से उच्चारण करता था जैसे उसकी क़ीमत एक रूबल हो।

उसने ज़ोर देते हुए कहा, "यह सच है दोस्तो। मैंने पिछले हफ्ते यह ख़बर सुनी है। एक बड़ा जनरल सारे साइबेरिया का मुआइना करने के लिए आ रहा है। उसे तोहफ़े ज़रूर मिलेंगे, लेकिन आठ आँखों वाले से नहीं। हमारे मेजर में तो इतनी भी हिम्मत नहीं होगी कि उसके पास फटक सके। सब जनरल एक से नहीं होते। हर क़िस्म के जनरल होते हैं। लेकिन मैं तुम्हें यह बता दूँ कि चाहे कुछ हो हमारा मेजर जिस ओहदे पर है, आगे नहीं रहेगा। इस बात में हमारी राय कोई नहीं पूछेगा और अफ़सर लोग एक-दूसरे की चुगली नहीं करेंगे। इन्स्पेक्टर जेल में आकर इधर-उधर देखेगा और जाकर रिपोर्ट देगा कि सब ठीक है।"

"लेकिन हमारा मेजर डरा हुआ है। वह दिनभर नशे में था।"

"शाम को वह और वोद्का मँगवा रहा है। फ़ेद्का ने मुझे बताया है।"

"काले कुत्ते को धोकर सफ़ेद नहीं किया जा सकता। आखिर उसने पहली बार तो शराब नहीं पी।"

"क्या यह मुमकिन है कि जनरल भी कुछ नहीं करेगा ? हम इन लोगों की बेहूदा हरक़तों से तंग आ गए हैं।" क़ैदियों ने उत्तेजित होकर कहा।

इन्स्पेक्टर के आने की ख़बर फ़ौरन फैल गई। क़ैदी बेचैनी से बातें करते हुए सहन में घूमने लगे। बाक़ी जानबूझ कर शान्त और ख़ामोश होकर अपना महत्व जतला रहे थे। कुछ सचमुच उदासीन थे। कुछ बाजे लेकर बैरकों की सीढ़ियों पर चहल-क़दमी करते हुए बातचीत कर रहे थे, कुछ ने गीतों की धुनें छेड़ दी थीं, लेकिन कुल मिलाकर सभी जोशीले हो रहे थे।

नौ बजे के बाद हम सब की गिनती की गई, हमें सुबह तक भेड़-बकरियों की तरह बैरक में बन्द करके ताला लगा दिया गया। रातें छोटी होती थीं क्योंकि हमें तड़के पाँच बजे ही जगा दिया जाता था जबकि सब लोग रात को ग्यारह बजे के बाद सोते थे। बैरकों में गुल-गपाड़ा मचा रहता था। रातें बेहद गर्म होती थीं और भीतर साँस लेने में दिक्क़त होती थी। हालाँकि खिड़कियों के फ्रेम ऊपर उठा दिए जाते थे और बीच-बीच में ताज़ी हवा भीतर आती रहती थी, फिर भी क़ैदी रातभर इस तरह करवटें बदलते रहते थे, जैसे उन्हें तेज़ बुख़ार हो। हर जगह पिस्सुओं की भरमार थी, जाड़ों में भी पिस्सू रहते थे, लेकिन बहार के मौसम में उनकी तादाद इतनी बढ़ जाती थी कि अगर मैंने उन्हें आँखों से न देखा होता तो शायद मैं कभी यक़ीन न कर सकता कि कहीं इतने ज्यादा पिस्सू भी हो सकते हैं। ज्यों-ज्यों गर्मी नज़दीक आती थी, पिस्सू अधिक दुष्ट और भयंकर होते जाते थे। यह सच है कि

आदमी पिस्सुओं में रहने का आदी हो जाता है, जैसा कि मैंने अपने तजुर्बे से देखा है, फिर भी उन्हें बर्दाश्त करना आसान नहीं है। वे हमें इतना सताते थे कि नींद के बजाय लगता था कि हमें बुखार और सरसाम हो गया है। सुबह के क़रीब जब पिस्सुओं का प्रकोप कुछ कम होता था और सुबह की ताज़ी हवा में मुझे नींद आ जाती थी तो अचानक जेल के फाटकों से नगाड़ों की आवाज़ सुनाई देती थी। मैं अपने पोस्तीन में दुबककर नगाड़े के लययुक्त स्वरों को इस तरह कोसा करता था जैसे मैं कोड़े गिन रहा होऊँ। मेरे अध-सोए दिमाग़ में यह असह्य विचार कौंध उठता था कि कल और परसों भी, और रिहा होने की घड़ी तक बरसों मेरे दिन ऐसे ही कटेंगे। लेकिन मुझे मुक्ति कब मिलेगी? मुक्ति कहाँ है? सुबह ही सबको जागना पड़ जाता था, धक्कामुक्की के बाद लोग कपड़े पहनते थे और जल्दी से काम पर चले जाते थे। इस तरह से सुबह शुरू होती थी। यह सच है कि दोपहर को एक घण्टा सोने का वक़्त ज़रूर मिल जाता था।

इन्स्पेक्टर की ख़बर सचमुच सही निकली। दिन-ब-दिन अफ़वाहों की पुष्टि होती गई और अन्त में सब को पक्का पता चल गया कि सेंट पीटर्ज़बर्ग से एक बड़ा जनरल साइबेरिया का मुआइना करने आने वाला था, और वह तोबोलक में आ भी पहुँचा था। जेल में रोज़ नई अफ़वाहें पहुँचती थीं, शहर से भी ख़बरें आती रहती थीं। सब लोग उत्तेजित और भयभीत दिखाई देते थे और जनरल पर अच्छा असर डालने की तैयारियाँ कर रहे थे। कहा जाता था कि ऊँचे अफ़सरों के तबक़े में बाल-डान्सों, दावतों और स्वागत-समारोहों के प्रोग्राम बन रहे हैं। क़ैदियों को सड़कें बराबर करने, टीले तोड़ने, लकड़ी की चहारदीवारियों और खम्भों पर रोग़न करने, इमारतों में दोबारा पलास्तर और सफ़ेदी करने के लिए भेजा जा रहा था—संक्षेप में हर चीज़ ठीक-ठाक की जा रही थी, ताकि आने वाले पर अच्छा असर पड़े। इन सारी बातों का क्या मतलब है, क़ैदी इसे अच्छी तरह जानते थे और वे पहले से भी दुगने उत्साह से

बहसें करते थे। उनकी कल्पना में पंख लग गए थे। यहाँ तक कि उन्होंने यह फ़ैसला कर लिया था कि अगर जनरल ने पूछा कि वे संतुष्ट हैं या नहीं तो वे अपनी शिकायतें भी पेश करेंगे। लेकिन इस बीच उनमें लगातार बहसें और झगड़े चल रहे थे। मेजर भी इन दिनों उत्तेजित दिखाई देता था। वह जेल में पहले से ज़्यादा बार आने लगा था। लोगों से गाली-गलौज करता था, नाराज़ होता था, उन्हें गारदघर में भेजता था और इस बात की पूरी कोशिश करता था कि जेल की हर चीज़ साफ़-सुथरी और यथास्थान रहे। संयोग से इसी वक्त जेल में एक ऐसी घटना हुई, जिससे मेजर को परेशानी की बजाय सच्चा संतोष मिला। दो क़ैदियों का आपस में झगड़ा हो गया, एक ने दूसरे की पसलियों में, ऐन दिल के नीचे, सुआ भोंक दिया।

मुजरिम का नाम लोमोव था और घायल व्यक्ति का नाम गैव्रिल्का था, जो पक्का बदमाश और आवारागर्द था। मालूम नहीं उसका कोई और नाम भी था या नहीं। उसे हमेशा गैवरिल्का कहकर पुकारा जाता था।

लोमोव 'त' प्रदेश के 'क' ज़िले के एक सम्पन्न किसान-परिवार में पैदा हुआ था। बूढ़ा किसान, उसके तीन बेटे और भाई सब एक साथ रहते थे। सारे इलाक़े में यह मशहूर था कि उनके पास तीन लाख रूबल के नोट हैं। वे खेती करते थे, जानवरों की खालें रंगते थे, व्यापार करते थे, लेकिन उनकी आमदनी का सबसे बड़ा हिस्सा सूदख़ोरी से आता था। वे आवारागर्दों को शरण देकर चोरी का माल ख़रीदते थे और इसी तरह के कई और धंधे भी करते थे। ज़िले के आधे किसान उनके कर्ज़-दार थे और एक तरह से इस परिवार के ग़ुलाम बन गए थे। लोमोव के परिवार के लोग बहुत दुनियादार और चालाक थे, लेकिन वे ख़ुद ही अपने अहंकार के शिकार बन गए। प्रदेश का एक बहुत बड़ा आदमी उनके ज़िले का दौरा करने आया और उनके पास ठहरा। बूढ़े लोमोव से उसका गहरा परिचय हो गया। उसने लोमोव की अक्लमन्दी और

सम्पन्नता की तारीफ़ की। इसके बाद सारे परिवार का दिमाग़ ख़राब हो गया। उन्होंने सोचा कि अब वे मनमानी कर सकते हैं, उन्हें रोकने-टोकने वाला कोई नहीं। वे लापरवाह हो गए और उन्होंने नये कारोबार शुरू कर दिए। सभी को उनके ख़िलाफ़ शिकायत थी। मन ही मन वे लोमोव-परिवार की तबाही के लिए प्रार्थना करते थे। दिन-ब-दिन इस परिवार की गुस्ताख़ी बढ़ती गई। अब उन्हें पुलिस के कप्तानों से बिल्कुल डर नहीं लगता था। अन्त में वे एक ग़लती कर बैठे और तबाह हो गए। तबाही का कारण उनकी दुष्टता नहीं बल्कि एक मामूली और छोटा-सा इल्ज़ाम था। गाँव से छः-सात मील दूर उनका एक बड़ा-सा खेत था, जिसे साइबेरिया में 'ज़ेमका' कहते हैं। छः किरग़ीज़ उस खेत पर काम करते थे क्योंकि वे लोमोव-परिवार के कर्ज़ में बुरी तरह डूबे हुए थे। लेकिन पतझड़ की एक रात में उन छहों आदमियों को किसी ने क़त्ल कर दिया और पुलिस ने इस मामले की जाँच की, जो बहुत दिनों तक चलती रही। इस बीच लोमोव-परिवार के कई कुकर्मों का पता चला। सबसे पहले उन्हीं पर मज़दूरों के क़त्ल का अभियोग लगाया गया। जेल में सब क़ैदियों को यह कहानी मालूम थी। लोमोव-परिवार पर शक इसलिए हुआ, क्योंकि मज़दूरों की तनख़्वाह की बहुत बड़ी रक़म उन्हें अदा करनी थी। उनकी सम्पन्नता के बावजूद उन पर इसलिए शक किया गया क्योंकि वे कंजूस और लालची थे। सबका ख़्याल था कि उन्होंने मज़दूरों का क़त्ल किया है। क़त्ल की जाँच और मुक़दमे ने उन्हें बिल्कुल बर्बाद कर दिया। बूढ़ा लोमोव मर गया और उसके बेटों को अलग-अलग जेलों में भेज दिया गया। हमारी जेल में एक बेटा अपने चचा के साथ आया था। दोनों को बारह-बारह बरस की सज़ा मिली थी, हालाँकि उनका क़त्ल में बिल्कुल कोई हाथ नहीं था। कुछ अरसे बाद गैवरिल्का भी हमारी जेल में आ गया जो मशहूर आवारागर्द और खुश-मिज़ाज बदमाश था। तब जाकर पता चला कि किरग़ीज़ मज़दूरों को गैवरिल्का ने क़त्ल किया था। गैवरिल्का ने खुद यह बात क़बूल की या

नहीं यह तो मुझे किसी ने नहीं बताया लेकिन सब क़ैदियों को यक़ीन हो गया था कि क़त्ल उसी ने किए थे। जब वह खानाबदोश था, तभी लोमोव-परिवार से उसका परिचय हुआ था। उसे आवारागर्दी और भगोड़ेपन के जुर्म में थोड़ी-सी सज़ा हुई थी। उसने और तीन अन्य आवारागर्दों ने मिलकर किरग़ीज़ मज़दूरों को मार डाला था, क्योंकि वे फ़ार्म को लूटना चाहते थे।

न जाने क्यों जेल में कोई भी लोमोव और उसके चचा को पसन्द नहीं करता था। लोमोव तो होशियार और मिलनसार था, लेकिन उसका चचा, जिसने गैवरिल्का की पसलियों में सुआ भोंका था बेहद बेवक़ूफ़ और झगड़ालू किसान था। वह सबके साथ झगड़ा करता था और अक्सर उसकी पिटाई होती थी। सब क़ैदी गैवरिल्का को पसन्द करते थे, क्योंकि वह खुशमिज़ाज और सहिष्णु था। लोमोव और उसका चचा अच्छी तरह जानते थे कि गैवरिल्का की वजह से ही उन्हें सज़ा हुई है, फिर भी वे उससे कुछ नहीं कहते थे और उससे दूर-दूर रहते थे। गैवरिल्का भी उनकी तरफ़ ध्यान नहीं देता था। लोमोव के चचा और गैवरिल्का के बीच अचानक ही एक बदसूरत औरत को लेकर झगड़ा हो गया। गैवरिल्का डींग हाँकने लगा कि वह औरत उस पर बहुत मेहरबान है—एक दिन दोपहर को लोमोव के चचा ने जो एक ईर्ष्यालु किसान था, गैवरिल्का की पसलियों में सुआ भोंक दिया।

हालाँकि लोमोव-परिवार के लोग मुक़दमे में तबाह हो चुके थे फिर भी जेल में उन्हें अमीर समझा जाता था। अभी भी उनके पास पैसे थे, उन्होंने अपना अलग समावार रख छोड़ा था और वे चाय पीते थे। इसी वजह से हमारा मेजर उनसे बेहद चिढ़ता था। वह हमेशा उनके नुक़्स निकाला करता था और हर तरीक़े से उन्हें कुचलने और नीचा दिखाने की कोशिशें करता था। लोमोव और उसके चचा का ख्याल था कि मेजर उनसे रिश्वत लेना चाहता है। लेकिन उन्होंने कभी मेजर को रिश्वत नहीं दी। अगर बूढ़ा लोमोव सुए को ज्यादा गहरा भोंकता तो

ज़रूर गैवरिल्का की मौत हो गई होती, लेकिन अब तो उसका ज़ख्म बहुत मामूली था। ज्योंही मेजर के पास इस घटना की रिपोर्ट पहुँची तो वह जेल में दौड़ा आया। उसकी साँस फूल रही थी और उसकी खुशी छिपाये न छिपती थी। उसने पितृवत् स्नेहभरे स्वर में गैवरिल्का से कहा—

"कहो मेरे दोस्त, क्या तुम हस्पताल तक पैदल चल सकते हो? या हम तुम्हारे लिए घोड़ा कसवाएँ? फ़ौरन घोड़ा लाओ!" मेजर ने चिल्ला कर सार्जेन्ट को हुक्म दिया।

"लेकिन मुझे बिल्कुल दर्द नहीं हो रहा, योर ऑनर! उस आदमी ने तो बस सुई के बराबर छेद किया है!"

"क्या पता मेरे अज़ीज़, बाद में जाकर कहीं यह ज़ख्म बिगड़ न जाये। बड़ी खतरनाक जगह पर वार किया गया है। हत्यारे ने ऐन कलेजे के नीचे सुआ भोंका है।" फिर वह लोमोव की तरफ़ देखकर चिल्लाया, "अब तुम्हें मैं मजा चखाऊँगा। ज़रा गारदघर में चलो!"

और सचमुच मेजर ने लोमोव को मज़ा चखा दिया। लोमोव पर मुक़दमा चला, हालाँकि गैवरिल्का का ज़ख्म बहुत मामूली था लेकिन यह साबित हो गया कि लोमोव का मक़सद क़त्ल करना था। लोमोव की सज़ा बढ़ा दी गई और उसे एक हज़ार बेंतों की सज़ा भी मिली। मेजर का हृदय गद्गद हो उठा।

लंबे इन्तज़ार के बाद इन्स्पेक्टर आ ही गया।

शहर में आने के दूसरे दिन इन्स्पेक्टर जेल में पहुँचा। इतवार का दिन था। हर चीज़ बहुत पहले से साफ़-सुथरी रखी गई थी। क़ैदियों की हजामत बनाई गई थी। उनके कपड़े सफ़ेद और साफ़-सुथरे थे। गर्मी में सब क़ैदी मोटी सूती जाकेटें और पतलूनें पहने थे। तीन इंच व्यास का एक काला गोल टुकड़ा वास्कट की पीठ पर सी दिया गया था। पूरे एक घंटे तक क़ैदियों को यह सिखाया गया कि अगर इन्स्पेक्टर उनसे कुछ पूछे तो उन्हें किस तरह जवाब देना चाहिए। बार-बार उनकी

रिहर्सल कराई गई। मेजर पागलों की तरह भागदौड़ कर रहा था। इन्स्पेक्टर के आने से पूरे एक घंटे पहले ही सबको अटेन्शन खड़ा कर दिया गया था। जनरल एक बजे आया। वह बहुत बड़ा आदमी था, इतना बड़ा कि उसके आने से पश्चिमी साइबेरिया में हर अफ़सर का दिल धड़कने लगा था। वह बड़ी शान-शौक़त से जेल में दाखिल हुआ। उसके पीछे स्थानीय अफ़सर थे, जिनमें कुछ जनरल और कर्नल भी थे। उनमें एक लंबा खूबसूरत सिविलियन अफ़सर भी था, जिसने फ्राँक कोट और पेटेन्ट लेदर के जूते पहन रखे थे। वह भी जनरल के साथ सेंट पीटर्ज़बर्ग से आया था और उसकी हर अदा से रौब और आज़ादी झलकती थी। जनरल अत्यन्त शिष्ट स्वर में उस आदमी से बातें कर रहा था। क़ैदियों को बड़ी हैरत हुई और वह सोचने लगे, 'इतना बड़ा जनरल एक सिविलियन की इतनी इज्ज़त करता है।' बाद में क़ैदियों को पता चला कि वह कौन है और उसका क्या नाम है, लेकिन उससे पहले सैंकड़ों क़यास भिड़ाये गए। हमारा मेजर कसी हुई संतरी रंग की वर्दी पहने खड़ा था। उसकी लाल ख़ूनी आँखों और सूजे हुए चेहरे को देखकर जनरल पर ज़रूर बुरा असर पड़ा होगा। विशिष्ट मेहमान के प्रति आदर प्रकट करने के लिए मेजर ने अपना चश्मा भी उतार दिया और वह कुछ दूर हटकर मेढ़े की तरह अकड़ कर खड़ा हो गया। उसका सारा शरीर आवेश से काँप रहा था और वह उस क्षण के इन्तज़ार में था जब हिज़ एक्सेलेन्सी कोई ख्वाहिश ज़ाहिर करेंगे और वह फ़ौरन उस ख्वाहिश को पूरा करने के लिए भागेगा। लेकिन हिज़ एक्सेलेन्सी ने कोई ख्वाहिश ज़ाहिर नहीं की, बल्कि ख़ामोशी से उसने बैरकों और बावर्चीखानों का मुआइना किया, गोभी के शोरबे को भी चखा। जहाँ तक मुझे याद है मेरी तरफ़ भी इशारा किया गया और बताया गया कि मैं कुलीन ख़ानदान का पढ़ा-लिखा आदमी हूँ, वग़ैरह-वग़ैरह। जनरल ने कहा, "ओह! लेकिन अब इसका आचरण कैसा है?"

"अभी तक तो हमें कोई शिकायत नहीं हुई योर एक्सेलेन्सी," जवाब

मिला। जनरल ने सिर हिलाया और दो मिनट बाद जेल से चला गया। निःसन्देह क़ैदियों की आँखें तो ज़रूर चौंधिया गईं थीं, लेकिन वे असंतुष्ट थे। मेजर की शिकायत करने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता था, और मेजर भी इस बारे में निश्चिन्त था।

जेल के पालतू जानवर

जेल की तरफ़ से एक घोड़ा ख़रीदा गया था, जिसने जनरल की अपेक्षा क़ैदियों का कहीं ज्यादा मनोरंजन किया। हमें पानी लाने, कूड़ा-कर्कट उठाने के लिए घोड़े की सख्त ज़रूरत रहती थी। एक क़ैदी संतरी के पहरे में उस घोड़े को हाँकता था। सुबह से लेकर रात तक हमारे घोड़े के लिए बहुत काम रहता था। जेल में पहले भी एक अच्छा घोड़ा था लेकिन वह बूढ़ा और जर्जर हो गया था। संत पीटर के दिन से एक दिन पहले ही पानी का डोल ढोते हुए वह गिर पड़ा और कुछ मिनटों में ही चल बसा। सब लोगों को बड़ा दुख हुआ और वे घोड़े के आस-पास जमा होकर बातें और बहसें करने लगे। भूतपूर्व घुड़सवार टुकड़ियों के सिपाही, जिप्सी और घोड़ों के डाक्टर अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने लगे, यहाँ तक कि आपस में उनकी गर्मागर्म बहसें भी छिड़ गईं, लेकिन कोई उस बेचारे जानवर को ज़िन्दा न कर सका। घोड़े का पेट सूज गया था और सब लोग कर्त्तव्य-भावना से प्रेरित होकर उसके पेट में बड़े पेशेवर ढंग से उँगली धँसाकर देख रहे थे। ख़ुदा की इस मर्ज़ी की ख़बर फ़ौरन मेजर तक पहुँचाई गई जिसने फ़ौरन एक नया घोड़ा ख़रीदने का हुक्म दिया। संत पीटर के उत्सव की प्रार्थना के बाद जब हम सहन में इकट्ठे हुए तो हमारे सामने बिकाऊ घोड़े लाए गए। कहना न होगा कि यह काम क़ैदियों पर ही छोड़ा गया था। हमारे बीच सचमुच के विशेषज्ञ भी थे और सचमुच ऐसे अढ़ाई सौ आदमियों की आँखों में धूल झोंकना आसान नहीं था, जिनका यही पेशा रह चुका था। किरग़ीज़ चरवाहे, घोड़ों के सौदागर, जिप्सी और शहर के कुछ लोग अपने घोड़े दिखाने आए थे। क़ैदी बड़ी बेचैनी से हर घोड़े का इन्तजार कर रहे थे। वे बच्चों की तरह उत्तेजित हो रहे थे। उन्हें ख़ास खुशी इस बात

की थी कि वे 'आजाद' लोगों की तरह अपने लिए खुद घोड़ा चुन रहे थे और अपनी जेब से क़ीमत दे रहे थे। तीन घोड़ों को नापसंद करने के बाद जाकर कहीं इन्हें एक घोड़ा पसंद आया। सौदागर चकित और भीरु भाव से इधर-उधर देखने लगे और उन्होंने संतरियों की तरफ़ कनखियों से देखा मानो वे उनकी मदद चाहते हों। वे अढ़ाई सौ क़ैदियों से जिनके सिर मुँडे हुए थे, जिनके शरीर लोहे की सलाखों से दगे हुए थे और जिनके पाँवों में बेड़ियाँ थीं, बहुत प्रभावित हुए। इन क़ैदियों के लिए जेल एक तरह से घर के समान हो गयी थी, ऐसा घर जिसकी दहलीज़ को पार करके कोई नहीं आता था। क़ैदियों ने घोड़ों को जाँचने में अपनी सारी दक्षता लगा दी। वे हर पहलू को इतनी संजीदगी और ज़िम्मेवारी से जाँच रहे थे जैसे सारी जेल की भलाई घोड़े के चुनाव पर ही निर्भर करती हो। सरकेशियन क़ैदी तो घोड़ों की पीठ पर सवार होकर अपनी भाषा में बातें करने लगे। उनकी आँखें चमक उठीं। वे बार-बार सिर हिला रहे थे। नुकीली नाक वाले उनके अवसादपूर्ण चेहरों में रह-रह कर उनके दांत चमक उठते थे। बीच-बीच में रूसी क़ैदी उनकी तरफ़ देखते थे और इनकी बातों का मतलब समझने की कोशिश करते थे, वे जानना चाहते थे कि सरकेशियनों को घोड़ा पसंद आया या नहीं। उनकी यह संजीदगी सचमुच बड़ी विलक्षण मालूम हो रही होगी। भला एक क़ैदी को जो अक्सर दबा और हलीम रहता है, जो अपने दोस्तों के सामने भी बोलने का साहस नहीं कर पाता, उसे एक घोड़े की ख़रीद में इतना उत्तेजित होने की क्या जरूरत है? आख़िर वह अपने लिए तो घोड़ा नहीं ख़रीद रहा था, चाहे कोई भी घोड़ा ख़रीद लिया जाता, उसके लिए क्या फ़र्क़ पड़ता? सरकेशियनों के अलावा वे क़ैदी जो पहले घोड़ों के सौदागर रह चुके थे, और जिप्सी लोग भी इस खरीद में सबसे ज्यादा दिलचस्पी ले रहे थे। और लोग भी उन्हें तरजीह दे रहे थे। इसी बात पर दो क़ैदियों में द्वन्द्वयुद्ध-सा छिड़ गया। कुलीकोव, जो पहले घोड़े चुराकर बेचा करता था और एक चालाक नाटे

साइबेरियन किसान में, जो खुद ही लिख-पढ़कर घोड़ों का डॉक्टर बन गया था, झगड़ा हो गया। साइबेरियन किसान ने आते ही कुलीकोव की प्रैक्टिस खत्म कर दी थी। हक़ीक़त यह थी कि ऐसे डॉक्टरों की शहर में बहुत माँग थी, न सिर्फ़ शहर के लोगों और सौदागरों में, बल्कि ऊँचे अफ़सरों में भी, हालाँकि शहर में घोड़ों के कई असली डॉक्टर भी मौजूद थे। साइबेरियन किसान योल्किन के आने से पहले कुलीकोव की प्रैक्टिस खूब चलती थी। हालाँकि वह तमाम जिप्सियों की तरह नीम-हकीम ही था और उसे ज़्यादा ज्ञान नहीं था फिर भी वह बहुत पैसे कमा लेता था, जिसकी वजह से उसे आभिजात्य का दर्जा मिल गया था। उसकी दुनियादारी, समझ-बूझ और दृढ़ निश्चय की क़ैदी बहुत इज्जत करते थे और उसकी बातों को ध्यान से सुनते थे। वह बहुत कम लेकिन शालीन बातें करता था। हालांकि उसमें बहुत शक्ति थी, फिर भी उसके व्यवहार में छैलापन था। बड़ी उम्र के बावजूद उसकी खूबसूरती और समझ-बूझ ज्यों की त्यों क़ायम थी। वह हम लोगों से, जो कभी कुलीन थे, शिष्टता और नफ़ासत से पेश आता था, ऐसे क्षणों में वह अपनी शालीनता को बिल्कुल नहीं खोता था। मुझे पूरा यक़ीन है कि अगर उसे बढ़िया कपड़े पहनाकर पीटर्ज़बर्ग के किसी क्लब में काउन्ट कहकर उसका परिचय करवाया जाता तब भी उसके होश-हवाश दुरुस्त रहते। वह ताश खेलता, और कम लेकिन वज़नदार बातें करता। शायद कोई भी न भाँप सकता कि वह काउन्ट नहीं बल्कि एक आबारा है। मैं संजीदगी से बात कर रहा हूँ। वह बेहद समझदार, हाज़िर-जवाब और साधन-सम्पन्न आदमी था। साथ ही, उसने शिष्टाचार भी सीख लिया था, जिसमें छैलेपन की मात्रा अधिक थी। ज़रूर उसने घाट-घाट का पानी पिया होगा, लेकिन उसके अतीत के बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी थी। वह स्पैशल डिवीजन में था। लेकिन अब योल्किन ने आकर घोड़ा-डॉक्टर के रूप में उसकी ख्याति खत्म कर दी थी। योल्किन सीधा-सादा किसान था लेकिन वह बेहद काइयाँ था। उसकी उम्र पचास

के क़रीब थी और वह पुराणपंथी था। दो महीनों के भीतर ही उसने पूरी तरह से कुलीकोव के क़दम उखाड़ दिए।

योल्किन उन घोड़ों को भी आसानी से चंगा करने लगा, जिनका रोग कुलीकोव ने और यहाँ तक कि शहर के घोड़ा-डॉक्टरों ने भी असाध्य बताया था। वह अपने और कई साथियों के साथ जाली सिक्के बनाने के जुर्म में जेल आया था। आख़िर इतने बुजुर्ग आदमी को ऐसे मामलों में पड़ने की क्या जरूरत पड़ी? वह खुद अपना मज़ाक उड़ाया करता था। उसका कहना था कि एक जाली सिक्का बनाने के लिए उसे तीन सोने के सिक्के ख़र्च करने पड़ते थे। अपने प्रतिद्वन्द्वी की सफलताओं से कुलीकोव के दिल को काफ़ी चोट पहुँची थी। कैदियों में भी उसकी ख्याति कम होने लगी थी। चूँकि दूर की एक बस्ती में उसकी एक रखैल थी, वह मखमल की जाकेट, चाँदी की अंगूठी और इयरिंग और फ़ैन्सी जूते पहनती थी, इसलिए आमदनी का और कोई जरिया न होने की वजह से उसने शराब बेचने का काम शुरू कर दिया था। सब लोगों का ख्याल था कि नए घोड़े की ख़रीद से दोनों जनों में खूब झगड़ा होगा। दोनों तरफ़ उत्तेजना थी, दोनों के अपने-अपने समर्थक थे और दोनों पार्टियों के लीडर जोश में आकर गालियाँ बक रहे थे। खुद योल्किन के चेहरे पर एक व्यंगपूर्ण तीखी मुस्कान थी। लेकिन कोई अशोभनीय घटना नहीं हुई थी। कुलीकोव गाली नहीं देना चाहता था, उसने अपनी उस्तादी से बाजी मार ली। उसने आदरपूर्वक अपने प्रतिद्वन्द्वी की बातें सुनीं, लेकिन उसकी एक ग़लती पर शिष्ट लेकिन दृढ़ स्वर में कहा कि योल्किन को सोचने में ग़लती हुई है, और इससे पहले कि योल्किन होश सँभाले, कुलीकोव ने सविस्तार योल्किन की ग़लती भी समझा दी। हालाँकि योल्किन की पार्टी का दबदबा ही ज्यादा रहा, फिर भी कुलीकोव की पार्टी को यह संतोष हुआ कि उनके विरोधी की हैसियत कुछ कम हो गई थी।

कुलीकोव के समर्थकों ने कहा, "दोस्तो, उसे नीचा दिखाना आसान

नहीं है। वह खुद अपनी पैरवी कर सकता है।"

"योल्किन ज्यादा जानकारी रखता है।" दूसरों ने बिना किसी शत्रुता के कहा। अचानक दोनों पार्टियों में समझौता हो गया।

"उसे ज़्यादा ज्ञान हो सो बात नहीं, लेकिन उसका हाथ सधा हुआ है। घोड़ों के मामले में कुलीकोव बुद्धू नहीं है।"

"क़तई नहीं।"

"मैं भी यही कहता हूँ, वह बुद्धू नहीं है।"

आख़िर एक घोड़ा चुनकर ख़रीदा गया—तंदुरुस्त और ख़ूबसूरत, जो देखने में बहुत हलीम और ख़ुशमिजाज मालूम होता था। उसमें किसी लिहाज़ से भी कोई नुक्स नहीं था। जब सौदा शुरू हुआ तो तीस रूबल माँगे गए। क़ैदियों ने उसका दाम पच्चीस रूबल बताया। बहुत देर तक जोश से सौदेबाज़ी चलती रही और क़ैदियों को खुद अपने उत्साह पर आश्चर्य होने लगा।

'क्या तुम लोग अपनी जेब से घोड़े का दाम दे रहे हो? किसलिये इतनी सौदेबाज़ी कर रहे हो?" किसी ने फ़ब्ती कसी।

"तुम लोग कहीं सरकार की बचत तो नहीं कराना चाहते?" और लोग चिल्लाये।

"जो भी हो दोस्तो, आख़िरकार पैसे का मामला है। क्या पैसा सारी बिरादरी का सांझा नहीं है?"

"बिरादरी का? हम जैसे बेवक़ूफ़ों को बिरादरी नहीं पैदा करती, हम खुद-ब-खुद पैदा हो जाते हैं।"

अट्ठाईस रूबल पर जाकर सौदा तय हुआ। मेजर को ख़बर की गई और उसने फ़ौरन घोड़ा ख़रीदने की इजाज़त दे दी। कहना न होगा कि प्यारे मेहमान को बड़ी शानशौक़त के साथ अस्तबल में ले जाया गया और रोटी और नमक से उसका स्वागत किया गया। जेल में कोई भी ऐसा न था जिसने घोड़े की गर्दन या नाक को न सहलाया हो। उसी दिन घोड़े को पानी ढोने वाली गाड़ी में जोत दिया गया और सब यह

देखने के लिए जमा हो गये कि घोड़ा इतना वजन खींच सकेगा या नहीं। हमारा भिश्ती रोमान बड़े आत्मविश्वास से छकड़े पर बैठा था। कभी वह किसान रह चुका था। उसकी उम्र पचास के क़रीब थी और वह ठेठ रूसी कोचवान था, खामोश और संजीदा। मालूम होता है कि लगातार घोड़ों के साथ रहने से आदमी में खास किस्म की विकारशून्यता और यहाँ तक कि विशिष्टता भी आ जाती है। रोमान शान्त और नम्र आदमी था, वह बहुत कम बातचीत में हिस्सा लेता था। वह एक कुप्पी में से निकालकर नसवार सूँघता रहता था और खुदा जाने कब से जेल के घोड़ों की देखभाल करता आ रहा था। यह तीसरा घोड़ा था। पहले घोड़े भी ऐसे ही थे, सब लोगों का ख्याल था कि घोड़े का रंग जेल के वातावरण के सर्वथा अनुकूल था और घोड़ा हमारे माफ़िक था। रोमान की भी यही राय थी। मिसाल के लिए क़ैदी कभी भी किसी चितकबरे को नहीं चुन सकते थे। भिश्ती का काम रोमान के लिए सुरक्षित हो गया था और हममें से कोई भी उसका स्थान लेने की कल्पना तक नहीं कर सकता था। जब पिछला घोड़ा मरा तो किसी ने, यहाँ तक कि मेजर ने भी रोमान को दोषी ठहराने की बात नहीं सोची। लोग इसे खुदा की मर्ज़ी मान कर चुप रह गए। रोमान की इज्ज़त पर कोई आँच नहीं आई। जल्द ही घोड़ा सबका दुलारा बन गया। संजीदा होते हुए भी क़ैदी अक्सर उसे प्यार से सहलाने आया करते थे। दरिया से लौट कर जब रोमान सार्जेंट द्वारा खोले हुए दरवाजों में ताला लगाने लगता तो घोड़ा सहन के भीतर खड़ा होकर अपने मालिक की तरफ़ आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगता। रोमान ज़ोर से चिल्लाता, "अकेले चले जाओ!" घोड़ा फ़ौरन आज्ञाकारी भाव से छकड़े को खींच कर बावर्चीखाने तक ले जाता और तब तक खड़ा रहता जब तक बावर्ची और पाखानों के अर्दली बाल्टियाँ लेकर न आते। सब कहते, "कैसा होशियार नन्हा-सा घोड़ा है। सारा काम खुद करता है। जो काम दिया जाए वही कर डालता है।"

"बेचारा खामोश जानवर है, फिर भी सारी बातें समझता है।"

"इसी में इसकी भलाई है।"

घोड़ा सिर हिलाकर इस तरह नथुने फुलाता जैसे वह सचमुच सारी बातें समझता हो और अपनी तारीफ़ सुनकर उसे बहुत खुशी हुई हो। जब कोई उसे रोटी का टुकड़ा और नमक लाकर देता तो वह रोटी खा कर फिर अपना सिर हिलाता मानो कहता, 'मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ। मैं अच्छा घोड़ा हूँ और तुम अच्छे आदमी हो।'

मुझे भी घोड़े को रोटी के टुकड़े खिलाना बहुत अच्छा लगता था। उसके खूबसूरत चेहरे को देखकर और अपनी हथेली में उसके गर्म ओठों का स्पर्श पाकर मुझे बड़ी खुशी होती थी। वह मेरे तोहफ़े का बटोर लेता था।

आम तौर पर हमारे क़ैदियों को जानवरों से बहुत स्नेह था और अगर उन्हें इजाजत मिल जाती तो वे बहुत-सी मुर्गियाँ और जानवर पालते। मैं सोचता था, क्या जानवरों से बेहतर कोई ऐसी चीज़ हो सकती है जो क़ैदियों की कठोर प्रकृति को मृदु और परिष्कृत बना सके? लेकिन जेल में पालतू जानवर और पक्षी रखने की इजाज़त नहीं थी। जेल के नियमों और जगह की कमी की वजह से हम यह सब नहीं कर सकते थे।

मेरी क़ैद के दौरान संयोगवश कुछ जानवर जेल में लाये गए थे। घोड़े के अलावा हमारे पास कुत्ते, बत्तखें और वास्का नाम की एक बकरी भी थी। कुछ दिनों के लिए एक बाज़ भी पाला गया था।

हमारी जेल का कुत्ता शारिक था। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ वह बड़ा खुशमिजाज जानवर था और मेरी उससे खूब दोस्ती हो गई थी। चूंकि आम लोग कुत्ते को गन्दा जानवर समझते हैं और उसकी तरफ़ कोई ध्यान नहीं देता, इसलिए जेल में कोई भी शारिक की तरफ़ ध्यान नहीं देता था। फिर भी बेचारा किसी तरह सहन में रातें गुज़ार कर और बावर्चीखाने की जूठन खाकर ज़िन्दा रह रहा था। उस पर

किसी को तरस नहीं आता था और वह बेचारा सब क़ैदियों को अपना मालिक समझता था। ज्योंही क़ैदी काम से लौटते और गारदघर से आवाज़ आती, "कारपोरल्स !" तो शारिक भागा हुआ जेल के फाटक पर पहुँचता। वह पूँछ हिलाकर हर नए क़ैदी का स्वागत करता था, उसे उम्मीद थी कि कोई प्यार से उसकी पीठ सहलाएगा। वह जेल में आने वाले हर आदमी को अपनी तरफ़ आकर्षित करना चाहता था। कई बरस तक मेरे सिवा उसे और कोई मेहरबान नहीं मिल सका। अन्त में वह मुझे सबसे ज़्यादा चाहने लगा। बाद में बेल्का नाम की कुतिया जेल में कैसे आ गई, यह मुझे इस वक्त याद नहीं है। तीसरा कुत्ता कुल्त्याप्का मैंने खुद ख़रीदा था। जब वह पिल्ला ही था तो मैं काम से लौटते वक्त उसे साथ ले आया था। बेल्का बड़ी अजब कुतिया थी। एक बार वह एक छकड़े के नीचे आ गई थी, जिससे उसकी पीठ में ख़म पड़ गया था। जब वह भागती थी तो लगता था कि दो कुत्ते भाग रहे हैं। इसके अलावा वह बड़े रूखे मिज़ाज की थी। उसकी आँखों से क्रोध बरसता था, उसकी पूँछ के बाल उतर गए थे और वह हमेशा अपनी पूँछ को टाँगों में दबाए रखती थी। वह बदक़िस्मत थी, इसलिए उसने सबके आगे झुकने का निश्चय कर लिया था। वह कभी किसी को देख कर गुर्राती या भौंकती नहीं थी। बावर्चीख़ाने की जूठन के टुकड़े खा कर वह ज़िन्दा रहती थी और अपना अधिकांश समय बैरकों के पीछे गुज़ारती थी। जब कोई क़ैदी उसके नज़दीक आता तो वह दूर से ही पीठ के बल लुढ़क कर मानो अपनी दासता की सूचना देती थी 'तुम मुझ से मनचाहा सलूक़ कर सकते हो। अब मुझे कोई बात बुरी नहीं लगती।' हर क़ैदी उसे ठोकर मारना और चिल्ला कर यह कहना अपना फ़र्ज़ समझता था, "ज़रा इस बाज़ारू गन्दी कुतिया को देखो !" लेकिन बेल्का में चीख़ने की भी जुर्रत नहीं थी। अगर उसे बहुत दर्द होता तो वह एक करुण चीत्कार कर उठती थी। शारिक या किसी और कुत्ते के आगे भी वह आतंकित हो जाती थी। जब कोई बड़ा लटकते

हुए कानों वाला बाज़ारू कुत्ता भौंकता हुआ बेल्का पर झपटता तब भी वह दास्य भाव से लेटी रहती थी। लेकिन कुत्ते भी चाहते हैं कि उनके भाईबन्द उनके आगे झुकें। बड़ा कुत्ता फ़ौरन शान्त हो जाता था और कुछ सोचता हुआ बेल्का की तरफ़ देखने लगता था। फिर वह बेल्का के दण्डवत लेटे शरीर को सूँघता था। शायद बेल्का सोचती थी, 'अगर इस बदमाश ने मुझे काट लिया तो क्या होगा?' लेकिन बेल्का को ध्यान से सूँघने के बाद कुत्ता वहाँ से चला जाता था, क्योंकि उसे बेल्का में कोई विशेषता नहीं दिखाई देती थी। बेल्का फ़ौरन उठ खड़ी होती थी और कुत्तों की लम्बी क़तार के पीछे-पीछे लँगड़ाती हुई चलती थी। कुत्तों के बीचों-बीच कोई शालीन कुतिया रहती थी। बेल्का को यक़ीन था कि वह मशहूर कुतिया कभी उससे दोस्ती का सलूक नहीं कर सकती फिर भी वह लँगड़ाती हुई उसके पीछे चलती थी। इस बदक़िस्मती की हालत में उसे इसी से संतोष मिल जाता था। साफ़ था कि उसे अब शालीनता की ज़रा भी परवाह नहीं रही थी। शोहरत पाने के सारे मौक़े गँवा कर अब वह सिर्फ़ खाने के लिए ज़िन्दा थी और उसे यह बात अच्छी तरह मालूम थी। मैंने एक बार उसे प्यार से सहलाने की कोशिश की। यह उसके लिए एकदम इतनी नई और अप्रत्याशित बात थी कि वह पेट के बल धम्म से गिर पड़ी और काँपती हुई चीख़ने लगी। मैं अक्सर उसे सहलाया करता था, क्योंकि मुझे उस पर तरस आता था—वह मुझे देख कर चिल्लाए बग़ैर नहीं रह सकती थी। वह दूर से ही मुझे देखकर शोकपूर्ण चीत्कार करने लगती थी। एक दिन आख़िरकार दूसरे कुत्तों ने फ़सील पर उसे नोंच-नोंच कर मार डाला।

कुल्त्याप्का और ही किस्म का कुत्ता था। जब वह पिल्ला था, तभी मैं उसे अपने साथ जेल में क्यों ले आया था, इसका कारण मैं खुद भी नहीं जानता। उसे खिलाने और पालने में मुझे सुख मिलता था। शारिक फ़ौरन उसका रक्षक बन गया और जब पिल्ला बड़ा हो गया तो दोनों एक साथ सोने लगे। शारिक ने उसे अपने कान काटने और बाल खींचने

की इजाजत दे दी और वह पिल्ले के साथ उसी तरह खुशी से खेलने लगा जिस तरह सब कुत्ते अपने पिल्लों के साथ खेलते हैं। हैरानी की बात तो यह थी कि कुल्त्याप्का ऊँचाई में बिल्कुल नहीं बढ़ा। सिर्फ़ उसकी लम्बाई और चौड़ाई ही बढ़ती गई। उसके बाल बड़े ही रूखे और बदरंग थे। एक कान नीचे लटका रहता था और दूसरा ऊपर खड़ा रहता था। वह बहुत जोशीला और उछलकूद मचाने वाला कुत्ता था और सब पिल्लों की तरह कूं-कूं करता हुआ अपने मालिक का चेहरा चाटने के लिए ऊपर उछलता था और अपनी भावनाओं को अधिक से अधिक शक्तिशाली ढंग से व्यक्त करता था। "सब लोग देख लें, मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ। उचित-अनुचित की किसे परवाह है।" वह जैसे मूक भाषा में कह रहा हो। ज्योंही मैं उसे आवाज़ देता, "कुल्त्याप्का!" तो वह फ़ौरन खुशी से चिल्लाता हुआ नन्हे गेंद की तरह मेरी तरफ भागा आता था। कई बार वह सिर के बल कलाबाज़ी खा जाता था। उस बदसूरत नन्हे कुत्ते से मुझे बड़ा मोह हो गया। कुछ दिनों तक तो मुझे लगा कि उसकी क़िस्मत में खुशी बदी है, लेकिन एक दिन क़ैदी न्यूस्त्रोयेव ने, जो चमड़े की रंगाई और औरतों के जूते बना कर कमाई करता था, कुत्ते में बहुत ज्यादा दिलचस्पी लेनी शुरू की। जरूर उस आदमी के दिमाग़ में कोई बात आई होगी। उसने कुल्त्याप्का को बुलाया, उसे सहला कर धीरे से ज़मीन पर उलट दिया। कुल्त्याप्का खुशी से चिल्लाने लगा, उसे न्यूस्त्रोयेव की नीयत पर ज़रा भी शक नहीं हुआ, लेकिन अगले दिन सुबह कुत्ता जेल में नहीं था। मैंने उसे बहुत देर तक तलाश किया लेकिन कहीं उसका नामोनिशान तक दिखाई न दिया। दो हफ़्ते बाद मुझे सारी बात का पता चला। न्यूस्त्रोयेव को कुत्ते की खाल बहुत पसंद आई थी। उसने कुत्ते को मार कर उसकी खाल एक जनाने जूते के भीतर लगाई थी। आडिटर की बीवी ने जाड़ों के लिए न्यूस्त्रोयेव को एक जोड़ी मखमल के जूते बनाने का हुक्म दिया था। न्यूस्त्रोयेव ने मुझे वे जूते भी दिखाए। सचमुच जूतों के पतावे बहुत बढ़िया थे। बेचारा कुल्त्याप्का!

जेल में बहुत से क़ैदी चमड़ा रंगने का काम करते थे । वे खूबसूरत खाल वाले कुत्तों को पकड़ कर अपने साथ जेल में लाया करते थे—उसके बाद ये कुत्ते कभी दिखाई नहीं देते थे । कुछ कुत्ते चुराए जाते थे और कुछ खरीदे जाते थे । मुझे याद है, मैंने एक बार बावर्चीखाने की बैरक के पीछे दो क़ैदियों को सलाह करते देखा था । एक के पास शानदार काले रंग का कुत्ता था, जो किसी बढ़िया नस्ल का मालूम हो रहा था । शायद किसी बदमाश नौकर ने अपने मालिक के यहाँ से इस कुत्ते को चुरा कर चाँदी के तीस कोपेकों के बदले इन क़ैदियों के हाथ बेच दिया था । दोनों क़ैदी सलाह कर रहे थे कि किस तरह कुत्ते की गर्दन में रस्सी डाल कर उसे मारा जाए । यह बड़ा आसान तरीक़ा था । वे कुत्ते की खाल निकाल कर लाश को सहन के दूर कोने में बने चहबच्चे में फेंक देंगे, जिनमें से गर्मियों में भयंकर दुर्गन्ध आती थी क्योंकि इसकी सफ़ाई शायद ही कभी होती हो । बेचारे कुत्ते को शायद मालूम हो गया था कि उसका क़त्ल होने वाला है । वह बेचैनी से हमारी तरफ़ देखने लगा और बीच-बीच में अपनी झबरी पूँछ को, जो टाँगों में दबी हुई थी हिलाकर जैसे हमारे दिलों को द्रवित करने की कोशिश करने लगा । मैं फ़ौरन वहाँ से चला आया और उन क़ैदियों ने अपना काम पूरा कर लिया ।

बत्तखों का जेल में आना एक संयोग था । वे बत्तखें दरअसल किस की थीं, यह मैं नहीं जानता । कुछ दिनों तक उनसे क़ैदियों का मनोरंजन होता रहा, और शहर के लोग भी उनसे परिचित हो गए । जेल में ही वे बत्तखें पैदा हुई थीं और उन्हें बावर्चीखाने की बैरक के पास रखा जाता था । जब बत्तखें कुछ बड़ी हो गईं तो वे क़ैदियों के पीछे-पीछे जाने लगीं । ज्योंही सुबह नगाड़े की आवाज़ आती और क़ैदी फाटक की तरफ़ बढ़ते तो हमारी बत्तखें भी अपने पंख फड़फड़ाती और चिल्लाती हुई हमारे पीछे आतीं । बारी-बारी से वे फाटक की ऊँची दहलीज पार करतीं और हमारे दाईं तरफ़ खड़ी होकर क़ैदियों की हाजरी खत्म

होने का इन्तजार करतीं। वे हमेशा क़ैदियों की सबसे बड़ी टुकड़ी के पीछे-पीछे चलती थीं और जब क़ैदी काम करते थे तो वे घास में चोंचे चलाती रहती थीं। जब क़ैदी वापस लौटने के लिए इकट्ठे होते थे तो बत्तखें भी एक साथ उनके पीछे-पीछे चलने लगती थीं। काम पर जाने वाली इन बत्तखों की शोहरत दूर-दूर तक फैल गई। लोग कहते थे, "देखो क़ैदी अपनी बत्तखों के साथ जा रहे हैं। क़ैदियों ने बत्तखों को कैसी ट्रेनिंग दी है ?" कभी कोई क़ैदियों की तरफ़ एक सिक्का बढ़ा कर कहता, "यह लो, अपनी बत्तखों के लिए दाना ले लेना।" लेकिन बत्तखों की इतनी वफ़ादारी के बावजूद किसी दावत के दिन उन्हें काट डाला गया।

अगर एक खास वजह न होती तो हमारे बकरे वास्का को कभी न मारा जाता। न जाने कौन उसे जेल में लाया था, लेकिन एक दिन अचानक हमने जेल के ग्राउण्ड में एक नन्हे खूबसूरत सफ़ेद रंग के मेमने को देखा। कुछ ही दिनों में सब लोग उससे प्यार करने लगे। उसकी मौजूदगी से हमारा दिल बहलता था और हमें सान्त्वना मिलती थी। उसे जेल में रखने का सबके पास बहुत अच्छा बहाना था, "हमारे पास अस्तबल है या नहीं ? हमें घोड़े के साथ बकरा भी रखना चाहिए।" लेकिन वास्का अस्तबल के बजाय बावर्चीख़ाने की बैरक में रहता था और बाद में जहाँ उसकी मर्ज़ी होती थी, रहता था। वह बड़ा ही खूबसूरत और नटखट था। जब हम उसे आवाज़ देते तो वह भागता हुआ बेंचों और मेज़ों पर से कूदता-फाँदता आता। वह खेल-खेल में क़ैदियों को सिर मारता। वह हमेशा ज़िन्दादिल और दिलचस्प नज़र आता था। जब वास्का के सींग काफ़ी बढ़ गए तो एक दिन शाम को लेजगियन क़ैदी बाबाई ने, जो दूसरे क़ैदियों के साथ बैठा था, वास्का के साथ सिर टकराने की सोची। वह कुछ देर से यही खेल खेल रहा था। उसे यह खेल बहुत पसन्द था। अचानक वास्का कूद कर पोर्च पर आ गया और ज्योंही बाबाई ने सिर दूसरी तरफ़ फेरा, त्योंही वास्का ने

अपने नन्हें खुर एक साथ जोड़कर पूरी ताक़त से बाबाई की पीठ में सिर मारा। बाबाई सिर के बल नीचे गिर पड़ा। सबको, यहाँ तक कि बाबाई को भी ख़ुशी हुई। कहने का मतलब यह है कि सब लोग वास्का को बहुत चाहते थे। जब वह और बड़ा हो गया तो बहुत लम्बी बहसों के बाद तय किया गया कि खस्सी बनाने के लिए उसका आप्रेशन किया जाये, हमारे घोड़ा-डॉक्टर यह आप्रेशन अच्छी तरह कर सकते थे। क़ैदियों ने कहा "अगर आप्रेशन न किया गया तो इसमें से बदबू आएगी।" इसके बाद से वास्का मोटा होने लगा। उसे इस ढंग से खिलाया जाता था, जैसे जानबूझ कर मोटा किया जा रहा हो। आख़िर वास्का बहुत बड़ा हो गया और उसके सींग भी बढ़ गए। वह इतना मोटा हो गया कि उसे चलने में भी मुश्किल होने लगी। बत्तखों की तरह उसे भी हमारे साथ काम पर जाने की आदत पड़ गई थी। क़ैदियों को और रास्ता चलते लोगों को बहुत हँसी आती थी। सब लोग जेल के बकरे वास्का को जान गए थे। कई बार दरिया के किनारे काम करते हुए क़ैदी वेद वृक्ष की टहनियाँ, पत्ते और फूल इकट्ठे करके वास्का को सजाते, वे उसके सींगों के इर्द-गिर्द लचीली टहनियाँ और फूल लपेट देते और उसका सारा शरीर फूलों के हारों से सजा देते। फिर वापसी पर वास्का क़ैदियों के जलूस के आगे-आगे चलता, क़ैदी रास्ते में चलते लोगों की तरफ़ गर्वपूर्ण दृष्टि से देखते। बच्चों की खुशी तो इस सीमा तक जा पहुँची थी कि किसी ने वास्का के सींगों पर सोने का मुलम्मा करने का सुझाव दिया। यह स्कीम अमल में न लाई जा सकी, हालाँकि मुझे याद है कि मैंने अकिम अकीमिच से, जो इजोया फोमिच के बाद हमारा सब से अच्छा मुलम्मची था, पूछा था कि बकरे के सींगों पर मुलम्मा किया जा सकता है या नहीं। उसने वास्का को ग़ौर से देखा और कुछ देर इस सवाल पर ग़ौर करने के बाद कहा कि शायद यह मुमकिन हो सके, लेकिन 'मुलम्मा ज्यादा दिन चलेगा नहीं। इसके अलावा मुलम्मे का कोई फ़ायदा भी नहीं है।' बात यहीं ख़त्म हो गई। वास्का बहुत

दिनों तक ज़िन्दा रहता और आख़िरकार मोटापे की वजह से हांफकर मर जाता, लेकिन एक दिन जब वह क़ैदियों के साथ टहनियों और फूलों से सजा हुआ आ रहा था, तो अचानक मेजर की नज़र उस पर पड़ी। मेजर अपनी गाड़ी में जा रहा था। वास्का को देखते ही वह ज़ोर से चिल्लाया, 'रुको ! यह किसका बकरा है ?' किसी ने उसे बकरे के बारे में बताया। 'क्या ? जेल में मेरी इजाज़त के बग़ैर बकरा कैसे आ सकता है ? सार्जेन्ट कहाँ है ?' जब सार्जेन्ट वहाँ आया तो उसे हुक्म मिला कि बकरे को फ़ौरन काट दिया जाए, खाल बाज़ार में बेच दी जाए—खाल की क़ीमत क़ैदियों के फन्ड में दे दी जाए और गोश्त से क़ैदियों के लिए शोरबा बनाया जाए। मेजर के इस हुक्म पर बड़ी टीका-टिप्पणी हुई और अफ़सोस ज़ाहिर किया गया, लेकिन क़ैदियों में मेजर का विरोध करने का साहस नहीं था। वास्का को चहबच्चे पर काट दिया गया और हमारे एक क़ैदी ने डेढ़ रूबल में लाश खरीद ली। खाल से जो रक़म मिली उससे सफ़ेद रोटी खरीदी गई। जिस क़ैदी ने लाश को खरीदा था, उसने गोश्त की फुटकर बिक्री की। सचमुच गोश्त बहुत लज़ीज़ था।

कुछ दिनों तक हमारे पास एक कारागुश जाति का बाज भी रहा—स्तेपीज़ में यह जाति मिलती है। बाज ज़ख्मी और थका हुआ था, जब उसे जेल में लाया गया था। क़ैदी आसपास खड़े होकर उसे ग़ौर से देखने लगे। बाज़ उड़ने में असमर्थ था, क्योंकि उसका दाहिना पंख ज़मीन पर घिसट रहा था और एक टाँग टूटी मालूम होती थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि बाज ने क्रुद्ध दृष्टि से क़ैदियों के अलसाये चेहरों की तरफ़ देखा था। वह अपनी नुक़ीली चोंच खोल कर अपनी ज़िन्दगी की क़ीमत अदा करने को तैयार था। जब सब लोगों का कौतूहल शान्त हो गया और वे वहाँ से चले गए तो बाज एक टाँग पर फुदक कर जेल के सबसे दूर कोने में चला गया और लकड़ी की दीवार के साथ दुबक कर बैठ गया। वह जेल में तीन महीने तक रहा। उसने एक बार भी वह

कोना नहीं छोड़ा। शुरू में क़ैदी उसे देखने आते थे और उस पर कुत्ता छोड़ देते थे। शारिक गुस्से से बाज की तरफ़ दौड़ता था, लेकिन अगले ही क्षण भयभीत होकर खड़ा हो जाता था। यह देखकर क़ैदियों का ख़ूब मनोरंजन होता था। वे कहते थे,'वह ज़ालिम किसी को अपने नज़दीक नहीं फटकने देगा।' बाद में शारिक ने अपने डर पर क़ाबू पा लिया और वह फुर्ती से जाकर बाज़ को ज़ख़्मी पंख से पकड़ने लगा। बाज़ अपनी चोंच और पंजों की पूरी ताक़त से अपनी रक्षा करता और कोने में दुबक कर एक आहत सम्राट की सी ख़ौफ़नाक आँखों से लोगों के कौतूहलपूर्ण चेहरों की तरफ़ देखता। अन्त में सब लोग बाज़ से ऊब गए और कोई उसके पास न आता। रोज़ ताज़े गोश्त के टुकड़े उसकी तरफ़ फेंक दिए जाते और उसके पीने के लिए एक कठौता पानी रख दिया जाता। ज़रूर कोई उसकी देखभाल तो करता ही होगा। कुछ दिन तक तो उसने कुछ नहीं खाया, फिर वह खाना खाने लगा, लेकिन किसी के हाथ से या किसी की मौजूदगी में नहीं। मैं अक्सर दूर से उसे देखा करता था।

जब वह अपने को अकेला महसूस करता तो कोने से निकल कर बारह क़दमों तक दीवार के साथ-साथ फुदकना शुरू कर देता। लगता था कि वह वर्ज़िश कर रहा है। मुझे देखते ही वह फूहड़ ढंग से फुदकता हुआ फ़ौरन कोने में चला जाता था और अपनी चोंच खोल कर और पंख फुला कर लड़ाई के लिए तैयार हो जाता था। उसे सहला-पुचकार कर भी नहीं जीता जा सकता था। जब मैं उसे गोश्त के टुकड़े खिलाने की कोशिश करता था तो वह इधर-उधर चोंच मारकर और सिर पटक कर मेरे तोहफ़े को लेने से इन्कार कर देता था और एक जगह बैठ कर वह अपनी तेज़, भेदने वाली नज़रों से मेरी आँखों में आँखें डाल कर देखता था। उसे किसी इन्सान पर भरोसा नहीं था। वह अपने बैर को छोड़ने के लिए क़तई तैयार नहीं था और अकेला मौत का इंतज़ार कर रहा था। एक दिन क़ैदियों को उसकी मौजूदगी की याद आई, हालाँकि

पिछले दो-तीन महीनों से किसी ने उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया था। अचानक सबके दिलों में उसके लिए हमदर्दी उमड़ आई। क़ैदियों ने कहना शुरू किया कि बाज़ को जेल की दीवारों से बाहर ले जाना चाहिए। कुछ ने कहा, "अगर उसे मरना ही है तो जेल से बाहर मरना चाहिए।"

"हाँ, यह जंगली परिन्दा है, इसे आप कभी भी जेल का आदी नहीं बना सकते।" दूसरों ने इस सुझाव का समर्थन किया।

"वह हमारी तरह नहीं है। ज़रा सोच कर देखो," किसी और ने कहा।

"यह तो बड़ी बेवक़ूफ़ी की बात है। वह परिन्दा है और हम इंसान हैं।"

"बाज़ जंगलों का बादशाह है, दोस्तो," स्कूरातोव ने बात शुरू की लेकिन किसी ने उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया।

एक दिन खाने के बाद जब नगाड़े की चोट हमें काम पर बुला रही थी, क़ैदी बाज़ को पकड़ कर बाहर ले आये। उन्होंने उसकी चोंच को कसकर पकड़ लिया था, ताकि वह काट न सके। जब वे फ़सील पर पहुँचे तो एक दर्जन के करीब आदमी यह देखने के लिए इकट्ठे हो गए कि रिहाई के बाद बाज़ फुदककर कहाँ जाएगा। सब इस तरह उत्तेजित थे जैसे उन्हीं को आज़ादी मिलने वाली हो।

"ज़रा इस दुष्ट की तरफ़ देखो। हम इसके साथ भलाई कर रहे हैं और यह लगातार हमें काटने की कोशिश कर रहा है।" बाज़ को पकड़े हुए आदमी स्नेह-भरी दृष्टि से उसको देखते हुए बोला।

"इसे छोड़ दो निकिल्का!"

"इसे मालूम है कि यह क्या चाहता है। यह आज़ादी चाहता है। सचमुच की आज़ादी।"

उन्होंने बाज़ को फ़सील पर से स्तेपीज के मैदान में छोड़ दिया। पतझड़ का आखिरी दौर था। ठंडा और अंधेरा दिन था। खाली जगहों

में हवा की सीटी जैसी आवाज सुनाई दे रही थी और स्तेपीज की सूखी पीली घास हवा के झोकों से हिल रही थी। बाज़ सीधी रेखा में फुदककर जाने लगा, वह अपने ज़ख्मी पंख को इस तरह हिला रहा था, जैसे वह जल्द से जल्द हम लोगों से दूर जाना चाहता हो। क़ैदियों की जिज्ञासा-भरी आँखें घास में उसका पीछा कर रही थीं जहाँ रह-रह कर उसका सिर दिखाई देता था।

"ज़रा इसकी तरफ़ देखो", किसी ने गंभीर स्वर में कहा।

"वह पीछे भी मुड़कर नहीं देखता। उसने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। दोस्तो! देखो यह भागता ही जा रहा है!"

"क्या तुम्हारा ख्याल था कि वह वापस लौटकर कहेगा, 'शुक्रिया' क्यों?" तीसरे ने मज़ाक किया।

"बिल्कुल नहीं। वह महसूस कर रहा है कि वह आज़ाद है।"

"हाँ, आज़ादी तो आज़ादी है।"

"भाइयो, मुझे तो अब बाज़ दिखाई ही नहीं देता!"

"अरे तुम यहाँ किसलिए खड़े हो? आगे चलो!" संतरी चिल्लाया। और हम ख़ामोशी से पैर घसीट कर वहाँ से चल पड़े।

शिकायत

इस परिच्छेद के शुरू में स्वर्गीय अलेक्जांद्र पेत्रोविच गोर्यान्चीकोव के नोट्स का सम्पादक पाठकों को निम्नलिखित सूचना देना जरूरी समझता है।

'कारावास के नोट्स' के पहले परिच्छेद में कुलीन खानदान के एक नौजवान का ज़िक्र आया था, जिसने अपने पिता की हत्या कर डाली थी। लेखक ने उसकी मिसाल इसलिए दी थी ताकि पाठकों को पता चल जाए कि कुछ क़ैदी कैसे हृदयहीन ढङ्ग से अपने अपराधों की चर्चा करते हैं। यह भी कहा गया था कि हालाँकि क़ातिल ने अपना जुर्म क़बूल नहीं किया था, फिर भी लोगों ने जो तथ्य पेश किये थे, उन्हें देखते हुए मुजरिम का जुर्म और भी ज्यादा साबित हो जाता था। लोगों ने लेखक को बताया कि मुजरिम का चालचलन हमेशा से खराब रहा था, उसके सिर पर क़र्ज़ चढ़ा हुआ था और उसने जायदाद का वारिस बनने के लिए अपने पिता का क़त्ल कर दिया था। जहाँ मुजरिम पहले रहता था, उस शहर के लोगों का भी यही कहना था। सम्पादक भी तहक़ीक़ात के बाद इसी नतीजे पर पहुँचा है। अन्त में लेखक ने लिखा है कि क़ातिल जेल में बहुत खुश रहता था, वह बेवकूफ क़तई नहीं था, लेकिन वह बेहद चंचल और ग़ैर-जिम्मेदार आदमी था। फिर भी लेखक ने उसमें क्रूरता का नामोनिशान तक नहीं देखा। लेखक ने यह भी कहा है, "यह कहने की जरूरत नहीं है कि मैं उस आदमी को दोषी नहीं समझता।"

कुछ दिन पहले इन नोट्स के प्रकाशक को साइबेरिया से खबर मिली कि दरअसल वह आदमी बेक़सूर था और उसने बिना किसी क़सूर के ही दस वर्ष की सख्त क़ैद भुगती थी, उसके साथ बेइन्साफी हुई थी।

। भी बाद में उसे बेक़सूर करार दिया। जिन लोगों ने सचमुच क़त्ल किया था उन्होंने अपना जुर्म क़बूल कर लिया और उस बेचारे को रिहा कर दिया गया। इस खबर की सचाई में ज़रा भी शक नहीं है।

इस ग़लत और खतरनाक इल्ज़ाम से उस बदक़िस्मत नौजवान की ज़िन्दगी किस तरह तबाह हो गई, इस बारे में कुछ और कहने की कोई ज़रूरत नहीं है। सच्चाई खुद सबसे बड़ा सबूत है। मेरा ख्याल है कि ऐसी ट्रेजेडी की सम्भावना से इस पुस्तक में एक नया और सनसनीखेज ब्यौरा जुड़ जाता है।

अब मैं अपनी कहानी शुरू करूँगा।

मैं कह चुका हूँ कि आख़िरकार मैं जेल का आदी हो गया था, लेकिन यह 'आखिरकार' बड़ा तक़लीफ़देह था और मुझे आदी होने में बहुत देर लगी, दरअसल पूरा एक साल लगा, जो मेरी ज़िन्दगी का सबसे सख्त साल था। इसीलिए यह साल समूचे रूप से मेरी स्मृति में अंकित हो गया है। मुझे उस साल की हर घड़ी तरतीबवार याद है। मैंने यह भी कहा है कि दूसरे क़ैदियों को भी जेल की ज़िन्दगी का आदी होने में काफ़ी दिक्क़त हुई थी। मुझे याद है, उस साल मैंने न जाने कितनी बार चकित होकर सोचा था कि 'यह लोग क्या महसूस कर रहे हैं? क्या वे सचमुच इस ज़िन्दगी के आदी हो गये हैं। क्या सचमुच उन्होंने अपनी परिस्थितियों को क़बूल कर लिया है?' मेरे मन में यह जानने की प्रबल इच्छा थी। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि क़ैदी बैरकों में रात इस तरह गुज़ारते थे जैसे मुसाफिर रास्ते की किसी सराय में गुज़ारते हैं या मार्च करते हुए फ़ौजी रात को डेरा डालते हैं। जिनको उम्र-क़ैद काटनी थी, वे भी हर वक्त बेचैन रहते थे, उनके मन में बहुत सी आकांक्षाएँ थीं, उनमें से हर ऐसी चीज के सपने देखता था जो चमत्कार के बराबर थी। उनकी यह शाश्वत बेचैनी साफ़ झलकती थी, हालाँकि वे उसे कभी ज़ाहिर नहीं करते थे। यह विक्षिप्ति और बेचैन

आकांक्षाएँ इतनी अनोखी और रुग्ण थीं कि वे सरसाम के रोगी की कल्पनाएँ मालूम होती थीं, अजब बात तो यह थी कि कई बार संजीदा और दुनियादार आदमी भी ऐसे सपने देखते थे। इससे जेल के व्यक्तित्व में एक खास क़िस्म की विलक्षणता आ गई थी और शायद यही जेल का ठेठ वातावरण था। मैंने पहली नज़र में ही यह महसूस किया था कि यह जेल की ही अपनी विशेषता है। यह फ़ौरन जाहिर हो गया था कि सब दिवास्वप्न देख रहे थे। इस बात ने मेरे मन पर फ़ौरन असर डाला। क्योंकि दिवास्वप्न देखने की आदत ने अधिकांश क़ैदियों के चेहरों पर एक क्षुब्ध अवसादपूर्ण और रुग्ण भाव पैदा कर दिया था। अधिकांश क़ैदी खामोश रहते थे, उनमें दुर्भावना का ज़हरीलापन था और वे अपनी उम्मीदों और दिवास्वप्नों को दूसरों से छिपाकर रखते थे। सरलता और स्पष्टवादिता से नफ़रत की जाती थी। उन्हें अपनी उम्मीदों के विस्तार का जितना ही एहसास होता था, उतना ही वे उन्हें सबकी नज़रों से छिपाकर रखते थे, लेकिन वे उन उम्मीदों को छोड़ नहीं सकते थे। कुछ क़ैदियों को तो मन ही मन अपने इन दिवास्वप्नों पर शर्म भी आती थी। रूसी चरित्र में बड़ी संजीदगी है और वे स्वयं अपने को व्यंग्य का लक्ष्य भी बनाते हैं। शायद मन ही मन लगातार वे अपने से असन्तुष्ट रहते थे, इसीलिए वे एक-दूसरे के प्रति भी धीरज नहीं दिखाते थे। उनकी असहिष्णुता, तानेज़नी और उपहास का भी यही कारण है। अगर कोई अधिक सीधा-सादा और बेचैन आदमी सबके दिल की बात खुलेआम कहकर अपने सपनों और आकांक्षाओं को व्यक्त करता था तो फ़ौरन लोग उजड्डपन से उसे टोक देते थे और उसका मज़ाक उड़ाते थे। मैं तो यहाँ तक सोचता हूँ कि जो लोग ताने मारने में सबसे ज्यादा उत्साह दिखाते थे, शायद उन्हीं के सपने और आकांक्षाएँ सबसे अधिक विशाल थीं। मैं कह चुका हूँ कि सीधे-सादे और भोले लोगों को निहायत बेवकूफ़ समझ कर उनका अपमान किया जाता था। हर आदमी इतना आत्म-केन्द्रित और क्षुब्ध हो गया था कि वह

मुद्दत से नेक और सीधे-सादे लोगों से नफ़रत करने लगा था। इन सरल-हृदय बकवासी लोगों को छोड़कर बाक़ी के ख़ामोश लोगों की दो साफ़ श्रेणियाँ थीं। नर्म दिल वाले और बदमिज़ाज; ख़ुश रहने वाले और उदास। ज्यादा तादाद बदमिज़ाज और उदास लोगों की थी, अगर उनमें कोई बातूनी होते थे तो वे सबकी निन्दा-चुगली भी करते थे और रोज़ नये बखेड़े पैदा करते थे—वे हर किसी के मामले में टाँग अड़ाते थे, हालांकि वे अपने मन की हालत किसी के सामने नहीं जाहिर होने देते थे क्योंकि उनकी नज़रों में ऐसा करना एक ग़लती थी। कोमल-हृदय लोग, जिनकी संख्या बहुत कम थी, ख़ामोशी से मन ही मन अपने सपनों को पाला करते थे और दूसरे लोगों की अपेक्षा अधिक दिवास्वप्न देखते थे। मुझे भी लगता था कि इन दो श्रेणियों के अलावा एक तीसरी क़िस्म के लोग भी हैं—जो बहुत दिनों से दुखी रहे हैं जैसे स्तारोदूब्ये का बूढ़ा। ऐसे लोगों की संख्या कम थी। यह बूढ़ा, जिसका ज़िक्र मैं पहले भी कर चुका हूँ, बड़ी शान्ति से रहता था। लेकिन कुछ लक्षणों से मैं यह अनुमान लगा सकता था कि उसकी मानसिक स्थिति कितनी भयंकर है। उसने मुक्ति का रास्ता निकाल लिया था—वह था प्रार्थना करना और अपने को शहीद समझना। बाईबल का उत्साही पाठक, जिसका ज़िक्र मैं पहले कर चुका हूँ—जो पागल हो गया था और जिसने मेजर पर ईंट फेंकी थी—शायद उन्हीं लोगों में से था, जिन्होंने अपने को राम के आगे सौंप दिया था। चूँकि बिना उम्मीद के ज़िन्दगी मुमकिन ही नहीं हो सकती, उसने जान-बूझकर शहादत की कल्पना की थी और अपनी समस्याओं का हल खोज लिया था। वह सबसे कहता था कि उसने किसी दुर्भावना के कारण नहीं बल्कि दुख झेलने के लिए मेजर पर हमला किया था। उसकी आत्मा की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को कौन जान सकता है! कोई भी इन्सान किसी उद्देश्य या उम्मीद के बग़ैर ज़िन्दगी नहीं काट सकता। उद्देश्य और उम्मीद के बग़ैर इन्सान पर मनहूसियत छा जाती है, और वह हैवान बन जाता है। एक ही चीज़ ने हम सब

क़ैदियों को ज़िन्दा रखा था—वह थी आज़ादी और रिहाई की कल्पना।

यहाँ मैं क़ैदियों को अलग-अलग श्रेणियों में बाँटने की कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन क्या सचमुच ऐसी कोशिश कामयाब हो सकती है? यथार्थ अमूर्त विचारों की सूक्ष्मता से भी कहीं अधिक वैविध्यपूर्ण चीज़ है। उसे स्पष्ट और निश्चित श्रेणियों में नहीं बाँटा जा सकता। यथार्थ के क्रम में अनन्त वृद्धि होती रहती है। हमारी भी अपनी एक ज़िन्दगी थी, चाहे वह कितनी ही विपन्न रही हो। मेरा मतलब बाहर की नहीं, भीतर की ज़िन्दगी से है।

मैं पहले ही इस बात का ज़िक्र कर चुका हूँ कि अपनी क़ैद के शुरू के दिनों में मैं इस ज़िन्दगी के आन्तरिक पहलू को समझने में असमर्थ रहा था, इसलिए उस ज़िन्दगी का बाह्य रूप मेरे लिए अत्यन्त कष्टदायी था। कभी-कभी तो मुझे अपने साथी पीड़ितों से नफ़रत होने लगती थी। यहाँ तक कि मुझे उनसे ईर्ष्या होती थी और मैं अपनी क़िस्मत को कोसता था। मुझे उनसे इसलिए ईर्ष्या होती थी क्योंकि वे अपने जैसों के बीच थे, जिन्हें वे अच्छी तरह समझते थे। लेकिन असल में वे लोग भी कोड़ों और बेंतों द्वारा शासित इस समाज से तंग आ गए थे, जिसमें ज़बरदस्ती लोगों को एक-दूसरे का साथी बनने के लिए मजबूर किया जाता था।—हर क़ैदी इस दुनिया से निकलने के लिए बेचैन था। मैं फिर कहता हूँ कि मेरी ईर्ष्या के कटु क्षणों के भी कई कारण थे। यह कहना कि हमारी जेलों में बुद्धिजीवियों और कुलीन खानदान के लोगों को उतनी ही तकलीफ़ें झेलनी पड़ती हैं, जितनी कि मामूली किसान झेलते हैं, सरासर ग़लत होगा। मैंने हाल ही में इस सिद्धान्त के बारे में सुना है और इसका ज़िक्र पढ़ा भी है। इस सिद्धान्त का आधारभूत विचार बड़ा सरल और मानवीय है, "सब क़ैदी इन्सान हैं और सब इन्सानों के साथ बराबर का सलूक़ होना चाहिए।" लेकिन यह विचार बहुत अमूर्त है। इस सिद्धान्त में कई ऐसी व्यावहारिक बातों की अवहे-लना की गई है जो सिर्फ़ तजुर्बे से ही मालूम होती हैं। मेरे कहने का

यह मतलब हरगिज़ नहीं है कि सुसंस्कृत लोगों की भावनाएँ अधिक परिष्कृत होती हैं, या उनका आध्यात्मिक विकास औरों से ज़्यादा होता है। इन्सान की आत्मा और उसकी भावनाएँ किसी भी बाहरी मापदण्ड से नहीं परखी जा सकतीं। न ही तालीम कोई कसौटी है। मैं फ़ौरन यह मानने के लिए तैयार हूँ कि इनमें से बेहद जाहिल और मज़लूम क़ैदी सबसे ज़्यादा संवेदनशील और परिष्कृत भावनाओं वाले थे। जेल में कई बार ऐसा भी हुआ कि कई सालों की जान-पहचान के बाद मैं जिस आदमी को निरा वहशी समझता था, वह किसी क्षण में अपनी आत्मा की समृद्ध भावनाओं और दूसरों के दुख के प्रति ऐसी गहरी समवेदना का परिचय दे बैठता था कि मुझे स्वयं अपनी आँखों और कानों पर विश्वास नहीं होता था। ऐन इसका उल्टा भी हो सकता है। तालीम के साथ-साथ मैंने कई लोगों में ऐसी बर्बरता और अनास्था देखी कि मेरा मन ग्लानि से भर उठा—चाहे पहले मुझे वह व्यक्ति कितना ही अच्छा क्यों न लगता हो—ऐसी हरकतों के बाद मैं उसे हरगिज़ माफ़ नहीं कर सकता था।

मुमकिन है, किसान को जेल से बाहर भूखा रहना पड़ता हो और जेल में आकर उसे पेट भर खाना मिलता हो,—लेकिन सम्पन्न लोगों को जेल में आकर खाने-पीने और रहन-सहन की आदतों को बदलना पड़ा था—सम्पन्न लोगों के लिए इन तक़लीफ़ों को बर्दाश्त करना ज़्यादा मुश्किल होता है। मैं यह भी मानता हूँ कि प्रबल इच्छाशक्ति वाले आदमी के लिए दूसरी तक़लीफ़ों के मुकाबिले में यह तक़लीफ़ क्षुद्र है, हालाँकि रहन-सहन की आदतों का बदल जाना इतनी मामूली बात नहीं है। कई बातें इससे भी ज्यादा तक़लीफ़देह होती हैं कि इन्सान को गन्दगी, पाबंदियाँ, गंदा और अपर्याप्त खाना भी बुरा नहीं मालूम होता। दिनभर खून-पसीने की मेहनत के बाद नाज़ुक-मिजाज और बिगड़ा आदमी भी खुशी-खुशी काली रोटी और गोभी का शोरबा खा लेगा जिसमें झींगुर तैरते हैं। हो सकता है कि वह इस खाने का आदी भी हो जाए जैसा

कि क़ैदियों के एक गीत में कुलीन क़ैदियों के बारे में कहा गया है—

"मुझे खाने के लिए गोभी के पत्ते और पानी मिलता है,
ज़रा देखो, मैं इस खाने पर कैसे टूटता हूँ!"

लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह है कि जेल में आने के दो घण्टे बाद ही 'मामूली' आदमी मज़े में जेल के समाज का पक्का सदस्य बन जाता है। सब लोग उसे समझते हैं और वह सबको समझता है। बाक़ी क़ैदी उसे अपना समझते हैं लेकिन भद्र लोगों की बात दूसरी थी। भद्र आदमी चाहे कितना ही नेक, अक्लमन्द और ईमानदार क्यों न हो, बरसों तक उसे नफ़रत और हिक़ारत की नज़रों से देखा जाएगा। क़ैदी उसे न समझेंगे न ही उस पर भरोसा करेंगे। वह कभी किसी का साथी नहीं बन पाएगा—चाहे अन्त में वह इस हालत में पहुँच जाए, जब कोई उसे दिक न करे, लेकिन फिर भी वह उन लोगों के लिए एक अजनबी बना रहेगा और यह खाई उसे हमेशा सताती रहेगी। क़ैदी किसी दुर्भावना के कारण ऐसा सलूक नहीं करते थे। इसका कारण सिर्फ़ यही था कि अजनबी अजनबी ही रहता था। इन्सान के लिए 'अपनापे' से वंचित रहना बहुत कष्टदायी है। अगर तंगारोग के किसी किसान को पेत्रोपावलोवस्क भेज दिया जाता है तो उसे वहाँ भी अपने ही जैसे रूसी किसान दिखाई देते हैं। वह दो घण्टों में ही सबसे नाता जोड़ लेता है और मज़े से अपना झोंपड़ी में बस जाता है। लेकिन भद्र लोगों की बात दूसरी है; उनके और साधारण लोगों के बीच बहुत गहरी खाइयाँ हैं, और जब-जब अचानक किसी भद्र व्यक्ति से उसके विशेष अधिकार छीन लिए जाते हैं, तब यह भेद पूरी तरह से साफ़ नज़र आता है। वैसे तो कोई चाहे ज़िन्दगी भर आम लोगों के सम्पर्क में आता रहे, चालीस बरस तक सिविल सर्विस या किसी और सरकारी माध्यम से लगातार रोज़ लोगों से मिलता रहे, चाहे वह उनका मेहरबान और पिता-तुल्य ही क्यों न हो, तब भी उसे लोगों का असली रूप नहीं मालूम होगा। उसे जो नज़र आएगा वह भ्रम होगा। मैं जानता हूँ, इन पंक्तियों को पढ़ने वाले सब लोग यही

कहेंगे कि मैं अतिशयोक्ति कर रहा हूँ लेकिन मुझे इस बात की सच्चाई में पक्का यक़ीन है । मैं किताबों के ज़रिए से नहीं, बल्कि तजुर्बे के ज़रिए इस नतीजे पर पहुँचा हूँ और मुझे इसकी तहक़ीक़ात करने का काफ़ी वक्त मिला है । किसी दिन शायद सब लोगों को इस सच्चाई का एहसास होगा ।

देखने-सुनने से मैंने जो धारणाएँ बनाई थीं, लगता था घटनाएँ उनकी पुष्टि करने पर तुली हुई हैं । इसका मेरे दिल पर गहरा असर पड़ा । उन पहली गर्मियों में मैं हमेशा जेल में अकेला घूमा करता था । मैं यह पहले ही बता चुका हूँ कि उन दिनों मेरी मानसिक हालत ऐसी नहीं थी कि मैं उन लोगों के सौहार्द्र को समझ सकूँ, जो मुझसे स्नेह कर सकते थे और सचमुच जिन्होंने बाद में मुझसे स्नेह किया, हालाँकि हम बराबरी के स्तर पर कभी नहीं पहुँच सके । कुलीन खानदान के क़ैदियों में भी मेरे परिचित लोग थे, लेकिन उनके सामीप्य में मुझे कोई तसल्ली नहीं होती थी । मैं हर चीज़ से तंग आ गया था, लेकिन बाहर निकलने का कोई रास्ता नजर नहीं आता था ।

मैं एक ऐसी घटना का ज़िक्र करूँगा जिसने शुरू में ही मुझे मेरी स्थिति और अलगाव का एहसास कराया था । उन्हीं गर्मियों में जब जुलाई खत्म होने वाली थी, क़ैदी एक दिन सुबह सहन में क़तार बाँधकर खड़े होने लगे । क़रीब बारह का वक्त था, जब हम अक्सर दोपहर के काम से पहले आराम किया करते थे, जेल में क्या हो रहा है, इसका मुझे रत्तीभर पता नहीं था । मैं अपने विचारों में इतना खोया रहा कि मैं यह तक न देख पाया कि तीन दिन पहले से ही क़ैदियों में उत्तेजना फैली हुई थी । बाद में जब क़ैदियों की बातचीत और उनकी कटुता की स्मृति मेरे मन में ताज़ी हुई तो मैंने अन्दाज़ा लगाया कि शायद यह उत्तेजना उनके दिलों में बहुत पहले से थी । मेरा ख़्याल था कि सख़्त मेहनत और नीरस खुश्क दिनों ने, जंगलों और खेतों की आज़ादी के सपनों और छोटी रातों ने, जिनकी वजह से हमारी नींद पूरी नहीं हो

पाती थी, क़ैदियों में यह उत्तेजना पैदा की है। शायद इन सारे कारणों ने मिलकर यह विस्फोट पैदा किया था, जिसका तात्कालिक कारण ख़ूराक थी। पिछले कुछ दिनों से बैरकों में, ख़ासकर मेस की बैरक में, सुबह और शाम के खाने के वक्त क़ैदी शिकायत कर रहे थे। वे बावर्चियों से असन्तुष्ट थे। उन्होंने एक बावर्ची को निकाल कर एक नया बावर्ची रख भी लिया था, लेकिन जल्द ही उन्होंने नये आदमी को भी निकाल दिया और पुराने बावर्ची को रख लिया।

मेस की बैरक में लोग शिकायत कर बैठते, "हमें सख्त मेहनत करनी पड़ती है और हमें खाने के लिए आँतें दी जाती हैं। खाने के लिए आदमी ऐसी चीज़ चाहता है, जिसमें वह अपने दांत तो गड़ा सके।"

"अगर आँतें नहीं मिलतीं तो सुअर के गोश्त का गन्दा हिस्सा दिया जाता है।"

"निरा पागलपन है। आँतें या सुअर का गन्दा गोश्त! भला यह भी इन्सान के खाने के क़ाबिल चीज़ें हैं? क्यों?"

"हाँ, हमें बहुत गन्दा खाना दिया जाता है।"

"उसकी जेब आजकल बहुत गर्म हो रही है।"

"इससे हमारा कोई सरोकार नहीं।"

"तो फिर किसका सरोकार है। मेरा पेट मेरा ही तो सरोकार है। अगर सब क़ैदी मिलकर शिकायत करें तो कुछ बन सकता है।"

"शिकायत?"

"हाँ, शिकायत।"

"मालूम होता है कि पहली शिकायत पर तुम्हारी काफ़ी मरम्मत नहीं हुई, अहमक़!"

"यह बिल्कुल सच है। जल्दबाज़ी से काम बिगड़ जाता है। ज़रा बताओ तो सही, ओ गधे, तुम शिकायत में भला क्या कहना चाहते हो?" एक दूसरे आदमी ने कहा।

"क्यों नहीं। अगर सब लोग मेरे साथ आएँ तो मैं उन्हें सारी बात

बता सकता हूँ। लेकिन दरअसल मामला यह है कि कुछ लोगों को सिर्फ़ जेल की ख़ूराक खानी पड़ती है और कुछ अपनी ख़ूराक ख़रीदते हैं।"

"लो फिर ईर्ष्या शुरू हो गई। दूसरों की ख़ुशक़िस्मती देखकर तुम्हें तैश आ गया है।"

"दूसरों की केक की तरफ़ आँखें फाड़-फाड़ कर देखने से बेहतर है कि तुम उठकर देखो कि तुम क्या पका सकते हो ?"

"पकाने से क्या मतलब ? मैं तुमसे बहस करने में अपने बाल नहीं सफ़ेद करना चाहता। तुम जब हाथ पर हाथ रखकर बैठने के लिए तैयार हो, तब तो तुम ज़रूर पैसे वाले ही होगे।"

"येरोश्का सचमुच अमीर है, उसके पास एक बिल्ली और एक कुतिया है !"

"लेकिन दोस्तो, आख़िर हम ख़ामोश क्यों रहें ? क्या हम ज़रूरत से ज़्यादा बर्दाश्त नहीं कर चुके ? ये लोग हमारी खाल खींच रहे हैं, हम क्यों न इसके ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठाएँ ?"

"क्यों ? तुम चाहते हो, हम तुम्हें इसका कारण समझाएँ ? तो सुनो हम जेल में हैं।"

"यही तो बात है—लोगों में फूट होती है तो गवर्नरों की मौज रहती है।"

"यह ठीक है। आठ आँखों वाला मेजर हमारा ख़ून चूसकर ही तो मोटा हुआ है और उसने घोड़ों की जोड़ी ख़रीदी है।"

"उसे शराब भी पसन्द है।"

"अभी उसी दिन ताश खेलते-खेलते जानवरों के डॉक्टर के साथ उसका झगड़ा हो गया था।"

"फ़ेदूका ने मुझे बताया था कि वे लोग रातभर ताश खेलते रहे, फिर दो घन्टों तक उनकी लड़ाई हुई।"

"इसीलिए तो खाने के लिए हमें आँतें दी जाती हैं।"

"अरे ओ बेवकूफ़ो, शिकायत करना तुम्हारा काम नहीं है।"

"लेकिन अगर हम सब एक साथ मिल जाएँ तो वह आखिर कौन सा बहाना करेगा ? हम अपनी बात पर डटे रहेंगे।"

"बहाना ! वह तुम्हारी थूथनी पर दो थप्पड़ जमायेगा—यही उसका बहाना होगा।"

"और तुम पर मुक़दमा भी चलवाएगा।"

कहने का मतलब यह कि सब लोगों के मन में बेचैनी थी। उन दिनों जेल में ख़ूराक भी बहुत ख़राब मिलती थी, इसमें भी शक नहीं। लेकिन इसके अलावा और भी कई मुसीबतें थीं। सबसे बड़ी मुसीबत तो यह थी कि सबके मन में अवसाद और असह्य मानसिक यंत्रणा छाई थी। क़ैदी तो प्रकृति से ही विद्रोही और सनकी होता है, लेकिन एक बड़े समूह का एक साथ विद्रोह करना मुश्किल काम होता है और उसका कारण है उनका पारस्परिक शाश्वत संघर्ष। क़ैदी ख़ुद भी इस बात को जानते थे और कुछ करने के बजाय सिर्फ़ उनकी बातचीत में ही उग्रता आ गई थी। लेकिन उनकी इस बार की उत्तेजना निरर्थक नहीं गई। क़ैदी झुण्ड बना कर सहन में इकट्ठे होते थे या बैरकों में ज़ोर-शोर से बहस करते थे। मेजर के संपूर्ण शासन का इतिहास बताते वक्त वे गालियाँ देने लगते थे और छोटे से छोटे किस्से पर भी नुक्ताचीनी करने लगते थे। कुछ क़ैदी तो विशेष रूप से उत्तेजित थे। इस तरह का कोई मामला आन्दोलनकारियों और अगुओं के बग़ैर नहीं हो सकता। ऐसे लोग न सिर्फ़ जेल में बल्कि कारख़ानों, फ़ौजी टुकड़ियों में भी अगुआ रहते हैं। सब जगह ऐसे लोग जोशीले होते हैं और इन्साफ़ पाने के लिए बेताब रहते हैं। उनकी यह शिशु-सुलभ आस्था होती है कि वे निश्चित रूप से और फ़ौरन इन्साफ़ हासिल कर सकते हैं। उनमें और लोगों से कम अक्ल नहीं होती, बल्कि कई तो औरों से ज्यादा सूझ-बूझ वाले होते हैं, लेकिन जोशीलेपन की वजह से वे सतर्क और दूरदर्शी नहीं हो पाते। कई ऐसे भी होते हैं जो ऐसी परिस्थितियों में जनता की बड़ी होशियारी से रहनुमाई करते हैं और अपने उद्देश्य में सफल होते हैं,

लेकिन ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है। जिन लोगों का मैं यहाँ ज़िक्र कर रहा हूँ, वे जब लोगों को शिकायत करने के लिए उकसाते हैं, तो हमेशा अपने उद्देश्य में असफल रहते हैं। जोशीले लोगों से जेलें और बैरकें भरी हुई हैं। जोशीलापन उनकी हार का कारण भी है लेकिन उनके आस-पास के लोगों पर इसी जोशीलेपन का असर पड़ता है और लोग उनके पीछे चलते हैं। उनके जोश और सच्चे क्षोभ से सब प्रभावित होते हैं और अन्त में कच्चे से कच्चे दिल वाले लोग भी उनका साथ देने के लिए बाध्य हो जाते हैं। सफलता में उनके अंधे विश्वास को देखकर कट्टर अनास्थावादियों का दिल भी बदल जाता है, हालाँकि उनका विश्वास कई बार ऐसे हास्यास्पद और बचकाने तर्कों पर आधारित होता है कि सुनने वाले ताज्जुब से सिर हिलाने लगते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ऐसे लोग बिना किसी डर के सबसे आगे बढ़ते हैं। उन्मत्त बैलों की तरह बिना किसी बात की परवाह किए हुए वे अपने सींग आगे बढ़ा कर चलते हैं। उनमें इतनी व्यावहारिक बुद्धि भी नहीं रहती, जितनी कि क्षुद्र से क्षुद्र और पतित व्यक्ति में रहती है जिसके बल पर वह बिना अपने को नुक्सान पहुँचाये कामयाबी हासिल कर लेता है। ऐसे जोशीले लोग हमेशा अपने सींग तुड़वा बैठते हैं। रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में वे चिड़चिड़े, खीजे हुए और असहिष्णु होते हैं। आमतौर पर उनके विचार बहुत संकीर्ण होते हैं, जो उनकी ताक़त का एक बड़ा हिस्सा है। उनकी सब से बुरी बात यह होती है कि सीधे अपने उद्देश्य की ओर बढ़ने के बजाय वे भटक कर छोटी-छोटी बातों में अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर बैठते हैं और यही उनकी तबाही का कारण बनता है। इसके बावजूद भी जनता उनको मानती है और यही उनकी शक्ति का रहस्य है। लेकिन मैं यहाँ उन बातों के बारे में कुछ शब्द कहना चाहूँगा जिन्हें 'शिकायत' के नाम से पुकारा जाता है।

हममें से कई क़ैदी ऐसे थे जो शिकायत की अर्ज़ी की मार्फ़त जेल में आये थे और वही इस वक्त सबसे ज्यादा जोश दिखा रहे थे। ख़ासतौर

पर मार्तुनोव जो कभी घुड़सवार टुकड़ी में रह चुका था। वह उतावला, जोशीला और शक्की-मिज़ाज का आदमी था, हालांकि वह ईमानदार और स्पष्टवादी था। एक और आदमी वासिली अन्तोनोव था, जो बहुत चिड़चिड़ा था, जिसकी शक्ल से गुस्ताखी टपकती थी। वह असाधारण रूप से मेधावी व्यक्ति था, और उतना ही सच्चा और खरा भी। ऐसे लोगों की तादाद इतनी ज्यादा थी कि उन सबका ज़िक्र नहीं किया जा सकता। पेत्रोव बिना कुछ कहे सब टोलियों की बातें सुनता हुआ घूम रहा था। उसका जोशीलापन ज़ाहिर हो रहा था और वह सबसे पहले बैरक से निकल कर क़तार में खड़ा हो गया।

सार्जेन्ट एकदम घबरा कर बाहर निकल आया। क़ैदियों ने विनम्र स्वर में उसे बताया कि वे मेजर से कुछ कहना चाहते हैं। अपाहिज क़ैदी भी सामने क़तार बाँधकर खड़े हो गए थे। क़ैदियों की यह प्रार्थना इतनी असाधारण थी कि सार्जेन्ट दंग रह गया। फिर भी उसने फ़ौरन मेजर तक खबर पहुँचाई, उसमें देरी करने की जुर्रत नहीं थी। क्योंकि अगर सब क़ैदी एक साथ कोई क़दम उठा रहे हैं तो हो सकता है कि फ़ौरन कोई न कोई बलवा हो जाए। हमारे अफ़सरों पर शायद हर वक्त क़ैदियों की दहशत छाई रहती थी। दूसरी बात यह थी कि मान लो क़ैदी खामोशी से तितर-बितर हो भी जाएँ तो भी सार्जेन्ट को तो हर सूरत में अधिकारियों को रिपोर्ट देनी ही पड़ेगी। सार्जेन्ट का चेहरा पीला पड़ गया, वह काँपता हुआ मेजर के पास चला गया। उसने क़ैदियों से पूछ-ताछ या बहस तक करने की कोशिश न की। वह जान गया था कि इन बातों का कोई फ़ायदा नहीं।

बिना यह मालूम किये कि माजरा क्या है, मैं भी जाकर क़तार में खड़ा हो गया था। बाद में जाकर मुझे सारा क़िस्सा मालूम हुआ। मेरा ख्याल था कि क़ैदियों की हाजरी ली जा रही है, लेकिन किसी भी संतरी को न देखकर मुझे ताज्जुब हुआ और मैं अपने चारों ओर देखने लगा। सबके चेहरे क्रुद्ध और आवेश से तमतमाये हुए थे। कुछ चेहरे

जर्द थे। सब खामोश थे और आतुरता से किसी बात की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने यह देखा कि कई लोग चकित भाव से मेरी तरफ़ देख रहे हैं। मैं बिना कुछ कहे एक ओर हट गया। ज़रूर उन लोगों को यह देखकर ताज्जुब हुआ होगा कि मैं भी उनके साथ खड़ा होकर शिकायत करना चाहता हूँ। जल्द ही मेरे आस-पास के लोगों ने गर्दन घुमा कर प्रश्नभरी दृष्टि से मुझे देखा।

"तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?" वासिली एन्तोनोव ने ऊँचे अशिष्ट स्वर में कहा। वह मेरे नज़दीक आकर खड़ा हो गया। इससे पहले वह हमेशा मेरे साथ शिष्टता से पेश आता था।

मैंने चकित होकर उसकी तरफ़ देखा। मुझे अब एहसास होने लगा था कि कोई असाधारण घटना होने वाली है।

"मैं पूछता हूँ, तुम यहाँ किसलिये खड़े हो ? बैरक में चले जाओ," फ़ौजी सैक्सन के एक नौजवान ने कहा, इससे पहले उसने कभी मुझसे बात नहीं की थी। वह खामोश और नेक आदमी था। उसने कहा, "तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं।"

"लेकिन सब लोग यहाँ जमा हैं। मेरा ख़्याल था कि हाज़री ली जा रही है," मैंने जवाब दिया।

"यह भी रेंग कर यहाँ आ गया," कोई चिल्लाया।

"लोहे की चोंच वाला !" किसी और ने फब्ती कसी।

"मक्खीमार !" तीसरे ने अपार घृणा के साथ कहा। इस नये नाम को सुनकर सब हँस पड़े।

"नहीं, जनाबे आला, कभी-कभी तो बावर्चीखाने की बैरक में तशरीफ़ लाते हैं।"

"ऐसे लोग सब जगह मजे में रहते हैं। यहाँ ये जेल में क़ैद हैं, लेकिन सफ़ेद रोटी और सुअर के बच्चों का गोश्त खाते हैं। तुम लोग तो अपना खाना मंगवाते हो न, फिर यहाँ किसलिए आये हो ?"

"तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं है," कुलीकोव ने तेजी से कहा। वह

मुझे बाँह से पकड़ कर दूर ले गया।

उसका चेहरा पीला पड़ गया था, आँखों से अंगारे बरस रहे थे और वह अपना निचला ओंठ काट रहा था। वह घबराहट की हालत में मेजर का इन्तज़ार कर रहा था। ऐसे मौक़ों पर मुझे कुलीकोव को देखना बहुत अच्छा लगता था। ऐसे ही मौक़ों पर आदमी अपनी असली क़ीमत साबित करता है। उसे आत्मप्रदर्शन पसन्द था, लेकिन वह बड़ी ख़ूबी से अपना पार्ट अदा कर रहा था। मुझे यक़ीन है कि अगर उसे फाँसी की सज़ा मिलती तब भी वह बड़ी शान से वहाँ जाता। जब सब लोग मुझ पर बरस रहे थे, कुलीकोव दुगनी नम्रता से पेश आया। उसके शब्दों में आदेश का पुट भी था। वह किसी विरोध या एतराज़ के लिए तैयार न था।

"यह हमारा अपना मामला है, अलेक्जान्द्र पेत्रोविच, इससे तुम्हें कोई सरोकार नहीं। तुम कहीं और चले जाओ। तुम्हारे साथी बावर्ची-खाने में हैं। बेहतर है कि तुम भी वहीं चले जाओ।"

बावर्चीखाने की खुली खिड़कियों में से मुझे पोलिश क़ैदियों की एक झलक-सी दिखाई पड़ रही थी। मुझे लगा कि वहाँ और भी लोग हैं। मुझे ताज्जुब हुआ और मैं बैरक के भीतर चला गया। पीछे क़हक़हों, गालियों और फब्तियों का बाज़ार गर्म था।

"यह हमें पसंद नहीं करता, वाह! देखो।"

इससे पहले मुझे कभी इतना अपमान नहीं झेलना पड़ा था। यह सब बर्दाश्त करना मेरे लिए मुश्किल हो रहा था। बैरक के रास्ते में त- वस्की[1] से मुलाक़ात हुई। वह भी कुलीन ख़ानदान का था, और अत्यन्त सहृदय और दृढ़ चरित्र का नौजवान था। वह 'ब' से बहुत स्नेह करता था। वह बहुत ज्यादा शिक्षित नहीं था। क़ैदी एक तरह से उसको

---

१. यहाँ अभिप्राय सिमोन तोकार्जेवस्की से है, जिसने दास-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन का नेतृत्व किया था। उसे ७ बरस की क़ैद हुई थी।

पसंद भी करते थे। वह बड़ा बहादुर, तगड़ा और जवांमर्द आदमी था। यह बात उसकी चालढाल और हर अदा से ज़ाहिर होती थी।

"क्या बात है गोरयान्चीकोव ! भीतर आ जाओ।" उसने आवाज़ दी।

"बाहर क्या हो रहा है ?"

"वे लोग शिकायत पेश करने जा रहे हैं, तुम्हें नहीं मालूम ? इसका कोई नतीजा तो निकलने वाला नहीं। भला कौन क़ैदियों की बात पर यक़ीन करेगा ? वे लोग लीडरों की तलाश करेंगे और अगर हम लोग बाहर निकले तो सारा दोष हमारे सिर मढ़ दिया जाएगा। याद रखो, हमें किसलिए यहाँ भेजा गया है। दूसरे क़ैदियों को सिर्फ़ कोड़े लगाए जाएँगे लेकिन हम लोगों पर मुकदमें चलाए जाएँगे। मेजर हम सबसे नफ़रत करता है और इस बात से उसे मनमाना मौक़ा मिलेगा। इसके अलावा अपनी सफ़ाई देने के लिए वह हमें इस्तेमाल करेगा।"

दूसरे क़ैदी भी बिना किसी झिझक के हमें दग़ा ।देंगे। म- स्की ने कहा।

"वे लोग कभी भी हम पर तरस नहीं खाएँगे।" त- वस्की ने कहा।

भद्र लोगों के अलावा कुछ और लोग भी थे, जो कई कारणों से इस आन्दोलन में शामिल नहीं हुए थे। कुल मिलाकर उनकी संख्या तीस थी। कुछ तो डरपोक थे और कुछ का ख़्याल था कि हिस्सा लेने से कोई फ़ायदा नहीं। उनमें अकिम अकीमिच भी था, जो तमाम ऐसी बातों का कट्टर विरोधी था, जो अच्छे आचरण और कर्त्तव्यपरायणता के विरुद्ध होती हैं। वह शान्तिपूर्वक इस घटना के नतीजे का इन्तज़ार कर रहा था—उसे नतीजे की कोई परवाह नहीं थी, बल्कि उसे पूरा यक़ीन था कि अन्त में जेल-अधिकारियों और अनुशासन की जीत होगी। ईज़िया फ़ोमिच भी वहाँ मौजूद था। वह बुरी तरह से घबराया हुआ था और कुछ निराश भी था, फिर भी वह उत्सुक और शंकित भाव से हमारी

बातें सुन रहा था। वह बेहद परेशान था। मामूली पोलिश क़ैदी, रूसियों में से कुछ डरपोक लोग भी हमारे साथ थे जो हमेशा ख़ामोश और दबे-दबे रहते थे। दूसरों से जाकर मिलने का साहस उनमें नहीं आ पाया था और वे निराश भाव से नतीजे के इन्तज़ार में थे। कुछ ऐसे भयंकर और निडर क़ैदी भी थे, जो सिर्फ़ विरोध की भावना से इस आंदोलन में शामिल नहीं हुए थे। उनके मन में यह तिरस्कारपूर्ण विश्वास था कि इस बात का कोई भी नतीजा नहीं निकल सकता। लेकिन उन्हें अपने ऊपर सौ फ़ीसदी भरोसा नहीं था, इसलिए वे कुछ झेंप से रहे थे—हालाँकि उन्हें यक़ीन था कि वे सही रास्ते पर हैं। बाद में यह साबित हो गया कि उनका सोचना सही था। तब उन्हें ऐसा महसूस हुआ जैसे वे भगोड़े हों और उन्होंने ही अपने साथियों का राज़ मेजर को बता दिया हो। वहाँ साइबेरिया का वह चालाक किसान योल्किन भी था जिसे जाली सिक्के बनाने के जुर्म में क़ैद हुई थी और जिसने घोड़ा-डाक्टर कुलीकोव की प्रेक्टिस ख़त्म कर दी थी। स्तारोदूब्ये का बूढ़ा भी उनके साथ था। सारे बावर्ची भी इस आंदोलन से दूर रहे थे, शायद उनका ख़्याल था कि वे भी अफ़सरों में से हैं और क़ैदियों का पक्ष लेना उन्हें शोभा नहीं देता।

मैंने शिथिल स्वर में म- स्की के सामने एतराज़ उठाया, "देखिए, इन लोगों के सिवा सब क़ैदी आन्दोलन में शामिल हुए हैं।"

"हमें आन्दोलन से क्या सरोकार ?" ब- बड़बड़ाया।

"हम क्यों उनके साथ मिलकर सौ गुना ज़्यादा ख़तरा मोल लेते ? क्या आपका सचमुच ख़्याल है कि इन बातों से कोई फ़ायदा होगा ? हम क्यों उनके झमेले में पड़ें ?"

"इन बातों का कोई फ़ायदा नहीं हो सकता," एक बूढ़े क़ैदी ने कहा जो बहुत ज़िद्दी था। ज़िन्दगी के तजुर्बों ने उसे कटु बना दिया था। अल्माज़ोव भी वहाँ मौजूद था। उसने भी फ़ौरन अपनी रज़ामन्दी ज़ाहिर की।

"सिवा इसके कि पचास को कोड़े पड़ें और कुछ नहीं होगा।"

"मेजर आ गया है!" कोई चिल्लाया। हम सब खिड़कियों की तरफ़ भागे।

मेजर घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ जेल में आ गया था। गुस्से से वह पागल हो रहा था और उसका चेहरा लाल हो गया था। उसने आँखों पर चश्मा लगा रखा था। खामोशी से, लेकिन दृढ़तापूर्वक वह सबसे अगली क़तार के सामने आया। ऐसे मौक़ों पर वह सचमुच दिलेरी दिखाता था और कभी भी घबराता नहीं था। लेकिन वह हर वक्त शराब के नशे में धुत् रहता था। यहाँ तक कि उसकी टोपी का नारंगी रंग का फीता और दाग़ लगे चाँदी के फ़ौजी चिन्ह भी इस वक्त अमंगल-सूचक और भयंकर दिखाई दे रहे थे। मेजर के पीछे क्लर्क दुयात्लोव चल रहा था। वह बड़ा ही प्रभावशाली आदमी था, और सारी जेल पर हकूमत करता था, यहाँ तक कि मेजर पर भी उसका असर था। वह बड़ा चालाक आदमी था, लेकिन दिल का बुरा नहीं था। क़ैदियों को उससे कोई शिकायत नहीं थी। उसके पीछे हमारा सार्जेन्ट था। उसके चेहरे से साफ़ ज़ाहिर था कि उसे खूब झिड़कियाँ मिली हैं और इससे दस गुना ज्यादा उसकी दुर्गति होने वाली है। उसके पीछे तीन या चार सन्तरी थे। जब से मेजर को बुलावा भेजा गया था, तभी से क़ैदी नंगे सिर खड़े थे। मेजर के आने पर वे कभी एक टाँग पर ज़ोर डालने लगे तो कभी दूसरी पर और सीधे तन कर खड़े हो गये। वे मेजर के चिंघाड़ने का इन्तज़ार कर रहे थे।

मेजर को चिंघाड़ने में ज़्यादा देर नहीं लगी। उसके मुँह से निकलने वाला दूसरा शब्द चीख़ के रूप में निकला। वह गुस्से से लाल-पीला हो रहा था। हम अपनी खिड़कियों में से मेजर को क़ैदियों से भिड़ते और सवाल पूछते हुए देख सकते थे। हमें न सवाल सुनाई दे रहे थे, न जवाब, सिर्फ़ मेजर की असम्बद्ध चीखों की आवाज़ सुनाई दे रही थी।

"बलवा!......फ़ौजी सज़ा!......सरग़ना! तुम सरग़ना हो!

तुम भी !" मेजर ने किसी क़ैदी पर झपट कर कहा।

जवाब तो मुझे सुनाई नहीं दिया, लेकिन एक मिनट बाद ही हमने उस क़ैदी को क़तार में से निकल कर गारदघर की तरफ़ जाते देखा। उसके बाद दो और क़ैदी उसके पीछे-पीछे गए।

"मैं तुम सब पर मुकदमा चलाऊँगा ! तुम्हें मज़ा चखाऊँगा ! बावर्चीख़ाने में कौन है ?" खुली खिड़की में से हमें देखकर-वह ज़ोर से चिल्लाया। "इन लोगों को फ़ौरन यहाँ से खदेड़ दो !"

क्लर्क दूयात्लोव मेस रूम में आया। जब उसे बताया गया कि हमें मेजर से कोई शिकायत नहीं है तो वह मेजर के पास लौट गया।

"ओह ! उन्हें शिकायत नहीं है !" मेजर ने कुछ धीमे स्वर में कहा। उसे यह सुनकर खुशी हुई थी। "ख़ैर, कोई बात नहीं, उन लोगों को यहाँ ले आओ।"

हम लोग बाहर आ गए। मुझे लगा कि हम सब झेंप गये थे। हम सब पर मनहूसियत छाई थी।

मेजर ने हम लोगों पर कृपालु दृष्टि डालकर कोमल लेकिन तीव्र स्वर में कहा, "आह, प्रोकोफ़ीव, योल्किन भी हैं और अल्माज़ोव तुम भी हो, म- स्की भी है। एक तरफ़ क़तार में खड़े हो जाओ। अच्छा दूयात्लोव इन लोगों की एक फ़ेहरिस्त बनाओ। जो लोग सन्तुष्ट हैं, उनका नाम एक फ़ेहरिस्त में रखो और जो असन्तुष्ट हैं उनका नाम दूसरी फ़ेहरिस्त में रखो। देखना कोई छूट न जाए। फिर सारे काग़ज़ मेरे पास ले आओ। मैं तुम सब लोगों को हिरासत में लेकर बन्द कर दूंगा। बद-माश कहीं के !

इस धमकी का फौरन असर पड़ा।

"हम सन्तुष्ट हैं" क़ैदियों में से एक क्षुब्ध, हिचकिचाहट-भरी आवाज़ सुनाई दी।

"अच्छा तो तुम सन्तुष्ट हो ? कौन लोग सन्तुष्ट हैं ? ज़रा वे आगे आ जाएँ।"

"हम सन्तुष्ट हैं। हम सन्तुष्ट हैं", कई आवाजें सुनाई दीं।

"तुम सन्तुष्ट हो ? तुम्हें गुमराह किया गया था ? इसका मतलब है कि तुम्हें भड़काने वाले कुछ सरगना थे ? शरारती लोग ? उनकी भाफ़त आएगी।"

"हे ईश्वर यह क्या हो रहा है ?" भीड़ में से एक आवाज़ आई।

"यह किसकी आवाज़ थी ?" मेजर ने उस ओर बढ़ते हुए कहा जहाँ से आवाज़ आई थी, "तुम थे रास्तोगुंयेव ? चलो गारदघर में!"

रास्तोगुंयेव जो लम्बा और फूले हुए गालों वाला नौजवान था, क़तार में से निकलकर धीमे क़दमों से गारदघर की ओर बढ़ा। दर-असल वह नहीं बोला था लेकिन चूँकि उसके सिर पर यह ज़िम्मेदारी डाल दी गई थी इसलिए उसने विरोध न किया।

"तुम बहुत मोटे हो गए हो! यही असली वजह है!" मेजर पीछे से गुर्राया, "ज़रा इसकी थूथनी तो देखना! मैं तुम सब लोगों का पता चलाऊँगा। जो सन्तुष्ट हैं वे ज़रा सामने आ जाएँ!"

"हम सन्तुष्ट हैं योर ऑनर" बीसियों मलिन आवाजें सुनाई दीं। लेकिन बाक़ी के लोगों की ख़ामोशी में ज़िद थी, और साफ़ ज़ाहिर था, कि मेजर भी यही चाहता था। मामले को फ़ौरन निपटा देने में ही मेजर का फ़ायदा था।

"अच्छा तो तुम सब सन्तुष्ट हो!" मेजर ने जल्दबाज़ी से कहा। "यह मुझे दीखता ही था। मैं यह जानता था। ज़रूर तुम्हें भड़काने वाले कोई लोग हैं। हम उनका पता कर लेंगे। हम मामले की और भी पूरी तरह जाँच करेंगे।" उसने दूयात्लोव से कहा। "लेकिन यह काम का वक़्त है। नगाड़ा बजवा दो!"

काम के वक्त हाजरी पर मेजर खुद मौजूद था। क़ैदी ख़ामोश और उदास क़दमों से मार्च कर रहे थे। वे ख़ुश थे कि वे आख़िर मेजर की नज़रों से ओझल हो सकेंगे। बाद में गारदघर में जाकर मेजर अगुओं से निपटा, हालाँकि उसने ज्यादा सख़्ती नहीं दिखाई। वह जल्द से सारा

मामला निपटा देना चाहता था। सुना गया कि एक क़ैदी ने माफ़ी माँगी और उसे फ़ौरन माफ़ कर दिया गया। ज़ाहिर था कि मेजर के होश-हवास उड़े हुए थे और शायद वह कुछ डरा हुआ भी था। अधिकारियों के विरुद्ध शिकायत होना काफ़ी नाजुक बात होती है। हालाँकि क़ैदियों के इस क़दम को शिकायत नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि उच्च अधिकारियों के बजाय ख़ुद मेजर से शिकायत की गई थी, फिर भी यह सब मेजर की नज़रों में ठीक बात नहीं थी और घबराने वाली चीज़ थी। मेजर इसलिए भी सकपका गया था क्योंकि सब लोग इसमें शामिल थे। तथाकथित अगुओं को अगले ही दिन छोड़ दिया गया और क़ैदियों को पहले से बेहतर ख़ूराक दी जाने लगी, कुछ दिनों के लिए ही सही। मेजर अक्सर मुआइने के लिए जेल में आने लगा और ज़्यादा नुक़्स निकालने लगा। हमारा सार्जेन्ट अभी भी खोया-खोया घूमता था, लगता था कि शिकायत की घटना से उसे जो आघात लगा था अभी तक उसका असर बाक़ी था। क़ैदियों में तो बहुत दिनों तक अशान्ति रही थी; उनकी उत्तेजना तो कम हो गई थी, लेकिन न जाने क्यों वे परेशान और दुःखी थे। कुछ के दिलों पर तो गहरा आघात लगा था। कुछ उस मनहूस घटना के ज़िक्र को ही बड़बड़ा कर टाल देते थे। कुछ ऐसे थे जिन्हें इस बात की सख़्त शर्मिन्दगी थी कि शिकायत की बात उनके दिमाग़ में आई ही क्यों।

कभी कोई कह उठता, "उपदेश देना आसान है, करना बहुत मुश्किल है।"

"तमाशा चाहोगे तो उसकी क़ीमत भी अदा करनी पड़ेगी।"

"भई म्याऊँ के ठौर को पकड़ना चूहों के बस की बात नहीं है।"

"बिना डंडे की मार के हमारे जैसे लोगों को अक़्ल नहीं आती। ग़नीमत है कि हम सबको कोड़े नहीं लगे।"

"भविष्य में हमारी ज़बान ज़रा कम खुलेगी," कोई ग़ुस्से में कह बैठता।

"भला तुम कौन हो ? उस्ताद हो ?"

"जो भी हो, मैं कोई बुरी बात नहीं सिखा रहा ।"

"लेकिन तुम्हें किसने सबक़ देने के लिए कहा है ?"

"मैं अभी तक मर्द रहा हूँ और तुम ?"

"तुम कुत्ते के बदन से झड़े पिस्सू हो ।"

"वह तो तुम हो ।"

"ख़ुदा के लिए चुप रहो ! यह झगड़ा बन्द करो !" सब चिल्लाये ।"

शिकायत के दिन शाम को काम से लौटते वक्त मैं पेत्रोव को बैरकों के पीछे मिला । वह भी मेरी तलाश में था । मेरे पास आकर वह अस्फुट स्वर में बड़बड़ाया और फिर ख़ामोशी से मेरी बगल में खड़ा हो गया । सुबह की घटना अभी भी मेरे दिमाग़ पर छाई थी और मुझे उम्मीद थी कि पेत्रोव उन बातों को समझा देगा जो अभी तक मेरे दिमाग़ में साफ़ नहीं थीं ।

मैंने कहा, "पेत्रोव, तुम और तुम्हारे दोस्त हम लोगों से नाराज़ हैं न ?"

"कौन नाराज़ है ?" उसने चौंक कर पूछा ।

"हम भद्र लोगों से क्या क़ैदी नाराज़ नहीं हैं ?"

"किसलिए ?"

"क्योंकि हम लोगों ने सब का साथ नहीं दिया था ।"

"लेकिन भला आप लोगों को क्या शिकायत हो सकती थी ? आप तो अपना खाना ख़ुद पकवाते हैं न ?" वह असमंजस में पड़ गया ।

"या ख़ुदा ! लेकिन तुम लोगों में से भी तो कुछ अपना खाना पकवाते हैं न ! तुम अच्छी तरह जानते हो कि हमें भी तुम्हारे साथियों की हैसियत से तुम्हारे साथ शामिल होना चाहिए था ।"

"आप—हमारे साथी हैं ?" उसे सचमुच ताज्जुब हो रहा था ।

मैंने उसकी तरफ़ देखा । मैं क्या कहना चाहता था, यह उसकी

समझ में ही न आया। लेकिन मैं उसके विचारों को भाँप गया था। बहुत दिनों से जो सवाल मुझे परेशान करता आया था, उसका जवाब अचानक आज मुझे मिल गया था। जिस बात का मुझे धुंधला-सा आभास था, वह मेरे सामने स्पष्ट रूप में आ गई। मैं चाहे किसी भी श्रेणी का क़ैदी क्यों न होऊँ, चाहे जेल में एक दिन के लिए रहूँ या हमेशा के लिए रहूँ, चाहे मैं स्पैशल डिवीज़न में ही क्यों न रहूँ, फिर भी साधारण क़ैदी मुझे अपना साथी नहीं समझेंगे। लेकिन उस वक्त पेत्रोव के चेहरे पर जो भाव प्रकट हुआ था, उसकी याद अभी भी मेरे मन में ताज़ा है। उसकी इस बात में बेहद सादगी और परेशानी थी, "आप—हमारे साथी हैं ?" मैंने उसकी आवाज़ में व्यंग्य, कटुता या ताना खोजने की कोशिश की लेकिन उसका मुझे कोई चिन्ह नहीं मिला। मैं उनका साथी नहीं था—बस सीधी-सादी बात थी। वह जैसे कह रहा था, 'तुम अपने रास्ते जाओ और हम अपने रास्ते जाएँ। हमारी ज़िन्दगी तुम्हारी ज़िन्दगी से अलग है।'

मेरा ख्याल था कि उस बदनसीब शिकायत के बाद क़ैदी हमें बहुत सताएँगे, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं हुई। उन्होंने रत्तीभर क्षोभ या दुर्भावना का परिचय नहीं दिया। वे पहले की तरह ही हमें फटकारते रहे, उससे ज्यादा नहीं। लेकिन मैं यहाँ खासतौर पर यह बताना चाहता हूँ कि वे अपने उन साथियों से भी बिल्कुल नाराज़ नहीं थे, जिन्होंने शिकायत में हिस्सा नहीं लिया था या जो मेस की बैरक में रह गए थे और जिन्होंने मेजर के सामने सबसे पहले कहा था कि वे सन्तुष्ट हैं। इस बात का तो कभी ज़िक्र भी नहीं होता था। यह सब मेरी समझ से बाहर था।

जेल के साथी

मेरे लिए ख़ासतौर पर शुरू के दिनों में अपने जैसे भद्र लोगों के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। लेकिन जेल के तीन भद्र लोगों में से (अकिम अकीमिच, भेदिये आ-व और अपने बाप का क़त्ल करने वाला) मैं सिर्फ़ अकिम अकीमिच से ही मिलता-जुलता और बातें करता था। निराशा और अतीव नीरसता के क्षणों में जब कोई ऐसा नहीं होता था जिसके साथ बात की जा सके, मैं उसके पास जाया करता था। लेकिन मेरा ख्याल है कि अकिम अकीमिच अपने ढंग का एक निराला आदमी था। वह तटस्थ लोगों की श्रेणी में था। जेल में शायद ही कोई ऐसा क़ैदी था जो पूरी तरह से तटस्थ हो, न ही कोई ऐसा आदमी था जिसके लिए क़ैद और आज़ादी बराबर थी। लेकिन सिर्फ़ अकिम अकीमिच ही एक अपवाद था। वह इस तरह से जेल में बस गया था जैसे उसे सारी ज़िन्दगी ही जेल में गुज़ारनी हो। गद्दे, तकियों से लेकर बर्तनों तक उसकी हर चीज़ में एक स्थायीपन का आभास था। लगता था, सब चीज़ें हमेशा के लिए क़रीने से सजाकर रखी गई हैं। उसे अभी जेल में बहुत से साल काटने थे फिर भी उसने कभी अपनी रिहाई का सपना देखा हो, इसमें मुझे शक था। लेकिन उसने सहज प्रवृत्ति के कारण नहीं बल्कि दास्यभाव के कारण यथार्थ से समझौता किया था। वह बड़े अच्छे स्वभाव का आदमी था। उसने नेक सलाह देकर मेरी बहुत मदद की थी और मेरे कई काम भी किये थे। शुरू में तो वह मुझे बहुत बोर करता था, जिससे मेरी कोफ़्त और भी बढ़ गई थी। लेकिन मैं इसीलिए तो उससे बात करता था, ताकि मेरी ऊब मिट सके। किसी इन्सान के मुँह से दो शब्द सुनने के लिए मेरी आत्मा तड़प उठती थी, चाहे वे शब्द कितने ही कटु, द्वेषपूर्ण क्यों न हों, चाहे हम मिलकर अपने ही भाग्य को क्यों न कोसें। लेकिन वह खामोशी से अपनी लालटेनें चिपकाता

रहता था या बताता था कि अमुक साल में उसकी रैजिमैन्ट का मुआइना हुआ था, डिवीजन का कमांडर कौन था, कमांडर का नाम और वंशनाम क्या था, मुआइने के बारे में उसकी राय क्या थी। किस तरह से फ़ायरिंग के सिगनल तब्दील हो गये। ये सारी बातें वह शालीन और एकरस स्वर में बताता था, जैसे पानी बूंद-बूंद चू रहा हो। जब उसने बताया कि कॉकेशस की किसी लड़ाई में उसे तलवार पर लगाने के लिए सेंट अन्ना का तमग़ा मिला था, तब भी उसकी आवाज़ में कोई फ़र्क नहीं आया, सिर्फ़ आवाज की गहराई और शालीनता और बढ़ गई। सेंट अन्ना के तमग़े का ज़िक्र करते वक्त उसने आवाज़ और भी धीमी कर ली और बड़ी संजीदगी से तीन मिनट तक ख़ामोश रहा। पहले बरस कई ऐसे मूर्खतापूर्ण क्षण आए जबकि मैं अचानक और अकारण ही अकिम अकीमिच से नफ़रत करने लगा और मन ही मन अपने भाग्य को कोसने लगा, जिसने उसे तख्ते पर मेरा पड़ोसी बनाया था। एक घण्टे में ही मेरे दिल में इस बात के लिए अफ़सोस पैदा हो जाता था, लेकिन ये बातें सिर्फ़ पहले बरस ही हुईं। धीरे-धीरे मैं अकिम अकीमिच की बातों का पूरी तरह से आदि हो गया और मुझे अपनी पहले की बेवकूफी पर शर्म आने लगी। जहाँ तक मुझे याद है हमारा कभी आपस में झगड़ा नहीं हुआ।

इन तीन रूसियों के अलावा मेरी सजा के दौरान आठ और भद्र-लोग जेल में आ गए थे। उनमें से कुछ के साथ मेरी घनिष्ठता हो गई थी। उनमें अच्छे से अच्छे आदमी भी रुग्ण रूप से चिड़चिड़े, असहिष्णु और असामाजिक थे। दो से तो मेरी बोलचाल भी बन्द हो गई। उनमें से सिर्फ तीन सुसंस्कृत आदमी थे। ब, म- स्की और ज- की[1] जो कभी गणित का प्रोफेसर रह चुका था। वह नेक और झक्की बूढ़ा था।

---

१. जोजेफ़ जोकोवस्की, जो इतिहास और विज्ञान का अध्यापक था। १८४८ के वार्सा आन्दोलन में भाग लेने के लिए उसे फांसी की सजा मिली थी, जो बाद में दस बरस की सख्त क़ैद में बदल दी गई। १८५१ में ओमस्क की जेल में उसकी मत्यु हुई।

पढ़ा-लिखा होने के बावजूद वह संकीर्ण विचारों का था। म- स्की और ब- बिल्कुल अलग क़िस्म के लोग थे। शुरू से ही म- स्की से मेरी दोस्ती हो गई। हम दोनों में कभी झगड़ा नहीं हुआ, हालाँकि हम दोनों के सम्बन्ध कभी गहरे नहीं हो पाये। वह बहुत कटु और शक्की स्वभाव का था, लेकिन उसे अपने ऊपर आश्चर्यजनक संयम भी था। उसकी यही बात मुझे नापसन्द थी। न जाने क्यों मुझे लगता था कि वह अपने दिल की बात कभी किसी से नहीं कह सकता। शायद यह मेरी ग़लती थी। वह नेक और दृढ़ चरित्र व्यक्ति था। उसके असाधारण और यहाँ तक कि जेजुअटों जैसे दक्ष व्यवहार से उसकी अनास्था जाहिर होती थी, फिर भी इस अनास्था और अडिग विश्वासों और उम्मीदों के संघर्ष को महसूस करने के लिए उसके पास संवेदनशील हृदय था। सांसारिक सूझ-बूझ के बावजूद भी उसकी ब- और त- वस्की से पक्की दुश्मनी थी। ब- तपेदिक का मरीज था, बहुत ही चिड़चिड़ा और बेचैन तबियत का, लेकिन स्वभाव से नेक और सहृदय आदमी था। उसका चिड़चिड़ापन मनमानेपन और असहिष्णुता की हद तक पहुँच गया था। मुझे उसकी आदतें बर्दाश्त नहीं हुईं। आख़िरकार मैंने उससे सारे संबंध तोड़ लिए। फिर भी मैं उसे पसन्द करता रहा। उधर म- स्की से मेरा कभी झगड़ा नहीं हुआ था, हालांकि मैं उसे नापसंद करता था। जब मैंने ब- से संबंध तोड़े तो मुझे त- वस्की से भी सम्बन्ध तोड़ने पड़े। यह वह नौजवान था, जिसका ज़िक्र मैं पिछले परिच्छेद में कर चुका हूँ। मुझे इस बात से सख़्त सदमा पहुँचा। बहुत शिक्षित न होते हुए भी वह अच्छे स्वभाव का और बहादुर नौजवान था। लेकिन बात यह थी कि वह ब- को इतना ज्यादा चाहता था और इज्ज़त करता था कि वह ब- से झगड़ने वाले हर आदमी को अपना व्यक्तिगत दुश्मन मानता था। कुछ दिनों बाद, म- स्की से भी इसी बात पर उसके सम्बन्ध ख़त्म हो गए, हालांकि इसमें उसे काफी तक़लीफ पहुँची। लेकिन सबके सब रुग्ण आत्मा वाले, ईर्ष्यालु, चिड़चिड़े और शक्की तबियत के थे।

यह स्वाभाविक ही था। उनकी परिस्थितियाँ हम लोगों से भी अधिक असह्य थीं। वे सब अपने वतन से बहुत दूर थे, कुछ को दस-बारह बरस की क़ैद हुई थी और सबसे बड़ी बात यह थी कि अपने आस-पास के सभी लोगों के खिलाफ़ उनके मन में नफ़रत थी, क्योंकि उन्हें सब में वहशत ही वशहत नज़र आती थी और वे किसी में एक भी अच्छाई या इन्सानियत का कोई भी गुण देखने के लिए तैयार नहीं थे। इसका भी एक कारण था। परिस्थितियों ने और क़िस्मत ने उन्हें यह नैराश्यपूर्ण दृष्टिकोण दे दिया था। साफ़ ज़ाहिर था कि मनहूसियत से उनका दम घुटा जा रहा था। कॉकेशस वालों से, तातारों से और ईजिया फ़ोमिच से उनकी खूब पटती थी, लेकिन दूसरों से उन्हें सख्त नफ़रत थी और उनसे वे दूर-दूर रहते थे। सिर्फ़ स्तारोदूब्ये का धार्मिक बूढ़ा उनके आदर का पात्र बन पाया था। ताज्जुब की बात है कि मेरी क़ैद के अर्से में एक भी क़ैदी ने उनकी ज़ात, धार्मिक विश्वासों और विचारों की नुक्ताचीनी नहीं की, जैसा कि हमारे आम लोग किया करते हैं। वे सिर्फ़ विदेशियों और जर्मनों को ही बख्शते हैं। यहाँ तक कि जर्मनों से बात करते वक्त भी वे व्यंग्य की सीमा से शायद ही कभी आगे बढ़ते हैं। आम लोगों की नज़रों में जर्मन एक मज़ाक का विषय है। क़ैदी विदेशियों से इज्ज़त से पेश आते थे, हम लोगों से कहीं ज़्यादा विदेशियों की इज्ज़त की जाती थी। वे उनसे एकदम अलग-अलग रहते थे हालाँकि विदेशियों को यह बात कभी पसन्द नहीं आती थी। लेकिन मैं तो त- वस्की का ज़िक्र कर रहा था। वह ब- को कंधे पर लाद कर जेल तक लाया था, क्योंकि ब- कमज़ोर और बीमार था। वह आधे दिन से ज़्यादा मार्च नहीं कर सकता था। पहले इन लोगों को उ- गोरस्क में भेजा गया था जहाँ उन्हें इस जेल की अपेक्षा कहीं ज़्यादा सुविधाएँ प्राप्त थीं। लेकिन उन्होंने एक दूसरे शहर के क़ैदियों से पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया। हालांकि इसके पीछे कोई षड्यन्त्र नहीं था, फिर भी अधिकारियों ने उन्हें हमारी जेल में भेजना ज़्यादा मुनासिब समझा, ताकि उनके ऊपर ज़्यादा

कड़ी निगरानी रखी जा सके। तीसरा आदमी ज- स्की था। उनके आने से पहले सिर्फ़ म- स्की ही एकमात्र कुलीन क़ैदी था। अपनी क़ैद के पहले बरस उसे अकेलापन कितना अखरा होगा।

ज- स्की बूढ़ा था और हर वक्त प्रार्थना करता रहता था। हमारे यहाँ सारे राजनैतिक क़ैदी नौजवान थे। सिर्फ़ ज- स्की पचास से ऊपर था। वह ईमानदार था लेकिन कुछ अजब-सा था। उसके साथी ब-और त- वस्की उसे नापसन्द करते थे और उससे बहुत कम बातें करते थे। उसे अड़ियल और झगड़ालू बताते थे। उनकी बात कहाँ तक सच थी, यह मैं नहीं जानता। जेल में या ऐसी जगहों में जहाँ लोगों को उनकी मर्जी के खिलाफ़ बन्द कर दिया जाता है, लड़ाई-झगड़े और नफ़रत बहुत जल्दी पनपती है। आज़ाद वातावरण में ऐसी चीजें नहीं होतीं। इसके बहुत से कारण हैं। लेकिन ज- स्की सचमुच संकीर्ण विचारों का और बुरे स्वभाव का आदमी था। अपने बाक़ी साथियों से भी उसकी नहीं पटती थी। मेरा उससे न कभी झगड़ा हुआ था न ख़ास दोस्ती ही थी। मेरा ख्याल है कि उसे अपने प्रिय विषय गणित का बहुत गहरा ज्ञान था। टूटी-फूटी रूसी भाषा में उसने कई बार ब्रह्मांड की नई प्रणाली के बारे में बताया था, जिसकी उसने ईजाद की थी। मुझे पता चला कि एक बार उसने इस बारे में एक लेख भी छपवाया था, लेकिन उसके विद्वान साथियों ने उसका मजाक उड़ाया था। मेरा ख्याल है कि उसके दिमाग़ में कोई ख़लल था। वह कई दिनों तक घुटनों के बल बैठा प्रार्थना करता रहता था, इस बात ने उसे सब क़ैदियों के आदर का पात्र बना दिया था। मरने तक यह आदर बना रहा। लम्बी और गम्भीर बीमारी के बाद मेरी आँखों के सामने उसकी मौत हुई। जेल में आने के दिन ही मेजर से उसकी जो मुठभेड़ हुई थी, उससे क़ैदी उसकी बहुत इज्ज़त करने लगे थे। तीनों जनों की लम्बी दाढ़ियाँ थीं, क्योंकि वे उ- गोरस्क से लम्बा रास्ता तय करके आए थे। रास्ते में उन्हें हजामत बनवाने का वक्त नहीं मिला था। जेल के अनुशासन की

खुल्लमखुल्ला ऐसी तौहीन देखकर मेजर ग़ुस्से से पागल हो उठा था। लेकिन क़ैदियों ने जानबूझकर यह नहीं किया था।

"ज़रा इनकी सूरत देखो! ये आवारागर्द और लुटेरे नज़र आते हैं" मेजर चिल्लाया।

"हम आवारागर्द नहीं, राजनैतिक क़ैदी हैं।"

"क-या-या? किसने जवाब दिया? मेरे सामने? इसे फ़ौरन गारद-घर ले जाकर सौ बेंत लगाओ!" मेजर ग़ुस्से में बोला।

बूढ़े ने चुपचाप बेंतों की मार सही। उसने अपनी हथेली में दाँत गड़ाकर बिना हिले-डुले या चिल्लाये दर्द को बर्दाश्त किया। इधर ब- और त-बस्की भी जेल में आ गये थे। म-स्की जो उनका इन्तज़ार कर रहा था, उन्हें देखते ही उनके गले से इस तरह लिपट गया जैसे उनसे पहली बार मिल रहा हो। उन्होंने उत्तेजित स्वर में बताया कि ज़-स्की के साथ कैसा सलूक किया गया था।

म-स्की ने बाद में मुझे बताया, "मैं ग़ुस्से से पागल हो उठा। मेरा बदन इस तरह काँप रहा था जैसे मुझे तेज़ बुख़ार चढ़ा हो। मैं फाटक पर खड़ा होकर ज़-स्की का इन्तज़ार करने लगा।" गारदघर से निकल कर वह उधर ही आने वाला था। अचानक बगल वाला फाटक खुला और बूढ़ा भीतर दाखिल हुआ। उसके रक्तहीन पीले ओंठ काँप रहे थे। यह सुनकर कि एक कुलीन आदमी को बेंत पड़ रहे हैं, क़ैदियों की भीड़ जमा हो गई थी। उनकी तरफ़ नज़र उठाये बग़ैर बूढ़ा सीधा अपनी बैरक में पहुँचा और अपनी जगह पर घुटने टेक कर प्रार्थना करने में लीन हो गया। क़ैदियों को इस पर ताज्जुब भी हुआ और उनके हृदय में समवेदना की टीस उठी। जब मैंने उस सफ़ेद बालों वाले बूढ़े को, जो अपना वतन, अपनी बीवी और बच्चों को छोड़कर जेल में आया था, घुटनों के बल बैठकर प्रार्थना करते देखा, तो मैं फ़ौरन भागकर बैरकों के पीछे चला गया जहाँ दो घंटे तक मैं खोया-सा रहा। तभी से क़ैदी ज-स्की की इज्ज़त करने लगे थे और हमेशा उसके साथ अदब

से पेश आते थे। उन्हें इस बात ने बहुत प्रभावित किया था कि ज़-स्की ने खामोशी से बेंतों की मार बर्दाश्त की थी।

हक़ीक़त यह है कि साइबेरिया की जेलों में कुलीन क़ैदियों के प्रति चाहे वे पोलिश हों या रूसी, अधिकारियों के व्यवहार का अन्दाज़ा इस घटना से नहीं लगाना चाहिए। इससे तो सिर्फ़ यही ज़ाहिर होता है कि अगर कभी किसी क़ैदी का ऐसे वहशी अफ़सर से पाला पड़ जाए तो उसकी कैसी भयंकर दुर्दशा होती है। दूसरी तरफ़ यह भी मानना पड़ेगा कि साइबेरिया के उच्चतम अधिकारी, जिनके व्यवहार और मिज़ाज पर छोटे अफ़सरों का व्यवहार निर्भर करता है, कुलीन क़ैदियों के प्रति इन्साफ़ दिखाते हैं, यहाँ तक कि कई बार वे उनके प्रति ढील भी दिखाते हैं। इसके कारण स्पष्ट हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अधिकारी लोग खुद कुलीन खानदानों के होते हैं। कई बार ऐसा भी हुआ है कि कुलीन क़ैदियों ने मार खाने से इन्कार कर दिया है, उन्होंने मारने वालों पर हमला कर दिया है, जिसके ख़तरनाक नतीजे निकले हैं। तीसरा और सबसे बड़ा कारण यह है कि पैंतीस बरस पहले अचानक साइबेरिया में कुलीन क़ैदियों की बाढ़-सी आ गई थी। इन लोगों ने तीस बरसों में सारी जगह अपनी योग्यता का प्रमाण दिया था और सबको अपनी इज़्ज़त करने पर मजबूर कर दिया था। मेरे ज़माने में अपनी इस पुरानी आदत के कारण अफ़सर एक ख़ास वर्ग के पढ़े-लिखे क़ैदियों के प्रति वह निर्मम सलूक नहीं कर सकते थे जो वे साधारण क़ैदियों से करते थे। बड़े अफ़सरों की देखा-देखी धीरे-धीरे छोटे अफ़सरों ने भी यही दृष्टि-कोण अपना लिया। लेकिन उनमें से कुछ हृदयहीन थे, और वे दबी ज़बान से बड़े अफ़सरों की नुक़्ताचीनी भी करते थे। अगर उन्हें मनमानी करने का मौक़ा मिलता तो वे बहुत खुश होते। लेकिन उन्हें मनमानी करने की आज़ादी नहीं थी। ऐसा सोचने के मेरे पास पर्याप्त कारण थे और ये थे : जिस विभाग में मैं था, वह फ़ौजी कमांड के अन्तर्गत था, और यहाँ की जिन्दगी दूसरे विभागों की जिन्दगी से कहीं अधिक कठिन

थी (दूसरे विभाग थे कारखानों में काम करने वालों और खानों के मजदूरों के)। यहाँ की जिन्दगी न सिर्फ़ कुलीन क़ैदियों के लिए ही बल्कि साधारण क़ैदियों के लिए भी सख्त थी। हम लोगों को फ़ौजी इन्तज़ाम की देखरेख में क़िले के भीतर बन्द रखा गया था। यहाँ के क़ायदे-क़ानून रूस की सभी क़ैदी बटालियनों जैसे थे। फ़ौजी कमान्ड के क़ायदे और अनुशासन बहुत कड़े थे। हम लोगों को हर वक्त बेड़ियाँ पहनाई जाती थीं, हर वक्त हमारे ऊपर कड़ा पहरा रहता था और हमारी बैरकों के बाहर ताले लगे रहते थे। बाक़ी के दोनों विभागों में इतनी कड़ी पाबंदियाँ नहीं थीं। कम से कम क़ैदी तो यही कहते थे और उनमें से कुछ तजुर्बे से भी यह जानते थे। उन्हें अगर खानों के विभाग में भेज दिया जाता तो उन्हें बहुत खुशी होती। सरकारी दृष्टि से यहाँ की ज़िन्दगी सबसे ज्यादा सख्त थी। दरअसल वे इस विभाग में जाने के सपने भी देखते थे। क़ैदी बटालियनों का ज़िक्र करते वक्त उन पर आतंक छा जाता था। वे कहते थे कि रूस भर में क़िले में रखी जाने वाली क़ैदी बटालियनों से बदतर कोई जगह नहीं है, यहाँ तक कि साइबेरिया की जिन्दगी भी उसके सामने जन्नत है। हमारी फ़ौजी बटालियन के वातावरण में भी जो सीधे गवर्नर जनरल के मातहत थी, और जहाँ दुर्भावना या कर्त्तव्यपरायणता के उत्साह में लोग फ़ौरन इस बात की शिकायत अधिकारियों तक पहुँचा देते थे कि यहाँ के कमांडर विश्वास के क़ाबिल नहीं हैं और वे कुछ क़ैदियों को ढील देते हैं, अगर कुलीन और पढ़े-लिखे क़ैदियों के साथ साधारण क़ैदियों से अलग सलूक किया जाता था, तो निश्चय ही दूसरे विभागों में उनके साथ इससे भी बेहतर सलूक किया जाता होगा। इसीलिए मैं कहता हूँ कि मैं अपनी परिस्थितियों से सारे साइबेरिया को जाँच सकता था। इस सम्बन्ध में मुझे दूसरे विभागों से, जो भी किस्से या अफ़वाहें सुनने को मिलीं उनसे मेरी धारणाएँ और भी पुष्ट हो गईं। इसमें कोई शक नहीं कि हमारी जेल में कुलीन क़ैदियों का ज्यादा लिहाज़ किया जाता था। काम या रहन-सहन में तो पूरी सख्ती

बरती जाती थी—हम भी वही काम करते थे, उसी क़िस्म की बेड़ियाँ पहनते थे जैसी आम क़ैदियों को पहनाई जाती थीं। आम क़ैदियों की तरह हमें भी ताले में बन्द रखा जाता था, हर चीज़ और क़ैदियों जैसी ही थी, और ऐसे मामलों में हमारे लिए लिहाज़ दिखाया जाना बिल्कुल नामुमकिन था। मैं पूरी तरह जानता हूँ कि हाल ही में हमारे यहाँ इतने भेदिये निकले हैं, इतनी साजिशें हुई हैं कि सचमुच अधिकारियों को भेदियों से डर लगने लगा था। ऐसे वक़्त में अगर अधिकारियों को यह ख़बर मिलती कि कुछ क़ैदियों के साथ लिहाज़ बरता जा रहा है तो उससे ज़्यादा भयंकर बात और कौन-सी हो सकती थी ? सब लोगों के मन में दहशत छाई थी और हम लोग भी मामूली कैदियों की तरह ही रहते थ। सिर्फ़ एक ही फ़र्क था। वह यह कि हमें मार की सज़ा नहीं मिलती थी। अगर हम कोई जुर्म करते तो हमें भी बिना किसी लिहाज़ के मार पड़ती क्योंकि क़ानून की नजर में सब क़ैदी बराबर थे, लेकिन बिना किसी स्पष्ट कारण के या किसी की सनक को संतुष्ट करने के लिए हमें मार नहीं पड़ सकती थी। आम क़ैदियों के साथ अक़सर यह दुर्व्यवहार होता था खास-तौर पर कुछ कमान्डेन्ट हर मौक़े पर अपनी हकूमत जतलाने के लिए क़ैदियों को पीटते थे। हमने सुना कि जब कमान्डेन्ट को ज़- स्की की पिटाई की बात मालूम हुई तो उसे मेजर पर बहुत गुस्सा आया। उसने मेजर को समझाया कि भविष्य में वह क़ैदियों पर हाथ न उठाये। सब लोगों ने यही कहा। हमने तो यहाँ तक सुना कि गवर्नर जनरल ने भी, जो मेजर को पसन्द करते थे और उसे एक क़ाबिल अफ़सर समझते थे, डाँटा, और यह डाँट पूरी तरह से निष्फल नहीं गई। मेजर म- स्की की ख़बर लेना चाहता था क्योंकि इस बात से मेजर की बदनामी फैली थी, लेकिन उसे अभी तक कोई मौक़ा नहीं मिल पाया था। जल्द ही सारे शहर को ज़- स्की की कहानी मालूम हो गई और सब लोग मेजर के खिलाफ़ हो गए। बहुत से लोगों ने उसे बुरा कहा, कुछ लोगों ने तो कठोर शब्द भी इस्तेमाल किए।

मेजर से हुई अपनी पहली मुलाक़ात की याद मुझे है । हम, यानी मैं और एक और कुलीन क़ैदी एक साथ जेल में आये थे । तोबोल्स्क में ही हमने मेजर के घृणित चरित्र के बारे में बहुत-सी बातें सुनी थीं । प्रवासी क़ैदियों ने, जो पच्चीस बरस की क़ैद काट चुके थे, हमारा स्वागत किया और हमारे प्रति हमदर्दी दिखाई । जितने दिन तक हम स्थानीय जेल में रहे, उन लोगों ने हमसे सम्पर्क बनाये रखा । उन्होंने हमें अपने भावी जेलर के प्रति खबरदार किया और वादा किया कि वे अपने जान-पहचान के लोगों की मार्फत हमें मेजर के ज़ुल्मों से बचाने का भरसक प्रयत्न करेंगे । गवर्नर जनरल की तीनों बेटियाँ अपने पिता से मिलने साइबेरिया आई थीं, हमारे प्रवासी मित्रों ने उन्हें भी खत लिखे थे और शायद उन लड़कियों ने हमारी सिफ़ारिश भी की थी । लेकिन गवर्नर जनरल के बस में क्या था ? उसने मेजर से सिर्फ़ इतना ही कहा होगा कि वह हम लोगों से ज़रा नरमी से पेश आए । मैं और मेरा साथी दोपहर के दो बजे के बाद जेल में पहुँचे थे । संतरी हमें फ़ौरन नए हाकिम के पास ले गए । हम बरामदे में खड़े मेजर का इन्तज़ार करते रहे । सार्जेन्टों को बुलाया गया था और जल्द ही वे मेजर के साथ आ पहुँचे । मेजर का सुर्ख़, सूजा हुआ दुर्भावनापूर्ण चेहरा देखते ही हमारे दिल बैठ गए । उसे देखकर मेरे दिमाग़ में मकड़े की तस्वीर आई जो जाले में फँसी मक्खी को निगलने वाला हो ।

"तुम्हारा नाम क्या है ?" उसने मेरे साथी से पूछा । वह हठात्, कर्कश और तेज आवाज में बोल रहा था शायद, हमें प्रभावित करने के लिए । मेरे साथी ने अपना नाम बताया ।

"और तुम्हारा नाम ?" उसने चश्मे में से मुझे घूरते हुए पूछा ।

मैंने अपना नाम बताया ।

"सार्जेन्ट ! इन्हें जेल में ले जाओ । देखना इनके सिर की हजामत सिविल सैक्शन के क़ैदियों जैसी हो ! इनकी बेड़ियाँ कल बदली जाएँगी । तुम लोगों को ये कोट कहाँ से मिले?" मेजर ने हमारे लम्बे, भूरे ओवर-

कोटों को देखकर पूछा, जिनकी पीठों पर पीले रंग के दायरे बने थे। ये कोट हमें तोबोल्स्क में मिले थे, जिन्हें पहन कर हम मेजर के सामने हाज़िर हुए थे। "अच्छा, यह नई वर्दी होगी। मेरा ख्याल है सेंट पीटर्ज़-बर्ग से इसका हुक्म जारी हुआ होगा ?" उसने हमें पीठ घुमाने के लिए कहा। "इन लोगों के पास और कोई चीज़ भी है ?" उसने हमारे साथ आए संतरी से पूछा।

"इनके पास अपने कपड़े हैं, योर ऑनर।" संतरी चौंक कर अटेन्शन खड़ा हो गया। सब मेजर के स्वभाव से अच्छी तरह वाकिफ़ थे और उससे डरते थे।

"इनके कपड़े ले लो, इन्हें सिर्फ़ सफ़ेद बनियायनें रखने की इजाज़त मिलेगी। अगर इनके पास रंगीन बनियायनें हों तो उन्हें भी लेकर नीलाम कर दो और एक रसीद तैयार कर दो। क़ैदियों को जायदाद रखने का हुक्म नहीं है।" मेजर कठोर दृष्टि से हमारी तरफ़ घूरता जा रहा था। "तुम लोग तमीज़ से पेश आना। कहीं मुझे तुम्हारी शिकायत न सुनने को मिले वरना कोड़े पड़ेंगे। यहाँ ज़रा-सी बात पर भी बेंतों की मार पड़ती है।"

इस स्वागत के बाद शाम तक मेरी तबियत ख़राब रही। बाद में मैंने जो जेल में देखा उससे मेरे मन पर और भी बुरा असर पड़ा। लेकिन उसका ज़िक्र मैं पहले ही कर चुका हूँ।

मैंने अभी कहा है कि जेल-अधिकारियों में इतनी हिम्मत नहीं थी कि वे हमारा लिहाज करें या काम में हमें ढील दें। लेकिन एक बार उन्होंने हमारे साथ लिहाज़ बरतने की कोशिश की थी। तीन महीने तक 'ब' को और मुझे इंजीनियरिंग विभाग में क्लर्कों की हैसियत से काम करने दिया गया। लेकिन यह बात इंजीनियरों के दफ़्तर ने बिल्कुल गुप्त रखी। जिन लोगों को इस बात का पता भी था उन्होंने भी ऐसा ज़ाहिर किया जैसे उन्हें कुछ पता नहीं है। यह बात कमांडर ज-ब के वक़्त में हुई। लेफ़्टीनेन्ट कर्नल ज-ब सचमुच फ़रिश्ता था। वह हमारे

वक्त में सिर्फ़ छः महीने या उससे भी कम रहा था, लेकिन उसकी याद सबके दिलों में अभी तक ताज़ा थी। क़ैदी उसे पसन्द ही नहीं करते थे, बल्कि उसकी पूजा करते थे। इसका कारण क्या था, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन शुरू से ही उसने क़ैदियों के मन जीत लिए थे। "वह हमारा पिता है। वह पिता से भी अधिक दयालु है।" जब कमान्डेन्ट इंजीनियरिंग विभाग का अध्यक्ष था तो सब क़ैदी यही कहा करते थे। मेरे ख़्याल में वह काफ़ी धूर्त था। क़द छोटा था और चेहरे से छैलापन टपकता था लेकिन क़ैदियों को वह अपने बच्चों की तरह स्नेह करता था। ऐसा क्यों था, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन वह जब भी किसी क़ैदी से मिलता तो ज़रूर दोस्ती का एक शब्द कह कर, मुस्कराहट से या मज़ाक से उसका उत्साह बढ़ाता था। सबसे बड़ी बात यह थी कि उसके व्यवहार में अफ़सरों की-सी बू नहीं थी, न ही वह अपने ओहदे से नीचे उतर कर बात करता था। वह उनका सच्चे माने में दोस्त था। सच्ची जनवादिता के बावजूद कभी किसी क़ैदी ने उसके मुँह लगने की या उसकी बेइज़्ज़ती करने की कोशिश नहीं की। कमांडर को देखते ही क़ैदियों के चेहरे खिल उठते थे। वे अपने आप टोपी उतारकर मुस्कराने लगते थे। अगर कमान्डेन्ट किसी से बात करता था तो यह गौरव की बात समझी जाती थी। ऐसे लोकप्रिय व्यक्ति सचमुच संसार में होते हैं। वह बड़ा ही शानदार, शक्तिशाली और बाँका आदमी था। क़ैदी कहा करते थे, "यह आदमी बाज़ की तरह शानदार है।" लेकिन वह क़ैदियों की मुसीबतों को घटा नहीं सका, क्योंकि वह सिर्फ़ इंजीनियरों के दफ़्तर का अध्यक्ष था, जिसके तौर-तरीके पुराने थे और कई सालों से चले आये थे। ज़्यादा से ज़्यादा कमान्डेन्ट इतना कर सकता था कि अगर वह शाम को देखता कि क़ैदियों ने काम ख़त्म कर दिया है तो नगाड़ा बजने से पहले ही उन्हें छुट्टी दे देता। दरअसल जिस चीज़ ने उसे लोगों के स्नेह का पात्र बना दिया था, वह यह थी कि वह चिड़चिड़े मिजाज का नहीं था, न ही ज़रा-सी बात पर लोगों के नुक़्स

निकालता था । उसमें अफ़सरों की सी बददिमाग़ी नहीं थी । अगर उसके एक हज़ार रूबल खो जाते तो मुझे पूरा यक़ीन है कि पक्के से पक्का चोर भी उसकी रक़म उसे लौटा देता । मुझे इस बात का पूरा भरोसा है । हमारे क़ैदियों ने जब यह सुना कि हमारे बाज़ का घृणित मेजर से झगड़ा हुआ है तो वे कितने परेशान हुए थे ! यह झगड़ा मेजर के आने के एक महीने के भीतर ही हो गया था । कभी दोनों जने एक साथ फ़ौज में रह चुके थे, इसीलिए जब दोनों पुराने दोस्त मिले तो उस मौक़े पर शराब के ख़ूब दौर चले । लेकिन अचानक मामला ज़ोर से टूट गया और दोनों जानी दुश्मन बन गए । हम लोगों ने यहाँ तक सुना कि दोनों में घूंसे भी चल गए थे । हमारे मेजर के साथ ये सारी बातें मुमकिन थीं । जब क़ैदियों ने यह बात सुनी तो उनकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा । "भला ऐसे आदमी की आठ आँखों वाले मेजर से कैसे निभ सकती है ! वह बाज़ है और मेजर—" उन्होंने जिस शब्द का प्रयोग किया था वह शब्द यहाँ छापा नहीं जा सकता । क़ैदी यह जानने के लिए बहुत उत्सुक थे कि झगड़े में कौन जीता । अगर झगड़े की अफ़वाह झूठी साबित होती जो कि शायद थी, तो सचमुच हमारे क़ैदियों को निराशा होती । वे कहते, "हमारे कमांडेंट की जीत हुई है । वह है तो नाटा, लेकिन बड़ा तेज़ है । सुना है कि मेजर डर के मारे पलंग के नीचे छिप गया था ।" लेकिन जल्द ही कमांडेन्ट जेल से चला गया और क़ैदियों में उदासी छा गई । यह सच है कि इन्जीनियरिंग विभाग में हमारे जितने भी कमांडर आये, वे सब नेक लोग थे । तीन-चार कमांडर तो मेरे सामने भी आये थे । क़ैदी कहा करते थे, "वैसा आदमी कभी नहीं मिलेगा । वह बाज़ था ! हमारा रक्षक !" ज- व कुलीन क़ैदियों पर खास तौर से मेहरबान था और उसी ने मुझे और 'ब' को अपने दफ़्तर में काम पर लगाया था । उसके जाने के बाद भी हमारी स्थिति सरकारी तौर पर बरक़रार रही, क्योंकि इन्जीनियरों में कई लोग (खासतौर पर एक आदमी) हमसे हमदर्दी

रखते थे। हम वहाँ जाकर सरकारी काग़ज़ों की नक़लें तैयार किया करते थे, यहाँ तक कि हमारी लिखाई भी सुधरने लगी थी, अचानक सबसे ऊपर के अफ़सरों का हुक्म आया कि हमें फ़ौरन जेल की मशक्कत दी जाए। ज़रूर किसी ने अधिकारियों से शिकायत की थी। इस बात का एक अच्छा पहलू भी था, क्योंकि दफ़्तर के काम से हमें उकताहट होने लगी थी। इसके बाद मुझे और 'ब' को क़रीब दो वर्ष तक वर्कशापों में भेजा जाता रहा। हम अपनी भावी आशाओं और आस्थाओं के बारे में अक्सर बातचीत किया करते थे। वह नेक आदमी था, हालांकि उसके विचार विचित्र और अतिवादी थे। अक्सर ऐसा होता है कि प्रतिभाशाली और समझदार आदमी भी अपने असंगतिपूर्ण विचारों को नहीं छोड़ सकते, जिनकी ख़ातिर उन्हें बहुत तकलीफ़ें उठानी पड़ी हों। अगर मैं कोई एतराज़ उठाता था तो 'ब' को बहुत बुरा लगता था और वह मुझे जले-कटे जवाब देता था। शायद कई बातों में उसके विचार मेरी अपेक्षा ज़्यादा सही थे, लेकिन अन्त में हमारा रिश्ता टूट गया, जिससे मुझे बहुत अफ़सोस हुआ, क्योंकि हमने बहुत से दुःख एक साथ झेले थे।

ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते गए, म- स्की की निराशा और विषाद बढ़ता गया। उसकी यह मायूसी धीरे-धीरे उसे ख़त्म कर रही थी। शुरू में वह ज़्यादा बातें करता था और खुल कर अपनी भावनाओं को व्यक्त करता था। वह मेरे आने के दो वर्ष पहले से जेल में मौजूद था। पहले दो साल की घटनाओं में उसने काफ़ी दिलचस्पी ली थी, अगर मैं उसे उस अर्से की ख़बरें न सुनाता, जिन्हें वह उत्तेजित होकर सुना करता था, तो शायद उसे अपने आस-पास होने वाली किसी घटना की भी ख़बर न होती। लेकिन ज्यों-ज्यों वक्त गुज़रता गया, उसके भीतर की हर चीज़ बुझने लगी। चिन्गारियों पर राख की तह जम गई और उसका क्षोभ दिन-ब-दिन गहरा होता गया। वह क़ैदियों की तरफ़ देखकर कहता, "ये लोग शोहदे हैं।" उस वक्त तक मैं क़ैदियों को ज़्यादा नज़दीक से समझने लगा था, लेकिन म- स्की के विचार बदलना नामुम-

क़िन था। वह मेरी बातों को अनसुना कर देता था। कई बार वह अनमने ढंग से अगर रज़ामन्दी ज़ाहिर कर भी देता था तो अगले दिन फिर वही पुरानी बात दुहराता था, "ये लोग शोहदे हैं।" एक और अजब बात सुनिये। मैं और म-स्की फ्रेंच में बातचीत करते थे। हमारा इंजीनियर इंचार्ज न जाने क्यों हमें 'डाक्टर' कहा करता था। सिर्फ़ अपनी माँ की याद करते वक्त म-स्की में कुछ ज़िन्दादिली आती थी। उसने मुझे बताया, "मेरी माँ बूढ़ी और बीमार है। वह दुनिया में सबसे ज़्यादा मुझी से प्यार करती है, और मुझे यहाँ यह भी नहीं मालूम कि मेरी माँ ज़िन्दा है या मर गई है। जब बेचारी को पता चला कि मुझे फ़ौज में सज़ा मिली है तो उसे बहुत दुःख हुआ।" म-स्की कुलीन घराने का नहीं था, इसलिए उसे बेंतों की सज़ा से मुक्ति नहीं मिल सकती थी। उसे जब भी अपनी सज़ा की याद आती, वह दाँत भींच कर दूसरी ओर देखने लगता। अन्त में तो वह और भी ज़्यादा अकेला घूमने लगा था। एक दिन सुबह ग्यारह बजे के बाद ही कमान्डेन्ट ने उसे बुलवा भेजा, कमान्डेन्ट ख़ुशी से मुस्कराता हुआ उससे मिला और बोला:

"अच्छा, म-स्की, भला यह बताओ कि तुमने रात सपने में क्या देखा था!"

म-स्की ने बाद में हमें बताया, "कमान्डेन्ट की बात सुनकर मैं चौंक उठा था। मुझे लगा जैसे उसने मेरे सीने में छुरा भोंक दिया हो।"

उसने जवाब दिया, "मैंने सपने में देखा था कि मेरी माँ ने मुझे ख़त भेजा है।"

"नहीं, उससे भी बड़ी ख़ुशख़बरी मैं तुम्हें सुनाता हूँ। तुम्हें रिहा कर दिया गया है। तुम्हारी माँ ने तुम्हारे लिए अपील की थी, वह मंज़ूर हो गई है। यह रहा तुम्हारी माँ का ख़त और यह रहा तुम्हारी रिहाई का ऑर्डर। तुम फ़ौरन जेल से जा सकते हो।"

म-स्की जब लौटा तो उसका चेहरा पीला और सुन्न पड़ गया था। हमने उसे बधाई दी, उसने अपनी ठंडी और काँपती हथेलियों से हमारे

हाथ दबाये । दूसरे क़ैदियों ने भी उसे बधाई दी । उसकी खुशक़िस्मती से सभी को खुशी हो रही थी ।

उसे रिहाई के बाद साइबेरिया में बसने का हुक्म दिया गया था । वह हमारे शहर में ही बस गया और जल्द ही उसे अच्छी-सी नौकरी भी मिल गई । शुरू-शुरू में वह अक्सर हमसे मिलने आया करता था और बाहर की दुनिया की खबरें सुनाता था । उसे सबसे ज़्यादा राजनैतिक खबरों में दिलचस्पी थी ।

इन चार यानी म- स्की, त- वस्की, 'ब', और ज- स्की के अलावा दो और क़ैदी भी थे जो उम्र में बहुत छोटे थे और जिन्हें थोड़ी सज़ायें मिली थीं । ये लोग ज़्यादा पढ़े-लिखे तो नहीं थे, लेकिन नेक और ईमानदार थे । तीसरा, अ- च्चुकोवस्की अत्यन्त मामूली आदमी था, जिसकी तरफ़ कोई ध्यान नहीं देता था । मुझे उसका बुद्धूपन नापसन्द था । लेकिन चौथे क़ैदी ब- म से, जो बुज़ुर्ग था, हम सब लोग प्रभावित थे । मैं आज तक यह नहीं समझ सका कि ब- म की गिनती उन दूसरे लोगों में क्यों की जाती थी, वह खुद भी कहता था कि उसका उन लोगों से कोई ताल्लुक नहीं है । वह उजड्ड और फूहड़ आदमी था । उसका व्यवहार उस कुंजड़े जैसा था जो छोटी-छोटी बेइमानियों से अमीर बन गया हो । वह बेहद जाहिल था, अपने कारोबार के सिवा उसे दुनिया की किसी चीज़ में दिलचस्पी नहीं थी । वह रोग़नसाज था, लेकिन औसत रोग़नसाज़ों से कहीं ज़्यादा होशियार । अफ़सरों को जल्द ही उसकी क़ाबलियत का पता चल गया और शहर के सब लोग दीवारें और छतों पर रोग़न करवाने के लिए ब- म को बुलाने लगे । दो वर्ष में उसने क़रीब-क़रीब सब अफ़सरों के मकानों पर रोग़न कर दिया था । उसे अपने काम की मज़दूरी मिलती थी, इसलिए उसकी हालत बुरी नहीं थी । सबसे बड़ी बात तो यह थी कि कुछ क़ैदियों को उसका शागिर्द बनाकर काम सीखने के लिए उसके साथ भेजा जाता था । तीन शागिर्दों में से दो ने तो फ़ौरन काम सीख लिया था और वे अपने उस्ताद

के बराबर माहिर हो गए थे। हमारे मेजर ने भी, जो सरकारी मकान में रहता था, ब-म को अपने घर की दीवारें और छतें पेंट करने का हुक्म दिया था। ब-म ने यहाँ बहुत शानदार काम किया, इतनी मेहनत उसने गवर्नर के घर को पेंट करने मे भी नहीं की थी। मेजर का मकान इकमंज़िला था और बाहर से जर्जर हालत में था, लेकिन अब भीतर बहुत शानदार रोग़न हो गया था, जिससे मेजर को बहुत ख़ुशी हुई थी। मेजर बार-बार ख़ुशी से अपनी हथेलियाँ रगड़कर कहने लगा कि अब तो उसे ज़रूर शादी करनी पड़ेगी। वह बड़ी संजीदगी से कहता था कि अब उसके पास इतना अच्छा मकान है कि अब भी शादी न कराना बहुत भारी गुनाह होगा। वह ब-म से और उसकी मार्फ़त उसके शागिर्दों से भी बहुत ख़ुश हो गया। मेजर के घर की पुताई में पूरा एक महीना लगा था। इस अर्से में राजनैतिक क़ैदियों के प्रति मेजर का दृष्टिकोण एकदम बदल गया, और अब वह उनका संरक्षक भी बन गया। यहाँ तक कि उसने अचानक एक दिन ज़-स्की को बुलाकर कहा, "ज़-स्की, मैंने एक बार तुम्हारी बेइज्ज़ती की थी। मैं जानता हूँ। तुम्हें बिना किसी क़सूर के कोड़े लगवाये थे। मुझे अफ़सोस है। समझे? मैं कह रहा हूँ—मुझे अफ़सोस है।"

ज़-स्की ने जवाब दिया कि वह समझ गया है।

"लेकिन क्या तुम्हें एहसास हुआ है कि मैं, तुम्हारा अफ़सर, यह बात कह रहा हूँ? मैंने ख़ुद बुलाकर तुमसे माफ़ी माँगी है! क्या तुम इस बात के महत्व को समझते हो? आख़िर मेरे सामने तुम्हारी क्या हैसियत है? तुम एक क्षुद्र कीड़े हो, कीड़े से भी गये-गुज़रे हो, तुम एक क़ैदी हो। और ईश्वर की कृपा से मैं एक मेजर हूँ। क्या तुम्हारी समझ में यह बात आ सकती है?"

ज़-स्की ने जवाब दिया कि वह इस बात को समझ सकता है।

"और मैं तुमसे सुलह कर रहा हूँ। लेकिन क्या तुम इस बात को महसूस करते हो? पूरी तरह महसूस कर सकते हो? क्या तुम इसकी

क़ीमत आँक सकते हो ? इस बात को समझ भी सकते हो ? ज़रा सोच कर देखो । मैं—मैं एक मेजर हूँ……," वग़ैरह-वग़ैरह ।

ज-स्की ने खुद इस दृश्य का वर्णन किया था । इस झगड़ालू, शराबी और विक्षिप्त आदमी में भी मुझे इन्सानियत की झलक दिखाई दी । मेजर की शिक्षा-दीक्षा और मनोवृत्ति को देखते हुए सचमुच यह उसकी सहृदयता का प्रमाण था । हो सकता है कि उन्माद की अवस्था में उसने ये बातें की हों ।

लेकिन मेजर का सपना पूरा नहीं हुआ । उसने शादी नहीं की, हालांकि जब उसके मकान में रोगन हो गया था, तो उसने शादी करने का पक्का इरादा कर लिया था । बल्कि उस पर मुक़दमा चलाया गया और इस्तीफ़ा देने के लिए मजबूर किया गया । उसके पुराने गुनाहों का भी अदालत के सामने ज़िक्र हुआ । कभी वह शहर का मेयर रह चुका था । इस मुक़दमें से अचानक उस पर गाज गिर पड़ी । क़ैदियों की खुशी का कोई ठिकाना न था । उनके लिए तो यह सच्चा त्योहार था । सुना गया कि मेजर बूढ़ी औरत की तरह फूट-फूट कर रोया, लेकिन वह बेबस था । उसने इस्तीफ़ा दे दिया, घोड़े बेच दिए, जायदाद भी बिक गई । अब पहले की अपेक्षा वह ग़रीबी की हालत में रहने लगा । बाद में वह हमें पुराना, सिविलियनों जैसा लम्बा कोट और फीतें वाली टोपी पहने दिखाई देता था । हमें देखकर अभी भी उसके माथे पर त्योरियाँ पड़ जाती थीं, लेकिन उसका रौब तो उसकी वर्दी के साथ ही खत्म हो चुका था । वर्दी में तो वह वज्र दिखाई देता था, लेकिन लम्बे कोट में उसकी कोई हैसियत नहीं दिखाई देती थी, बल्कि वह एक चपरासी दिखाई देता था । सचमुच ऐसे लोगों के व्यक्तित्व में वर्दी का कितना बड़ा योग रहता है—यह सोचकर ताज्जुब होता है ।

फ़रारी

मेजर के जाने के बाद जेल में बड़ी तब्दीलियाँ हुईं। सख्त मशक्क़त वाला महकमा बंद कर दिया गया, उसकी जगह एक बटालियन बना दी गई जो युद्ध मन्त्रालय के मातहत काम करती थी और रूस की बाक़ी क़ैदी बटालियनों की तरह ही थी। अब दूसरे विभाग के क़ैदियों को हमारी जेल में नहीं लाया जाता था। उनकी जगह फ़ौजी क़ैदियों ने ले ली थी। इन क़ैदियों को नागरिक अधिकारों से वंचित नहीं किया गया था, वे फ़ौजी सिपाही थे, जिन्हें थोड़ी-थोड़ी सजाएँ दी गई थी। ज़्यादा से ज़्यादा छः बरस की सज़ा वाले वहाँ आते थे। रिहाई के बाद वे अपनी बटा-लियनों में लौट जाते थे और उनकी नौकरी बनी रहती थी। जो दोबारा किसी जुर्म में आते थे उन्हें पहले की तरह बीस बरस की क़ैद होती थी। यह सच है कि जेल में पहले एक फ़ौजी सैक्शन था, उसकी ज़रूरत इस लिए थी क्योंकि इस श्रेणी के क़ैदियों के लिए और कोई जगह नहीं थी। लेकिन अब तो सारी जेल फ़ौजी सैक्शन के अन्तर्गत आ गयी थी। यहाँ यह कहने की ज़रूरत नहीं कि सिविल सैक्शन के क़ैदी अभी भी सब अधिकारों से वंचित थे, अब भी उन्हें लोहे की छड़ों से दाग़ा जाता था, आधे सिर की हजामत होती थी और वे अपनी पूरी सजा ख़त्म करके ही जेल से बाहर निकलते थे, लेकिन इस श्रेणी के नए क़ैदी अब जेल में नहीं आते थे। जो रह गए थे वे भी धीरे-धीरे अपनी सजाएँ ख़त्म करके रिहा होते जा रहे थे। दस साल में वहाँ से सब चले जाएँगे। स्पैशल डिवीज़न भी पहले की तरह बरक़रार थी और उसमें सबसे ज़्यादा ख़तर-नाक फ़ौजी क़ैदी पहले की तरह ही आते थे, और उनके लिए सख्त से सख्त मेहनत की स्कीमें तैयार की जाती थीं। ज़िन्दगी पहले की तरह ही चल रही थी। वही परिस्थितियाँ थीं, वही काम था और वही क़ायदे-

क़ानून थे। सिर्फ़ पुराने अफ़सर बदल गए थे और अब उनकी तादाद भी बढ़ गई थी। कम्पनी कमान्डर का एक नया ओहदा बना था, जिस पर किसी स्टाफ़ अफ़सर को ही नियुक्त किया जाता था। इसके अलावा चार छोटे अफ़सर बारी-बारी से जेल में ड्यूटी देते थे। पुराने अपाहिज लोग चले गए थे, उनकी जगह बारह सार्जेन्ट और एक क्वार्टर मास्टर आ गया था। दस-दस क़ैदियों की एक टोली बना दी गई थी, उनमें से एक अगुआ चुना जाता था। खैर, यह तो निरी औपचारिकता थी। उम्मीद के मुताबिक़ अकिम अकीमिच को फ़ौरन अगुआ चुना गया। सब क़ैदियों और अफ़सरों के ऊपर कमान्डेन्ट था, बस इतनी ही तब्दीली हुई थी।

शुरू-शुरू में तो क़ैदी उत्साह में आकर बहसें करने लगे थे और अपने नये अफ़सरों को परखने और उनके बारे में तरह-तरह के अनुमान लगाने लगे थे। लेकिन जब उन्होंने देखा कि बुनियादी तौर पर हर चीज़ पहले की तरह ही चली आ रही है, तो वे फ़ौरन शान्त हो गए और ज़िन्दगी पहले की तरह चलने लगी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि हमें मेजर से मुक्ति मिल गई थी। सब लोगों ने चैन की साँस ली थी और उनकी हिम्मत बँधी थी। क़ैदियों के सहमे चेहरे खिल उठे थे। सब जानते थे कि अगर उन पर कोई ग़लत इल्ज़ाम लगाया गया तो वे अफ़सरों को हमेशा अपनी सफ़ाई दे सकेंगे। क़सूरवार की जगह बेकसूर को शायद ही ग़लती से सजा मिलेगी। यहाँ तक कि पहले की तरह वोद्का का कारोबार भी चलने लगा, हालाँकि नये सार्जेन्ट आ गए थे। अधिकांश सार्जेन्ट समझदार और दुनियादार आदमी थे जो अपनी स्थिति को अच्छी तरह समझते थे। शुरू में कुछ ने क़ैदियों पर रौब डालना चाहा। नातजुर्बेकारी में आकर उन्होंने सोचा कि वे क़ैदियों से सिपाहियों जैसा सलूक कर सकते हैं। लेकिन जल्द ही उन्हें असलियत मालूम हो गई। जिनके दिमाग़ तेज़ नहीं थे, उन्हें भी क़ैदियों ने सबक़ सिखा दिया। क़ैदियों और सार्जेन्टों के बीच कई झगड़े हुए। क़ैदी पहले तो किसी

सार्जेन्ट को प्रलोभन देकर शराब पिलाते थे, बाद में उससे कहते थे, "देखो तुमने हमारे साथ बैठकर शराब पी है"—नतीजा यह हुआ कि जब वोद्का से भरे पीपे बेचने के लिए लाए जाते थे तो सार्जेन्ट उन्हें देखकर भी अनदेखा कर देते थे या क़ैदियों को मनमाना करने की छूट दे देते थे। इसके अलावा वे बाज़ार से क़ैदियों के लिए सफ़ेद रोटी, गोश्त और खाने की दूसरी चीज़ें खरीद लाते थे, इन बातों से उनकी शान में कोई फ़र्क नहीं आता था। ये तब्दीलियाँ क्यों हुईं, यह मैं नहीं जानता। ये बातें मेरी क़ैद के आखिरी बरसों में हुईं। मुझे इन नई परिस्थितियों में अभी दो बरस और काटने थे।

क्या मैं अपनी क़ैद के हर साल के बारे में बताऊँ ? लेकिन इसकी ज़रूरत नहीं है। अगर मैं सारी घटनाओं को तरतीब से लिखने बैठूँ तो इस पुस्तक में तिगुने परिच्छेद और जुड़ जाएँगे और पाठक को पढ़ते-पढ़ते ये सारी बातें नीरस मालूम होने लगेंगी। रूप-रंग में एकरसता आ जाएगी, खासतौर पर अगर पाठक को जेल के सीविल सैक्शन के बारे में काफ़ी जानकारी मिल चुकी हो। मैं चाहता था कि मैं जेल की और अपनी क़ैद के सब बरसों की पूरी और सजीव तस्वीर पेश करूँ। मैं इस प्रयास में सफल हुआ हूँ या नहीं? खैर, जो भी हो इस बात का फ़ैसला मैं नहीं कर सकता। इसलिए बेहतर है कि मैं कहानी यहीं खत्म कर दूँ। इसके अलावा कभी-कभी इन स्मृतियों से मेरा मन खट्टा हो उठता है और मैं चाहने पर भी कुछ याद नहीं कर पाता। बाद के बरसों की स्मृतियाँ कुछ धुँधली पड़ चुकी हैं और मुझे पूरा यक़ीन है कि कई बातों को मैं बिल्कुल भूला चुका हूँ। मुझे सिर्फ़ इतना याद है कि हर साल एक-सी नीरस और सुस्त चाल से बीतता जाता था। मुझे याद है कि जेल के लम्बे दिन छत से टपकती हुई पानी की बूँदों की तरह नीरस थे। मुझे इतना भी याद है कि फिर से आज़ादी और नया जीवन पाने की आकांक्षा ने ही मुझे उम्मीद करने की और भविष्य की प्रतीक्षा करने की शक्ति दी थी। अन्त में मुझ में निर्लिप्तता की शक्ति आ गई

थी। मैं रोज़ दिन गिनता हुआ इन्तज़ार करने लगा, हालाँकि हज़ार दिन बाक़ी रहते थे, फिर भी मैं हर दिन को खुशी-खुशी अतीत में दफ़न होते देखता था। और जब नया दिन निकलता तो मुझे यह सोचकर खुशी होती कि अब हज़ार दिन नहीं बल्कि नौ सौ निन्यानवे दिन बाक़ी हैं। मैं अकेला था, हालाँकि मेरे हज़ारों साथी थे। मुझे अन्त में अपने अकेलेपन से भी मोह हो गया था। एकाकीपन की घड़ियों में मैं अपनी ज़िन्दगी की हर घटना पर ग़ौर करता था, अपने हर काम को सख़्ती से परखता था और कभी-कभी अपने भाग्य को सराहता भी था, जिसने मुझे एकांत दिया था, जिसके बग़ैर मैं अपने अतीत को इतनी सख़्ती से नहीं परख सकता था। और उस वक्त मेरे दिल में कितनी तमन्नाएँ थीं! मैंने हर पहलू पर सोच-विचार करने के बाद निश्चय किया कि अतीत की ग़लतियाँ और भूलें फिर कभी मुझ से नहीं होंगी। मैंने अपने भावी जीवन की एक रूपरेखा की कल्पना की और तय किया कि उस पर अक्षरशः चलूँगा। मेरे भीतर एक अंधी आस्था पैदा हुई कि मैं ज़रूर इन कामों को पूरा कर सकूँगा और करूँगा। मैं आज़ादी के लिए कितना तड़पता था और चाहता था कि आज़ादी के क्षण फ़ौरन आ जाएँ। मैं नए संघर्ष में अपनी ताक़त को आज़माना चाहता था। कभी-कभी तो मैं बेहद बेचैन और अधीर हो उठता था। लेकिन अब उस ज़माने की मनःस्थिति को याद करने से मेरे दिल में तक़लीफ़ होती है। जो भी हो सिवा मेरे इन बातों से और किसी का सरोकार नहीं। मैंने इन बातों को इसलिए लेखनीबद्ध किया है क्योंकि मेरा विश्वास है कि सब लोग इन बातों को समझेंगे, और अगर किसी को जवानी में क़ैद काटनी पड़ेगी तो उसे भी यही तजुर्बा होगा।

लेकिन मैं बहुत कह चुका। कहानी को एकाएक खत्म होने से बचाने के लिए बेहतर होगा अगर मैं कुछ और क़िस्से सुनाऊँ।

मेरे दिल में अभी यह ख़याल आया है कि मान लो अगर कोई यह पूछ बैठे कि क्या किसी के लिए जेल से निकल भागना सम्भव था, या

किसी ने ऐसा किया ? मैं पहले कह चुका हूँ कि दो या तीन बरस क़ैद काटने के बाद क़ैदी जेल में गुजारे वक्त को क़ीमती समझने लगता है और महसूस करता है कि सारी क़ैद पूरी करके बस्ती में बसने में ही उसकी भलाई है, इसमें किसी क़िस्म का कोई ख़तरा भी नहीं है। जिनकी सज़ा कम है, वे ही इस ढंग से सोचते हैं, लेकिन लम्बी सज़ा वाला क़ैदी जोखिम उठाने के लिए तैयार हो सकता है। हमारी जेल में ऐसा नहीं होता था। इसका कारण भीरुता थी, मिलिटरी का कड़ा पहरा था, जेल के आस-पास फैला हुआ उजाड़ स्तेपीज़ का मैदान था या और कोई कारण था यह मैं नहीं बता सकता। हमारी जेल से निकल भागना बहुत मुश्किल काम था। फिर भी मेरे ज़माने में ऐसा एक क़िस्सा हुआ था। हमारे दो मशहूर क़ैदियों ने भागने की कोशिश की थी।

मेजर के हटाये जाने के बाद अ- व ने (जो मेजर का भेदिया रह चुका था) जेल में अपने को अकेला और अरक्षित पाया। वह अभी नौ-जवान था, लेकिन वक्त के साथ-साथ उसका चरित्र पक्का होता जा रहा था। वह हठीला, दुःसाहसी और दुनियादार आदमी था। अगर वह रिहा हो जाता तो वह भेदिया बन कर या और नाजायज़ तरीक़ों से अपनी आमदनी बढ़ा सकता था, लेकिन अब वह पहले की सी भोंडी ग़लती पर पकड़ाई देने वाला नहीं था। उसने कुछ दिनों तक जाली पास-पोर्ट बनाने का काम भी किया था। मुझे इस बात का पक्का पता नहीं है लेकिन मैंने दूसरे लोगों से यह बात सुनी है। लोगों ने मुझे बताया था कि जब उसे मेजर के बावर्चीख़ाने में जाने की इजाज़त थी, तब भी उसका यही पेशा था। सारांश यह है कि वह इस पेशे से भरसक मुनाफ़ा कमा लेता था, और अपनी 'क़िस्मत बदलने' के लिए कोई भी काम कर सकता था। मुझे उसके दिल और दिमाग़ को समझने का एक बार मौक़ा मिला था। उसकी अनास्था अक्सर हद दर्जे की गुस्ताख़ी और हृदयहीन व्यंग्य तक पहुँच जाती थी जिसे देखकर दिल पर आघात लगता था और मेरे मन में नफ़रत पैदा होती थी। मेरा ख़्याल है कि अगर

कभी उसे एक ड्राम वोद्का की जरूरत पड़ती और वह किसी का गला काटकर ही वोद्का पा सकता, तो वह ऐसा जरूर करता, बशर्ते उसे छिपकर यह काम करने का मौक़ा मिलता। जेल में आकर वह समझदार हो गया था। यही वह आदमी था जिसे स्पैशल सैक्शन के कुलीकोव ने खासतौर पर चुना था।

कुलीकोव का ज़िक्र मैं पहले भी कर चुका हूँ। वह नौजवान नहीं था, लेकिन उसमें जोश, ताक़त, ज़िन्दादिली और अनेकों गुण थे। उसमें अभी बहुत ताक़त थी और वह ज़िन्दा रहना चाहता था। वह उन लोगों में से था जो बुढ़ापे में भी ज़िन्दा रहना चाहते हैं। मुझे अगर कभी इस बात से ताज्जुब होता था कि कोई क़ैदी भागने की कोशिश क्यों नहीं करता तो कुलीकोव अपनी जीती-जागती मिसाल था, लेकिन आखिरकार कुलीकोव ने भागने का फ़ैसला कर ही लिया। अ- ब और कुलीकोव में से किसने किसको प्रभावित किया यह कहना मेरे लिए मुश्किल है। इस मक़सद के लिए दोनों एक दूसरे के सर्वथा अनुकूल थे। दोनों में घनिष्ठता हो गई। मेरे ख्याल में कुलीकोव को भरोसा था कि अ- ब दोनों के लिए जाली पासपोर्ट बना लेगा। अ- ब अच्छे खानदान का था और ऊँचे तबके में रह चुका था, इसलिए उन्हें उम्मीद थी कि एक बार रूस पहुँच जाने पर आकर्षक और सनसनीखेज कारनामें कर सकेंगे। क्या पता वे दोनों किस तरह आपस में आकर्षित हुए थे और वे क्या-क्या सपने देखते थे, लेकिन यह पक्की बात है कि आम साइबेरियन आवारागर्दों की अपेक्षा उनके सपने कहीं ऊँचे थे। कुलीकोव पैदायशी एक्टर था और ज़िन्दगी में बहुत से पार्ट खेल सकता था। उसे बहुत चीज़ों की, कम-से-कम एक वैविध्यपूर्ण जीवन की उम्मीदें थीं। ऐसे आदमी के लिए जेल की ज़िन्दगी बर्दाश्त करना सचमुच नामुमकिन हो जाता है। आखिर उन्होंने जेल से भागने की साजिश की।

लेकिन किसी संतरी की मदद के बग़ैर भाग सकना नामुमकिन था, इसलिए उन्हें एक संतरी को भी साज़िश में शामिल करना पड़ा। एक

टुकड़ी में एक पोलिश संतरी था, जो बहुत तेज़ तर्रार था। शायद उसे जेल से बेहतर ज़िन्दगी मिलनी चाहिए थी। वह जवान नहीं था लेकिन दिलेर और सच्चा था। वह साइबेरिया में सिपाही बन कर आया था। अपनी मातृभूमि को लौटने की उम्मीद में वह फ़ौज से भाग निकला, लेकिन उसे गिरफ़्तार कर लिया गया और दो बरस तक फ़ौजी डिवीज़न में रखा गया। जब सज़ा भुगत कर वह अपनी टुकड़ी में लौटा तो उसमें बहुत तब्दीली आ गई थी। वह जी-जान से काम करने लगा। जल्द ही उसे कारपोरल बना दिया गया। वह महत्वाकांक्षी और आत्मविश्वासी था। उसे अपनी क़ीमत का ख़ुद भी एहसास था। उसकी बातचीत से यह बात साफ़ ज़ाहिर होती थी। मैंने उसे कई बार देखा था। वह हमारे साथ संतरी बनकर चला करता था। पोलिश क़ैदियों ने भी उसके बारे में मुझे बहुत-सी बातें बतायी थीं। मालूम होता था कि मातृभूमि को लौटने की तीव्र आकांक्षा अब सुस्थिर, मूक और प्रच्छन्न घृणा में बदल गई थी। वह आदमी कुछ भी कर सकता था, कुलीकोव ने उसे चुनकर ग़लती नहीं की थी। उसका नाम कोलेर था। उनमें समझौता हो गया और भागने का दिन भी निश्चित हो गया। यह तय हुआ कि जून के किसी गर्म और उमस वाले दिन वे लोग निकल भागेंगे। हमारे इलाक़े में गर्मी का मौसम काफ़ी अर्सा रहता था, इसलिए घुमक्कड़ों को और क्या चाहिए था? लेकिन क़िले से फ़ौरन निकलना इतना आसान नहीं था, क्योंकि शहर एक उजाड़ पहाड़ी पर बसा हुआ था—काफ़ी दूर-दूर तक कोई जंगल नहीं थे। उन्हें जेल के कपड़े उतार कर शहरियों जैसे कपड़े भी पहनने थे, इसके लिए उन्हें शहर के बाहरी हिस्से में उस कोठरी में भी जाना था, जो कुलीकोव का अड्डा था। उसके दोस्तों को इस राज़ का पता था या नहीं, यह कहना मुश्किल है। शायद उन्हें पता था, हालांकि मुकदमें में उन लोगों ने साफ़ इन्कार कर दिया था। उस साल एक नौजवान और ख़ूबसूरत औरत, जिसका नाम क़ैदियों ने वान्का-तान्का रख छोड़ा था, शहर में मशहूर हुई थी, ज़रूर उसका भी इस

क़िस्से में हाथ रहा होगा। कुलीकोव पूरे एक साल तक उस पर काफ़ी पैसा खर्च करता रहा था।

हमारे दोनों बहादुर सुबह की हाजरी के वक्त सहन में गये थे, उन्होंने ऐसी सिकड़म की थी कि उन्हें शिल्किन नाम के क़ैदी के साथ, जो भट्ठियाँ बनाता था, और प्लास्टर तैयार करता था, फ़ौजी बैरकों में प्लास्टर करने के लिए भेज दिया गया। कुछ दिन पहले फ़ौजी उन बैरकों को छोड़कर गर्मी के क्वार्टरों में रहने के लिए चले गए थे। अ-ब और कुलीकोव उसकी मदद करने के लिए गए थे। उधर से कोलेर एक और संतरी को लेकर आ गया। चूंकि तीन क़ैदियों के लिए दो संतरियों की ज़रूरत पड़ती थी, वह अपने साथ एक नौजवान रंगरूट को ट्रेनिंग देने के लिए लाया था, क्योंकि वह ओहदे में बड़ा था और कारपोरल था। भागने वालों ने कोलेर को ज़रूर इस हद तक प्रभावित किया होगा, तभी तो उसके जैसा समझदार, आरामपसन्द और दुनियादार आदमी, जो कुछ बरसों से अपनी नौकरी में कामयाब भी हुआ था, इन लोगों के साथ अपनी क़िस्मत का पाँसा फेंकने के लिए तैयार हो गया था।

वे लोग सुबह छः बजे बैरकों में पहुँच गए। वहाँ उनके सिवा और कोई नहीं था। एक घंटे काम करने के बाद कुलीकोव और अ- ब ने शिल्किन से कहा कि वे किसी आदमी से मिलने और कुछ औज़ार लेने के लिए वर्कशॉप में जा रहे हैं। शिल्किन से बहुत सावधानी से पेश आने की ज़रूरत थी। वह मॉस्को का ठेठ भट्ठी बनाने वाला, बेहद चौकन्ना, चालाक और घुन्ना आदमी था। वह नाटे क़द का था और अब मॉस्को के फ़ैशन के मुताबिक शायद जाकेट पहने सड़कों पर चहलक़दमी करता होता, लेकिन क़िस्मत को यह मंज़ूर नहीं था। बहुत भटकने के बाद वह उम्र-क़ैद की सज़ा पाकर हमारे स्पैशल सैक्शन में आ गया था और उसे सबसे ज़्यादा ख़ूंखार फ़ौजी क़ैदियों की श्रेणी में रखा गया था। उसने आख़िर क्या किया था, यह मैं नहीं कह सकता। मैंने कभी उसमें असं-

तोष का नामोनिशान तक नहीं देखा । वह हमेशा शान्त रहता था हालाँकि कभी-कभी वह रईसों की तरह खूब शराब पीता था । उस हालत में भी वह संयत व्यवहार करता था । उसे इस बात का इल्म नहीं था, लेकिन उसकी नजर बहुत पैनी थी । कुलीकोव ने उसकी तरफ़ देखकर आँख मारी जिसका मतलब था कि वे लोग वोद्का लेने जा रहे हैं जो उन्होंने कल वर्कशाप में छिपाकर रखी थी । यह तरीक़ा कारगर साबित हुआ और शिल्किन ने बिना किसी शक के उन्हें जाने दिया । नया रंगरूट पीछे रह गया और कोलेर के साथ दोनों जने शहर के बाहर की बस्तियों की तरफ़ चल पड़े ।

आधा घंटा गुज़र गया, शिल्किन का माथा ठनका । उसने अपने जमाने में बहुत कुछ देखा था । उसे याद आया कि आज कुलीकोव की मूड ख़ास क़िस्म की थी । अ- ब ने फुसफुसा कर उससे कुछ कहा था, और कुलीकोव ने उसकी तरफ़ देखकर आँख मारी थी । कोलेर ने नये रंगरूट को हिदायतें दी थीं कि उसकी ग़ैरहाजरी में उसे क्या करना चाहिए । कोलेर जैसे आदमी के लिए यह व्यवहार अस्वाभाविक था । कहने का मतलब यह कि शिल्किन को जितनी बातें याद आती जाती थीं, उतना ही उसका शक बढ़ता जाता था । जब उसने देखा कि वे लोग अभी तक नहीं लौटे तो उसकी बेचैनी बढ़ गई । उसे एहसास हुआ कि वह भी जोखिम में है, क्योंकि उस पर भी शक किया जाएगा । अधिकारी सोच सकते हैं कि उसका भी इस मामले में हाथ था और उसने जानबूझकर उन लोगों को वहाँ से जाने दिया था । कुलीकोव और अ- ब के ग़ायब होने की रिपोर्ट देने में वह जितनी देरी करेगा उतना ही ज्यादा अधिकारी लोग उस पर शक करेंगे । अब देरी का वक्त नहीं था । अचानक उसे यह भी याद आया कि कुछ दिनों से कुलीकोव और अ- ब में खूब पटने लगी थी और वे एक साथ बैठे कानाफूसी किया करते थे या बैरकों के पीछे टहला करते थे । वह अक्सर सोचा करता था कि आख़िर इन लोगों में क्या बातें हो रही हैं । उसने अपने संतरी पर एक तेज़ निगाह

डाली जो अपनी राइफ़ल पर झुका उबासी ले रहा था और बड़े मासूम ढंग से अपनी नाक में उंगली डालकर सफ़ाई कर रहा था। रंगरूट को कुछ बताये बग़ैर उसने कहा कि वह वर्कशाप जाना चाहता है। वर्कशाप जा कर उसने तीनों के बारे में पूछताछ की, लेकिन वहाँ किसी ने उन्हें नहीं देखा था। शिल्किन का शक पक्का हो गया। अगर वे लोग बस्ती में शराब पीने या ऐश उड़ाने के लिए गए होते, जैसा कि कुलीकोव कभी-कभी किया करता था तो वह ज़रूर शिल्किन को बता कर जाता क्योंकि यह छिपाने की बात नहीं थी। बैरकों में लौटे बग़ैर शिल्किन सीधा जेल में पहुँचा।

जब उसने सार्जेन्ट के सामने जाकर अपने शक का इज़हार किया तो नौ बजे थे। सार्जेन्ट फ़ौरन ख़ौफ़ज़दा हो गया। पहले तो उसे इस रिपोर्ट पर यक़ीन ही नहीं हुआ। शिल्किन ने तो मामूली-सा शक़ ही ज़ाहिर किया था। सार्जेन्ट भागा-भागा मेजर के पास गया और मेजर कमान्डेन्ट के पास पहुँचा। पन्द्रह मिनट में ही ज़रूरी कार्रवाई के लिए क़दम उठा लिए गए और गवर्नर जनरल तक को ख़बर कर दी गई। भागने वाले दोनों मशहूर क़ैदी थे, इसलिए अफ़सरों को डर था कि सेंट पीटर्ज़बर्ग के अधिकारी उनकी आफ़त कर देंगे। सही या ग़लत, अ-ब को राजनैतिक क़ैदी समझा जाता था और कुलीकोव स्पैशल सैक्शन में था, अर्थात् वह पक्का मुजरिम तो था ही, साथ में उसने फ़ौजी जुर्म भी किया था। इससे पहले स्पैशल सैक्शन का कोई क़ैदी जेल से नहीं भागा था। अचानक जेल-अधिकारियों को याद आया कि स्पैशल सैक्शन के हर क़ैदी पर काम के वक़्त दो या कम से कम एक सन्तरी रहने का क़ानून था। आज इस क़ानून को नज़र-अन्दाज़ किया गया था। सब दृष्टियों से यह मामला टेढ़ा और नाख़ुशगवार हो गया था। सारे गाँवों और क़स्बों में भगोड़ों का हुलिया बताकर भेजा गया। क़ज़ाक घुड़सवार उनका पीछा करने के लिए गए और नज़दीक के सूबों में भी बहुत से ख़त लिखे गए। सब लोग डर से काँप रहे थे।

उधर क़ैदियों के मन में और ही क़िस्म की हलचल मची हुई थी। जब वे काम से लौटे तो उन्हें यह खबर मिली। मन ही मन सबको ख़ुशी हुई, हर दिल उल्लास से खिल उठा। इस घटना ने न सिर्फ़ जेल की नीरसता को ही तोड़ा था, बल्कि जैसे किसी ने चींटियों के झुण्ड को छेड़ दिया हो। हर आदमी पर इस घटना की प्रतिक्रिया हुई और सबके दिलों में चिरकाल से भूला हुआ संगीत झंकृत हो उठा। हर दिल में आशा, साहस और आज़ादी का सपना पनप उठा। वे सोचने लगे, 'कुछ ऐसे भी हैं जो भाग सकते हैं, हम क्यों नहीं आज़ाद हो सकते ?' हर आदमी में हिम्मत आ गई। सबकी आँखों में चुनौती की रोशनी थी। अचानक क़ैदियों को गर्व महसूस होने लगा और वे सार्जेन्ट को अनुकम्पा की दृष्टि से देखने लगे। उम्मीद के मुताबिक अधिकारियों ने जेल में छापे मारे, यहाँ तक कि कमान्डेन्ट भी उसमें शामिल था। क़ैदी बहादुर और खामोश दिखाई दे रहे थे और उनमें उत्तेजना नहीं थी। लगता था, जैसे वे कह रहे हों, "हम चाहें तो शानदार काम कर सकते हैं। क़ैदियों ने पहले से ही अन्दाज़ा लगा लिया था कि बैरकों में छापे पड़ेंगे। उन्होंने सारी चीज़ें सुरक्षित स्थानों पर छिपा कर रख दी थीं। वे जानते थे कि किसी भी 'घटना के बाद' अधिकारी ज़रूरत से ज़्यादा चौकन्ने हो जाते हैं—उनकी बात सही निकली। जेल में ख़ूब हंगामा मचा। सब जगह तलाशियाँ हुईं, लेकिन कुछ भी बरामद नहीं हो सका। खाने के बाद जब क़ैदी काम पर जाते थे तो उनके साथ सन्तरी जाने लगे। शाम को कई बार सन्तरी बैरकों में चक्कर काटते थे, ज़ोर-शोर से हाज़री ली जाती थी और पहले से भी दुगनी गलतियाँ होती थीं, जिससे ख़ूब उत्तेजना और भगदड़ मचती थी। हमें फिर सहन में इकट्ठा करके नये सिरे से गिना जाता था, और बैरकों में पहुँचकर दोबारा गिनती की जाती थी। कहने का मतलब यह कि ख़ूब हंगामा मचा हुआ था।

क़ैदियों को इन बातों की रत्ती-भर परवाह नहीं थी। सबकी चाल-ढाल में आज़ादी की मस्ती थी। उस शाम को सब लोग बड़ी संजीदगी

से पेश आए, जैसा कि ऐसी घटनाओं के बाद अक्सर होता है। 'हम पकड़ाई नहीं देंगे", वे जैसे कह रहे थे। अधिकारियों को डर था कि शायद क़ैदियों में से कुछ लोग भगोड़ों की साजिश में शामिल थे। इसलिए क़ैदियों पर कड़ी निगरानी रखी जाने लगी और उनसे बातचीत करने के लिए जासूस लगा दिए गए। इस बात से क़ैदियों को बड़ी हँसी आती थी, "भला कोई पीछे अपने मददगारों को छोड़ जाता है!" "ऐसी बातें एकान्त में की जाती हैं, जहाँ कोई न देख सके।" "कुलीकोव और अ- ब ऐसे नहीं जो पीछे अपना सुराग़ छोड़ जाएँ। उन्होंने कमाल की सफ़ाई दिखाई है। दोनों बड़े होशियार निकले। वे दरवाज़े के छेद में से भी निकल सकते थे।" कुलीकोव और अ- ब की शोहरत बढ़ रही थी, सब लोगों को उन पर नाज़ था और सबका ख़्याल था कि जब तक यह जेल बनी रहेगी, कोई इन कारनामों को नहीं भूलेगा।

कुछ लोगों ने कहा, "सचमुच वे लोग बड़े होशियार निकले।"

"जेल वालों का ख़्याल है कि कोई यहाँ से नहीं भाग सकता। अब देख लिया।" औरों ने अपनी राय दी।

"अब देख लिया······?" तीसरे ने शान से चारों तरफ़ देखकर पूछा, "लेकिन कौन भागा? तुम्हारे जैसे लोग तो नहीं भाग सके।"

अगर कोई और वक्त होता तो इस बात का फ़ौरन करारा जवाब दिया जाता, लेकिन अब वह क़ैदी हलीम और ख़ामोश रहा। "यह तो सच है! कुलीकोव और अ- ब औरों की तरह नहीं हैं। पहले तो इन्सान को चाहिए कि वह दुनिया को दिखा दे कि वह कैसा है।"

'लेकिन भाइयो हम यहाँ क्यों रह रहे हैं?" एक चौथे क़ैदी ने, जो बावर्चीख़ाने की खिड़की के पास हथेली पर अपनी ठोड़ी रखे बैठा था, अलसायी आवाज में कहा।

"हाँ, हम यहाँ क्या कर रहे हैं? न हम तमाम जिन्दा लोगों की तरह शान से ज़िन्दा हैं न मुर्दों की तरह शान से दफ़्न हैं।"

"तुम लोग कैसी बातें कर रहे हो? जेल आख़िर कोई जूता तो

नहीं जिसे उतारकर फेंक दिया जाये।"

"लेकिन कुलीकोव भी तो इन्सान था," एक जोशीले नये क़ैदी ने कहा।

"कुलीकोव !" एक और क़ैदी ने उस अनुभवहीन नौजवान का मज़ाक उड़ाते हुए कहा।

कहने का मतलब यह था कि कुलीकोव जैसे दिलेर वहाँ कम थे।

"और अ-ब भी सब कुछ समझता है।"

"भला समझेगा कैसे नहीं ? वह तो कुलीकोव को भी नाच नचा सकता है। पूरा काइयाँ है।"

"न जाने वे लोग अब कितनी दूर पहुंच गए होंगे।"

फ़ौरन यह बातें शुरू हो गईं कि वे लोग कितनी दूर पहुँचे होंगे, उन्हें किधर जाना चाहिए था और कौन-सा इलाक़ा सबसे ज़्यादा नज़दीक था। जो इस इलाक़े से अच्छी तरह वाक़िफ़ थे वे बड़े ध्यान से सारी बातें सुन रहे थे। सब लोगों की यही राय थी कि आस-पास के गाँवों के आदमी अच्छी क़िस्म के नहीं थे। वे लोग शहर के बहुत नज़दीक हैं और बहुत चालाक और चुस्त हैं। वे हरगिज़ भगोड़ों की मदद नहीं करेंगे और अगर बस चलेगा तो उन्हें धोखा भी देंगे।

"यहाँ के किसान बड़े दुष्ट और कमीने हैं। छिः, कितने बुरे हैं।"

"इन पर भरोसा नहीं किया जा सकता !"

"ये हरामजादे !.......इनके हाथों में कोई न पड़े !"

"लेकिन हमारे साथी भी बुद्धू नहीं हैं।"

"बिल्कुल सही है। अब सवाल यह है कि कौन किसे मात देता है। हमारे दोस्त भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेले हैं। वे हारने वालों में से नहीं हैं।"

"हम लोग भी आखिर ज़िन्दा रहेंगे और देखेंगे कि इसका क्या नतीजा निकलता है।"

"तुम्हारा क्या ख्याल है, क्या वे लोग पकड़े जायेंगे ?"

"मेरे ख्याल में ऐसा कभी नहीं होगा !" गर्म दिमाग वाले एक क़ैदी ने मेज़ पर मुक्का मारकर कहा।

"हूँ—देखा जाएगा।"

स्कूरातोव ने बीच में टोककर कहा, "मैं कहता हूँ दोस्तो, अगर मुझे भागना पड़ता, तो कभी किसी को पकड़ाई न देता।"

"तुम ?"

कुछ लोग हँसने लगे। कुछ ने उसकी बात पर बिल्कुल ध्यान न दिया। लेकिन स्कूरातोव की कल्पना में पंख लग गए थे।

"मैं कभी पकड़ाई न देता !" उसने जोश में आकर कहा "मैं अक्सर इस बारे में सोचता हूँ और मुझे अपने ऊपर ताज्जुब होता है। मैं अगर चाहूँ तो चाबी के छेद में से निकल भागूं और कभी पकड़ाई न दूं।"

"अगर तुम्हें बहुत भूख लगेगी तो तुम रोटी के एक टुकड़े के लिए किसी किसान के पास जाओगे।"

सब लोग हँस पड़े।

"मैं जाऊँगा ? तुम झूठ बोलते हो।"

"तुम क्यों ज्यादा ज़बान चला रहे हो ? क्या हमें नहीं मालूम कि तुमने गाय की वजह से चचा वास्का से मिलकर किसी[1] का क़त्ल किया था ?"

हँसी और भी बढ़ गई। गम्भीर लोग पहले से भी ज्यादा निराश दिखाई देने लगे।

स्कूरातोव चिल्लाया, "तुम झूठ बोलते हो। निकिता ने मेरे बारे में यह अफ़वाह फैलाई है। यह क़िस्सा मेरे साथ नहीं बल्कि वास्का के साथ हुआ था और न जाने क्यों मुझे भी बीच में घसीट लिया गया।

---

१. उन लोगों ने किसी किसान औरत या मर्द का इसलिए क़त्ल किया था क्योंकि उन्हें शक हो गया था कि किसान ने हवा के ज़रिए से जानवरों पर टोना कर दिया है।

मैं मॉस्को में पैदा हुआ था और जब से मैंने होश सँभाला है मैं घुमक्कड़ी करता आया हूँ। जब सैक्स्टन[1] मुझे अक्षर ज्ञान करवाता था तो मेरा कान पकड़ कर कहता था, 'हे ईश्वर ! हमें प्रलोभनों से बचाना !' मैं उसके पीछे-पीछे कहता था, 'हे ईश्वर हमें पुलिस थाने से बचाना !' बचपन में मैं ऐसा था।"

लोग और भी ज़ोर से हँस पड़े। स्कूरातोव यही तो चाहता था। वह बिना मसख़रेपन के नहीं रह सकता था। लेकिन जल्द ही गम्भीर विषयों पर बातचीत होने लगी। सिर्फ़ बुज़ुर्ग और विशेषज्ञ ही अपनी राय देने लगे। नौजवान और भीरु लोग हलीमी से बुज़ुर्गों की बातों का आनन्द लेने लगे और आगे की तरफ़ झुककर देखने लगे ताकि अच्छी तरह बातें सुनाई दे सकें। जल्द ही बावर्चीख़ाने की बैरक में अच्छी ख़ासी भीड़ जमा हो गई। वहाँ कोई सार्जेन्ट नहीं था, इसलिए लोग खुलकर बातचीत कर रहे थे। मामेत्का सबसे ज़्यादा जोश में आकर बातें कर रहा था; वह नाटे क़द का तातार था, जिसकी गाल की हड्डियाँ उभरी हुई थीं। वह देखने में हास्यास्पद लगता था। उसे रूसी का एक अक्षर भी बोलना नहीं आता था, न ही वह कुछ समझता था। फिर भी वह गर्दन आगे बढ़ा कर ख़ुशी से सारी बातें सुन रहा था।

"कहो मामेत्का, याक्शी[2] ?" स्कूरातोव ने पूछा।

सब लोग उसकी दुर्गत बना चुके थे। और कोई साथी न पाकर वह मामेत्का से बातें करने लगा था।

"याक्शी ! याक्शी" मामेत्का ने अपना विदूषक जैसा सिर हिलाकर जिन्दादिली से जवाब दिया। "याक्शी, याक्शी।"

"वे लोग पकड़े जाएँगे, योक[3] ?"

---

१. गिर्जाघर का कर्मचारी जो क़ब्रें खोदने का काम करता है और घंटा बजाता है।
२. तातार भाषा में इसका अर्थ है 'अच्छा'।
३. योक का अर्थ है—'नहीं'।

"योक, योक।" मामेत्का ने बाँहें हिलाकर सम्मति प्रकट की।

"तुम्हारा झूठ बोल रहा था, और मेरा नहीं देख रहा था?"

"हाँ, याक्शी!" मामेत्का ने फिर सिर हिलाया।

"याक्शी!" स्कूरातोव ने मामेत्का की टोपी खींचकर उसकी आँखें ढाँप दीं और खुशी-खुशी बावर्चीख़ाने में चला गया। तातार की समझ में कुछ न आया।

एक हफ़्ते तक जेल में बहुत कड़ा अनुशासन रहा और पास-पड़ोस में बड़ी मेहनत से तलाशियाँ ली गईं। चहार-दीवारी के पीछे होने वाली हर हलचल का पता क़ैदियों को लग जाता था। कैसे लग जाता था, यह मैं नहीं जानता। शुरू के कुछ दिनों में ख़बरें मिलीं कि भगोड़ों का अभी तक कुछ पता नहीं चला। क़ैदी बेहद खुश थे। भगोड़ों की क़िस्मत के बारे में उनकी सारी चिन्तायें दूर हो गई थीं। वे बड़े आत्म-विश्वास से कहते थे: "जेल वाले न कुछ बरामद कर पाएँगे, न ही कोई उनके हाथ आएगा।"

"बस भागने वाले तो भाग गए हैं।"

"अलविदा, जहन्नुम में जाओ! हम इतनी जल्दी लौटने वाले नहीं हैं!"

क़ैदी जानते थे कि आस-पास के सब किसानों को तलाशी में लगा दिया था। सब संदिग्ध स्थानों, जंगलों और खाई-खन्दकों में कड़ी निगरानी रखी जा रही थी।

क़ैदियों ने मज़ाक उड़ाते हुए कहा, "यह सब बेवकूफ़ी है। ज़रूर उनका कोई दोस्त होगा, जिसके यहाँ वे छिपे हुए हैं।"

"कोई न कोई ज़रूर है। वे लोग इतने बेवकूफ़ नहीं। सारी बातों का उन्होंने पहले ही इन्तज़ाम कर लिया होगा।" दूसरों ने इस विचार का समर्थन किया।

लोगों के क़यासों की कोई हद नहीं थी। कुछ कहते थे कि भगोड़े अभी शहर की किसी बस्ती के तहख़ाने में छिपे हैं और तब तक छिपे

रहेंगे जब तक यह सारी 'भगदड़ी' ख़त्म नहीं हो जाती और उनके बाल लम्बे नहीं हो जाते। अगर ज़रूरत पड़ी तो छः महीने या साल के लिए वे लुक-छिपकर रहेंगे, फिर आगे चल देंगे।

कहने का मतलब यह कि सब लोग अत्यन्त रोमांटिक और कल्पनाशील मूड में थे। अचानक भगोड़ों के भागने के एक हफ़्ते बाद पहली अफ़वाह सुनाई दी कि भगोड़ों का सुराग़ मिल गया है। क़ैदियों ने तिरस्कारपूर्वक इस अफ़वाह पर अविश्वास प्रकट किया। लेकिन उसी शाम को इस अफ़वाह की पुष्टि भी हो गई, जिससे क़ैदी बेचैन हो उठे।

अगले दिन शहर से खबर आई कि भगोड़े पकड़ लिए गए हैं और उन्हें जेल में वापस लाया जा रहा है। खाने के बाद और ब्यौरा मालूम हुआ। भगोड़ों को क़रीब पचास मील दूर एक गाँव में गिरफ़्तार किया गया था। आखिर सार्जेन्ट ने मेजर के दफ़्तर से लौटकर पक्की घोषणा की कि भगोड़े शाम तक जेल में पहुँच जाएँगे और उन्हें सीधा गारदघर में ले जाया जाएगा। अब शक की कोई गुंजायश नहीं थी। इस ख़बर का क़ैदियों पर कैसा असर पड़ा, यह बताना मुश्किल है। पहले तो वे क्षुब्ध हुए फिर उनके दिलों में उदासी छा गई। अन्त में वे भगोड़ों का मज़ाक उड़ाने लगे। अब वे पीछा करने वालों का नहीं बल्कि पकड़ाई देने वालों का तिरस्कार कर रहे थे। पहले तो कुछ ने हँसना शुरू किया, बाद में क़रीब-क़रीब सब शामिल हो गए। सिर्फ़ दृढ़ चरित्र वाले लोग ही, जिनका दिमाग़ सुस्थिर था और जिन पर लोगों के तानों का कोई असर नहीं पड़ सकता था—अब भी खामोश थे। आम लोगों के असंगतिपूर्ण व्यवहार को तिरस्कार की दृष्टि से देखकर वे ख़ामोश रहे।

कुलीकोव और अ- ब की जिस तरह ज़ोरशोर से तारीफ़ की गई थी, उतने ही ज़ोरशोर से अब उनकी निन्दा शुरू हुई। लगता था जैसे भगोड़ों ने सबका कोई नुक़सान किया था। हिक़ारत-भरे लहजे में यह

ख़बर फैलाई गई कि भगोड़ों को भूख लगी थी, इसलिए वे रोटी माँगने किसी गाँव में चले गए थे। सबकी नज़रों में घुमक्कड़ों के लिए यह अत्यन्त घृणित बात थी। दरअसल यह कहानी झूठी थी। भगोड़े एक जंगल में छिपे थे, जहाँ उन्हें घेर कर गिरफ़्तार किया गया था। जब उन्होंने देखा कि उनके सामने भागने का कोई रास्ता नहीं रहा तो उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। वे मजबूर थे।

अन्धेरे से पहले जब भगोड़ों को हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहना कर संतरियों के पहरे में लाया गया तो जेल के सब क़ैदी यह देखने के लिए कि उनके साथ कैसा सलूक किया जाता है, चहारदीवारी के पास टूट पड़े। लेकिन उन्हें मेजर और कमान्डेन्ट की गाड़ियों के सिवा कुछ दिखाई न दिया, जो गारदघर के पास खड़ी थीं। भगोड़ों को एक तह-खाने में रखा गया था और अगले दिन उन पर मुकदमा शुरू हुआ था। जब क़ैदियों को स्थिति की गम्भीरता का एहसास हुआ तो उनका तिरस्कार ख़त्म हो गया। वे समझ गए कि भगोड़ों के आगे आत्म-समर्पण के सिवा और कोई रास्ता नहीं था। इसके बाद मुक़दमा शुरू हुआ, जिसमें सब लोगों की हमदर्दी अभियुक्तों के साथ थी।

"देख लेना, इन्हें एक-एक हज़ार कोड़ों की सजा मिलेगी।" कुछ ने कहा।

"वाह रे, एक हज़ार! इस बार तो बेचारों की शामत आई समझो। अ- ब तो शायद एक हज़ार कोड़े बर्दाश्त करले लेकिन दूसरा ख़त्म हो जाएगा, क्योंकि वह स्पैशल सैक्शन में है।"

लेकिन इन लोगों का अनुमान ग़लत निकला। अ- ब को सिर्फ़ पाँच सौ कोड़ों की सजा मिली, क्योंकि पहले उसका आचरण अच्छा रह चुका था और यह उसका पहला जुर्म था। जहाँ तक मुझे याद है, कुलीकोव को पंद्रह सौ कोड़े पड़े थे, और कोड़े मारते वक्त भी उस पर रहम दिखाया गया था। वे लोग बड़े समझदार थे, मुक़दमें में उन्होंने किसी दूसरे को नहीं फँसाया था और नपे-तुले शब्दों में सीधा साफ़ बयान दिया था।

उन्होंने कहा था कि वे जेल से भागने के बाद रास्ते में कहीं रुके बग़ैर आगे चले गए थे। मुझे कोलेर पर सब से ज़्यादा दुःख हुआ। उसकी आज़ादी की आख़िरी उम्मीदें भी ख़त्म हो गईं, और दूसरों की बजाय उसे दो हज़ार ज़्यादा कोड़े लगे और उसे क़ैदियों के किसी और कैम्प में भेज दिया गया।

डाक्टरों की मेहरबानी से अ- ब को सबसे हल्की सज़ा दी गई थी। लेकिन हस्पताल में उसने ख़ूब शोर मचाकर डींग हाँकी और क़सम खाई कि अगली बार वह कुछ और ही कर दिखाएगा। कुलीकोव हमेशा की तरह गम्भीर शालीनता से आचरण करता रहा। जब कोड़े खाकर वह जेल लौटा तो उसके चेहरे के भावों से ऐसा लगता था जैसे वह सच-मुच कभी जेल से बाहर नहीं गया था। लेकिन उसके प्रति क़ैदियों का व्यवहार बदल गया था। हालांकि कुलीकोव सब तरह की परिस्थितियों में भी अपनी शालीनता को क़ायम रखना जानता था, फिर भी लगता था कि उसके प्रति क़ैदियों का आदर बहुत कुछ कम हो गया था और वे उससे चलताऊ व्यवहार करने लगे थे, यानी भागने के बाद से कुलीकोव की शान में बट्टा लग गया था। लोग कामयाबी को इतना ज्यादा पसन्द करते हैं।

रिहाई

मैंने अभी जिन बातों का बयान किया है वे मेरी सख्त क़ैद के आखिरी साल में हुई थीं। यह आखिरी साल और खासकर उस साल के आखिरी महीने, क़ैद के पहले महीनों की तरह अभी भी मेरी स्मृति में ताज़े हैं। छोटी-मोटी घटनाओं का ज़िक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं है। अपनी तमाम बेचैनी और असन्तोष के बावजूद मुझे याद है कि क़ैद के पहले सब बरसों की अपेक्षा उस आखिरी बरस में मुझे अपनी ज़िन्दगी कम कठिन महसूस हुई। इसकी सबसे बड़ी वजह यह थी कि अब मेरे बहुत से दोस्त और शुभचिंतक बन गए थे, जो इस नतीजे पर पहुँचे थे कि आखिर मैं बुरा आदमी नहीं हूँ। कुछ लोग तो मुझसे सच्चा स्नेह करने लगे थे और मुझ से बहुत लगाव महसूस करते थे। जब खन्दक खोदने वाला मुझे और मेरे दोस्त को जेल के फाटक तक पहुँचाने आया तो उसकी आँखें डबडबा गई थीं। रिहाई के बाद एक महीने तक हम शहर की एक सरकारी इमारत में रहे, हमारा दोस्त अक्सर जब भी मुमकिन होता था, हमसे मिलने के लिए आया करता था। कुछ ऐसे भी थे, आखिरी वक्त तक जिनका बैर और क्षोभ बना रहा और जिन्हें मुझ से एक शब्द बोलने में भी तक़लीफ़ होती थी। हमेशा हम लोगों में एक दीवार-सी खड़ी रहती थी।

आखिरी दिनों में मुझे बहुत ज्यादा सुविधाएँ मिल गई थीं। शहर के अफ़सरों में कुछ मेरे परिचित और दोस्त रह चुके थे, मैंने उनसे फिर सम्बन्ध जोड़ लिए। उन्हीं की मेहरबानी से मुझे ज्यादा पैसे मिल सके, मैंने अपने घरवालों को खत लिखे, यहाँ तक कि पढ़ने के लिए कुछ किताबें भी नसीब हो गईं।

बरसों तक मैंने कोई किताब नहीं पढ़ी थी और जेल में पहली

किताब पढ़कर मेरे दिल पर कितना विचित्र और उद्विग्नकारी असर पड़ा यह बताना कठिन है। मुझे याद है कि अंधेरा होने के बाद जब बैरकों में ताले लगा दिए गए थे, मैंने किताब पढ़ना शुरू किया था और मैं दिन निकलने तक पढ़ता रहा था। यह एक भूली-भटकी पत्रिका थी, जो मेरे हाथों में आ गई थी। यह एक दूसरी ही दुनिया की खबर थी। इसे पढ़कर मेरी पहले की ज़िन्दगी पूरे प्रकाश के साथ मेरी आँखों के आगे आ गई और अपने सामने रखी पत्रिका की पंक्तियों से मैंने यह अनुमान लगाने की कोशिश की कि मैं कहीं बाहर वाली दुनिया से पीछे तो नहीं रह गया ? क्या इस बीच बहुत-सी घटनाएँ हो चुकी हैं और अब लोगों के दिमाग़ों को कौन से सवाल परेशान कर रहे हैं ? मैंने पत्रिका के हर शब्द को मन ही मन नापा-तोला, और उन पंक्तियों में जिनमें अतीत का ज़िक्र किया गया था, और अलिखित पंक्तियों से किसी छिपे हुए अर्थ को खोजने की कोशिश करने लगा। अतीत में जिन बातों ने हमें आन्दोलित किया था उनके चिन्हों को खोजने की मैंने कोशिश की। जब मुझे एह-साह हुआ कि मैं इस नई ज़िन्दगी के लिए एक अजनबी हूँ तो मैंने अपने आपको बेगाना और उदास पाया। मैंने सोचा अब मुझे नई चीज़ों का आदी होना पड़ेगा और नए लोगों से परिचय करना होगा। एक परिचित लेखक के लेख को मैंने विशेष उत्सुकता के साथ पढ़ा, लेकिन उसके अलावा कई नए लेखकों के नाम भी थे। मैं उन्हें जानने के लिए बेचैन हो उठा। मुझे क्षोभ भी हुआ कि मैं किताबों तक नहीं पहुँच सकता और जेल में किताबें कितनी मुश्किल से मिलती हैं। पुराने मेजर के राज्य में तो जेल में किताबें लाना बहुत ख़तरनाक समझा जाता था। लोग सोचते थे कि अगर तलाशी हुई तो ज़रूर पूछ-ताछ होगी, "किताबें कहाँ से आईं ? तुम्हें कैसे मिलीं ? तो तुम्हारा जेल से बाहर किसी आदमी से सम्पर्क है ?" किताबों के अभाव में मैं अपने भीतर खो गया था, मैंने अपने मन में कुछ समस्याएँ सोची थीं और उनका हल खोजने की कोशिश में मैं अक्सर उनसे मगज़पच्ची किया करता था। इस अनुभव

को शब्दों में व्यक्त करना असम्भव है।

मैं जाड़ों में जेल आया था और जाड़ों में ही, उसी महीने की उसी तारीख़ को मेरी रिहाई होने वाली थी। मैं बेचैनी से जाड़ों के आने का इन्तज़ार करने लगा। कितनी ख़ुशी से मैं वृक्षों पर से झड़ते हुए पत्तों और स्तेपीज़ की घास को मुर्झाते हुए देखा करता था। अब गर्मी बीत चुकी थी और पतझड़ की हवाएँ साँय-साँय करने लगी थीं। बरफ़ की पहली फुलझड़ियाँ हिचकिचाते हुए गिरीं और अन्त में चिर-प्रतीक्षित जाड़ा भी आ पहुँचा। कई बार आज़ादी की कल्पना से मेरा दिल धड़कने लगता था। लेकिन अजब बात है कि ज्यों-ज्यों मेरी रिहाई का वक्त नज़दीक आता जाता था, त्यों-त्यों मेरा धैर्य भी बढ़ता जाता था। यहाँ तक कि आख़िरी कुछ दिनों में ख़ुद मुझे भी अपने ऊपर ताज्जुब होने लगा था। मैं आज़ादी के प्रति इतना उदसीन और निरुत्साह क्यों था? बहुत से क़ैदी जिन्हें मैं फ़ुर्सत के वक्त सहन में मिला मुझे बधाई देने के लिए आतुर थे।

"अच्छा तो जनाब अलेक्ज़ेंद्र पेत्रोविच, आप बहुत जल्दी रिहा हो जाएँगे और हम ग़रीबों को यहाँ अकेला छोड़ जाएँगे।"

"लेकिन तुम्हें भी तो यहाँ अब बहुत दिन नहीं काटने होंगे। क्यों मार्तीनोव?" मैं जवाब देता।

"मुझे? नहीं। अभी तो मुझे सात बरस तक और यहाँ पिसना होगा।"

वह खड़ा होकर ठंडी साँसें भरने लगता और खोई-खोई नज़रों से जैसे भविष्य को देखता। हाँ, बहुत से लोग ऐसे भी थे जिनकी मुबारक़बादी में सच्ची हमदर्दी थी। मुझे यह भी महसूस हुआ कि उनका व्यवहार मेरे प्रति ज़्यादा दोस्ताना हो गया था। उन्हें महसूस होता था कि मैं अब उनके समाज का सदस्य नहीं था। क- स्की, जो पोलिश था और कुलीन घराने से ताल्लुक़ रखता था, फ़ुर्सत के वक्त सहन में चहलक़दमी करने का आदी था। वह बड़ा ख़ामोश और दयालु नौजवान था। वह

व्यायाम और ताज़ी हवा से अपनी सेहत को बचाना चाहता था, ताकि रात की दूषित हवा से जो नुक्सान होता था, उसकी कसर पूरी कर सके

उसने एक बार मुस्करा कर मुझ से कहा, "मैं आपकी रिहाई के लिए बहुत बेचैन हूँ। जब आप चले जाएँगे तो मुझे ठीक से पता चल जाएगा कि मेरी रिहाई में पूरा एक साल बाक़ी है।"

मैं सरसरी तौर पर यहाँ यह भी कह दूँ कि असली आज़ादी की बजाय आज़ादी की कल्पना में हमें ज़्यादा आनन्द आता था। इसका कारण हमारी क़ैद और दिवा-स्वप्न थे। सब क़ैदियों की तरह हमारे साथी भी कल्पना में आज़ादी का अतिरंजित रूप देखते थे।

क़ैदियों के मुकाबले में फटे कपड़े पहनने वाला अर्दली भी हमें बादशाह मालूम होता था, क्योंकि वह आज़ादी का प्रतीक था और वह बिना बाल मुंडवाए, बिना बेड़ियाँ पहने, बिना संतरियों के आज़ाद घूम सकता था।

रिहाई से एक दिन पहले मैंने जेल की चहारदीवारी के साथ-साथ आख़िरी बार कई चक्कर लगाये। इन बरसों में कितने हज़ार बार मैं इस चहारदीवारी के गिर्द घूमा था? क़ैद के पहले बरसों में मैं निराश और अकेला बैरकों के पीछे टहला करता था। मुझे याद आया, मैंने गिनती की थी कि मेरी आज़ादी में कितने हज़ार दिन बाक़ी हैं। हे ईश्वर, वह अब कितने सुदूर अतीत की बात मालूम हो रही थी। और वहाँ, उस कोने में हमारा बाज़ बैठा करता था। वहीं अक्सर पेत्रोव भी मुझ से बातचीत करने के लिए आया करता था। यहाँ तक कि अभी भी वह भागकर मेरे साथ चुपचाप टहला करता था। लगता था, वह मेरे विचारों को बूझ रहा है और उसे किसी बात पर ताज्जुब हो रहा है। मैंने बैरकों के बिना तराशे हुए कुन्दों से विदा ली। शुरू में वे कितने क्रूर दिखाई देते थे।

इन बरसों में वे ज़रूर पुराने हो गए होंगे, लेकिन मुझे उनमें कोई

फ़र्क नजर नहीं आया। इन दीवारों के भीतर कितनी जवान ज़िन्दगियाँ तबाह हो चुकी थीं। कितने इन्सानों की शक्तियाँ बिना इस्तेमाल के ही ख़त्म हो गई थीं। सच्चाई तो यह है कि इस जगह रहने वाले लोग मामूली आदमी नहीं थे। शायद वे हमारे देशवासियों में सबसे अधिक प्रतिभाशाली और शक्ति-सम्पन्न लोग थे। लेकिन देश की यह महान् जनशक्ति अस्वाभाविक रूप से, सदा के लिए व्यर्थ ही बरबाद हो गई थी। इसमें क़सूर किसका था ?

यही तो असली सवाल है; क़सूर किसका है ?

अगले दिन तड़के, काम शुरू होने से पहले अपने सब साथियों से विदा लेने के लिए मैं बैरकों में गया। बहुत से खुरदरे हाथ मेरी तरफ़ बढ़े। कुछ ने सच्चे दोस्तों की तरह मुझसे हाथ मिलाये, हालांकि उनकी संख्या बहुत कम थी। बाक़ी अच्छी तरह जानते थे कि मैं उनसे बिल्कुल अलग किस्म का आदमी बनने जा रहा हूँ। वे जानते थे कि शहर में मेरे दोस्त हैं और मैं सीधा उनके पास जाकर उनके साथ बराबरी का दर्जा पा लूँगा। वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे, हालाँकि उन्होंने बड़ी अच्छी तरह मुझसे विदा ली थी। लेकिन ऐसा लगता था कि वे किसी दोस्त से नहीं, बल्कि कुलीन घराने के किसी आदमी से बातचीत कर रहे हों। कुछ चिढ़कर वहाँ से चले गए और कुछ ने तो मुझे नफ़रत की निगाहों से भी देखा।

सुबह का नगाड़ा बजते ही सब लोग काम पर चले गये, सिर्फ़ मैं पीछे रह गया। सुशीलोव ने तड़के ही सबसे पहले उठकर मेरे लिए वक्त पर चाय तैयार की थी। बेचारा सुशीलोव ! जब मैंने उसे अपने पुराने कपड़े, कमीजें, बेड़ियाँ और बचे हुए पैसे दिए थे तो वह कितना रोया था !

"मैं रो नहीं रहा, मैं रो नहीं रहा," उसने अपने ओंठ भींच कर रुलाई रोकने की कोशिश करते हुए कहा, 'तुम्हारी जुदाई मुझसे कैसे बर्दाश्त होगी, अलेक्जांद्र पेत्रोविच ? तुम्हारे बग़ैर मैं क्या करूँगा ?"

मैंने अकिम अकीमिच से भी विदा ली।

"जल्द तुम्हारी भी रिहाई की बारी आयेगी।" मैंने उससे कहा।

"मुझे तो अभी यहीं रहना होगा। बहुत अर्से तक रहना होगा।" उसने मेरा हाथ दबाकर अस्फुट स्वर में कहा। मैं उसके गले से लिपट गया।

जब क़ैदी काम पर चले गए, तो दस मिनट बाद मैं और मेरा दोस्त, जो मेरे साथ जेल में आया था, आखिरी बार जेल से बाहर निकले। हमें बेड़ियाँ कटवाने के लिए लुहारों के महकमे में जाना था, लेकिन आज हमारे साथ कोई हथियारबन्द संतरी नहीं था। सिर्फ़ एक सार्जेन्ट था। खुद हमारे क़ैदियों ने ही वर्कशाप में मेरी बेड़ियाँ काटीं। जब मेरे साथी की बेड़ियाँ कट गईं तो मैंने पीछे मुड़कर अपने पैर निहाई पर रख दिये। लुहार बहुत ध्यान से बेड़ियाँ तोड़ने में लग गए।

"रिपिट का ख़्याल रखना! पहले रिपिट को हटाओ!" बुजुर्ग लुहार ने कहा, "इसे नीचे रख दो। ठीक है। अब हथौड़ी चलाओ!"

बेड़ियाँ फ़र्श पर गिर पड़ीं। मैंने आखिरी बार देखने के लिए उन्हें उठाया। यह सोचना कितना अजब लग रहा था कि अभी एक क्षण पहले वे बेड़ियाँ मेरे टखनों पर थीं।

"अच्छा, खुदा हाफ़िज़! खुदा हाफ़िज़!" क़ैदियों ने रूखी आवाज में कहा, लेकिन उनकी आवाज में खुशी का लहजा था।

हाँ, खुदा हमारी हिफ़ाजत करे। अब हमारी जिन्दगी में आजादी होगी, एक नई जिन्दगी मिलेगी। नये सिरे से हमारा जन्म होगा। आह, वह क्षण कितना शानदार था!

● ● ●

"जल्द तुम्हारी भी रिहाई की बारी आयेगी।" मैंने उससे कहा।

"मुझे तो अभी यहीं रहना होगा। बहुत अर्से तक रहना होगा।" उसने मेरा हाथ दबाकर अस्फुट स्वर में कहा। मैं उसके गले से लिपट गया।

जब क़ैदी काम पर चले गए, तो दस मिनट बाद मैं और मेरा दोस्त, जो मेरे साथ जेल में आया था, आख़िरी बार जेल से बाहर निकले। हमें बेड़ियाँ कटवाने के लिए लुहारों के महकमे में जाना था, लेकिन आज हमारे साथ कोई हथियारबन्द संतरी नहीं था। सिर्फ़ एक सार्जेन्ट था। खुद हमारे क़ैदियों ने ही वर्कशाप में मेरी बेड़ियाँ काटीं। जब मेरे साथी की बेड़ियाँ कट गईं तो मैंने पीछे मुड़कर अपने पैर निहाई पर रख दिये। लुहार बहुत ध्यान से बेड़ियाँ तोड़ने में लग गए।

"रिपिट का ख़्याल रखना! पहले रिपिट को हटाओ!" बुज़ुर्ग लुहार ने कहा, "इसे नीचे रख दो। ठीक है। अब हथौड़ी चलाओ!"

बेड़ियाँ फ़र्श पर गिर पड़ीं। मैंने आख़िरी बार देखने के लिए उन्हें उठाया। यह सोचना कितना अजब लग रहा था कि अभी एक क्षण पहले वे बेड़ियाँ मेरे टख़नों पर थीं।

"अच्छा, खुदा हाफ़िज़! खुदा हाफ़िज़!" क़ैदियों ने रूखी आवाज़ में कहा, लेकिन उनकी आवाज़ में ख़ुशी का लहजा था।

हाँ, खुदा हमारी हिफ़ाज़त करे। अब हमारी ज़िन्दगी में आज़ादी होगी, एक नई ज़िन्दगी मिलेगी। नये सिरे से हमारा जन्म होगा। आह, वह क्षण कितना शानदार था!

● ● ●